सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७०

(१६ जुलाई से ३० नवम्बर, १९३९)

इलाहबाद जाते हुए

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७०

(१६ जुलाई से ३० नवम्बर, १९३९)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

नवम्बर, १९७८ (कार्तिक १९००)

साढ़े सात रुपये

10.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली-११०००१ द्वारा प्रकाशित और
शान्तिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद-३८००१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

इस खण्डमें १६ जुलाईसे ३० नवम्बर, १९३९ तक की सामग्री दी गई है। गांधीजी की सलाहसे जो संवैधानिक प्रयोग कांग्रेसने जुलाई, १९३७ में आरम्भ किया था, वह इस अवधिमें सहसा समाप्त हो गया। द्वितीय विश्व-युद्धके छिड़ते ही देशके नेतृत्वके समक्ष असमंजसकी स्थिति उपस्थित हो गई — वह अंग्रेजोंकी साम्राज्य-रक्षाकी इस लड़ाईमें उनकी सहायता करे, या उनके साथ सहयोग करने से इनकार करके दुनियाकी नजरोंमें अपनेको फासिस्ट ताकतोंका मददगार साबित करे। गांधीजी ने इस द्विधाको बृहत्तर नैतिक परिप्रेक्ष्यमें देखा। यूरोपीय संकटको घनीभूत होते देखकर उन्होंने हिटलरके नाम एक पत्र (जिसे भारत सरकारने अग्रेषित नहीं किया) लिखा, जिसमें उससे "मानव-जातिको बर्बर अवस्थामें पहुँचा" देने की सम्भावनासे युक्त उस युद्धको रोकने का आकुल अनुरोध किया (पृ० २३), और जब युद्ध छिड़ गया तो उनका मन "त्रास" से भर उठा। उन्हें विश्वास था कि मानवताकी एकमात्र त्राता अहिंसा ही है; अतः उन्होंने इस संकटमें अपनी भूमिका निभाने का निश्चय किया। उन्होंने देखा कि "इस नाटकमें हम अभिनेता और दर्शक दोनों हैं" और "मेरा मार्ग तो निश्चित है।" वे चाहे कार्य-समितिकी रहनुमाई करें या सरकारका मार्ग-दर्शन, वह "उनमें से एक या दोनोंको अहिंसाके मार्गपर ले जाने के लिए होगा, फिर चाहे उस मार्गपर उनकी प्रगति अगोचर ही क्यों न रहे" (पृ० २२५-२६)।

इस दारुण विपत्तिपर गांधीजी की प्रतिक्रियाकी प्रथम सार्वजनिक अभिव्यक्ति मनुष्य-जातिके लिए उनकी चिन्ताकी गहराईको प्रकट करती है। ४ सितम्बरको वाइसरायसे अपनी मुलाकातके बाद समाचारपत्रोंको दिये एक वक्तव्यमें उन्होंने कहा: "... पार्लियामेंट भवन और वेस्टमिन्स्टर एबि तथा उनके सम्भावित विध्वंसका चित्र खींचते-खींचते मेरा दिल भर आया और मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो गया। ... इसलिए इस समय मैं भारतकी मुक्तिकी बात नहीं सोच रहा हूँ। भारतको अवश्य मुक्ति मिलेगी। लेकिन अगर इंग्लैंड और फ्रान्सका पतन हो जाता है, अथवा यदि उन्हें विध्वस्त जर्मनीपर फतह मिल जाती है तो उसका क्या मूल्य रह जायेगा?" (पृ० १७९-८०)।

कांग्रेसको कौन-सी नीति अपनानी चाहिए, इस सम्बन्धमें गांधीजी का विचार मानव-जातिके लिए उनकी इसी व्यापकतर चिन्तासे उद्भूत था। उनका निष्कर्ष था कि युद्धका दायित्व हिटलरके सिर है (पृ० १८९)। यद्यपि वे भारतमें ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध गत बीस वर्षोंसे संघर्ष-रत थे, तथापि अब उनकी सहानुभूति पूर्ण रूपसे मित्र-राष्ट्रोंके साथ थी, क्योंकि उन्होंने देखा कि यह "पश्चिममें विकसित

प्रजातन्त्र, और हर हिटलर जिसका प्रतीक है, उस सर्वसत्तावादके बीचकी लड़ाई थी (पृ० २२५)। इसलिए उन्होंने कांग्रेसको अंग्रेजोंको बिना शर्त नैतिक समर्थन देने की सलाह दी (पृ० १९४ और ३४७)। एक अंग्रेज शान्तिवादीको गांधीजी ने समझाया. ऐसा समर्थन "मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यको ऊँचा नैतिक बल" प्रदान करेगा, और "उस हालतमें कांग्रेसका प्रभाव शान्तिके लिए बहुत कारगर होगा।" उनकी दृष्टिमें यह देखना "कांग्रेसका खास फर्ज" था कि "अगर युद्ध अन्त तक लड़ा जाता है तो कोई पराजित पक्षका किसी तरह मान-भंग अथवा अपमान न करे" (पृ० २८६)। यही इस युद्धमें कांग्रेसकी भूमिकाकी उनकी कल्पना थी। लेकिन उनका विचार था कि कांग्रेसको ऐसी नैतिक सत्ता तभी प्राप्त होगी जब वह अहिंसाको अपने सिद्धान्त और नीतिके रूपमें अपनाये और बाहरी आक्रमणसे भी देश की रक्षा करने के लिए हिंसाका सहारा न ले; क्योंकि "भारतका शस्त्रीकरणकी होड़में शामिल होना उसके लिए आत्महत्याके समान होगा। भारतके अहिंसाका दामन छोड़ देने का मतलब यह होगा कि संसारकी आशाका वह एकमात्र सूत्र भी टूट गया" (पृ० २७१)।

किन्तु समग्र देशका प्रतिनिधित्व करने का दावा करनेवाले राजनीतिक संगठनके रूपमें कांग्रेस अहिंसाको एक सिद्धान्तकी तरह नहीं अपना सकती थी, और न अंग्रेजोंको बिना शर्त नैतिक समर्थन देने के गांधीजी के सुझावको ही स्वीकार कर सकती थी। देशमें ऐसे बहुत-से नेता थे जो इस मार्गके पक्षमें नहीं थे, क्योंकि ब्रिटेनके इस कथनमें उनका विश्वास नहीं था कि वह लोकतन्त्रकी खातिर लड़ रहा है। अतएव, चार दिनोंकी लम्बी चर्चाके बाद १४ सितम्बरको कांग्रेस कार्य-समितिने जवाहरलाल नेहरू द्वारा तैयार किया गया एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें "साम्राज्यवादी नीतियों पर . . . तथा भारतमें और अन्यत्र साम्राज्यवादको मजबूत करने" के लिए चलाये जा रहे युद्धसे कोई सरोकार रखने से इनकार करते हुए ब्रिटिश सरकारको अपने युद्ध-लक्ष्योंकी घोषणा करने और यह बताने को आमन्त्रित किया गया कि वे "भारतपर किस तरह लागू होते हैं और इस समय उन्हें किस प्रकार लागू किया जायेगा" (पृ० ४६३-६४)। उत्तरमें वाइसरायने सिर्फ इतना किया कि "ब्रिटिश उपनिवेशोंके बीच अपना उचित स्थान प्राप्त" करने में भारतको सहायता देने के ब्रिटिश इरादेका फिरसे इजहार किया, "विभिन्न कौमों, दलों और हितों तथा भारतीय नरेशों" के "परामर्श" से १९३५ के भारत सरकार अधिनियममें कुछ परिवर्तन करने का वचन दिया, और एक "सलाहकार समिति" जिसमें "ब्रिटिश भारतके सभी बड़े राजनीतिक दलों और देशी नरेशोंके प्रतिनिधि शामिल होंगे," नियुक्त करने का प्रस्ताव किया (पृ० ४६९ और ४७१)। गांधीजी की दृष्टिमें यह "घोषणा बड़ी निराशाजनक" थी (पृ० २९७)। बादमें पार्लियामेंटके दोनों सदनोंमें हुई बहसों और कामन्स सभामें सर सैम्युअल होरके भाषणसे गांधीजी को विश्वास हो गया कि ब्रिटिश सरकारसे अपने युद्ध-लक्ष्योंकी घोषणा करने की माँग करके कार्य-समितिने बुद्धिमानीका काम किया (पृ० ३४७)।

भारतीय समस्याके प्रति ब्रिटेनके दृष्टिकोणके पीछे मात्र ब्रिटिश और भारतीय वर्गगत हितोंकी रक्षाकी प्रेरणा थी। उसे इस बातकी कोई चिन्ता नहीं थी कि यहाँ किसी ऐसी सवैंधानिक व्यवस्थाका विकास हो जो जन-साधारणके प्रभावको निर्बाध रूपसे अपनी शक्तिका परिचय देने का अवसर दे और इस प्रकार भारतमें सच्चे अर्थोंमें लोकतान्त्रिक, न्याययुक्त और एकीकृत समाजकी रचना हो सके। कार्य-समितिने १४ सितम्बरके प्रस्तावमें "भारतमें पूरी तरहसे लोकतन्त्रकी स्थापना" करने और भारतकी जनता को "आत्म-निर्णय करने . . . अर्थात् . . . बिना किसी बाहरी हस्तक्षेपके संविधान-सभा द्वारा अपने संविधानका निर्माण करने" का अधिकार देने की माँग की थी (पृ० ४६२)। भारत-मन्त्री लॉर्ड जेटलैंडके अनुसार इसका मतलब संक्षेपमें यह था कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें समझौता करके यथासम्भव व्यापकतम मताधिकारके आधारपर निर्वाचित संविधान-सभा द्वारा भारतके भावी शासन-विधानकी रचनामें ब्रिटिश सरकार कोई विरोध-आपत्ति नहीं कर पायेगी। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि ब्रिटिश सरकारके लिए इस स्थितिको स्वीकार करना असम्भव था, क्योंकि उनकी रायमें, भारतके साथ ब्रिटेनके दीर्घकालीन सम्बन्धोंके फलस्वरूप उसके सिर कुछ ऐसे दायित्व आ गये थे जिनसे जी चुराना उसके लिए अशक्य था (पृ० ४८४ और ४८५)। इन दायित्वोंका सम्बन्ध देशी नरेशों, यूरोपीय व्यापारिक हितो तथा अल्पसंख्यकोंसे था। कार्य-समितिके प्रस्तावमें देशी नरेशोंके सम्बन्धमें यह उचित बात कही गई थी कि देशके बाहर लोकतन्त्रके पक्षमें अपनी आस्थाकी घोषणाएँ" करने के बावजूद "अपनी रियासतोंमें . . जहाँ आज विशुद्ध तानाशाहीका बोलबाला है", "लोक-तन्त्रकी स्थापना" करने में उनकी कोई रुचि नहीं है (पृ० ४६३)। जनताके प्रति नरेशोका यह एक ऐसा दायित्व था जिसे पूरा करने के लिए अधीश्वरी सत्ताने उनसे न कभी कोई अनुरोध किया और न उन्हें प्रोत्साहन ही दिया था। गांधीजी ने बड़ी साफगोईके साथ यह भी बताया कि "ग्रेट ब्रिटेन प्रजातन्त्रका संरक्षक बनता है, लेकिन जबतक ५०० निरकुश शासक उसके मित्र है तबतक उसका प्रजातन्त्रके सरक्षकवाला रूप दूषित है" (पृ० २५२)। और विदेशी व्यापारिक हित तो भारत पर जबरन् थोपी गई एक चीज थी, जिसकी "रक्षा ब्रिटिश सगीनों द्वारा होती" थी। गांधीजी ने स्पष्ट घोषणा की कि "स्वतन्त्र भारत हरएक यूरोपीय हितकी उसके गुण-दोषके अनुसार जाँच करने की माँग करेगा और ऐसा जो हित राष्ट्रीय हितके विरुद्ध दिखाई देगा, वह समाप्त कर दिया जायेगा" (पृ० ३५४)।

देशी नरेशों और यूरोपीय हितोंके सम्बन्धमें अपने पक्षकी कमजोरीका अंग्रेजोंको पूरा एहसास था। इसलिए ब्रिटिश प्रवक्ताओंने जान-बूझकर अल्प-संख्यकोंकी समस्याका राग अलापना शुरू किया, हालाँकि — जैसा कि स्वयं लॉर्ड जेटलैण्डने स्वीकार किया था — कांग्रेस जिस संविधान-सभाकी माँग कर रही थी वह साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके बारेमें पारस्परिक समझौतेके आधारपर बुलाई

जानेवाली थी (पृ० ४८४)। गांधीजी ने ब्रिटिश सरकारको तरह-तरहसे समझाने की कोशिश की। उन्होंने कहा, "जहाँतक भारतका ताल्लुक है, यहाँ केवल राजनीतिक दल ही हो सकते हैं, अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक समुदाय नहीं। बहुसंख्यकोंके अत्याचारका शोर सर्वथा कृत्रिम शोर है", क्योंकि "हिन्दुत्व एक बहुत लचीला शब्द है, जिसकी निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती, और मुसलमानों और ईसाइयोंकी तरह हिन्दुओंका कोई ऐसा समाज नही है जो सर्वथा समजातीय हो।" "बहुसंख्या केवल कागजी बहुसंख्या" ही तो थी, क्योंकि "सैनिक दृष्टिसे बहुत कमजोर" होने के कारण "वह ज्यादा-कुछ कर नही सकती" थी। भारतीय परिस्थितिके मर्मकी अद्भुत पहचानका परिचय देते हुए गांधीजी ने बताया कि "तथाकथित अल्पसंख्यकोंको जो थोड़ा-बहुत डर है भी, उसके लिए सिर्फ तभी तक कुछ आधार है जबतक कि दुर्बल बहुसंख्याके पास प्रजातन्त्रका खेल खेलने के लिए ब्रिटिश शस्त्र-बलका सहारा है" (पृ० २८८ और २८९)। सर सैम्युअल होर द्वारा भारतके "कांग्रेसी भारत और गैर-कांग्रेसी भारत" के रूपमें विभाजन किये जाने का अर्थ वास्तवमें उसका "सशस्त्र भारत और निःशस्त्र भारत" के रूपमें विभाजन था, और उसका तात्पर्य एक प्रकारसे दुनियाको यही बताना था कि "भारतकी आजादीकी लड़ाई तबतक नही जीती जा सकती जबतक कि नि.शस्त्र भारत सशस्त्र भारतसे, जिसमें ब्रिटिश सरकार भी शामिल" थी, "समझौता नही करता" (पृ० ३५४ और ३५५)। लेकिन ये सारी दलीलें बेकार गईं, क्योंकि वास्तविकता यह थी कि ब्रिटिश सरकार असली सवालका सामना करने को तैयार ही नही थी। असली सवाल यह था कि "क्या ब्रिटेनके लिए यह उचित" था "कि वह भारतपर अपने कब्जेको वाजिब बताने के लिए हमारे आपसी झगड़ोंकी दुहाई देता फिरे" (पृ० २८७)। "क्या लोगोंको बुलाकर उनसे यह पूछना उचित" था "कि वे . . . स्वाधीनता चाहते हैं अथवा नहीं? क्या किसी गुलामसे उसकी आजादीकी वांछनीयताके सम्बन्धमें राय ली जानी चाहिए?" (पृ० ३१२) दूसरे शब्दोंमें, आवश्यकता इस बातकी थी कि "ब्रिटेन भारतीयोंकी इच्छाओंका विचार किये विना भारत-सम्बन्धी अपने इरादेकी घोषणा करे" (पृ० ३७६)। लेकिन, जैसा कि गांधीजी ने कार्य-समितिके प्रस्तावपर १४ सितम्बरको समाचारपत्रोंको दिये अपने वक्तव्यमें बताया था, ऐसे निर्णयके लिए "ब्रिटिश राजनेताओंके दृष्टिकोणमें आमूल परिवर्तन" की आवश्यकता थी (पृ० १९५)। उनके एक दूसरे वक्तव्यके शब्दोंको लें, तो इसका मतलब यह था कि "यदि साम्राज्यवादका सचमुच अन्त हो गया है तो अतीतसे स्पष्ट सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिए" था और "नये युगके उपयुक्त भाषाका उपयोग किया जाना चाहिए" था (पृ० ३७६)।

किन्तु "दृष्टिकोणमें" वैसे "आमूल परिवर्तन" के लिए ब्रिटिश राजनेता अभी तैयार नहीं थे, और उनका यह हठ उपमहाद्वीपकी सुख-शान्तिके लिए घातक परिणामोंकी सम्भावनासे आपूरित था। वास्तवमें अपने ही कर्म-अकर्मसे ब्रिटिश

सरकारने युद्ध-प्रयत्नोंमें कांग्रेसके सहयोगका रास्ता बन्द कर दिया था। फिर भी गांधीजी का दृढ़ मत था कि "कांग्रेसको उसके सामने कोई परेशानी खड़ी करके इन प्रयत्नोंमें बाधा नहीं डालनी चाहिए" (पृ० ३५३)। वाइसराय लॉर्ड लिनलिथगोकी सदाशयतामें उन्हें विश्वास था। वे मानते थे कि "हमारे बीच जो मित्रता कायम हो गई है, वह हमारे आपसी मतभेदोंके कारण पड़नेवाले बोझ को झेल लेगी" (पृ० ३२७)। इसलिए जबतक वाइसराय समझौतेकी सम्भावनाओंकी तलाश कर रहे थे तबतक गांधीजी सविनय अवज्ञाकी बात सोचने को तैयार नही थे। उन्हें यकीन था कि वाइसराय और भारत-मन्त्री गलती पर थे, लेकिन उनकी सदाशयतामें विश्वास करते हुए वे उन्हे "सँभलने के लिए समय" देने के पक्षमें थे, और उनका सुझाव था कि इस बीच "हमें अपने देश और विदेशोंकी जनताको सच्ची बातें बताकर वास्तविक प्रचार-कार्य करना चाहिए" (पृ० ४३७)। सविनय अवज्ञा आरम्भ करने में गांधीजी की अनिच्छाके अन्य कारण थे — मुस्लिम लीगका विरोध और "कांग्रेसके अन्दर अनुशासनहीनता और फूट" (पृ० ३७७)। मुस्लिम लीग कांग्रेसको मुसलमानोंका शत्रु मानती थी, और कांग्रेसमें ऐसी अहिंसक शक्ति नहीं थी कि वह उसके विरोधको निरस्त कर सकती। अंग्रेजोंके खिलाफ उसकी "अहिंसा वस्तुतः स्थगित या निष्क्रिय हिंसा थी . . .। इसके अलावा . . . कांग्रेसकी सभाओंमें भी . . . प्रतिस्पर्धी कांग्रेसी एक-दूसरेके विरुद्ध हिंसापर उतर आते" थे, और "कांग्रेसके चुनावोंमें प्रकट होनेवाली घोर अनुशासनहीनता और धोखेबाजी कांग्रेसमें विद्यमान हिंसाकी परिचायक" थी (पृ० २९५)। हिंसाके इस वातावरणके प्रति गांधीजी इतने अधिक संवेदनशील थे कि उन्हें लगता था, मानों "मेरे पैरों तले बारूद बिछी हुई है" (पृ० ४२०)। उन्हें आशंका थी कि ऐसे वातावरणमें सविनय अवज्ञाका "परिणाम निश्चित रूपसे हिन्दू-मुस्लिम दंगा होगा" (पृ० ३५२)। जल्दबाजीमें कदम उठाने में समाये हुए खतरोंपर जोर देते हुए उन्होंने कहा: "मुझे इस बातका दुःखद भान है कि भारत अभी बड़े पैमानेपर अहिंसात्मक सविनय अवज्ञाके लिए तैयार नही है। इसलिए अगर मैं कांग्रेसको उस समयतक प्रतीक्षा करते रहने के लिए राजी नहीं कर सकता जबतक कि अहिंसात्मक युद्ध किया जाना सम्भव हो सके, तो दो जातियोंमें विनाशकारी गृह-युद्ध देखने के लिए जीवित रहने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। मै निश्चित रूपसे जानता हूँ कि अगर मैं कांग्रेसके सन्तोषके लायक अहिंसात्मक क्रियाशीलता या निष्क्रियताका कोई तरीका न निकाल सका और साम्प्रदायिक समझौता न हुआ तो संसारकी कोई भी शक्ति हिंसाके विस्फोटको नही रोक सकती, जिसका परिणाम कुछ समयके लिए अराजकता और महाविनाश होगा" (पृ० ४०८)। किन्तु गांधीजी "अराजकता नहीं" चाहते थे, क्योंकि "अराजकतासे स्वराज्य नही मिल सकता" था (पृ० ३५३)। उनकी मान्यता थी कि "साम्प्रदायिक सन्देहको दूर करने का एकमात्र रास्ता . . . इस समय स्वराज्यकी खातिर सविनय अवज्ञा न" करना था (पृ० ३६०)।

लेकिन इस तरहकी आशंकाएँ सभी कांग्रेसियोंके मनमें नहीं थीं। वर्षके आरम्भसे ही सुभाष बोस, यथासम्भव शीघ्र सार्वजनिक आन्दोलन छेड़ने की हिमायत कर रहे थे, और इस प्रश्नपर गांधीजी के साथ अपने मतभेदके फलस्वरूप मईके महीनेमें उन्होंने कांग्रेसके अध्यक्ष-पदसे त्यागपत्र दे दिया था (खण्ड ६९)। बाद की घटनाओंसे कार्य-समितिको सुभाष बाबूके "जान-बूझकर और खुल्लमखुल्ला किये गये अनुशासन-भंगके कार्य" के विरुद्ध कार्रवाई करने को विवश होना पड़ा (पृ० ९५), लेकिन उनके प्रति अब भी कांग्रेसमें लोगोंकी सहानुभूति थी। युद्ध छिड़ने के बाद गांधीजी और सुभाष बाबूके मतभेद इतने गहरे हो गये कि उन्हें पाटना असम्भव हो गया। निदान गांधीजी को उन्हें लिखना पड़ा: "तुम्हारे और मेरे रास्ते अलग हैं। फिलहाल तो तुम भटक गये हो और मैंने तुम्हें खो दिया है। यदि मैं सही हूँ और मेरा प्रेम सच्चा है तो मैं तुम्हें किसी दिन अपने समूहमें लौटा हुआ पाऊँगा" (पृ० ४१९-२०)। मतभेद गांधीजी और जवाहरलालके बीच भी पैदा हो रहे थे, और गांधीजी निश्चयपूर्वक यह भी नहीं कह सकते थे कि कार्य-समितिके अन्य सदस्य भी उनके साथ थे या नहीं। २६ अक्तूबरको उन्होंने नेहरूको लिखा: "मैं महसूस करता हूँ कि यदि मैं तुम सब लोगोंकी सहमति और समर्थन प्राप्त नहीं कर सकता तो मुझे नेतृत्व भी नहीं करना चाहिए। . . . तुम पूरी तरह बागडोर अपने हाथमें ले लो और देशका नेतृत्व करो, और मुझे अपना मत प्रकट करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दो। किन्तु यदि तुम सबके विचारमें मुझे पूर्णतया मौन रहना चाहिए तो आशा है, ऐसा करने में भी मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी" (पृ० ३३१)। फिर हफ्ते-भर बाद उनसे व्यक्तिगत तौरपर बातचीत करने के उपरान्त उन्होंने जवाहरलालको लिखा: "हमारे इतिहासके इस नाजुक दौरमें हमारे बीच कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए और सम्भव हो तो हमें एकमत होना चाहिए" (पृ० ३६६)।

गांधीजी ने सविनय अवज्ञाका वर्जन किया, इसका मतलब यह नहीं कि उन्होंने हर प्रकारकी कार्रवाईका निषेध कर दिया। असहयोग तो कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलोंके त्यागपत्रके साथ ही आरम्भ हो गया था (पृ० ३६७)। और उन्हें पूरा विश्वास था "कि समस्याके मुकाबलेके लिए कांग्रेस अपने ऊपर स्वयं लगाई हुई सीमाओंके अन्दर भी सविनय अवज्ञाके अलावा और कोई उपाय ढूँढ़ लेगी" (पृ० ३८४)। लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम था कि वह उपाय क्या होगा। कुछ दिन पूर्व ही उन्होंने कहा था: "मेरे पास कोई ठोस योजना तैयार नहीं है। . . . और बातें मुझे दिन-ब-दिन सूझती जायेंगी, जैसे कि मेरी सब योजनाओंके बारेमें हमेशा हुआ है। . . . मुझे अन्तरात्माकी क्षीण आवाजके अनुसार ही काम करना चाहिए" (पृ० २२६ और २२७)। जब उन्होंने दाँडी-कूचका निश्चय किया था, उस क्षणके पूर्वतक कैसे उन्हें उसका कोई आभास नहीं था, इसका स्मरण करते हुए उन्होंने कहा: "इतना मुझे मालूम है कि ईश्वरने मेरे द्वारा इतिहासकी पुनरावृत्ति शायद ही कभी करवाई हो और सम्भव है, इस बार भी न करवाये" (पृ० ४२१)।

यद्यपि गांधीजी ने "अन्तर्यामीकी आवाजको सुनने" की कोशिश का ही नहीं, बल्कि "उसे सुनने का" भी दावा किया, तथापि ऑक्सफर्ड ग्रुपके सदस्योंके समक्ष उन्होंने नम्रतापूर्वक स्वीकार किया कि "मैं ईश्वरसे अब भी दूर हूँ . . . आत्म-प्रवंचनासे शायद पूर्णतः मुक्त नहीं हूँ।" वस्तुत. उन्होंने भारतको "ईश्वरके रास्ते पर लाने की भरसक कोशिश की" थी, लेकिन यद्यपि उसमें उन्हें कुछ सफलता मिली थी, तथापि वे "अब भी लक्ष्यसे बहुत दूर" थे (पृ० २१५-१६)। अन्तरात्माकी आवाजको सुनने का साधन प्रार्थना थी। गांधीजी ने चार्ल्स फावरीको समझाया कि प्रार्थनासे वे अपने अन्दरके उस दिव्य तत्त्वको जाग्रत करने का प्रयत्न करते थे जो "जड़-चेतन सभी पदार्थोंमें" विद्यमान है। उनका विचार था कि जबतक मनुष्य "अपने-आपको शून्य नहीं बना" लेता तबतक उसे "ईश्वर या प्रार्थनाका अर्थ मालूम नहीं" हो सकता। "इन्हीं अवसरोंपर हमें ईश्वरकी झांकी मिलती है, उसके दर्शन होते हैं, जो जीवनमें हर कदमपर हमें रास्ता बता रहा है" (पृ० ३०-३३)।

कुछ लोगोंने गांधीजी पर यह आरोप लगाया था कि उनका "ब्रह्मचर्य अपनी वासनाको छिपाने का एक साधन है।" इसका उत्तर देते हुए गांधीजी ने बताया कि किस प्रकार १९०६ में लिये गये अपने ब्रह्मचर्य-व्रतके कारण वे माताके रूपमें स्त्रियोंके प्रति दुर्निवार रूपसे आकृष्ट" हुए और कैसे स्त्रियाँ उनके लिए "इतनी पवित्र हो गईं कि . . . उनके प्रति वासनामय प्रेमका खयाल" उनके मनमें आ ही नहीं सकता था। फलत. जब उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाकी भारतीय स्त्रियोंको वहाँके सत्याग्रह-संघर्षमें शामिल होने को आमन्त्रित किया तो उन्हें "इस बातका पता चल गया कि स्त्री-जातिकी सेवाके लिए वे खास तौरसे उपयुक्त" थे। "भारत लौटने पर यहाँ भी . . . भारतीय स्त्रियोंसे" वे जल्दी ही हिल-मिल गये, और उनके लिए "यह एक सुखद रहस्योद्घाटन था कि" वे "उनके हृदयोंतक कितनी आसानीसे पहुँच" जाते थे (पृ० ३४९-५१)। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि "स्त्री त्यागकी और इसीलिए अहिंसाकी मूर्ति होती है", और उन्हें लगा कि "उसे हिंसात्मक युद्ध . . . में" घसीटना "मौजूदा सभ्यताके लिए कोई शोभाकी बात नहीं है", और "हिंसा स्त्रीके लिए इतनी अशोभनीय चीज है कि वह अपनी मूल प्रकृतिपर इस तरह प्रहार किये जाने के विरुद्ध शीघ्र ही उठ खड़ी होगी" (पृ० ४२८)।

उनका विचार था कि आधुनिक सभ्यता न केवल स्त्रियोंकी मूल प्रकृतिका वरन् सम्पूर्ण मानव-प्रकृतिका ही हनन करती है, क्योंकि उसका आधार शोषण है, जो हिंसाका मूल है (पृ० ३३०)। गांधीजी की मान्यता थी कि सच्चा भारत सैनिक नहीं, बल्कि शान्तिवादी है और यदि लाखों लोगोंको हिंसाके पाशविक नियमका प्रशिक्षण देना सम्भव है तो "नव-संस्कार-सम्पन्न मनुष्य" के नियम-रूप "अहिंसामें . . . उन्हें दक्ष बनाना और भी सम्भव है" (पृ० २२३)। उनकी दृष्टिमें, अहिंसा केवल "ऋषियों अथवा गुफाओंमें रहनेवालों" का ही धर्म नहीं

थी, बल्कि उसका आचरण "लाखों लोग कर सकते" थे। उन्होंने अपने मित्रों और आलोचकों, दोनोंसे 'हिन्द स्वराज्य' को उनकी दृष्टिसे पढ़कर यह समझने का आग्रह किया कि "स्वावलम्बी गाँवों" की बुनियादपर भारतको कैसे अहिंसक रखा जा सकता है (पृ० ३३०)। एक ओर गांधीजी "अपने कामपर पैदल चलकर" जाने के आदर्श (पृ० २२३)में विश्वास रखते थे और दूसरी ओर रेल और मोटर गाड़ियोका बेझिझक उपयोग कर रहे थे। उनके आदर्शको उनके आचरणसे अलग करती-सी दिखती इस "कभी न पटनेवाली खाई" (पृ० २६६) के सम्बन्धमें गांधीजी ने अपने आलोचकोंको समझाया कि 'हिन्द स्वराज्य' "तथा-कथित अज्ञान और अन्धकारके युगमें पीछे लौटने का प्रयत्न नहीं है, बल्कि वह ऐच्छिक सादगी, गरीबी और धीमेपनमें सौन्दर्यको देखने का प्रयत्न है। . . . आज लोगोंमें जो नित नई वस्तु प्राप्त करने की ललक दिखाई देती है . . . अपनी आवश्यकताओंको निरन्तर बढाते जाने की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है . . . ये सब बातें हमारी अन्तरात्माका हनन करती हैं" (पृ० ३६७-६८)। उन्होंने यह स्वीकार किया कि कोई भी आदर्श पूर्ण रूपसे आचरित नही किया जा सकता, लेकिन साथ ही उनका कहना था कि "आनन्द तो साधनामें है, सिद्धिमें नही, क्योंकि ज्यों-ज्यों हम अपने ध्येयकी ओर बढते जाते हैं, त्यों-त्यों अधिकाधिक मनोरम दृश्य दृष्टिगोचर होते है" (पृ० ३६७)। यही गाधीजी के कर्मयोगका रहस्य और उसका मर्म था।

प्रथम विश्व-युद्धके दौरान अंग्रेजोंसे सहयोग करने और उनके वर्त्तमान रवैये के बीच असंगतिके आरोपके उत्तरमें गांधीजी ने स्पष्ट किया कि "किसी विषय पर मैं पहले जो-कुछ कह चुका हूँ, उससे संगत होना मेरा उद्देश्य नही होता, बल्कि प्रस्तुत अवसरपर मुझे जो सत्य मालूम पड़े, उसके अनुसार आचरण करना मेरा उद्देश्य होता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मुझे एकके-बाद-एक सत्यका दर्शन होता गया है" (पृ० २२४)। कर्मयोगी अपने विचार और कर्मसे सीमित सत्यके, वर्त्तमान क्षणकी वास्तविक आवश्यकताके तकाजेको पूरा करता है, किन्तु अन्तिम आदर्शोंके रूपमें अमूर्त सत्य और सम्पूर्ण अहिंसामें उसकी निष्ठामें कभी कोई कमी नही आती। व्यावहारिक प्रयोजनोंके लिए गांधीजी ने अहिंसा और साहसका प्रयोग एक-दूसरेके पर्यायोंके रूपमें किया। उन्होंने कहा: "दुर्बलता और अहिंसा उसी प्रकार एक साथ नही चल सकती जैसे "पानी और आग" (पृ० ३३०)। यही कारण था उस स्पृहणीय असंगतिका, जो पोलैण्डकी प्रसिद्ध प्रशस्तिमें कहे उनके इन शब्दोंमें लक्षित होती है: "यदि पोलैण्डमें उच्च कोटिकी वीरता और स्वार्थहीनता होगी तो इतिहास इस बातको भूल जायेगा कि उसने हिंसा-बलसे अपनी रक्षा की थी। उसकी हिंसा लगभग अहिंसा ही मानी जायेगी" (पृ० २०१)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकोंके प्रकाशकोंके आभारी हैं :

संस्थाएँ : काशी विद्यापीठ, वाराणसी; केरल सरकार, त्रिवेन्द्रम; गुजरात विद्यापीठ ग्रंथालय और नवजीवन न्यास, अहमदाबाद; म्यूनिसिपल संग्रहालय, इलाहाबाद; नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार और राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली; विश्वभारती, शान्तिनिकेतन और साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास एवं संग्रहालय, अहमदाबाद।

व्यक्ति : श्रीमती अमृतकौर; श्री आनन्द तो० हिंगोरानी, इलाहाबाद; श्री ए० के० सेन, कलकत्ता; श्री एम० आर० मसानी, श्री कान्तिलाल गांधी, बम्बई; श्री गुलाम रसूल कुरैशी, अहमदाबाद; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री जयरामदास दौलतराम, नई दिल्ली; श्री जी० एन० कानिटकर, पुणे; श्री जीवणजी डा० देसाई, श्री डाह्याभाई एम० पटेल, अहमदाबाद; श्रीमती ताराबहन प्रताप, बम्बई; श्री त्र्यंबकलाल पोपटलाल; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्री पुरुषोत्तम के० जेराजानी, बम्बई; डॉ० पी० ए० पटाडिया, सुरेन्द्रनगर; सरदार पृथ्वीसिंह, लालरू, पंजाब; श्री पोपटलाल चुडगर, राजकोट; श्री प्यारेलाल, नई दिल्ली; श्रीमती प्रेमाबहन कंटक, सासवड; श्रीमती मनुबहन मशरूवाला, बम्बई; श्रीमती मीराबहन, गाडेन, ऑस्ट्रिया; श्री मुन्नालाल गं० शाह, सेवाग्राम; श्री मूलुभाई नौतमलाल; श्रीमती लीलावती आसर, बम्बई; श्री वल्लभराम वैद्य, अहमदाबाद; श्री वालजी गो० देसाई, पुणे; श्रीमती विजयाबहन एम० पंचोली, सनोसरा; श्रीमती शारदाबहन गो० चोखावाला, सूरत; श्रीमती सुशीलाबहन गांधी, फीनिक्स; श्री हरिभाऊ उपाध्याय, नई दिल्ली और श्री हरिभाऊ जी० फाटक, पुणे।

पुस्तकें : '(द) इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९३९', जिल्द २; 'इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर फ्रीडम'; 'गांधी – १९१५-१९४८ : ए डिटेल्ट क्रॉनोलॉजी'; 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद'; 'पिल्ग्रिमेज ऑफ फ्रीडम'; '(ए) बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स'; 'बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने'; 'बापुना पत्रो – ५ :

कु० प्रेमाबहेन कंटकने'; 'बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने'; 'बापुनी आश्रमनी केलवणी', 'बापुनी प्रसादी'; 'बापूकी छायामें'; 'बापूके पत्र मीराबहनके नाम'; 'बापू-स्मरण'; 'भील सेवामण्डल सेवा स्मृतिग्रंथ, १९६६', 'महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', जिल्द ५; 'महात्मा गांधी–द ग्रेट रोग ऑफ इंडिया'; 'मेमरीज ऐंड रिफ्लेक्शन्स'; 'लीव्ज फ्रॉम ए डायरी' और 'विद नो रिग्रेट्स'।

पत्र-पत्रिकाएँ : 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हरिजनसेवक', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दू।'

अनुसन्धान एव सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार और श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र है। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करने में मदद देने के लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी है।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलोंको सुधारकर दिया गया है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करने में अनुवादको मूलके समीप रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनाने का भी पूरा ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारने के बाद अनुवाद किया गया है। और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखने की नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजी ने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि कोई ऐसा अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोडकर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गाधीजी के कहे हुए नहीं है, विना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषण और भेंट की रिपोर्टके उन अंशोंमें, जो गाधीजी के नही हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है। परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है, और आवश्यक होने पर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशन की है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ आधारपर उसका अनुमान लगाया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

इस ग्रंथमालामें प्रकाशित प्रथम खण्डका जहाँ-जहाँ उल्लेख किया गया है, वह जून, १९७० का संस्करण है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका; 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका; 'एम० एम० यू०' मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिटका; 'एस० जी०' सेवाग्राममें सुरक्षित सामग्रीका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देने के लिए मूल से सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट भी दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

परिशिष्ट :

१. तार : राजेन्द्रप्रसादको[1]

एबटाबाद
१६ जुलाई, १९३९

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद
रांची

मेरा वक्तव्य[2] देखिए। हमें साफ-साफ कहना चाहिए कि जेलसे रिहाईके लिए उपवास करना बिलकुल अनुचित है। इस मसलेपर गम्भीरतासे विचार करने की जरूरत है। यदि मेरी राय स्वीकार्य हो तो पत्र-लेखकको तदनुसार सलाह दीजिए।[3]

बापू

मूल अंग्रेजीसे : राजेन्द्रप्रसाद पेपर्स, सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

२. पत्र : चिमनलाल न० शाहको

एबटाबाद
१६ जुलाई, १९३९

चि० चिमनलाल,

तुम्हारा पत्र और भाई सुखाभाईके[4] खर्चका तखमीना मिला। १,६४५ रुपये पूंजी लगाने पर फिलहाल तो मैं कोई मुनाफा नहीं देखता। कितनी खादीका उत्पादन सम्भव है, यह बात भी इसमें नहीं बताई गई है। तथापि उसे एक वर्षतक तो कोशिश करने दें। यह खर्च आश्रम-खर्चमें समझना चाहिए। महादेवसे हुण्डी ले लेना।

१. यह राजेन्द्रप्रसादके तारके उत्तरमें भेजा गया था जिसमें लिखा था : "...बंगालके नब्बे भूख-हड़ताली राजनीतिक कैदियोंने मुझसे कांग्रेस-अध्यक्षके नाते सहायताके लिए अपील की है। लोगोंमें उनके लिए बहुत सहानुभूतिकी भावना है। कोई कारगर उपाय दिखाई नहीं देता। कृपया सलाह दीजिए।"

२. १५ जुलाईका; देखिए खण्ड ६९, पृ० ४८२-८३ और "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", पृ० १३ भी।

३. ये राजनीतिक कैदी सुभाषचन्द्र बोसकी अपीलपर ३ अगस्तको अपना उपवास २ माहके लिए स्थगित करनेको राजी हो गये थे। देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", ६-८-१९३९।

४. चरखा संघके सुखाभाऊ चौधरी

जिस व्यक्तिकी टाँग कट गई थी, उम्मीद है, वह अच्छा हो गया होगा। पारनेरकर[१] हमेशा बीमार क्यों पड़ता रहता है? लगता है उसने शरीर स्वस्थ रखने की कला हस्तगत नही की है।

वहाँ बरसात कितनी हुई है? सड़ककी क्या स्थिति है। क्या वह कामचलाऊ पुल बन गया? कुएँका पानी अभी निर्मल नही हुआ है, यह विचारणीय बात है।

शारदाके[२] पत्र तो आते होंगे? लीलावती[३] लिखती है क्या? भणसालीपर[४] क्या लहसुनका अच्छा-बुरा असर नही होता?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६००)से।

३. तार: राजारामको

एबटाबाद
१७ जुलाई, १९३९

राजाराम राजासाहब[५]
तंजौर

हरिजनोंके लिए बड़े मन्दिरका द्वार खोले जाने पर बधाई।[६]

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

१. यशवन्त महादेव पारनेरकर

२. चिमनलाल शाहकी पुत्री, शारदाबहन गो० चोखावाला

३. लीलावती आसर

४. जयकृष्ण पी० भणसाली

५. "राज-परिवारके एक वरिष्ठ सदस्य एवं तंजौर राजभवन देवस्थानोंके आनुवंशिक न्यासी"; देखिए "टिप्पणियाँ" का उपशीर्षक "और भी मन्दिर खुले", पृ० ४०।

६. १६ जुलाई, १९३९ को तंजौरके बृहदीश्वर मन्दिरका द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिया गया था।

४. तार : नटेश अय्यरको

एबटाबाद
१७ जुलाई, १९३९

नटेश अय्यर
वर्णाश्रम संघ
मदुरा

मन्त्री रामनाथन् आपके आरोपोका[1] स्पष्ट शब्दोमें खण्डन करते है और कहते हैं हरिजनो-सहित सभी वर्गोके लोग मन्दिरमें जाते हैं।

अंग्रेजीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

५. तार : कराची जिला कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षको

एबटाबाद
१७ जुलाई, १९३९

अध्यक्ष
कांग्रेस कमेटी
कराची

नशाबन्दी कार्यक्रमकी[2] सफलताकी कामना करता हूँ। आशा है कि धरना विशुद्ध रूपसे शिक्षात्मक और शान्तिपूर्ण होगा।

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४८३।

२. कराची जिला कांग्रेस कमेटीने सिन्ध सरकारको नशाबन्दी लागू करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्यसे सभाओंका आयोजन करके अपना नशाबन्दी-अभियान शुरू किया था।

६. तार : पत्तम ताणु पिल्लैको

एबटाबाद
१७ जुलाई, १९३९

ताणु पिल्लै
राज्य-कांग्रेस
त्रिवेन्द्रम

तुम्हारा जवाब बिलकुल सही है।[1]

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

७. पत्र : सिकन्दर हयात खाँको

एबटाबाद
१७ जुलाई, १९३९

प्रिय सर सिकन्दर,

आपके इसी १२ तारीखके पत्रके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। हरिजनोंके लिए पृथक् निर्वाचक-मण्डलके बारेमें मेरे प्रश्नका[2] उत्तर देना आप भूल गये हैं।

आपकी योजनाको और हिन्दू-मुस्लिम एकता-सम्बन्धी मेरे मसौदेपर[3] आपने जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें अब मैं ध्यानपूर्वक पढ गया हूँ।

मेरे लिए यह योजना इतनी जटिल है कि मैं इसके बारेमें कोई राय कायम नही कर सकता। मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत सरकार अधिनियमका मैंने ऐसा अध्ययन नही किया है जिससे, स्पष्ट ही, उसके संघीय ढाँचेवाले हिस्सेका स्थान लेने की दृष्टिसे तैयार की गई आपकी इस योजनाका सही मूल्यांकन कर सकूँ।

मैं देखता हूँ कि आप प्रान्तीय और संघीय विधान-मण्डलोंके बीच क्षेत्रीय विधान-मण्डलोंकी व्यवस्था करने का विचार रखते हैं। मेरी दृष्टिमें तो भारत सरकार

१. त्रावणकोर राज्य-कांग्रेसके अध्यक्ष पत्तम ताणु पिल्लैने त्रावणकोर-सत्याग्रहके विषयमें गांधीजी के साथ बातचीत की थी; देखिए खण्ड ६९, पृ० ३४३-४४।

२. गांधीजी द्वारा पूछे गये इस और अन्य प्रश्नोंके उत्तर सिकन्दर हयात खाँने अपने २० जुलाईके पत्रमें दिये थे; देखिए परिशिष्ट १।

३. कांग्रेस कार्य-समितिने बारडोलीमें हुई अपनी ११ जनवरीकी बैठकमें अल्पसंख्यक समस्यासे सम्बन्धित गांधीजी के नये मसौदेपर विचार किया था।

अधिनियमकी योजना ही बहुत ज्यादा व्ययसाध्य और जटिल है। आपकी योजना तो खर्च और जटिलतामें और इजाफा करती जान पड़ती है।

फिर, आप यह कहते हैं कि आपकी योजनामें जिस प्रसंग-विशेषका उल्लेख किया गया है वह जबतक उपस्थित नही होता तबतक सेनाके गठनमें कोई रद्दोबदल नही की जानी चाहिए। जहाँतक अहिंसामें पूर्ण विश्वास रखनेवाले मुझ-जैसे व्यक्तिका ताल्लुक है, मैं तो सेनाको बिलकुल भंग कर देना चाहूँगा। सेना और अहिंसा परस्पर मेल नही खाती। लेकिन मैं जानता हूँ और मुझे इस बातका दुःख है कि अहिंसाके बारेमें मेरा जैसा कट्टर विचार है उसमें कोई मेरे साथ नही है। जो लोग देशके स्वतन्त्र होने के बाद भी सेनाको बनाये रखने में विश्वास करते हैं, वे किस हदतक आपके सुझावको स्वीकार करेंगे, सो मैं नही कह सकता।

इसके अतिरिक्त आपने औपनिवेशिक स्वराज्यका प्रतिपादन एक स्वीकृत तथ्यके रूपमें किया है। कांग्रेसियोंके लिए यह एक कड़वा घूँट है।

लेकिन मैं देखता हूँ कि आपका साम्प्रदायिक समस्याका समाधान आपकी यह योजना ही है, जिसमें सेना-सम्बन्धी प्रस्ताव भी शामिल है। लीगकी ओरसे पेश किये गये प्रस्तावोंमें केवल आपका प्रस्ताव ही रचनात्मक है। इसे तैयार करने में आपने जो परिश्रम किया है उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। मुझे खुशी है कि आपने पूरी योजनाको प्रकाशित करनेका निश्चय किया है।[1] आपने मुझे अपना विश्वासभाजन बनाया और इस योजनाके बारेमें मेरी राय पूछी है, इसके लिए आपको धन्यवाद।

और जहाँतक समाधान-सम्बन्धी मेरे मसौदेका सवाल है, मैं आपको बता ही चुका हूँ कि वह किसी भी अर्थमें कार्य-समिति द्वारा स्वीकार नही किया गया है। लेकिन इस प्रश्नपर आज भी मेरे विचार वही हैं जो मैंने उसमें व्यक्त किये हैं। आपने उसकी जो आलोचना की है, मैं उसकी कद्र करता हूँ। और यदि वह कभी हमारी कठिनाइयोंको सुलझाने का आधार बन सका तो मुझे आपके बहुत-से सुझाव स्वीकार कर लेने होंगे।

सरकारी नौकरियोंमें अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें आपने जो समाधान रखा है, वह कठिनाई पैदा करनेवाला है। अल्पसंख्यक क्या हैं? उनकी क्या कोई अन्तिम सूची है? इसलिए सरकारी सेवाओंमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी बातको लेकर मैं बहुत चिन्तित हूँ। यदि हम सरकारी सेवाओंके सन्दर्भमें अल्पसंख्यकोंके प्रश्नको बहुत ज्यादा महत्त्व देंगे तो इससे न केवल कार्य-कुशलता खतरेमें पड़ जायेगी बल्कि देशके प्रशासनकी शुद्धता और निष्पक्षतापर भी संकट आ जायेगा। लेकिन मैं आपके इस सुझावका हृदयसे अनुमोदन करता हूँ कि राष्ट्रके पिछड़े सदस्योंको उन्नत लोगोंके समकक्ष बनाया जाना चाहिए।

आपकी आलोचनासे उत्पन्न अन्य मुद्दोंकी चर्चा मैं इस पत्रमें नही करना चाहता। यदि हम सब इस संकल्पके साथ मिल-बैठने का निश्चय कर लेंगे कि हम

१. यह ३० जुलाई, १९३९ को प्रकाशित हुई थी।

किसी-न-किसी निर्णयपर पहुँचे बिना अलग नहीं होंगे तो इन समस्याओंका समाधान बहुत सरल है।

हृदयसे आपका,

सर सिकन्दर हयातखाँ
मुख्य मन्त्री
लाहौर

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

८. पत्र : अमृतकौरको

एबटाबाद
१७ जुलाई, १९३९

प्रिय पगली,

बेशक, तुम सर कैलाशकी[1] अतिथि बनकर कश्मीर आ सकती हो, क्योंकि मैं भी उन्हींका अतिथि बनूंगा। इसलिए स्वाभाविक है कि तुम मेरे साथ ही ठहरोगी। इसमें अटपटी लगनेवाली बात तो यह होगी कि मैं तुम्हें अपने साथ लेकर भटकता फिरूँ। तुम्हें यह शब्द याद रहा, इससे दिखता है कि इस मामलेमें तुम मुझसे सहमत नहीं हो।

आज मुझे सर कैलाशका पत्र मिला है। वह साथमें भेज रहा हूँ। तुम देखोगी कि उन्होंने तुम्हारा जिक्र किया है। हम २५ तारीखको कश्मीरके लिए रवाना होंगे और वहाँ ज्यादासे-ज्यादा एक हफ्ता रहेंगे।[2] मेरा खयाल है कि तुम रास्तेमें हमारे साथ हो लोगी, बशर्ते कि तुम हमसे पहले ही पहुँचकर हमारी अगवानी करने के लिए वहाँ मुस्तैद न रहो। मैं अभी तुरन्त सर कैलाशको तार भेज रहा हूँ।

मुझे उम्मीद है कि तुम सांगलीका कार्यक्रम[3] रद्द कर दोगी।

हाँ, हम श्रीमती परमानन्दके अतिथि हैं अथवा यों कहें कि वे और हम एक ही छतके तले रह रहे हैं।

मैं नहीं चाहता कि तुम दातारसिंहसे बलवन्तसिंहके अनुभवका जिक्र करो, *क्योंकि ऐसा करना गलत होगा। मुझे यकीन है कि अब सब-कुछ ठीक हो गया है।* ऐसी बातोंकी चर्चा करना कृतघ्नता होगी। मेरे मनमें तो इस बातका खयाल भी

१. कैलाश नारायण हक्सर, जम्मू और कश्मीरके महाराजाके निजी सलाहकार
२. लेकिन यह यात्रा रद्द कर दी गई थी; देखिए: पृ० १५।
३. जहाँ २९ जुलाईको अखिल भारतीय महिला सम्मेलन होनेवाला था

न आया होता। सम्भव है दातारसिंहने वह मकान देखा भी न हो जिसमें बल्वन्तसिंहको ठहराया गया था।

स्नेह।

तानाशाह

संलग्न १

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३०) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२३९ से भी

९. पत्र : मीराबहनको

१७ जुलाई, १९३९

चि० मीरा,

नमस्कारोंसे भरी हुई तुम्हारी पुस्तिका[1] मिली। निस्सन्देह बिहारी लोग प्यारे होते हैं। यदि तुम अपना स्वास्थ्य ठीक रखोगी तो मैं तुम्हें उनसे अलग नहीं करूँगा। स्वस्थ न रहने पर अपनेको इस भुलावेमें मत रखो कि तुम स्वस्थ हो। अपना ध्यान रखो और जो काम सामने आ जाये, उसे करो।

जल्दबाजीमें राय मत कायम करो। तुम पर्याप्त आँकड़ोंके बिना ही निष्कर्ष पर पहुँच जाती हो।

हम कश्मीरके लिए २५ तारीखको रवाना होंगे और वहाँ ज्यादासे-ज्यादा सात दिन ठहरेंगे

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४४७) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० १००४२ से भी

१. बापूज लेटर्स टु मीरामें मीराबहन लिखती हैं कि यह संकेत उनके "लम्बे पत्र" की ओर था।

१०. पत्र : शारदाबहन गो० चोखावालाको

एबटाबाद
१७ जुलाई, १९३९

चि० बबुड़ी,

तुझे क्या लिखूँ? क्या मुझसे दूर रहकर तू अपनी तबीयत ठीक नही रखने-वाली है? इसलिए क्या मुझे तुम दोनोको साथ रखना चाहिए अथवा तुझे तलाक ले लेना चाहिए? इस तरह बीमार पड़ते रहने से काम नही चलेगा। आहारमें तो कोई परिवर्तन नही किया है न? . .

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००१४) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

११. तार : राजेन्द्रप्रसादको

एबटाबाद
१८ जुलाई, १९३९

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद
राँची

यदि बैठक[1] वर्धामें नही हुई तो पटना अथवा इलाहाबादमें से जहाँ ठीक लगे, की जा सकती है। मैं पच्चीस तारीखको कश्मीर जा रहा हूँ। वहाँ एक हफ्ता ठहरने के बाद, मेरी जहाँ भी जरूरत हुई, वहाँ लौट आऊँगा।

बापू

मूल अंग्रेजीसे : राजेन्द्रप्रसाद पेपर्स; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक, जो ९ से १२ अगस्ततक वर्धामें हुई थी।

१२. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

एबटाबाद
१८ जुलाई, १९३९

चि० अमृतलाल,

तुम्हारे वर्ष पवन-वेगसे उडते जा रहे है। तुम्हें ३४वाँ वर्ष लगा है, मैं यह सोच भी नही सकता। मुझे तो लगता है, जैसा मैंने तुम्हें पहली बार देखा था, अब भी वैसे ही हो। यह भी अच्छा ही है। हमेशा जवान बने रहो और सेवा करते रहो। चन्दनकी[1] तबीयतमें भले ही धीरे-धीरे सुधार हो, अन्तत उसे बिलकुल ठीक हो जाना चाहिए। विजयाको[2] मुझे सविस्तार लिखना चाहिए। क्या उसे बीमारीकी वजहसे आना पडा अथवा किसी और कारणसे?

काका साहबकी निराशा मेरी समझमें नही आई।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

हम २५ तारीखको कश्मीर जायेंगे। वहाँ ज्यादासे-ज्यादा सात दिन बिताकर वापस आयेंगे। वहाँसे कहाँ जाना होगा, यह निश्चित नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९०)से।

१३. पत्र : अमतुस्सलामको

१८ जुलाई, १९३९

चि० अ० स०,

तेरा खत सारा-का-सारा पढ गया हूं। मैं क्या करूं, अगर तुझे डाक न मिले तो। आजकल तो हमेशा खत जाते है। जो काम करनेवाले मिले उनके लिए ह० आ०[3] में जगह निकालना मुश्केल है। लाल बगलाका[4] क्या? नजदीकमें

१. सतीश द० कालेलकरकी पत्नी
२. विजयाबहन एम० पंचोली
३. हरिजन आश्रम
४. हरिजन आश्रम, साबरमतीके निकट स्थित डॉ० प्राणजीवनदास मेहताका बँगला

दूसरे मकान भी तो हैं। वह काम हो जावे तो मकान भी बन सकते हैं। लेकिन तू बीमार पड़ा करेगी तो क्या हो सकता है? बीमारी का कारण तू ही है। बा मजेमें है।

बापूके आशीर्वाद

श्री अमतुलसलामबहन[1]
हरिजन आश्रम[2]
साबरमती[3]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२५) से।

१४. दोषी नहीं

कांग्रेसके सत्याग्रह-सम्बन्धी प्रस्तावपर[4] इस समय जो विवाद चल रहा है, उसके बारेमें डॉ० लोहियाने मुझे एक लम्बा और युक्तियुक्त पत्र भेजा है। उसका एक अंश ऐसा है, जिसपर सार्वजनिक रूपसे विचार करने की आवश्यकता है। वह यह है:

> सत्याग्रहका सिद्धान्त आपके खास कार्यक्रमके दायरेसे जरा भी बाहर जाकर लागू किया जाये, यह आपको स्वीकार नहीं है। क्या यह सम्भव नहीं है कि सत्याग्रहको सर्वव्यापी बना दिया जाये, उसे आपके कार्यक्रमके अलावा अन्य कार्यक्रमोंकी आधार-शिला बना दिया जाये? शायद यह सम्भव नहीं है। लेकिन आपके खिलाफ मेरी दलील यह है कि आपने ऐसे किसी प्रयोगकी अनुमति नहीं दी है, उसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया है। लोग खुद आपके मन्त्रिमण्डलीय कार्रवाई और रचनात्मक प्रवृत्तियोंके कार्यक्रमको आज पूर्णतः पर्याप्त नहीं मानते; इसलिए वे किसानोंकी हलचल-जैसे कार्यक्रमोंको आजमा रहे हैं। इन नये कार्यक्रमोंके अन्तर्गत ऐसे समय भी स्थानीय और छिट-पुट संघर्ष चलाये जा सकते हैं जब देशमें सामान्य रूपसे सत्याग्रह न चल रहा हो। सामान्य रूपमें सत्याग्रह शुरू करने का कोई सूत्र जबतक आपको न मिल जाये, तबतक क्या आप इन छोटे सत्याग्रहोंको रोक रखेंगे? ऐसा करने से उस अराजकताके फैलने का डर है जो दमनसे उत्पन्न होती है। अहिंसात्मक सामूहिक कार्रवाई समस्त इतिहास-कालमें मानव-जातिको प्राप्त अत्यन्त विरल और मूल्यवान उपहारोंमें से है, मगर शायद हम उसकी हिफाजत करने और उसे जारी रखने का तरीका जान ही न पायें।

१ और २. मूलमें ये गुजरातीमें हैं।
३. मूलमें यह अंग्रेजी में है।
४. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४००।

मैंने अपने खास कार्यक्रमके दायरेसे बाहर जाकर सत्याग्रहका सिद्धान्त लागू किये जाने पर कोई रोक तो नही ही लगाई है, उलटे लोगोको ऐसे नये कार्यक्रम पेश करने को आमन्त्रित किया है। लेकिन अभीतक मुझे किसी नये कार्यक्रमके एक भी उदाहरणकी जानकारी नही मिली है। मैंने यह कभी नही कहा है कि मेरे कार्यक्रमसे हटकर कोई और कार्यक्रम नही हो सकता या मेरे कार्यक्रममें कोई नई बात नही जोड़ी जा सकती। मैंने यह जरूर कहा है, और उसे फिर दुहराना चाहूँगा कि मैं किसी ऐसे कार्यक्रमको अपना आशीर्वाद या प्रोत्साहन नही दे सकता जो मुझे नही जँचता। मेरा दावा है कि मेरा कार्यक्रम सत्याग्रहकी मेरी कल्पनासे उद्भूत हुआ है। इसलिए सम्भावना यही है कि अगर सत्याग्रहकी अभिवृद्धि करनेवाली कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति प्रकट हुई तो वह मेरी निगाहसे चूकेगी नही।

मेरा कार्यक्रम सामान्य रूपसे कांग्रेसके प्रवुद्ध वर्गके गले नही उतरा है, इसका मुझे दुःखद भान है। यह मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि काग्रेसजनोकी उदासीनताका कारण यह नही है कि उस कार्यक्रममें कुदरतन कोई खराबी है, बल्कि दरअसल बात यह है कि अहिंसामें उनका जीवन्त विश्वास नही है। भला इससे अधिक स्पष्ट और क्या हो सकता है कि हममें पूर्ण साम्प्रदायिक एकता हो, अस्पृश्यता दूर हो जाये, शराबकी दुकानें बन्द करके शराबसे होनेवाली आमदनीसे हाथ धो लिया जाये और मिलके कपड़ेकी जगह खादी ले ले? मेरा तो कहना है कि यदि हिन्दू, मुसलमान और अन्य समुदाय अपने आपसके अविश्वासको दूर करके सगे भाइयोकी तरह नही रहेंगे, अगर हिन्दू अस्पृश्यताके अभिशापको मिटाकर अपनेको शुद्ध नही करेंगे और इस प्रकार उन लोगोंके साथ निकट सम्पर्क स्थापित नही करेंगे, जिन्हे सदियोंसे उन्होंने समाजसे बहिष्कृत कर रखा है, यदि भारतके धनी स्त्री-पुरुष शराब तथा अन्य नशीली चीजोकी दुकाने बन्द करवाकर इन चीजोंके शिकार बने बेचारे गरीबोंके सामनेसे इन प्रलोभनोंको हटाने के निमित्त अपने सिर करोड़ोंका अतिरिक्त बोझ नही लेंगे, और अन्तमें, लाखो अधभूखोंके साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए अगर हम सब मिलके कपड़ोंके शौकको छोड़कर भारतकी झोपड़ियोमें लाखो हाथोसे बननेवाली खादीको नही अपनायेंगे तो अहिंसक स्वराज्य असम्भव है। रचनात्मक कार्यक्रमके खिलाफ जो-कुछ लिखा गया है, उसमें उसके वास्तविक गुण या अहिंसात्मक स्वराज्यकी दृष्टिसे उसके महत्त्वके खिलाफ जँचनेवाली एक भी दलील मुझे नही मिली है। मैं तो यहांतक कहने का साहस करता हूँ कि अगर सभी काग्रेसजन अपनी पूरी शक्ति इस रचनात्मक कार्यक्रमपर केन्द्रित कर दें, तो देश-भरमें अहिंसा का वह वातावरण देखते-देखते तैयार हो जायेगा जिसकी सौ फीसदी सत्याग्रहके लिए आवश्यकता है।

अब हम डॉ० लोहिया द्वारा उल्लिखित किसानोकी हलचलको ही सम्भावित नये कार्यक्रमके उदाहरणके रूपमें रखकर विचार करें। मुझे खेदपूर्वक यह कहना पड़ता है कि अधिकांश मामलोमें किसानोको अहिंसात्मक कार्रवाईकी शिक्षा नही दी जा रही है। उन्हे तो लगातार उत्तेजनाकी हालतमें रखा जा रहा है और उनमें

ऐसी आशाएँ पैदा की जा रही हैं जो हिंसात्मक संघर्षके बिना कभी पूरी नहीं हो सकती। यही बात मजदूरोंके बारेमें कही जाये तो अनुचित न होगा। मेरा अपना अनुभव तो मुझे यही बतलाता है कि मजदूरो और किसानो, दोनोको प्रभावकारी अहिंसात्मक कार्रवाईके लिए संगठित किया जा सकता है, बशर्ते कि काग्रेसजन ईमानदारीसे इसके लिए प्रयत्न करे। लेकिन अगर अहिंसात्मक कार्रवाईके अन्तत. सफल होने में उनका विश्वास न हो, तो वे ऐसा नही कर सकते। इसके लिए जो-कुछ जरूरी है वह यही कि मजदूरों और किसानोंको इसकी उपयुक्त शिक्षा दी जाये। यह बतलाने की जरूरत है कि अगर वे उपयुक्त रूपसे सगठित हो, तो उन्हें समझाना चाहिए कि पूँजीपतियोंके पास अपनी पूँजीकी बदौलत जितनी सम्पत्ति और साधन-सामग्री है, अपने परिश्रमकी रू से मजदूरोंके पास उससे ज्यादा सम्पत्ति और साधन-सामग्री है। फर्क सिर्फ इतना है कि पूँजीपतियोका रुपयेके बाजारपर नियन्त्रण है, जब कि मजदूरोका श्रमके बाजारपर नियन्त्रण नही है, हालाँकि मजदूरोंके चुने हुए नेताओने अगर उनकी ठीक सेवा की होती, तो उन्हे उस अदम्य शक्तिका अच्छी तरह भान हो गया होता जो अहिंसाकी उपयुक्त शिक्षा मिलने पर प्राप्त होती है। लेकिन इसके बजाय मजदूरोको अपनी माँगे पूरी कराने के लिए जोर-दबावके उपायो का सहारा लेना सिखाया जा रहा है। जिस तरहकी शिक्षा आज आम तौरपर मजदूरोको मिल रही है उससे वे अज्ञानी ही बने रहते हैं और शक्तिके अन्तिम साधन के रूपमें हिंसापर निर्भर रहते है। इस प्रकार किसानों या मजदूरोकी वर्त्तमान हलचलको सत्याग्रहकी तैयारीके लिए नया कार्यक्रम मानना मेरे लिए सम्भव नही।

सच तो यह है कि अपने आसपास मै जो-कुछ देख रहा हूँ वह अहिंसात्मक लडाईकी नही, बल्कि हिंसात्मक विस्फोटकी ही तैयारी है, चाहे वह विस्फोट जितने अनजाने और बिना इरादेके हो जाये। इसे अगर मेरे पिछले बीस वर्षोंके प्रयत्नका फल बतलाकर मुझे इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जाये, तो मुझे अपना दोष स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट न होनी चाहिए। क्या मै स्वय इन पृष्ठोमे पहले भी यह बात नही कह चुका हूँ? लेकिन मेरी दोष-स्वीकृतिसे तबतक कोई लाभ न होगा जबतक कि उसके फलस्वरूप हम अपने कदम वापस न ले ले, जो गलती हम कर चुके हैं उसे दुरुस्त न कर ले। इसका मतलब यह हुआ कि पूर्ण स्वाधीनताकी प्राप्ति के एकमात्र साधनके रूपमें हम बुद्धिपूर्वक अहिंसात्मक उपायमें ही विश्वास रखें। जब हमारे अन्दर ऐसा विश्वास आ जायेगा तब काग्रेसका सारा आन्तरिक कलह मिट जायेगा, सत्ताके लिए गर्हित आपाधापी नही होगी और आपसमें एक-दूसरेपर कीचड़ उछालनेके बजाय पारस्परिक सहायताका वातावरण पैदा होगा। लेकिन यह हो सकता है कि काग्रेसजन यह मानने लगे हो कि मेरी व्याख्यावाली अहिंसा अब निकम्मी हो गई है, या उसको प्राप्त करना सम्भव नही है। उस हालतमें काग्रेसजनोके सब गुटोंका एक औपचारिक या अनौपचारिक सम्मेलन, अथवा काग्रेस महासमितिकी विशेष बैठक हो, और उसमें इस बातपर विचार किया जाये कि क्या ऐसा वक्त नही आ गया है जब हम अहिंसाकी नीति और उसके फलस्वरूप बने

हुए रचनात्मक कार्यक्रमपर फिरसे विचार करके ऐसा कोई कार्यक्रम बनायें जो कांग्रेसजनोंकी वर्त्तमान मनोवृत्तिके अनुरूप और अनुकूल हो? गहरी अन्तःशोध करना और इस मुख्य समस्याका समाधान ढूंढ़ना आज हरएक कांग्रेसजनका कर्त्तव्य है। बहावके साथ निरुद्देश्य बहते जाने की नीतिपर चलते जाने में कांग्रेसकी न तो सुरक्षा है और न प्रतिष्ठा। मैं चाहूँगा कि इस तरहके सम्मेलनमें लोग भूल जायें कि हम अलग-अलग गुटोंसे सम्बन्धित हैं और यह याद रखें कि हम शुरूसे अन्ततक राष्ट्रके ऐसे सेवक हैं जिन्होंने एक मनसे राष्ट्रकी आजादीकी लड़ाई लड़ने की शपथ ले रखी है। आज तो कांग्रेस आपसी फूटसे जर्जर संस्था है। ऐसा हरगिज नहीं होना चाहिए।

एबटाबाद, १९ जुलाई, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २९-७-१९३९

१५. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

एबटाबाद
१९ जुलाई, १९३९

समाचारपत्रोंसे ज्ञात होता है कि भूख-हड़ताल करनेवाले बन्दियोंने[2] मुझे एक पत्र भेजा है और जनताके नाम एक अपील भी जारी की है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्हें लोकमतका समर्थन प्राप्त है। मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे इस समर्थनसे सन्तोष मानें और उपवास छोड़ दें। वे बहादुर हैं। मैं उनसे यह कहना चाहता हूँ कि उनकी भूख-हड़ताल गलत है और इसमें उनकी कोई बहादुरी नहीं है। उन्हें चाहिए कि वे तबतक साहसपूर्वक कष्ट-सहन करते रहें जबतक लोकमत उन्हें रिहा करने के लिए सरकारको बाध्य न कर दे। वे मुझपर भरोसा रखें कि सम्मानजनक ढंगसे उन्हें रिहा करवाने के लिए मैं कुछ उठा नहीं रखूंगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-७-१९३९

१. यह वक्तव्य "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत "भूख-हड़ताल छोड़ दें" उप-शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। यह २०-७-१९३९ के हिन्दूमें भी प्रकाशित हुआ था।
२. बंगाल में; देखिए "तार: राजेन्द्रप्रसादको", पृ० १।

१६. पत्र : अमृतकौरको

एबटाबाद
२० जुलाई, १९३९

प्रिय पगली,

तुम्हारी हिन्दी अच्छी होती जा रही है।

धामीके[1] बारेमें मुझे तुम्हारे अगले पत्रका इन्तजार है। कितना अच्छा होता यदि तुम इस मामलेकी सचाईका पता लगा सकती! यह हर तरहसे बुरा है।

मुझे तुम्हें दुःखके साथ बताना पड़ रहा है कि कश्मीरमें राज्यके आतिथ्यकी स्वीकृति मुझे वापस लेनी पड़ी। जनता ऐसी किसी बातको सहन नहीं करेगी। यह दुर्भाग्यपूर्ण है। लेकिन मैं कटुता पैदा नहीं करना चाहता था। इसलिए मैं मान गया। सो मैं जनताका मेहमान होऊँगा, इसका जो भी अर्थ हो। तुम्हें अपने कार्यक्रममें कोई परिवर्तन करने की जरूरत नहीं है। हालाँकि तुम मेरे साथ रहोगी, फिर भी तुम हक्सरकी ही मेहमान होगी। मैं सिर्फ यह चाहूँगा कि तुम मुझसे पहले, एक भी दिन पहले, पहुँच जाओ। बेशक ऐसा तभी करना है जब धामीसे तुम फुरसत पा सको। तुम्हें इस मामलेको सबसे ऊँची प्राथमिकता देनी चाहिए।

कानमकी माँ निर्मला[2] आज कानमको ले जाने के लिए आयेगी।

और यह रहा बलवन्तसिंहका एक और पत्र। इससे तुम देखोगी कि वह ठीक काम कर रहा है। मुझे खुशी है कि सरदार साहबने किसी चीजका बुरा नहीं माना। तुम पहलेकी तरह इस निर्देशके साथ पत्र सेगाँव भेजोगी कि वह किशोरलाल और सुरेन्द्रको दे दिया जाये।

मौसम अब भी गर्म है, हालाँकि एक अच्छी बारिश हुई है।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३१)से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२४० से भी

१. शिमलासे २२ किलोमीटर दूर एक पहाड़ी रियासत, जहाँ १७ जुलाईको पुलिसने लोगोंकी एक भीड़पर गोली चलाई थी। ये लोग अपनी कुछ शिकायतें दूर करवाने के लिए राणा साहबको अपनी याचिका देने के उद्देश्यसे राजमहलमें प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहे थे। देखिए पृ० ५०-५१।

२. रामदास गांधीकी पत्नी, जिन्हें नीमू भी कहा जाता था।

१७. पत्र : दुनीचन्दको

एबटाबाद
२० जुलाई, १९३९

प्रिय लाला दुनीचन्द,[1]

मैं समयका अभाव होने के कारण पंजाब नहीं जा रहा, ऐसी बात नहीं है। इसकी वजह यह है कि मुझे नहीं लगता कि मैं वहाँ जाकर कुछ कर पाऊँगा। दूसरे शब्दोंमें, आत्मविश्वासकी कमीके कारण ही मैं वहाँ नहीं जा पा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५८५)से।

१८. पत्र : अमृतकौरको

एबटाबाद
२१ जुलाई, १९३९

प्रिय पगली,

तुम्हारा इस तरह निरन्तर उदास रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। यह उदासी परमात्मा, मानव-प्रकृति और अटूट मित्रतामें आस्थासे बिलकुल असंगत है। लेकिन तर्क तो काफी हो चुका। समय आने पर उदासी स्वयमेव दूर हो जायेगी।

कश्मीर-यात्रा रद्द हो गई है। मुझे इसका दुःख नहीं है। मैं यहाँसे २६ तारीखको वर्धाके लिए रवाना होने की आशा रखता हूँ। कार्य-समितिकी बैठक वहीं होगी। अतः सम्भव है कि मैं कमसे-कम कुछ दिन, शायद कांग्रेस-अधिवेशन होने तक, तो सेगाँवमें ही बना रहूँ। क्या तुम हमारी मण्डलीमें शामिल होओगी या अगस्तके आरम्भमें मुझसे मिलोगी?

धामीका मामला बहुत बुरा है। आशा है, तुम सचाईकी तहतक पहुँच जाओगी। तुम राणासे स्वयं ही क्यों नहीं मिल लेती? इस मामलेकी अन्ततक जाँच

१. पंजाब विधान-सभाके सदस्य

और खोजबीन करना। मैं इस विषयपर लिखनेवाला हूँ। तुम्हें उसकी एक टाइप की हुई प्रति मिल जायेगी।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३२) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२४१ से भी

१९. नाबालिगी शासन

चम्बाका राजा नाबालिग है। इसलिए राज्य सीधे ब्रिटिश प्रशासनके मातहत है। वहाँका प्रशासक लगभग राजाकी ही तरह काम करता और राजाकी पूरी सत्ता का उपभोग करता है। चम्बासे एक सज्जन लिखते हैं:

> हमारे यहाँ नाबालिगी शासन होने से राज्य सीधे अधीश्वरी सत्ताके नियन्त्रणमें है। स्वातन्त्र्यकी भावनाको दण्डनीय माननेवाले जो कानून नाबालिगी शासनके दौरान लागू किये गये हैं, उन्हें रद्द कर देने के लिए हम जोर डाल रहे हैं और चाहते हैं कि जो अस्थायी प्रशासकीय परिषद् कायम हुई है, उसमें कमसे-कम राजाके नाबालिग रहने तक तो प्रजा-तत्त्वका समावेश किया जाये। . . .[1] हमारे-जैसे मामलेमें अधीश्वरी सत्ता यह नहीं कह सकती कि वह हस्तक्षेप नहीं कर सकती। अगर राजाके अधिकारोंकी रक्षा करना उसका काम है, तो राज्यकी प्रजाके प्रति भी क्या उसका कोई फर्ज नहीं है? . . .[2] क्या आप इस प्रश्नपर कुछ प्रकाश डालेंगे?

प्रश्न उचित है। ब्रिटिश भारतकी प्रजा जिस स्वतन्त्रताका उपभोग करती है, कोई वजह नहीं कि अंग्रेजों द्वारा शासित रियासतोंकी प्रजा उस सबका उपभोग न करे। सच तो यह है कि किसी देशी रियासतके बुद्धिमान और उदार प्रशासकको अपनी सत्ताकी रू से उस रियासतकी प्रजाका कल्याण करने की जितनी सुविधा सुलभ है, उतनी ठेठ ब्रिटिश भारतके किसी प्रशासकको नहीं है। प्रान्तीय प्रशासनकी बँधी-बँधाई पद्धतिके अन्तर्गत काम करनेवाले अधिकारीकी बनिस्बत देशी राज्यके प्रशासकको निश्चय ही ज्यादा स्वतन्त्रता है। प्रान्तीय सरकारके अधिकारीको अपने कई उच्च अधिकारियोंके मातहत काम करना पड़ता है और उसकी सत्ता भी मर्यादित होती है। किसी रियासतका प्रशासक अपनी छोटी-सी रियासतमें किसी गवर्नरसे भी बहुत-कुछ अधिक ही होता है। उसके ऊपर अंकुश केवल उस एजेंसीके रेजिडेंटकी सामान्य देखभालका ही होता है जिसके अन्तर्गत उसकी रियासत हो। इसलिए अगर अधीश्वरी सत्ताकी नीति असन्दिग्ध भाषामें घोषित हो और उसपर पूरी तरह अमल किया जाता

१ और २. यहाँ साधन-सूत्रमें कुछ शब्द छोड़ दिये गये हैं।

हो, तो ऐसे राज्योंमें कुशासन अथवा न्यायकी निष्फलताके लिए कोई बहाना ही नही रहता। लेकिन अगर राज्यका प्रशासन जैसा होना चाहिए वैसा न हो, तो उससे यही जाहिर होता है कि जहाँतक रियासतोंकी प्रजाका सम्बन्ध है, अधीश्वरी सत्ताकी नीति स्पष्ट नही है। रियासतोंमें प्रजाके साथ उचित व्यवहार हो, इसपर उसका आग्रह नही है। प्रजाके प्राथमिक अधिकारोंके सम्बन्धमें तो अधीश्वरी सत्ताके लिए अहस्तक्षेपकी नीति-जैसी कोई चीज होनी ही नहीं चाहिए। यह अहस्तक्षेपकी नीति तो बिना चुनौतीके तभीतक चल सकती है जबतक कि रियासतोंकी प्रजा अपनी शक्तिसे अनभिज्ञ है। लेकिन आजकल तो रियासतोंकी प्रजामें इतनी अधिक जागृति है कि अहस्तक्षेपकी नीति आगे और सफल नही हो सकेगी। ब्रिटिश प्रशासनके अधीनस्थ रियासतो में न्यायसे इन्कार तो कल्पनासे बाहरकी बात होनी चाहिए। अत. चम्बाके लोगोको वहाँकी परिस्थितिके बारेमें सब बातें बिना मुलम्मा चढाये प्रकाशित कर देनी चाहिए। मुझे इसमें कोई सन्देह नही है कि अगर वहाँ कोई अन्याय हुआ होगा तो लोकमतके जोरसे उसका मार्जन हो जायेगा।

देशी राज्योकी प्रजाके अधिकारोंके सम्बन्धमें अधीश्वरी सत्ताकी घोषित नीतिके अभावको धामी नामक छोटे-से पहाड़ी राज्यमें अभी हालमें हुई घटना स्पष्ट रूपसे उजागर करती है। अधीश्वरी सत्ताकी नीति अगर जाहिर होती, तो जो गोलीकाण्ड वहाँ हुआ वह असम्भव होता। राजनीतिक एजेंटकी ओरसे जो विज्ञप्ति प्रकाशित की गई है, उसे इस दुष्काण्डके बारेमें ब्रह्मवाक्य नही समझना चाहिए। एजेंटके पास ठीक रायपर पहुँचने के लिए आवश्यक सामग्री नही थी। ऐसे हरएक गोलीकाण्डके बाद खुली अदालती जाँच अविलम्ब होनी चाहिए। जो राजा जरा-से में भयभीत होकर गोलीबारीका सहारा लेते है, उन्हें आज अपनी प्रजाके जानोमाल पर जो सत्ता प्राप्त है वह न होनी चाहिए। लेकिन प्रजाको भी राय कायम करने के लिए अवसर सुलभ नही है। वह खुद अधिकृत जाँच कमेटी नही नियुक्त कर सकती। और किसी राजनीतिक एजेंटकी विज्ञप्तिसे सच्ची बातका पता नही चल सकता। धामीकी ही विज्ञप्तिको लीजिए। उसमें जो बातें कही गई हैं, उनको चुनौती देने की मुझे जरूरत नही है। शायद उसका हरएक शब्द सच ही हो। लेकिन असल बात यह है कि ऐसी विज्ञप्तिमें लोगोका पूर्ण विश्वास नही हो सकता। अपनी प्रकृतिसे ही यह विज्ञप्ति एकतरफा दस्तावेज है। राजनीतिक एजेंट अपने कथनके समर्थनमें कोई भी कानूनी सबूत पेश नही कर सकता। वह यह नही बतलाता कि उसकी जानकारीके स्रोत क्या हैं। लोगोमें विश्वास पैदा करने के लिए ऐसी अदालती जाँच की जानी चाहिए जिसके फलस्वरूप गुनहगार या गुनहगारोंको अपने अपराधका दण्ड भोगना पडे, फिर वह अपराध रियासतकी ओरसे हुआ हो या प्रजाकी ओरसे। उदाहरणार्थ, अगर प्रजाने राणाको दबाने या भयभीत करने का प्रयत्न किया हो तो वह निस्सन्देह गलत था, और अगर श्री भागमलके खिलाफ जारी किये गये आदेशकी अवज्ञा की गई हो तो वह भी गलत था। इसी तरह अगर कथित प्रदर्शनमें बाहरी लोग शामिल हुए हों तो वह भी गलत था। अविलम्ब उत्तरकी अपेक्षा

रखनेवाली अन्तिम चेतावनी देने की बात भी अगर सच हो, तो वह ऐसी भारी उद्धतता थी जिसकी तीव्र निन्दा की जानी चाहिए। उत्तरदायी शासन अधिक सख्त धातुसे बनी चीज है। धामी राज्य अगर सचमुच केवल ५,००० की आबादी और ३०,००० रुपयेकी वार्षिक आयवाली रियासत हो, तो वहाँ उत्तरदायी शासन निरर्थक चीज है। अगर हरएक छोटी-मोटी रियासतकी प्रजा कानूनको इस तरह हाथमें लेने लगेगी तो वह अपने ध्येयको ऐसा नुकसान पहुँचायेगी जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा-परिषद् मौजूद है। हरएक प्रजामण्डल को उसकी रहनुमाईमें चलते हुए अपन. स्वतन्त्रताका पक्ष तैयार करना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं मालूम होता कि प्रजाने अनुचित उतावलापन दिखाया है।

लेकिन राणाके बारेमें क्या कहा जाये? क्या वे प्रजाके प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार करते रहे हैं? क्या सचमुच उनका जीवन इतनी जोखिममें पड़ गया था कि उन्हें आत्मरक्षाकी खातिर गोलीबारीका सहारा लेना पड़ा? हरएक भीड़ दुश्मनोंकी ही भीड़ हो, यह आवश्यक नहीं है। गोलीबारीको कोई मामूली चीज नहीं समझना चाहिए। मनुष्यके जीवनकी देशी राज्योंमें भी वही कीमत समझी जानी चाहिए जो ब्रिटिश भारतमें समझी जाती है। हर गोलीकाण्डके बाद उसकी बारीकी के साथ जाँच-पड़ताल होनी चाहिए। और उपयुक्त दण्डात्मक तथा निरोधात्मक कदम उठाये जाने चाहिए। अधीश्वरी सत्ताका यह फर्ज है कि जो राजा अपनी सत्ताका न्यायोचित उपयोग करना न जानते हों, उन्हें उस सत्तासे वंचित कर दे। सच तो यह है कि वृहत्तर भारतमें देशी राज्योंका स्थान क्या हो, इस पूरे प्रश्नपर नये सिरेसे विचार करने की आवश्यकता है।

पुरानेकी जगह नया युग आया है। समयके साथ सभी पक्षों, अर्थात् अधीश्वरी सत्ता, राजाओं और उनकी प्रजाके तौर-तरीकोंमें, और कांग्रेस जिस आन्तरिक संकट से ग्रस्त हो गई है, उससे यदि वह उबर जाती है तो खासकर उसके तौर-तरीकोंमें परिवर्तन आना चाहिए। जिस कांग्रेसके सायेमें रियासतोंकी प्रजा आरम्भसे ही विकसित होने और फूलने-फलने की अभ्यस्त रही है, उसकी अधीश्वरी सत्ता या राजा उपेक्षा करेंगे तो वह उनकी बड़ी भूल होगी। कांग्रेसको उसकी रहनुमाई करनी ही है। कांग्रेसकी ऐसी रहनुमाई राजाओं या अधीश्वरी सत्ताको बुरी लगे तो उसका परिणाम अवश्यभावी किन्तु अनावश्यक संघर्ष होगा। जिनकी रगोंमें एक ही खून प्रवाहित होता है और जो घनिष्ठतम सामाजिक और आर्थिक बन्धनोंसे परस्पर जुड़े हुए हैं, ऐसे लोगोंको कृत्रिम रूपसे एक-दूसरेसे बहुत दिनोंतक कैसे अलग रखा जा सकता है? कांग्रेससे डरने या उसपर सन्देह करने के बजाय सबके लिए उचित बात तो निश्चय ही यही है कि जब भी कांग्रेसकी मदद मिल सके, तब राजाओं और उनकी प्रजा, दोनोंके हितकी दृष्टिसे वे उसका स्वागत करें।

इसमें शक नहीं कि कांग्रेसको भी अपनी मर्यादा समझनी पड़ेगी। वह मैत्री-भावसे और शान्तिपूर्वक काम करेगी तभी असरदार ढंगसे कुछ करने की आशा रख

सकती है। उसे सब पक्षोंके बीच न्यायतुलाको सन्तुलित रखना पड़ेगा। हर प्रकारके बलप्रयोग या दबाव डालने की नीतिसे उसे बचना होगा। इस दृष्टिसे बाहरी लोगो द्वारा धामी राज्यके प्रदर्शनमें शामिल होने की जो बात कही जाती है, वह कांग्रेसकी रहनुमाईमें असम्भव होनी चाहिए थी। कांग्रेस अगर अहिंसापर कायम रहेगी तभी उसका प्रभाव काम कर सकेगा। नैतिक प्रभाव ही उसकी एकमात्र पूंजी है। दूसरी कोई भी स्थिति वह स्वीकार करेगी तो उसी समय आन्तरिक झगड़े और खून-खराबी शुरू हो जायेगी। धामीकी घटनाओंसे ऐसी शिक्षा मिलती है जिसे कांग्रेस-जनोंको हृदयंगम कर लेना चाहिए। यह बात मैं इस तथ्यके बावजूद कहता हूँ कि धामीमें क्या हुआ और उसमें वस्तुतः किसका कसूर है, यह अभी हम नहीं जानते। उपयुक्त अदालती जाँच जबतक न हो, तबतक ठीक कार्रवाई सम्भव ही नहीं है।

एबटाबाद, २२ जुलाई, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २९-७-१९३९

२०. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

एबटाबाद

२२ जुलाई, १९३९

मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि अनिवार्य कारणोंसे मुझे अपनी कश्मीर-यात्रा रद्द करनी पड़ी है। मैं उन लोगोंसे क्षमा-याचना करता हूँ जिन्हें भारतके स्वर्गकी मेरी यात्राकी आशा बँध गई थी।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२-७-१९३९

२१. पत्र : प्रभावतीको

एबटाबाद

२२ जुलाई, १९३९

चि० प्रभा,

तेरा पत्र पेशावरसे होकर कल यहाँ पहुँचा। तूने राजेन बाबूको पत्र लिखा, यह तो ठीक है, लेकिन तुझे अपनी तबीयत सुधारनी ही चाहिए। नहीं तो तू किसी कामकी न रहेगी। तू चिन्तित क्यों रहती है? हम यहाँसे २६ तारीखको रवाना हो रहे हैं। २८ तारीखको सेगाँव पहुँचेंगे। क्या तबतक तू सेगाँव नहीं आ सकेगी?

राजकुमारी शिमलामें है। पता है: मैनरविल, शिमला। जब मैं सेगाँव पहुँचूंगा, तब कदाचित् वह भी वहाँ आ जायेगी। अमतुस्सलाम साबरमतीमें है।

१. देखिए "पत्र: जवाहरलाल नेहरूको", पृ० ४७-४८।

लीलावती न्यू एरा स्कूल, बम्बईमें भरती हो गई है। बालकोबा[1] वाडीलाल साराभाई सैनिटोरियम, पंचगनीमें है। उसके साथ कृष्णचन्द्र है। सुशीला दिल्लीमें ठहर जायेगी और वहाँ अपने पुराने अस्पतालमें एक महीना रहकर और अनुभव प्राप्त करेगी और बादमें सेगाँव पहुँचेगी। दो दिनोंसे नीमू आई हुई है। वह कानमको लेकर कल वापस देहरादून लौट जायेगी। बादमें वह भी सेगाँव चली आयेगी। बलवन्त-सिंह लाहौरके पास एक दुग्धशालामें अनुभव प्राप्त कर रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३४) से।

२२. टिप्पणियाँ

सत्य की प्राप्ति कैसे हो?

लब बिबंदो, चश्म बंदो, गोश बंद।
गर नबीनी सिररे हक, बर मा बिखंद॥

अपने ओठ बन्द रख, आँख बन्द रख, कान बन्द रख। इसके बाद भी यदि तू सत्यके गूढ़ तत्त्वको न समझ सके तो मुझपर हँसना।

यह मौलाना रूमीका शेर है। ऐसे अनमोल वचन कच्छके चमन कवि मुझे कभी-कभी भेजते रहते हैं। जब मैं राजकोटमें था, तब उन्होंने मुझे उपर्युक्त शेर उसके अर्थके साथ भेजा था। मुझे यह शेर इतना अच्छा लगा कि मेरा मन हुआ कि मैं इसे 'हरिजनबन्धु' के पाठकोंके समक्ष रखूँ। आज स्थिति यह है कि हम चाहे जो बकवास करते हैं, हमारे कान चाहे जो सच्ची-झूठी और गन्दी बातें सुनते हैं और हमारी आँखें चाहे जो बीभत्सता देखती हैं। ऐसे समय यह वचन तीरके समान हमारे हृदयमें आकर लगना चाहिए। सत्यकी शोधकी ऐसी ही कड़ी शर्त है। हम भले ही अपने ओठ, कान और आँखें सचमुच बन्द न करें, लेकिन यदि करेंगे तो इससे हम कुछ खोनेवाले नहीं हैं। लेकिन हम इतना तो अवश्य कर सकते हैं कि ओठोंसे असत्य अथवा कोई कड़वी बात न बोलें, कानोंसे किसीकी निन्दा अथवा गन्दी बात न सुनें, आँखोंसे हम ऐसा कुछ न देखें जिससे हमारी इन्द्रियाँ चलायमान हो जायें; अपितु हमेशा सच बोलें, ईश्वरके नामका जाप करें, कानोंसे भजन-कीर्तन और ऐसी बातें सुनें जिनसे हमारा आत्मिक विकास हो और आँखोंसे ईश्वरकी लीला देखें, सन्तजनोंके दर्शन करें। जो व्यक्ति ऐसा करेगा वही सत्यके दर्शन कर सकेगा। वही शुद्ध सत्याग्रही बन सकेगा और उसीकी तपश्चर्यासे हम शान्तिमय स्वराज्यके दर्शन कर सकेंगे। बाकी सब निरर्थक है।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २३-७-१९३९

१. बालकृष्ण भावे

२३. सन्देश : बम्बई सरकार मद्य-निषेध बोर्डको[1]

एबटाबाद
२३ जुलाई, १९३९

मैं आशा करता हूँ कि बम्बई अपनी जिस समझदारीके लिए प्रसिद्ध है, अन्तत. वह उसीसे काम लेगा, और बम्बई मन्त्रिमण्डल द्वारा आरम्भ किया गया यह साहसपूर्ण सुधार जिस सफलताके योग्य है, वह सफलता उसे दिलाने में सब लोग मिलकर प्रयत्न करेंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि मादक द्रव्यों और पेय पदार्थोंके अभिशापके दूर होने से देशको स्थायी लाभ होगा।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-८-१९३९; बॉम्बे क्रॉनिकल, ३१-७-१९३९ भी

२४. पत्र : एस० के० बोलेको

एबटाबाद
२३ जुलाई, १९३९

प्रिय रावबहादुर,

आपके इसी २० जुलाईके पत्रके लिए धन्यवाद। आपने जो कैफियत दी है उसे मैं समझता हूँ। मुझे स्मरण-पत्र[2] पर उसी रूपमें विचार करना था जिस रूपमें वह लिखा गया था। अन्तिम अनुच्छेदका कोई और अर्थ तो निकलता ही नही था। ऐसी परिस्थितियोंमें मैं सोचता हूँ कि अपने लेखके बारेमें कुछ और कहना मेरे लिए अनावश्यक है। किन्तु यदि आपकी राय अन्यथा हो तो आप जो स्पष्टीकरण[3] भेजना उचित समझें, उसे मैं इसमें समाविष्ट कर दूंगा। वह संक्षिप्त और संगत होना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४८८०) से।

१. हरिजनमें प्रकाशित "नोट्स" (टिप्पणियाँ) से उद्धृत, जिसमें कहा गया था कि सन्देश "बम्बईमें पहली अगस्तसे लागू किये जानेवाले मद्य-निषेधके सम्बन्धमें" भेजा गया था।

२. यहाँ भण्डारी जातिके लोगों द्वारा बम्बईके मुख्य मन्त्रीको दी गई याचिकाकी ओर संकेत है। देखिए खण्ड ६९, पृ० ४३२-३३।

३. देखिए "एक स्पष्टीकरण" ७-८-१९३९।

२५. पत्र : डॉ० बी० एस० मुंजेको

एबटाबाद
२३ जुलाई, १९३९

प्रिय डॉ० मुंजे,[1]

मुझे आपका खरा पत्र[2] पसन्द आया। लेकिन आप जो चाहते हैं, मैं वैसा नहीं कर सकता, क्योंकि हमारे रास्ते बिलकुल अलग-अलग हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० बी० एस० मुंजे
१९, ऑर्थोडॉक्स क्वार्टर
कार्ड रोड, शिमला

[अंग्रेजीसे]

बी० एस० मुंजे पेपर्स, फाइल नं० २४/१९३९; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. हिन्दू महासभा के

२. २० जुलाईका, जिसमें कहा गया था: "... आम तौरसे कांग्रेसके अन्दर और देशमें भ्रष्टाचार और हिंसाके उदयके कारण तथा खास तौरसे हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने में विफलता की वजहसे आपको यह उचित नहीं लगता कि आप कांग्रेसको सामूहिक सविनय अवज्ञा आरम्भ करने की सलाह दें, ताकि वह संघ-व्यवस्थामें आपकी इच्छाके अनुसार परिवर्तन कराने के लिए सरकारपर जोर डाल सके।... लेकिन साथ ही कांग्रेस इस व्यवस्थाको स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। दूसरी ओर सरकारपर चूँकि आपकी इच्छानुसार संघ-व्यवस्थामें परिवर्तन करने के लिए कोई दबाव नहीं पड़ेगा और उसे किसी प्रकारसे मजबूर नहीं किया जायेगा, इसलिए वह इस मामलेके प्रति उदासीन रहेगी, लेकिन साथ ही यह भी हो सकती है कि वह इसमें ऐसा परिवर्तन करने को प्रेरित हो जाये जो मुस्लिम लीगके अनुकूल हो। परिणामतः मुस्लिम साम्प्रदायिकता को और भी बल मिलेगा और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी आशा सदाके लिए मिट जायेगी।... क्या यह अच्छा नहीं होगा कि वर्तमान संघ-व्यवस्थाके तमाम दोषोंके बावजूद उसे स्वीकार कर लिया जाये और उसका उपयोग आगे और जद्दोजहद करने तथा और अधिक लाभ प्राप्त करने के आधारके रूपमें किया जाये?..."

२६. पत्र : एडोल्फ हिटलरको[1]

स्थायी पता : वर्धा, मध्य प्रान्त, भारत
२३ जुलाई, १९३९

प्रिय मित्र,

मित्रोंका यह आग्रह रहा है कि मानवताकी खातिर मैं आपको कुछ लिखूं। लेकिन मैं उनके अनुरोधको अस्वीकार करता रहा हूँ, क्योंकि मैं यह महसूस करता हूँ कि मेरा आपको पत्र लिखना धृष्टता होगी। लेकिन मुझे कुछ ऐसा लगता है कि इस मामलेमें मुझे हिसाब-किताब करके नहीं चलना चाहिए और मुझे आपसे अपील करनी ही चाहिए, चाहे वह जिस लायक हो।

यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि आज संसारमें आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो उस युद्धको रोक सकते हैं, जो मानव-जातिको बर्बर अवस्थामें पहुँचा सकता है। क्या आपको किसी उद्देश्यके लिए इतना बड़ा मूल्य चुकाना चाहिए, फिर चाहे वह उद्देश्य आपकी दृष्टिमें कितना ही महान् क्यों न हो? क्या आप एक ऐसे व्यक्तिकी अपीलपर ध्यान देंगे जिसने सोच-विचारकर युद्धके तरीकेका त्याग कर दिया है और इसमें उसे काफी सफलता भी मिली है? जो भी हो, मैं यह मान लेता हूँ कि यदि मैंने आपको पत्र लिखकर कोई भूल की है तो उसके लिए आप मुझे क्षमा कर देंगे?[2]

मैं हूँ,
आपका सच्चा मित्र,

हर हिटलर
बर्लिन
जर्मनी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५१०) से।

१. सरकारने इस पत्रको जाने नहीं दिया।
२. देखिए "वक्तव्य: समाचारपत्रोंको", ५-९-१९३९ भी।

२७. पत्र : एगथा हैरिसनको

एबटाबाद
२३ जुलाई, १९३९

प्रिय एगथा,

उचित समय आने पर ही लॉर्ड लिनलिथगोसे फिर सम्पर्क करेंगे। मुझे हमेशा तैयार रहना चाहिए, लेकिन जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। उनके पत्र लिखने अथवा पत्रकी विषयवस्तुमें कोई दोष नहीं है। सिर्फ इतना ही है कि वे सोचते हैं, मुझे जिन मामलोंमें दिलचस्पी है उनमें, उनसे जितना हो सकता था, उतना वे कर चुके हैं। इसलिए अब मुझे उन मामलोंको लेकर उन्हें परेशान नहीं करना चाहिए। अब मैं केवल लोकमतको प्रशिक्षित करने की कोशिश कर रहा हूँ और सभी पक्षोंको यह बता रहा हूँ कि नया तरीका कैसे कारगर हो सकता है।

संघके बारेमें मेरी स्थिति बिलकुल साफ है। यह बिलकुल सच है कि यदि सरकार मेरी शर्तोंको मान लेती है तो मैं संघको स्वीकार कर लूँगा और मुझे विश्वास है कि कांग्रेस भी कर लेगी। लेकिन उन शर्तोंके पूरा किये जाने के लिए अनुकूल वातावरण नहीं है। मेरी माँगोंके पीछे कोई ताकत नहीं है। और ब्रिटिश सरकार ऐसी कोई चीज नहीं दे सकती जो ग्रहीता व्यक्ति अपनी ताकतसे हासिल करके अपने पास न रख सकता हो। विश्वास रखो, समय आने पर हर चीज ठीक हो जायेगी। मैं हिटलरको अभी-अभी जो पत्र[1] भेज रहा हूँ, उसकी प्रति संलग्न है।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५०९) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२८. भाषण: एबटाबादमें

[२३ जुलाई, १९३९][1]

जब मैं यहाँ आया तब मैंने सोचा भी नहीं था कि इस बार भी, जब यह तीसरी बार[2] मैं आपके प्रान्तमें आया हूँ, आप मुझे मानपत्र इनायत करेंगे। मैंने तो समझा था कि मैंने आपके प्रान्तके साथ अपना इतना अधिक तादात्म्य स्थापित कर लिया है कि आप मुझे अपनेमें ही गिनेंगे और मुझे मानपत्र भेंट करने या अन्य शिष्टाचारकी कोई जरूरत नहीं मानेंगे। तो क्या मुझे यह समझना चाहिए कि अब भी मुझे आपसे प्रमाणपत्र प्राप्त करना बाकी है? पिछली बार तो आपने मुझे मानपत्र और थैली दोनों दिये थे, लेकिन इस बार सिर्फ मानपत्र ही दिया है—थैली नहीं। क्या मैं जान सकता हूँ कि अपने किस गुनाहके कारण मैं इस तरह आपकी 'नजरोंसे गिर गया हूँ'?

अनेक बार मैंने यह शिकायत सुनी है कि हिन्दू-मुस्लिम एकतामें इसलिए देर हो रही है कि मैं उसके लिए काफी प्रयत्न नहीं कर रहा हूँ, और अगर मैं मात्र इसीपर अपनी शक्ति केन्द्रित कर दूँ तो आज ही उक्त एकता स्थापित हो सकती है। क्या मैं आपको विश्वास दिलाऊँ कि अगर आज मैं ऐसा करता हुआ मालूम नहीं पड़ रहा हूँ तो इसका कारण यह नहीं है कि हिन्दू-मुस्लिम एकतामें मेरा उत्साह कम हो गया है। बात यह है कि इस महान् कार्यके लिए अपनी अपूर्णता और ऐसे बड़े उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए केवल बाहरी साधनोंकी अपर्याप्तता जितनी मुझे अब महसूस हुई है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। मैं पूर्णतः प्रभुकी कृपापर निर्भर रहने का पाठ अधिकाधिक सीखता जा रहा हूँ।

अगर आप मेरे हृदयको चीरकर देख सकें, तो आप पायेंगे कि उसमें सोते-जागते चौबीसों घण्टे, लगातार हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए प्रार्थना और आध्यात्मिक साधना चलती रहती है। मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता अवश्य चाहता हूँ—और किसी कारणसे नहीं तो इस कारणसे कि मैं जानता हूँ उसके बिना स्वराज्य हासिल नहीं हो सकता। किसीको इस भ्रममें नहीं रहना चाहिए कि हिन्दुओंका बहुमत होने के कारण वे दूसरी जातियोंके समर्थन या सहायताके बगैर सविनय अवज्ञा संगठित करके हिन्दुस्तानके लिए या खुद अपने ही लिए स्वराज्य हासिल कर लेंगे। जैसा कि मैंने अक्सर कहा है, सविनय अवज्ञा अगर बिलकुल शुद्ध रूपमें हो तो कुछ आदमियोंतक सीमिततर होने पर भी वह प्रभावकारी हो सकती है। लेकिन जरूरत यह है कि वे चन्द व्यक्ति ऐसे हों जिनके पीछे सारे राष्ट्रकी स्वीकृत इच्छा और शक्ति हो। सशस्त्र

१. हिन्दुस्तान टाइम्सके आधारपर, जबकि हरिजनमें २४ जुलाई दी गई है।

२. इससे पहले गांधीजी मई और अक्तूबर-नवम्बर, १९३८ में वहाँ गये थे।

युद्धमें भी क्या यही बात नही होती? लड़नेवाली फौजोंके पीछे सारे गैर-फौजी लोगोंकी मदद और सहयोग होना जरूरी होता है। ऐसा न होने पर वे अपंग हो जाती हैं। जब स्वराज्यके लिए मैं अधीर हूँ तब हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए तो मेरा अधीर होना जरूरी ही है। और मुझे पूरा विश्वास है कि देरमें या जल्दी, बल्कि शायद जल्दी ही, हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच ऐसी एकता स्थापित हो जायेगी जो जोड़-तोड़कर किया हुआ कोई राजनीतिक समझौता न होकर सच्ची और स्थायी दिली एकता होगी। यह एक ऐसा सपना है जो बिलकुल बचपनसे ही मेरे जीवनमें ओतप्रोत रहा है। अपने पिताके वक्तकी मुझे अच्छी तरह याद है, मुझे स्मरण है कि तब राजकोटके हिन्दू-मुसलमान किस प्रकार आपसमें मिलते-जुलते थे और किस तरह एक-दूसरेके पारिवारिक और धार्मिक समारोहोंमें सगे भाइयोंकी तरह शामिल होते थे। मेरा विश्वास है कि देशमें वे सुनहरे दिन एक बार फिर आयेंगे। दोनों जातियोंके बीच इस समय जो तू-तू मैं-मैं और जरा-जरा-सी बातपर झगड़े-फसाद होते रहते हैं वे मतिभ्रमके कारण हो रहे हैं। वे हमेशा कायम नही रह सकते।

इस दुनियामें बड़ेसे-बड़े काम केवल मनुष्यके प्रयत्नसे नही होते। वे तो समय आने पर ही होते हैं। अपने साधनोंके चुनाव करने का ईश्वरका यह अपना तरीका है। हो सकता है, लगातार हार्दिक प्रार्थनाके बावजूद मैं इस महान् कार्यके उपयुक्त न पाया जाऊँ। हम सबको हर क्षण कटिबद्ध रहना चाहिए, क्योंकि कब और किसको वह अपने कामके लिए चुन ले, यह हम नही जानते। मेरे ऊपर सारी जिम्मेदारी डालकर आपको अपनी जिम्मेदारीसे नही बचना चाहिए। मेरे लिए आप यह दुआ माँगें कि मेरे जीवन-कालमें ही मेरा सपना सच हो जाये। हमें कभी निराश या हताश नही होना चाहिए। मनुष्यकी हिकमतके मुकाबले ईश्वरकी लीला तो अपरम्पार है।

मुझे यह जानकर बहुत दु:ख हुआ है कि इस प्रान्तके कांग्रेसजनोंमें भी अन्दरूनी झगड़े पैदा होने लगे हैं। कल एक घण्टेसे अधिक समयतक आपकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंसे एकान्तमें मेरी बातचीत हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उन्हें इससे निकलने का कोई रास्ता बतलाऊँ। मैं कहता हूँ कि इसका हल तो आपके अपने ही हाथोंमें है। खानसाहब अब्दुल गफ्फार खाँको आपने अपना बेताजका बादशाह माना है। आपने उन्हे 'बादशाह खान' और 'फख्र-ए-अफगान' की गौरवपूर्ण उपाधियाँ बख्शी हैं। अत: आपके लिए, पहलेकी तरह ही, उनका शब्द ही कानून होना चाहिए। दलीलोंमे उनका विश्वास नही है। वे तो जो-कुछ कहते हैं अपने दिलसे कहते हैं। आपने उन्हें जो उपाधियाँ दी हैं, अगर वे दिखावटी नहीं हैं और उनको आप सही साबित करना चाहते हैं, तो आपको अपने आपसी मतभेदोंको भुलाकर उनके नेतृत्वमें एक संगठित दलकी तरह काम करना सीखना चाहिए।

फिर, सीमा-प्रान्तकी जनतामें फैली हुई गरीबीका भी सवाल है। मुझे बताया गया है कि उनमें से बहुतोंको भर-पेट खाना भी मुश्किलसे ही मिलता है। पठान-जैसी हट्टी-कट्टी कौमको ऐसी दुर्दशामें रहना पड़े, यह उसके लिए बड़े अपमानकी

बात है। लेकिन इसका इलाज भी बहुत हदतक आपके ही हाथोंमें है। आपको चाहिए कि लोगोंको आप अपने हाथोंसे काम करना और श्रमकी गरिमा समझना सिखायें। इसमें शक नहीं कि मन्त्रिमण्डल सुविधाएँ उपलब्ध करवा सकता है और करायेगा। लेकिन तफसीलोंका ध्यान रखते हुए आरम्भिक प्रयत्न तो स्वयंसेवकोंको ही करना पड़ेगा।

ईश्वर आपको सही मार्ग दिखलाये। मैं यह जानता हूँ कि जब हम आपसमें झगड़ते भी हैं तो स्वाधीनताके आगमनकी गतिमें तेजी लाने के लिए इस आशासे ही झगड़ते हैं कि उसके आने पर हमारे सारे दुख मिट जायेंगे। ईश्वर करे, आजादीकी हमारी लगन हमें अलग करनेवाले तमाम मतभेदोंकी तुलनामें हमारे बीच एकता स्थापित करनेवाला ज्यादा मजबूत सूत्र साबित हो।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-८-१९३९; हिन्दुस्तान टाइम्स, २४-७-१९३९ भी

२९. तार : अमृतकौरको

एबटाबाद
२४ जुलाई, १९३९

राजकुमारी अमृतकौर
शिमला वेस्ट

मैं वर्धा जाते हुए २७ को दिल्ली पहुँचूंगा। क्या तुम वहाँसे मेरे साथ हो सकोगी? हिमालयी प्रजामण्डलसे[1] कहना मैं २७ को दिल्लीमें मिल सकता हूँ। स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३३) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२८२ से भी

१. धामी राज्यका; देखिए "पत्र : अमृतकौरको", पृ० १४ और १५-१६ भी।

३०. तार: डॉ० डी० डी० गिल्डरको

एवटाबाद
२४ जुलाई, १९३९

डॉ० गिल्डर
आबकारी मन्त्री
बम्बई

'सैबथ'[१] से सम्बन्धित मामला भूल गया था। 'ज्यूइश ट्रिब्यून'को आज तार[२] दे रहा हूँ। खैरातके बारेमें आपका विचार ठीक है।

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

३१. पत्र: एन० एस० हर्डीकरको

एवटाबाद
२४ जुलाई, १९३९

प्रिय डॉ० हर्डीकर,[३]

मेरे मनमें इस सम्बन्धमें कोई दुविधा नही है कि हमें एक मजबूत स्वयंसेवक संगठनकी जरूरत है। लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं इस समस्याको हल नही कर सकता। तुम्हें जवाहरलालसे सलाह लेनी चाहिए। इस विषयमें वही ठीक मार्ग-दर्शन कर सकते है। अब भी मेरी यह राय है कि हमारी केन्द्रीय संस्था बने, उसके पूर्व हमें प्रान्तीय संस्थाएँ खड़ी करनी चाहिए। शून्यमें से हम केन्द्र नही बना सकते। दु.खकी बात यह है कि एक भी प्रान्तमें ऐसी कोई संस्था नही है जो बाकीके लिए नमूना बन सके।

तुम्हे स्वस्थ हो जाना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजीसे: एन० एस० हर्डीकर पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। प्यारेलाल पेपर्स भी; सौजन्य: प्यारेलाल

१. यहूदियोंके धार्मिक विश्रामके लिए नियत सप्ताहका सातवाँ दिन—रविवार।

२. तार महादेव देसाईने भेजा था, जिसमें कहा गया था: "कृपया आबकारी-मन्त्री डॉ० गिल्डरको 'सैबथ' के दिन यहूदियों द्वारा मद्यके उपयोगसे सम्बन्धित धार्मिक नियमोंका विवरण प्रमाणोंके साथ दीजिए।" देखिए "टिप्पणियाँ", १०-९-१९३९ का उपशीर्षक "यहूदी धर्ममें शराब" भी

३. हिन्दुस्तानी सेवा दलके संगठन-मन्त्री

३२. तार : अमृतकौरको

एबटाबाद
२५ जुलाई, १९३९

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविल
शिमला वेस्ट

मैं हरिजन बस्तीके पास जोहरा अन्सारीके यहाँ ठहरनेवाला हूँ। प्रजामण्डलके लोग दो बजे मिल सकते हैं। स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३४) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२४३ से भी

३३. पत्र : सिकन्दर हयात खाँको

एबटाबाद
२५ जुलाई, १९३९

प्रिय सर सिकन्दर,

कृपया इसी २० तारीखके अपने अत्यन्त स्पष्ट पत्रके[1] लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिए। मैं आपके इस सुझावको स्वीकार करता हूँ कि मैं कार्य-समितिसे सलाह करके आपको उसकी राय बताऊँ। समितिकी बैठक सम्भवतः अगले मासकी ९ तारीखको होगी।

हरिजन निर्वाचकोंके सम्बन्धमें मैं आशा करता हूँ कि पृथक् निर्वाचन-मण्डलकी बातको शह नहीं दी जायेगी। मुसलमानोंके लिए पृथक् निर्वाचन-मण्डलका होना एक बात है, किन्तु एक ही जातिमें ऐसा विभाजन होना बिलकुल भिन्न बात है।

हृदयसे आपका,

सर सिकन्दर हयात खाँ

[अंग्रेजीसे]
गांधी-नेहरू पेपर्स १९३९; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. देखिए परिशिष्ट १।

३४. बातचीत : चार्ल्स फाबरीके साथ[1]

एबटाबाद
[२६ जुलाई, १९३९ या उसके पूर्व][2]

गांधीजी : प्रार्थना करते समय मैं क्या करता हूँ, इसे पूरी तरह समझाना कठिन है। परन्तु मैं आपके प्रश्नका उत्तर देने का प्रयत्न अवश्य करूँगा। दैवी इच्छा नही बदली जा सकती, परन्तु दिव्य तत्त्व जड़-चेतन सभी पदार्थोंमें है। प्रार्थनाका अर्थ यह है कि मैं अपने अन्दर के दिव्य तत्त्वको जाग्रत करना चाहता हूँ। हो सकता है कि मुझे इसका बौद्धिक विश्वास तो हो, परन्तु कोई जीवन्त अनुभूति न हो। इसलिए जब मैं भारतके स्वराज्यके लिए प्रार्थना करता हूँ तो मैं उस स्वराज्यको प्राप्त करने की या उसे प्राप्त करने में अधिकसे-अधिक योग देने की पर्याप्त शक्तिके लिए प्रार्थना या इच्छा करता हूँ। और मैं मानता हूँ कि प्रार्थनाके उत्तरमें मैं वह शक्ति प्राप्त कर सकता हूँ।

फाबरी : तब तो आपका उसे प्रार्थना कहना ठीक नहीं है, प्रार्थना करने का अर्थ याचना या माँग करना है।

हाँ, यह सही है। आप कह सकते हैं कि मैं अपने-आपसे, अपनी उच्च आत्मासे, उस वास्तविक आत्मासे याचना करता हूँ जिसके साथ मैं अभीतक पूर्ण तादात्म्य स्थापित नही कर सका हूँ। इसलिए आप इसका वर्णन यों कर सकते हैं कि जिस दिव्य तत्त्वमें सब समाये हुए हैं, उसमें अपने-आपको खो देने की सतत आकांक्षा करना ही प्रार्थना है।

और इसके लिए आप एक पुरानी पद्धतिका इस्तेमाल करते है?

अवश्य। जीवन-भरकी आदत तो बनी ही रहती है। आप चाहें तो कह सकते हैं कि मैं एक बाहरी शक्तिसे प्रार्थना करता हूँ। मैं उस अनन्तका एक

१. यह बातचीत महादेव देसाईके "ए डायलाग विद ए बुद्धिस्ट" (एक बौद्धसे बातचीत) शीर्षक लेखसे ली गई है। बातचीत का सन्दर्भ स्पष्ट करते हुए महादेव देसाईने लिखा था: "...पुरातत्त्ववेत्ता...डॉ० फाबरी... भारतमें कई वर्षोंसे हैं। वे प्रोफेसर सिल्वां लेवीके शिष्य थे और प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता सर आरेल स्टाइनके सहायकके रूपमें यहाँ आये थे।... वे हंगरीके हैं। पहले गांधीजीके साथ पत्र-व्यवहार कर चुके हैं और सहानुभूतिके तौरपर उन्होंने उनके साथ उपवास भी किया है। वे विशेष तौरपर गांधीजीसे मिलनेके लिए ही एबटाबाद आये थे। .. खासकर इस प्रश्नको लेकर उनके मनमें बहुत ऊहापोह चल रही थी कि प्रार्थनामें क्या होना चाहिए और वह कैसी होनी चाहिए। वे यह जाननेको बड़े उत्सुक थे कि गांधीजी किस तरहकी प्रार्थना करते हैं। क्या प्रार्थनासे ईश्वरका मन बदला जा सकता है? क्या प्रार्थनासे उसे जाना जा सकता है?"

२. गांधीजी २६ जुलाई, १९३९को एबटाबादसे चल पड़े थे।

अंग हूँ, लेकिन इतना छोटा अंश हूँ कि मैं अपने-आपको उससे बाहर अनुभव करता हूँ। हालाँकि मैं आपको बौद्धिक स्तरपर स्पष्टीकरण दे रहा हूँ, लेकिन उस दिव्य तत्त्वके साथ तादात्म्य स्थापित किये बिना मुझे लगता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। यह कहते ही कि मैं यह करता हूँ अथवा वह करता हूँ, सहसा मुझे अपनी अयोग्यता और तुच्छताकी प्रतीति होने लगती है और ऐसा महसूस होने लगता है कि मुझे किसी अन्यकी, किसी उच्चतर शक्तिकी सहायताकी आवश्यकता है।

टॉल्स्टॉयका भी यही कहना है। प्रार्थना वास्तवमें पूर्ण समाधिकी स्थिति है, जिसमें प्रार्थना करनेवाला पूरी तरह परमात्मामें लीन हो जाता है। फिर भी कभी-कभी मनुष्य इस स्थितिसे च्युत होकर उसी प्रकार अनुनय-विनय करने लगता है जिस प्रकार कोई बच्चा अपने पितासे करता है।

क्षमा करें, मैं इसे च्युत होना नहीं कहूँगा। यह कहना ज्यादा समीचीन होगा कि मैं उस ईश्वरकी प्रार्थना करता हूँ जो बादलोंके भी ऊपर कहीं रहता है, और वह हमसे जितनी ज्यादा दूर है, उतनी ही ज्यादा मुझे उसकी लगन है और चिन्तन करते हुए मैं अपनेको उसके समीप पाता हूँ। और विचारकी गति, आप जानते ही हैं, प्रकाशकी गतिसे ज्यादा है। इसलिए उसके और मेरे बीचकी दूरी यद्यपि अनुमानसे परे है, तथापि विचारोंके आगे वह मिट जाती है। वह इतना दूर होते हुए भी इतना अधिक निकट है।

यह तो विश्वासकी बात हो जाती है, लेकिन मुझ-जैसे कुछ लोग हैं, जिनका दुर्भाग्य यह है कि उनकी विवेचनात्मक बुद्धि अत्यन्त तीव्र है। मेरे लिए तो बुद्धने जो-कुछ सिखाया है, उससे बड़ी कोई शिक्षा नहीं है और न खुद बुद्धसे बड़ा कोई शिक्षक ही है। कारण, संसारके तमाम शिक्षकोंमें से केवल एक बुद्ध ही हैं जिन्होंने कहा: 'मैं जो-कुछ कहता हूँ उसे आँख बन्द करके मत स्वीकार करो। किसी भी सिद्धान्त या किसी भी ग्रन्थको अचूक मत समझो।' मेरे लिए कोई भी ग्रन्थ अचूक नहीं है, क्योंकि उनके रचयिता दिव्य तत्त्व कितने ही प्रेरित क्यों न रहे हों, अन्ततः थे तो वे मानव ही। इसलिए मैं ऐसे किसी भी ईश्वरकी कल्पनामें विश्वास नहीं करता जो किसी महाराजाकी तरह बड़े भारी शुभ्र सिंहासनपर बैठकर हमारी प्रार्थनाएँ सुनता हो। मुझे खुशी है कि आप एक भिन्न धरातलपर प्रार्थना करते हैं।

मैं आपको याद दिला दूँ कि आपका यह कहना भी आंशिक रूपसे ही सही है कि मेरी प्रार्थना एक भिन्न धरातलपर है। मैं आपको बता चुका हूँ कि अपनी जिस बौद्धिक प्रतीतिकी बात मैंने की है, वह सदा मेरे साथ नहीं रहती। जो चीज हमेशा रहती है वह है श्रद्धाकी तीव्रता, जिसके कारण मैं अपने-आपको उस अदृश्य शक्तिमें लीन कर देता हूँ। इसलिए बजाय यह कहने के कि मैंने कोई कार्य किया है, यह कहना सत्यके ज्यादा निकट है कि ईश्वरने उस कार्यको हमारे लिए कर दिया है। मेरे जीवनमें कितनी ही ऐसी चीजें हुई हैं जिनके लिए मैं बहुत लालायित था, लेकिन जिन्हें मैं स्वयं कभी प्राप्त नहीं कर सकता था। मैंने हमेशा

अपने साथी कार्यकर्त्ताओंसे कहा है कि वे चीजें मेरी प्रार्थनाके उत्तरमें ईश्वरने की हैं। मैंने उनसे यह नहीं कहा कि वे चीजें मेरे अन्दरके दैवी तत्त्वमें अपने-आपको लीन कर देने के मेरे बौद्धिक प्रयासके फलस्वरूप हुई हैं। मेरे लिए यह कहना सबसे सरल और ठीक था कि 'ईश्वरने मेरा बेड़ा पार लगा दिया है।'

लेकिन इन चीजोंके योग्य तो आप अपने कर्मोके कारण बने। ईश्वर करुणा नहीं, न्याय है। आप अच्छे आदमी हैं और आपके साथ अच्छी बातें होती हैं।

बिलकुल नहीं। मैं इतना अच्छा नहीं हूँ कि ऐसी चीजें मेरे साथ हों। अगर मैं कर्मकी इस दार्शनिक कल्पनाको लेकर चलूँ तो अक्सर भारी भूले कर बैठूँ। मेरा कर्म मेरी सहायता न करे। हालाँकि मैं कर्मके कठोर नियममें विश्वास करता हूँ, लेकिन तथापि मैं बहुत-से काम करने की कोशिश कर रहा हूँ। मेरे जीवनका एक-एक क्षण नये कर्म, अतीतके अशुभ कर्मोंको धो डालने और वर्तमानकी अभिवृद्धि करने का प्रयास है। अतः यह कहना गलत है कि चूंकि मेरा अतीत अच्छा है, इसलिए मेरे साथ इस समय अच्छी-अच्छी बातें हो रही हैं। अतीत तो शीघ्र ही चुक जायेगा, और मुझे अपने भविष्यको प्रार्थनाके सहारे निर्मित करना है। मैं आपको बताता हूँ कि केवल कर्म तो कुछ नहीं कर सकता। मैं अपने-आपसे कहूँ कि 'यह माचिस जलाओ,' और फिर भी अगर बाहरी सहयोग न हो तो मैं उसे जला नहीं सकूँगा। मैं माचिस जलाने लगूँ उससे पहले ही यदि मेरे हाथको लकवा मार जाये, या मेरे पास एक ही तीली हो और हवाका झोंका उसे बुझा दे तो? यह मात्र एक दुर्घटना है या ईश्वर अथवा कोई उच्चतर शक्ति है? मैं अपने पूर्वजों या बच्चोंकी भाषाका प्रयोग करना बेहतर समझता हूँ। मैं किसी बच्चेसे बेहतर नहीं हूँ। हम ज्ञानियोंकी तरह और पुस्तकोंके बारेमें बात करने की कितनी ही कोशिश क्यों न करें, लेकिन जब यथार्थसे पाला पड़ता है, जब हमें किसी संकटका सामना करना होता है, तब हम बच्चों-जैसा व्यवहार करने लगते हैं और रोने-पीटने और प्रार्थना करने लगते हैं। उस समय हमारा बौद्धिक विश्वास हमें कोई सान्त्वना नहीं देता।

मैं ऐसे उच्च कोटिके लोगोंको जानता हूँ जिन्हें ईश्वरके प्रति आस्थासे अद्भुत शान्ति प्राप्त होती है और चरित्र-निर्माणमें मदद मिलती है। लेकिन कुछ ऐसे महात्मा भी हैं जो इस आस्थाके बिना भी काम चला सकते हैं। बौद्ध धर्मने मुझे यही शिक्षा दी है।

लेकिन बौद्ध धर्म तो एक दीर्घ प्रार्थना ही है।

बुद्धने प्रत्येक मनुष्यसे अपने भीतरसे ही अपने मोक्षका मार्ग ढूंढ़ निकालने को कहा। बुद्ध प्रार्थना नहीं करते थे, वह मनन करते थे, ध्यान करते थे।

आप उसे जिस नामसे चाहें पुकारें, चीज वही है। उनकी मूर्तियोंको देखिए।

लेकिन वे सचमुच उन-जैसी नहीं हैं। वे उनकी मृत्युके ४०० वर्ष बादकी हैं।

बुद्ध-सम्बन्धी जो भी ऐतिहासिक जानकारी आपको मिली हो, वह मुझे बताइए। मैं सिद्ध कर दूंगा कि वे प्रार्थनाशील बुद्ध थे। बौद्धिक कल्पना मुझे सन्तुष्ट नहीं

उसकी। जैसे आप अपने विचारोंको स्पष्ट रूपमें बता नहीं सकते, उसी तरह मैंने एक निर्दोष और पूरी व्याख्या नहीं दी है। वर्णन करने की कोशिश स्वयमें एक सीमा है। उसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता, और नतीजा यह होता है कि आपके पल्ले मात्र नास्तिकता आती है।

जो लोग प्रार्थना नहीं कर सकते, उनके बारेमें आपका क्या कहना है?

मैं उनसे कहूँगा कि नम्र बनो और बुद्धकी अपनी कल्पना द्वारा सच्चे बुद्ध तकको सीमित मत करो। अगर उनमें प्रार्थना करने लायक विनम्रता न होती तो करोड़ों मनुष्योंके जीवनपर उन्होंने जो राज किया और आज भी कर रहे हैं, वह न कर पाते। बुद्धिसे कहीं ऊँची कोई चीज है जो हमपर और नास्तिकोंपर भी शासन करती है। उनके जीवनके नाजुक मौकोंपर उनकी नास्तिकता और उनका तत्त्वज्ञान उनकी मदद नहीं करता। उन्हें सहारा देने के लिए किसी बेहतर चीज की, अपनेसे बाहरकी किसी चीजकी जरूरत होती है। और इसलिए अगर कोई व्यक्ति मेरे सामने कोई ऐसी समस्या रखता है तो मैं उससे कहता हूँ, 'जबतक तुम अपने-आपको शून्य नहीं बना लोगे, तबतक तुम्हें ईश्वर या प्रार्थनाका अर्थ मालूम नहीं होगा। तुममें यह समझने लायक नम्रता होनी चाहिए कि अपनी महानता और प्रकाण्ड बुद्धिके बावजूद तुम ब्रह्माण्डमें एक रजकणके समान तुच्छ हो। जीवनकी बातोंकी निरी बौद्धिक कल्पना काफी नहीं होती। बुद्धिके लिए अगम्य आध्यात्मिक कल्पना ही वह चीज है जो मनुष्यको सन्तोष दे सकती है। धनवान लोगोंके जीवनमें भी समय-समयपर नाजुक वक्त आता है। यद्यपि उनके चारों ओर वे सब चीजें होती हैं जो पैसेसे खरीदी जा सकती हैं और प्रेमसे मिल सकती हैं, फिर भी उनके जीवनमें कुछ ऐसे अवसर आते हैं जब वे सर्वथा व्यग्र-विभ्रान्त हो उठते हैं। इन्हीं अवसरोंपर हमें ईश्वरकी झांकी मिलती है, उसके दर्शन होते हैं, जो जीवनमें हर कदमपर हमें रास्ता बता रहा है। यही प्रार्थना है।'

आपका मतलब उस चीजसे है जिसे हम सच्चा धार्मिक अनुभव कह सकते हैं और जो बौद्धिक कल्पनासे अधिक बलवान होता है। जीवनमें दो बार मुझे यह अनुभव हुआ, परन्तु बादमें मैंने उसे खो दिया। परन्तु अब मुझे बुद्धके एक-दो वचनोंसे बड़ी सान्त्वना मिलती है: 'स्वार्थ दुःखका कारण है' और 'भिक्षुओ, याद रखो, प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है।' इन वचनोंका विचार लगभग श्रद्धाका स्थान ले लेता है।

यही प्रार्थना है।

अपना जीवन खत्म कर देने के मनुष्यके अधिकारके बारेमें आप क्या कहेंगे?

मैं तो जीवनको जीवनकी दृष्टिसे बहुत कम महत्त्व देता हूँ।

मेरे खयालमें कुछ परिस्थितियोंमें अपना जीवन खत्म कर देने का मनुष्यको पूरा अधिकार है। मेरे एक साथीको[1] कोढ़की बीमारी है। यह जानकर कि यह रोग

१. परचुरे शास्त्री

असाध्य है और उनका जीवन जितना उनके लिए उतना ही उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेवालो के लिए भी एक क्लेश है, हालमें उन्होने अन्न-जल छोडकर प्राण त्याग देने का निश्चय किया। मैंने उनके इस विचारको आशीर्वाद देते हुए कहा, 'अगर सचमुच आप ऐसा समझते है कि आप इस कष्टको बरदाश्त कर लेगे, तो आप ऐसा कर सकते हैं।' यह मैंने इसलिए कहा कि मै जानता था, डूबकर या जहर खाकर मर जाने से इस तरह धीरे-धीरे तिल-तिल कर मरना बहुत भिन्न है। और मेरी यह चेतावनी पूरी तरह ठीक निकली, क्योकि किसीने उन्हें यह आशा दिलाई कि एक आदमी है जो कोढ़का इलाज कर सकता है, और अब मै सुनता हूँ कि उन्होने फिर खाना-पीना और उस आदमीका इलाज शुरू कर दिया है।

मुझे लगता है, कसौटी यह है कि यदि कोई मनुष्य इतने कष्टमें है कि उसे अपनी पीड़ाके सिवा अन्य किसी बातका विचार ही नहीं रहता तो उस मनुष्यको निर्वाण प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके लिए यह भी जरूरी नहीं कि वह बीमार ही हो, वह जीवनकी कशमकशसे थककर भी ऐसा कर सकता है।

नही, नही, मेरा मन इस तरहकी आत्महत्याकी बात कबूल नही करता। कसौटी यह नही है कि आदमी जीवनकी कशमकशसे थक गया हो, बल्कि यह है कि उसे ऐसा लगता हो कि वह औरोंपर भार-रूप है और इसलिए ससारका त्याग करना चाहता है। कोई पीड़ासे नही भागना चाहता, बल्कि दूसरोंपर बोझ बनने से बचना चाहता है। नही तो अपनी वेदनाका अन्त करने के उग्र प्रयत्नमें उसे कही ज्यादा तीव्र पीडा भोगनी पड़ती है। लेकिन फर्ज कीजिए कि मुझे कैसर हो गया है, और मेरी मृत्यु केवल समयकी ही बात रह गई है, तो मै अपने डाक्टरसे ऐसी कोई दवा देने के लिए भी कहूँगा जिससे मैं हमेशाके लिए सो जाऊँ।[1] . . .

आपके ही अनुसार, अगर मुझे ऐसा लगे कि मै अपना काम कर चुका, तो मुझे जीवित रहने की कोई जरूरत नही। और मैं समझता हूँ कि मै अपना काम पूरा कर चुका हूँ।

नहीं, मुझे तो विश्वास है कि अभी आप और भी अनेक वर्ष मानव-समाजकी सेवा कर सकते हैं। लाखों लोग आपके जीवनके लिए प्रार्थनाएँ कर रहे हैं। और मैं तो यद्यपि न प्रार्थना कर सकता हूँ न कुछ चाह ही सकता हूँ—

हाँ, हाँ, अंग्रेजी भाषा इतनी लचीली है कि उसी बातको आप दूसरे शब्दोंमें भी कह सकते हैं।

हाँ, मैं निःस्वार्थ-भावसे यह राय दे सकता हूँ कि अभी आपको बहुत वर्ष जीना है।

ठीक है। आपको शब्द मिल गया। यहाँ भी मै कहूँगा कि मनुष्यके जीवित न रह सकने की धारणा विशुद्ध रूपसे बौद्धिक ही है। अगर उसकी जीवित रहने

१. यहाँ महादेव देसाईने लिखा हैं: "डॉ० फावरी जाने के लिए उठे और जाते-जाते उन्होंने यह शुभकामना व्यक्त की कि गाधीजी अभी अनेक वर्ष जीयें और इसी तरह लोकहितके कार्य करते रहें।"

की इच्छा न हो, तो जीवित रहने की इच्छाके अभावमें ही उसका शरीर-पात हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-८-१९३९

३५. पत्र : सम्पूर्णानन्दको

रेलगाड़ीमें,
२६ जुलाई, १९३९

भाई सम्पूर्णानंदजी,[1]

आपका तार कल रात्रिको मिला। नयी तालीमके लिये २००० पाठशाला खोलने का निश्चय बहुत बडा कार्य है। मेरी सलाह है कि प्रयत्न सर्वथा सफल होगा। आपको इस साहसके लिए मेरे धन्यवाद।

आपका,
मो० क० गांधी

मी० डब्ल्यू० १०२५९ से; सौजन्य : काशी विद्यापीठ

३६. तार : जवाहरलाल नेहरूको

दिल्ली
२७ जुलाई, १९३९

जवाहरलाल नेहरू
मारफत कांग्रेस
गिरगांव, बम्बई

तुमने वीरता और उत्साहपूर्वक काम किया है।[2]

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. संयुक्त प्रान्तके शिक्षा-मन्त्री
२. जवाहरलाल हाल हीमें लंकाकी यात्रासे लौटे थे; देखिए "पत्र : जवाहरलाल नेहरूको", पृ० ४७-४८।

३७. भाषण : हरिजन उद्योगशाला, दिल्लीमें[1]

२७ जुलाई, १९३९

इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि १९३६ में स्थापित किये गये इस स्कूलसे पास होकर निकलनेवाले छात्रोंके प्रथम जत्थेको प्रमाणपत्र देने के लिए मैं यहाँ मौजूद हो सका हूँ। लेकिन उनके प्रमाणपत्र प्राप्त करने से उनकी और मेरी भी जिम्मेवारी बहुत अधिक बढ़ गई है — मेरी इसलिए कि जो हार्दिक आशीर्वाद मैं इन्हें दे रहा हूँ वह सफल होना चाहिए। इस आशीर्वादका क्या असर होगा, यह तो समय ही बतला सकता है। जो लड़के आज जा रहे हैं उनके साथ श्री वियोगी हरिको सम्पर्क बनाये रखना पड़ेगा। वह सम्पर्क ऐसा घनिष्ठ होना चाहिए जैसा कि माँ-बाप और उनके बच्चोंके बीच होता है। जब बच्चे कामके लिए दूर-दूरके स्थानोंको जाते हैं, तो उनके प्रति माँ-बापकी दिलचस्पी और भी बढ़ जाती है। वे मुझे आपकी प्रगतिसे परिचित रखेंगे।

यहाँ आप लोगोंने जो शिक्षा पाई है, जो शुद्ध जीवन व्यतीत किया है, और जो उत्थानकारी सम्पर्क कायम किया है, उसके योग्य बनने की आपकी जिम्मेवारी भी कुछ कम नहीं है। लेकिन अगर आपमें अपना दायित्व पूरा करने की इच्छा नहीं होगी तो मेरा आशीर्वाद किसी काम न आयेगा। आपकी जिम्मेवारी इसलिए और बढ़ जाती है कि आप हरिजनोंके प्रतिनिधि होकर यहाँसे जा रहे हैं, और आपको अपने वहाँके जीवनमें उस जीवनको प्रतिबिम्बित करना पड़ेगा जो आपने यहाँ जीया है। आप अपना जीवन जितना शुद्ध रखेंगे और जितनी आप अपनी जातिकी सेवा करेंगे, उसी अनुपातमें अस्पृश्यताके नाशमें आपका योगदान होगा। यह याद रखिए कि अस्पृश्यताके रहते हिन्दू-धर्म जीवित नहीं रह सकता, इसलिए इस पुण्यकर्मके लिए आपको स्वेच्छापूर्वक अपनी सेवा अर्पित करनी होगी।

श्री वियोगी हरिने कहा है कि सिलाई-विभागको स्वावलम्बी बनाना मुश्किल है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि तब जो शिक्षा दी जा रही है, उसमें जरूर कुछ गलती है। हरएक उद्योगकी शिक्षा स्वावलम्बनके आधारपर दी जा रही है या दी

१. यह महादेव देसाई लिखित "प्रसंग हरिजन ब्वाइज" (हरिजन बालकोंके बीच) शीर्षक लेखसे लिया गया है। गांधीजी इस स्कूलके प्रथम दीक्षान्त-समारोहकी अध्यक्षता कर रहे थे। इस स्कूलमें शिक्षाके साथ-साथ बढ़ईगीरी, दर्जीगीरी, चमड़ेका काम और कागज बनाने की शिक्षा भी दी जाती थी। २८-७-१९३९ के **हिन्दुस्तान टाइम्स**में लिखा है कि स्कूलके अधीक्षक, श्री वियोगी हरिने इस अवसरपर रिपोर्ट पढ़ी और अपना भाषण देने से पहले गांधीजी ने स्कूलके २१ छात्रोंको प्रमाणपत्र प्रदान किये, एवं जिन लड़कोंने कताई के काममें विशेष योग्यताका परिचय दिया था, उन्हें इसी स्कूलमें निर्मित चरखे भेंट किये।

जानी चाहिए। आप विद्यार्थियोंको समय-समयपर वियोगीजी से यह मालूम करते रहना चाहिए कि आप जो काम कर रहे हैं, उससे पर्याप्त आमदनी हो रही है या नहीं, और नहीं हो रही तो इसमें कहा क्या गलती है। तभी आप अपनी शालाको आदर्श उद्योगशाला बना सकेंगे। अगर अपनी शिक्षाका खर्च आप अपने कामसे पूरा कर देंगे तो बादमें अपनी आजीविका कमाने में आपको कभी कोई कठिनाई नहीं होगी।

यहांसे निकलनेवाले हरएक लडकेको, वह कहीं भी क्यो न जाये, काम मिल जाना चाहिए। अगर यहांसे पूरी शिक्षा पाये हुए किसी लडकेको कोई काम न मिले, तो उद्योगशालाका कर्त्तव्य होगा कि वह उसे काम सुलभ कराये। किसीको ऐसा सोचने का मौका नहीं देना चाहिए कि यहाँ तो सबसे गरीब लोगोके लायक हल्के दर्जेकी ही शिक्षा मिलती है। मेरी रायमे तो यहाँकी शिक्षा उससे कही ऊँचे दर्जेकी है जो अधिकाश सम्पन्न घरोंके लडके अन्यत्र पाते हैं। अपने कामसे यह दिखला देना आपके ऊपर निर्भर करता है कि किसी भी दूसरी संस्थामें मिलनेवाली ऐसी ही शिक्षाके मुकाबले यहांकी शिक्षा किसी भी प्रकार नीचे दर्जेकी नहीं है। मेरी तो यह पक्की राय है कि यो तो हरिजन सेवक सघकी अन्य प्रवृत्तियाँ भी उपयोगी हैं, लेकिन ऐसे उद्योगशालामें दिया जानेवाला शिक्षण सबसे अधिक उपयोगी है, क्योंकि इस सस्थामें खरी योग्यतावाले ऐसे थोडे-से भी लडके निकले जो हरिजनोंकी सेवामें अपनेको लगा दें तो वे अस्पृश्यताकी समस्याको हल करने में बडा ठोस योगदान करेंगे।

मेरी कामना है कि आप सरल और शुद्ध जीवन व्यतीत करें और इस प्रकार न केवल हरिजनोंके बल्कि उन करोड़ो गैर-हरिजनोंके भी प्रतिनिधि बनें जो हरिजनों की सेवा करना चाहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-८-१९३९

३८. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

रेलगाड़ीमें
२७ जुलाई, १९३९

चि० राधाकिसन,[1]

मैं कल वर्धा पहोचुगा। वहा सब हाल लिखीये।

जमनालालको मिलने के लिये महादेवको भेजने की आवश्यकता है क्या? शंकरलालका[2] तार है। महादेवको कलकत्ता भेजा है कैदीयोंके बारेमें।[3] उसके आने के बाद अगर जरूर मानी जाय तो भेज सकुंगा। अब जमनालालकी तबीयत कैसी है?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१२७) से।

३९. औद्योगिक सर्वेक्षण समितिकी रिपोर्टका सारांश[4]

मध्य प्रान्त सरकारकी ओरसे पिछली १५ दिसम्बरको एक औद्योगिक सर्वेक्षण समितिकी नियुक्ति की गई थी। इस समितिको जो कार्य सौंपे गये, वे निम्नलिखित हैं:

१. उद्योग-विभागकी स्थापनाके समयसे लेकर आजतक उसने प्रान्तमें जो कार्य किया है, उसका पुनरीक्षण।

२. विशेष रूपसे नियुक्त एक अधिकारी द्वारा पुराने प्रकाशनों और रिपोर्टोंमें से बड़े और लघु उद्योगों और विशेष रूपसे कुटीर उद्योगोंसे सम्बन्धित तथ्य-आँकड़ोंके संकलनका पर्यवेक्षण करवाना।

३. प्रान्तमें औद्योगिक सर्वेक्षण किस पद्धतिपर किया जाये, इस सम्बन्धमें कार्यभारी अधिकारीको सलाह देना और समय-समयपर कामकी प्रगतिका पुनरीक्षण करना।

१. जमनालाल बजाजके भतीजे

२. शंकरलाल बैंकर

३. देखिए "वक्तव्य: समाचारपत्रोंको", पृ० १३।

४. *हरिजन*में यह "एन ऑरिजिनल रिपोर्ट" (मौलिक प्रतिवेदन) शीर्षकसे धारावाहिक रूपमें छह अंकोंमें प्रकाशित हुआ था। यहाँ छहों लेखोंके मात्र प्रासंगिक अंश अन्तिम किस्तकी प्रकाशन-तिथिके अन्तर्गत सार-रूपमें दिये जा रहे हैं।

४. नमूनेकी तरह चुनकर खास-खास गांवोंमें जाकर वहांकी आर्थिक दशाका अध्ययन करना और वहां कुटीर-उद्योगोंके पुनरुद्धारकी सम्भावनाओंकी जांच करना और ऐसा करते समय अखिल भारतीय चरखा संघ तथा अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघसे सलाह और मार्ग-दर्शन लेना।

५. प्रान्तमें उपलब्ध कच्चे माल, विशेषतः वन और खनिज सम्पदाकी औद्योगिक सम्भावनाओंपर रिपोर्ट तैयार करना।

६. प्रान्तमें औद्योगिक विकासके लिए और विशेषकर गांवोंमें कुटीर उद्योगके विकासको बढ़ावा देने के लिए सरकारको क्या कदम उठाने चाहिए, इस सम्बन्धमें अपनी रिपोर्ट देना, और साथ ही इन उद्योगोंके लिए धनकी व्यवस्था किस प्रकारसे की जा सकती है अथवा इन उद्योगोंका और किस तरहसे विकास किया जा सकता है, इस बारेमें सरकारको सुझाव देना।

समितिके दस सदस्य होंगे, जिनके नाम ये हैं:

अध्यक्ष: श्री जे० सी० कुमारप्पा, वर्धा।

सदस्य: श्री चतुर्भुजभाई जसाणी, एम० एल० ए०, गोंदिया; श्री बी० बी० सूबेदार, एम० एल० ए०, सागर; श्री के० पी० घेरा, जनरल मैनेजर, सेंट्रल पर्चेसेज सिण्डिकेट लिमिटेड, नागपुर; श्री आर० एन० झा, सेक्रेटरी, बरार चेम्बर ऑफ कॉमर्स, अकोला; श्री के० पी० सागरैया, आई० एफ० एस०, सिल्विकल्चरिस्ट, मध्य प्रान्त और बरार; डॉ० ए० एन० कापन्ना, डिमॉन्स्ट्रेटर ऑफ केमिस्ट्री, कॉलेज ऑफ साइन्स, नागपुर; श्री वाल्टर दत्त, बैरिस्टर, नागपुर; डाइरेक्टर ऑफ इण्डस्ट्रीज, मध्य प्रान्त और बरार; डॉ० आर० एस० ठाकुर, नागपुर विश्वविद्यालयके लक्ष्मीनारायण इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नॉलोजीसे सम्बन्धित ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी। वे समितिके सचिवका काम भी करेंगे।

समिति को उप-समितियां नियुक्त करने तथा विशेष कार्योंके लिए अन्य सदस्योंको सहयोजित करने का अधिकार प्राप्त है।

इनके अतिरिक्त १२ जनवरी, १९३९की 'गजट' सूचनामें प्रकाशित प्रस्ताव संख्या १७५-८९-म-७ के अनुसार दो अन्य सदस्योंकी नियुक्ति भी की गई, जिनके नाम निम्नलिखित हैं:

श्रीमती साराहम्मा इतियराह, एम० ए०, वर्धा (भूतपूर्व प्रोफेसर ऑफ इकनॉमिक्स, लाहौर); श्री ई० आर० महाजनी, मैनेजिंग डाइरेक्टर, श्री लक्ष्मी ऑयल मिल्स कम्पनी लिमिटेड, अकोला।

समितिकी कार्रवाई पिछली १५ जनवरीसे आरम्भ हो गई। सर्वेक्षण २१ जनवरीको आरम्भ हुआ और ६ फरवरीको समाप्त हो गया। उस सर्वेक्षणमें २०७ विद्यार्थियोंने, जिनमें ८ महिलाएं भी थीं, अपनी सेवाएं प्रदान कीं। सर्वेक्षण-दलका

नेतृत्व करने के लिए १४ व्यक्तियोको सहयोजित किया गया। दलको दस-दस विद्यार्थियोकी टुकडियोमें बाँटा गया। दलने ६०६ गाँवोका सर्वेक्षण किया, जिनकी जनसख्या १५ लाख है और जिनकी वार्षिक राजस्व-अदायगी ११ लाख रुपयेसे ऊपर है। सर्वेक्षणमें मोटे तौरपर ३,००० रुपये खर्च हुए, अर्थात् प्रत्येक गाँवपर ५ रुपये। जितना खर्च बैठा वह अनुमानका केवल दसवाँ भाग था।

यह रिपोर्ट हाथसे बने कागजपर लिखी गई है और कुल मिलाकर ४६ फुलस्केप पृष्ठोमें है।

दलके सदस्योने तीसरे दर्जेमें ही यात्रा की, लेकिन जब दलके कुछ सदस्योंने अपने सर्वेक्षणके दौरान बूढी स्त्रियोको खाने के लिए घासके बीजतक चुनते देखा तो उन्होने तीसरे दर्जेका किराया लेने से भी इन्कार कर दिया। गाँववाले सर्वेक्षण-दलके रहने-खाने की जैसी व्यवस्था कर पाये, दलने उसीमें सन्तोष माना। उनके लिए विशेष रूपसे कुछ भी तैयार नही किया गया था।

प्रोफेसर कुमारप्पाने रिपोर्टके साथ जो पत्र भेजा है, उसमें उन्होने लिखा है :

> १. हमारा सर्वेक्षण कोई ऐसा अकादमिक सर्वेक्षण नहीं है जिसका एकमात्र ध्येय ठीक-आँकड़े इकट्ठा करना हो।
>
> २. न ही यह ऐसा प्रचारात्मक सर्वेक्षण है जिसका उद्देश्य पूर्वनिर्धारित सिद्धान्तोंको सिद्ध करने के लिए साक्ष्य इकट्ठा करना हो।
>
> ३. न ही यह अर्थशास्त्रके ज्ञानमें वृद्धि करने के विचारसे किया गया जाँच-पड़ताल करनेवाला क्लिनिकल सर्वेक्षण है।
>
> ४. यह सर्वेक्षण तो अल्पकालमें सम्पादित नैदानिक सर्वेक्षण है, जिसका निश्चित उद्देश्य उपयुक्त नुस्खा बताकर रोगीकी जान बचाना है, और यह एक राष्ट्रीय आयोजन है — सारे देशमें लागू की जानेवाली आयोजना नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्तिके लिए उसके कार्यक्षेत्रमें उपलब्ध कच्चे मालके आधारपर उसकी आर्थिक प्रवृत्ति निर्धारित करनेवाली आयोजना।
>
> कर्मचारीवृन्दके एक सदस्यने, जो अर्थशास्त्रमें एम० ए० हैं, यह दलील पेश की कि विशद आँकड़े प्राप्त किये बिना यह सिद्ध करना असम्भव होगा कि गाँवोंमें रहनेवाले लोग गरीब हैं या नहीं और दिन-ब-दिन गरीब होते जा रहे हैं या नहीं। मैं उन्हें अपने साथ गाँवोंमें ले गया और उन्हें टूटे-फूटे मकान दिखाये, एक तिमंजली इमारत भी दिखाई जो आधी ढह चुकी थी, और गाँवोंके सुनार भी दिखाये जो बेकार बैठे हुए थे।

निःसन्देह यह ऐसा स्थूल तर्क है जो हर समय दिया जा सकता है। लेकिन यदि हमारे अधिकांश गाँवोमें सुनिर्मित मकानोंके भग्नावशेष भरे पड़े हैं और दस्तकार लोग धन्धेके अभावमें बेकार बैठे हुए हैं तब तो ये तथ्य हमारे गाँवोकी गरीबीके अधिक सुनिश्चित और निर्णायक प्रमाण हैं, बनिस्बत उन कोरे आँकड़ोंके जिनसे सब-कुछ या कुछ भी सिद्ध नही किया जा सकता।

रिपोर्टमें, जो खण्ड १ का पहला भाग है (खण्ड २ और भाग २ बादमें प्रकाशित किया जायेगा), छह अध्याय हैं और उनके अलावा इसमें तीन सदस्यों द्वारा विमति व्यक्त करते हुए दी गई संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी हैं। ये सदस्य हैं डॉ० ठाकुर, डॉ० कापड़िया तथा श्री सागरैया। अपनी टिप्पणियोंमें इस विमति व्यक्त करनेवालों ने मुख्यत औद्योगीकरणकी आवश्यकतापर बल दिया है, यद्यपि उन्होंने इस बातको स्वीकार किया है कि मुख्य रिपोर्टकी सिफारिशोंके मुताबिक ग्रामोद्योगोंको सहायताकी जरूरत है।

रिपोर्टके अध्याय २ में "आम विचारणीय बातों" की चर्चा है। इसमें रिपोर्टको एक मौलिक दस्तावेज बताया गया है और यह दिखलाया गया है कि इस रिपोर्टको ऐसी अधिकांश रिपोर्टोंके समान ताकपर नहीं रख देना चाहिए, बल्कि उसपर तत्काल अमल किया जाना चाहिए। और इसपर अमल करने का एकमात्र तरीका, जैसा कि रिपोर्टमें बताया गया है यह है कि अखिल भारतीय चरखा संघ तथा अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघको इस रिपोर्टके सुझावोंको कार्यान्वित करने में सरकारकी मदद करने के लिए आमन्त्रित किया जाये।

यहाँ मैं "आम विचारणीय बातों" वाले अध्यायका[1] पूरा सार दे रहा हूँ . . .।

शायद पाठकोंने यह समझा होगा कि मध्य प्रान्तके औद्योगिक सर्वेक्षणपर कुमारप्पा-समितिकी रिपोर्टका मेरा विवेचन पूरा हो चुका है। पर असल बात यह है कि लगातार सफर और व्यस्तताके कारण मैं उतनी नियमिततासे यह विवेचन नहीं कर पाया जितनी नियमिततासे मैं करना चाहता था। अब सीमा-प्रान्तकी लम्बी यात्राने मुझे अवसर दिया है कि यह विवेचन आगे जारी रखूं और पूरा कर लूं।

पिछली किस्तमें दूसरे अध्यायतक का विवेचन हुआ था। तीसरेका महत्त्व भी कुछ कम नहीं। ६०६ गाँवोंके सर्वेक्षणसे समितिको इस दुःखद तथ्यकी जानकारी मिली कि गाँवोंकी प्रति व्यक्ति औसत आय केवल १२ रुपये है। इससे आराम-कुर्सी पर बैठे-बैठे पुस्तकोंके माध्यमसे आँकड़े एकत्र करनेवाले वे अर्थशास्त्री चौंक न जायें जिन्हें यह सिखाया-पढ़ाया गया है कि औसत आय ६० रुपयेसे ८० रुपयेके बीच है। दोनों अपने-अपने दृष्टिकोण और प्राप्त आँकड़ोंके अनुसार ठीक हैं। ६५ से ८० रुपयेतक तो समूचे भारतकी औसत आय है, जिसमें लखपतियों, त्रिचौलियों और जमींदारोंकी आय भी शामिल है। इस राशिका अपना ही उद्देश्य है, किन्तु कुमारप्पा-समितिके लिए ६५ का आँकड़ा तो बिलकुल गलत है। १२ का आँकड़ा उनके लिए सही और वास्तवमें वैज्ञानिक है। उस समितिको केवल ग्रामवासियोंकी औसत आयसे मतलब था। समितिने कहा है :

> हमारे सर्वेक्षणसे प्रकट होता है कि अधिकांश उद्योग लड़खड़ा रहे हैं। शायद ही कोई उद्योग हो जिसकी दशा सामान्य भी कही जा सके। जनताकी

1. यह आठ उपशीर्षकोंमें प्रकाशित हुआ था: 'राज्यके कर्तव्य', 'कर तथा व्यय', 'पूँजी और व्यापारता', 'धन और वस्तु-विनिमयका अर्थशास्त्र', 'वस्तु-विनिमय तथा सरकारी कोष', 'कच्चा माल: उत्पादन और लाभ', 'प्रशासनिक या रचनात्मक कार्य-कुशलता' तथा 'उत्पादनके मार्गमें बाधा'।

राजस्व-अदायगीकी सामर्थ्य तेजीसे गिरती जा रही है और यदि इस मामलेको अविलम्ब सँभाला नहीं गया तो वह दिन दूर नहीं जब सरकार जनतासे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेगी। . . .

आयकी अल्पता तो लोगोंकी खुराक ही बता देती है। रिपोर्टमें कहा गया है:

. . . उनकी खुराकका अधिकांश भाग चावल या कोई दूसरा अन्न है, जिसको कभी-कभी वे पेट भरने की खातिर लपसीके रूपमें पी भी लेते हैं, किन्तु परिस्थितिकी विडम्बना यह है कि जो थोड़ा-बहुत चावल उन्हें प्राप्त है वह भी पालिश किया होता है, जो उनकी खुराकको बदतर बना देता है। चोकर मुश्किलसे ही उनके पल्ले पड़ता है। इस कारण सरकारका यह कर्त्तव्य है कि निर्धनोंको जो चावल मिलता है वह अपने सभी पौष्टिक तत्त्वोंसे युक्त हो। . . .

खुराकके विषयमें और भी मूल्यवान संकेत दिये गये हैं, जिनके लिए मैं पाठकोंसे मूल ही पढ़ने को कहूँगा।

कृषिका संक्षिप्त उल्लेख है, जिसमें से एक अंश दे रहा हूँ:

. . . राजस्व-अदायगीकी समस्याकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। इसके अलावा भूमिकी पट्टेदारीकी समस्या भी हमें विचारणीय लगती हैं। . . . ध्यानसे योजना बनाये बिना ही जो असंगत वसूलियाँ होती हैं उनसे बड़ी हानि पहुँची है और अब भी पहुँच रही है। सर्वेक्षणके दौरान हमने देखा कि भूमिकी उर्वरता वापस लाने की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। . . . समय आ गया है कि कृषि-विभाग भूमिके पुनः उर्वरीकरणका जिम्मा अपने कंधोंपर ले ले और मौसमके अनुसार किसानोंको गाँवोंमें स्थापित विभिन्न भण्डारोंसे खाद दे और फसल कटने के समय उनसे उसकी कीमतकी वसूली करे। कृत्रिम खादका उत्पादन देशका एक प्रमुख उद्योग बन जाना चाहिए। किसानोंको बीज भी दिया जा सकता है। . . .

उत्पादनकी पद्धतियोंके विषयमें समितिने कहा है:

. . . आजकल बड़े-बड़े व्यवस्थित उद्योगोंको अनेक प्रकारकी सहायता मिलती है और सरकारने छूट भी दे रखी है, जिससे वे सस्ता माल तैयार कर पाते हैं, जबकि ग्राम और कुटीर उद्योगोंकी इकाइयोंके अस्तित्वको भी मान्यता नहीं मिलती, सहायता और छूट मिलना तो दूर रहा। . . . कुटीर और ग्रामोद्योगोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति जबतक धन-वितरणकी है, तबतक उनका किसी भी राष्ट्रकी अर्थ-व्यवस्था और विशेषतः हमारे देशकी अर्थ-व्यवस्थामें एक ऐसा सुनिश्चित स्थान है जिसे कोई चुनौती नहीं दे सकता। गौरसे निरीक्षण किया जाये तो प्रकट होगा कि बड़े पैमानेके उद्योगोंकी उत्पादनकी सस्ती दर या मितव्ययताका कारण आवश्यक रूपसे इस उत्पादन-पद्धतिका अपना कोई सहज गुण नहीं है। यह तो मुख्यतः देश-भरमें तरह-तरहसे किये जानेवाले उस व्ययके कारण है जो इस उत्पादन-पद्धतिके बट्टेखाते डाला जाना चाहिए।

चौथा अध्याय उद्योग-विभागके विषयमें है। रिपोर्टमें विभागके विषयमें कुछ तीखी बातें भी कही गई हैं। सार निम्नलिखित है .

. . . अपने वर्तमान रूपमें यह विभाग उद्योगोंका कोई मार्गदर्शन नहीं कर सकता, वह तो एक बड़ा निरीक्षणालय-मात्र है। . . . इस विभागकी रचना ही ऐसी होनी चाहिए कि हरएक ग्रामवासी स्वभावतः उससे सहायता और सलाह माँगे। . . . इस विभागको वह धुरी होना चाहिए जिसके चारों ओर जनताकी उत्पादकताका चक्र घूमता रहे। इसे वैज्ञानिक, आर्थिक और तकनीकी, सब प्रकारकी मदद सीधे जनतातक पहुँचानी चाहिए। . . .

यहाँ जो सुझाव दिया गया है वह उसी ढंगपर है जिस ढंगपर अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ और अखिल भारतीय चरखा संघ पहलेसे ही सफलतापूर्वक चल रहे हैं। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघके मगनवाड़ी, वर्धामें स्थित मुख्यालयमें कई प्रकारके ग्रामोद्योग चल रहे हैं। छात्रोंको उद्योगों और ग्राम-सेवाका प्रशिक्षण दिया जाता है। कुछ वैज्ञानिक शोध-कार्य भी होता है। जो सामान तैयार किया जाता है वह संघ द्वारा संचालित एक दुकानमें बेचा जाता है। मगन संग्रहालय भी संघसे जुड़ा हुआ है। यह आगे वर्णित किस्मका एक संग्रहालय है। चरखा संघने इन सब बातोंपर जोर देने के अलावा गाँवके उत्पादकोंका संगठन किया है और देश-भरमें अपनी दुकानोंका जाल बिछा दिया है, जहाँ गाँवोंकी संस्थाओं द्वारा तैयार सामान बेचा जा सके। . . .

ध्यान देने लायक बात यह है कि उद्योग-निदेशकने, जो इस समितिके सदस्य हैं, अपने विभाग-सम्बन्धी इन टिप्पणियोंका अनुमोदन किया है। अपने निर्लिप्त तथा निष्पक्ष दृष्टिकोणके लिए वे बधाईके पात्र हैं।

व्ययके वर्गीकरणका निम्नलिखित विश्लेषण ध्यानपूर्वक देखे जाने लायक है :

शिक्षा	०–३–५½
सामान्य प्रशासन	०–३–०
राजस्वकी वसूली	०–३–०
पुलिस और जेल	०–३–०
न्याय	०–१–३
चिकित्सा तथा जन-स्वास्थ्य	०–१–०
कृषि, पशु-चिकित्सा, निर्माण	०–१–१
सहकारी ऋण	०–०–१
उद्योग-धन्धे	०–०–१½
	रु० १–०–०

जहाँ उद्योग-धन्धोंपर, अर्थात् ग्राम अर्थ-व्यवस्थापर केवल १½ पाईका व्यय हो वहाँ तो निश्चय ही व्यवस्थामें कोई बड़ी खराबी है। और जैसा कि समितिने सत्य ही कहा है, उसका भी अधिकाश भाग केवल प्रशासनिक कार्योंमें लग जाता है। यदि इस विभागको उचित पद्धतिसे चलाया जाये तो गाँवोंमें खुशहाली होगी और उसी मात्रामें प्रान्तकी खुशहालीमें भी वृद्धि होगी। सोलह आनेमें से सामान्य प्रशासन और पुलिस तथा जेलपर तीन आने चले जायें, सरकारके लिए ऐसा करना बहुत गलत है।

पाँचवाँ अध्याय, जिसमें सर्वेक्षणकी चर्चा की गई है, वास्तवमें छठे और अन्तिम अध्यायकी भूमिका ही है, जिसमें ग्रामोद्योगोंका विशद विवरण है। गाँवोंकी दशाका इस प्रकार वर्णन किया गया है:

> . . . जनताकी प्राथमिक आवश्यकताओंको देखते हुए कहना पड़ता है कि गाँवोंसे प्राप्त राजस्वका व्यय सबसे पहले वातावरण स्वच्छ बनाने और ताजे तथा अच्छे पानीका प्रबन्ध करने पर होना चाहिए, क्योंकि इसका ग्राम-वासियोंके स्वास्थ्यपर असर पड़ता है। किन्तु दुर्भाग्यवश जल-आपूर्तिकी, खास तौरसे हरिजन-परिवारोंके निमित्त जल-आपूर्तिकी, उपेक्षा की जाती रही है। सामाजिक प्रथाओंके खिलाफ चाहे जो कहा जाये, किन्तु हम इन दलित जातियोंको जल-सुविधा सुलभ कराने के लिए उन प्रथाओंके सुधरने तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। . . .

गाँवोंमें उद्योगोंकी दशाके सम्बन्धमें रिपोर्टमें यह कहा गया है:

> . . . अपने सर्वेक्षणके दौरान हमने देखा कि बिना किसी नीति या योजनाके जहाँ-तहाँ अनेक प्रकारके उद्योग सन्निविष्ट कर दिये गये हैं। इस सबका फल यह है कि आज ग्राम विखण्डित होते दिखाई देते हैं। . . .

इससे स्पष्ट हो जाता है कि अतीतमें गाँवोंकी घोर उपेक्षा हुई है। यदि कांग्रेसी सरकारें कांग्रेसके घोषित उद्देश्योंको पूरा करना चाहती हैं तो वे ग्रामवासियोंके जीवनका पुनर्निर्माण करेंगी और उन्हें अपने समयका ऐसा सदुपयोग करने का सुअवसर देंगी जिनसे वे अपनी अधिकांश आवश्यकताएँ स्वय ही पूरी कर लें। जैसा कि रिपोर्टमें दरसाया गया है, सरकारोंको दो काम करने हैं. (१) गाँवोंकी आर्थिक व्यवस्थामें हस्तक्षेप रोकने के लिए गाँवोंमें एक तो विदेशी मालका आना रोकें, और दूसरे, अपने देशी व्यापारियोंको गाँवोंमें मिलमें तैयार किया गया आटा, चावल और तेल इत्यादि लाने से रोकें। इन वस्तुओंके आने से ग्रामवासी बेकार हो जाते हैं और पालिश किये हुए नि सत्व खाद्य-पदार्थोंसे उनका स्वास्थ्य क्षीण होता है। (२) रोकथामके इन उपायोंके साथ-साथ मौजूदा उद्योगोंको और अधिक लाभकर बनाने के लिए उन्हें चलाने की प्रणालीमें सुधार किया जाये और खास-खास गाँवोंमें वहाँ उपलब्ध कच्चे मालकी दृष्टिसे नये उद्योग लगाये जायें। इस कदमको सफल बनाने के लिए योजनामें एक और बातका समावेश करना होगा — वह यह कि गाँव अपनी आवश्यकताके

लिए नहीं, बल्कि उत्पादन-क्षेत्रसे बाहर बेचने के लिए जो सामान तैयार करे, उसकी खपतका प्रबन्ध सरकार करे।

समितिके ध्यानमें ये ग्रामोद्योग आये हैं : धान कूटना, आटा पीसना, तेल निकालना, गुड़ बनाना, चीनीका उत्पादन, मधुमक्खी-पालन, मिट्टीके बरतन बनाना, कांचका काम, साबुन बनाना, कपास-सम्बन्धी क्रियाएँ (जैसे कपास चुनना, ओटना, धुनना, कातना, बुनना), धुलाई, रँगाई, ऊन कातना-बुनना, भेड़-पालन, बढ़ईगिरी, लुहारी, रेशम-उत्पादन, चटाई बुनना, रस्सी बटना, चमड़ा कमाना, मृत ढोरोंको ठिकाने लगाना, मछली-पालन, मुर्गी और बत्तख-पालन, गो-पालन, जूते गांठना, पीतल या धातुकी वस्तुएँ बनाना, खिलौने बनाना, सुनारी, कागज बनाना, परिवहन, लाखका उद्योग, बांसका काम, दियासलाई बनाना इत्यादि। उद्योगोंमें बीड़ी बनाना भी आता है। इस उद्योगके विषयमें समितिने यह कहा है :

> बीड़ी-उत्पादन इस प्रान्तका बहुत ही लाभप्रद, किन्तु हानिकर उद्योग है। . . . चूंकि काम करने के इच्छुक लोगोंको अन्य उद्योग सुलभ नहीं हैं, इसलिए जीवन-निर्वाह और मजदूरीकी दरको देखते हुए बहुत कम मजदूरी पर इस उद्योगकी ओर मजदूर खिंचे चले आते हैं . . .। वे दो-ढाईसे लेकर तीन आने रोजाना तो बना ही लेते हैं, जो गांवोंकी मजदूरीकी दरको देखते हुए बहुत अच्छी कमाई है।. . .

समितिने सभी उद्योग-धन्धोंके बारे में व्यावहारिक सुझाव दिये हैं। प्रत्येक शीर्षकके अन्तर्गत जो सुझाव दिये गये हैं उनका सार-संक्षेप देने में उनका आशय ठीक प्रकट नहीं होता। जिन्हें उत्सुकता और रुचि है उन्हें तो रिपोर्ट मँगाकर उसीका अध्ययन करना चाहिए। सरकारको चाहिए कि एक सस्ता और सुविधा-जनक संस्करण निकाले और कमसे-कम हिन्दुस्तानीमें उसका अनुवाद भी कराये। यह रिपोर्ट दूसरे प्रान्तोंके लिए भी उपयोगी है। अतएव दूसरे प्रान्तोंकी सरकारोंको चाहिए कि कुछ प्रतियां मँगवाकर अपने निदेशकोंको निर्देश दे कि रिपोर्टका अध्ययन करके उसके अनुसार चलें। मैं आशा करता हूँ कि मध्य प्रान्त सरकार समितिकी सभी सिफारिशोंका पूरी तरह पालन करेगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-५-१९३९, ३-६-१९३९, १५-७-१९३९, २२-७-१९३९ और २९-७-१९३९

४०. टिप्पणियाँ

और भी मन्दिर खुले

राजा श्री राजाराम राजा साहब तजौर राजभवन देवस्थानोके बड़े महाराजा और आनुवशिक न्यासी है। श्री बृहदीश्वर नामक सुप्रसिद्ध मन्दिर-सहित ९० मन्दिर उनकी देख-रेखमें है। इन सब मन्दिरोको उन्होने बिलकुल स्वेच्छापूर्वक प्रायश्चित्तके तौरपर हरिजनोंके लिए खोल दिया है और इस प्रकार शुद्धिके उस कामकी गति बढा दी है जो हिन्दू-धर्ममें चल रहा है। राजा साहबका यह काम बहुत महान् और श्रेष्ठ है। वे उन सबकी बधाईके पात्र है जो यह विश्वास करते है, कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मपर कलंक-रूप है। श्रीमती रामेश्वरी नेहरूने दक्षिणमें हरिजनोंके लिए मन्दिर खोले जाने के पक्षमें व्याप्त उत्साहका जो विवरण भेजा है उससे मालूम पड़ता है कि यह सुधार सच्चा है और स्थायी होगा। वे चीजोंको बहुत सावधानीके साथ देखती-समझती है। उनका कहना है कि जिन सभाओमें वे भाषण करती है उनमें हजारों आदमी शामिल होते है और वे जो-कुछ कहती है, उसका एक-एक शब्द वे समझते है। योग्य दुभाषियेके जरिये उनकी बात श्रोताओको समझाई जाती है, और उनका कहना है कि वे जो विचार प्रकट करती है, उनका श्रोतागण प्रसन्नतापूर्वक समर्थन करते है। यह सब पहलेकी बनिस्बत स्पष्ट प्रगतिका द्योतक है। इस प्रकार यद्यपि बहुत-कुछ किया जा चुका है, फिर भी हिन्दू सुधारकोंके लिए अभी आरामकी गुजाइश नही है क्योंकि अब भी बहुत-कुछ करना बाकी है। मन्दिर-प्रवेशके साथ-साथ मन्दिरोका सुधार भी करना है। अगर सुधार सतही नही है बल्कि हिन्दू-धर्म तथा हिन्दुओकी आत्मशुद्धिकी इच्छाका द्योतक है, तो उसके साथ-साथ मन्दिरोंका भी हर तरहसे सुधार होना आवश्यक है। उनकी पवित्रता और लोक-प्रियता बढनी चाहिए। मन्दिरोमें हरिजनोंके प्रवेशका मतलब यह होना चाहिए कि उससे हरिजनोके जीवनमें खुद-ब-खुद उत्थान आ गया है। ये बातें तभी सम्भव है जब हरिजन-सेवक अधिक जागरूकतासे काम ले, दूने उत्साहसे काम करें और उन्हें लगे कि उनकी सहायतासे जो सुधार हो रहा है, उससे खुद उनका भी उत्थान हुआ है। हरिजनोके लिए मन्दिरोके द्वार खोलने-जैसे सुधारोसे, जो लोग इस काममें लगे हुए है और जिनपर इसका असर पड़ता है, उनके जीवन आम तौरसे ऊँचे उठने चाहिए।[1]

सेगाँव, २९ जुलाई, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-८-१९३९

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४५९-६१ भी।

४१. तार : सिकन्दर हयात खाँको

सेगाँव
२९ जुलाई, १९३९

सर सिकन्दर हयात खाँ
शिमला

तारके[1] लिए धन्यवाद। क्षमा माँगने की कोई जरूरत नहीं। ऐसी चीजें जन-सेवकोंके जीवनमें होती ही रहती हैं।

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

४२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
२९ जुलाई, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

धामीके लोगोंका पथ-प्रदर्शन करनेके बजाय मैंने उन्हें तुम्हें सौंप दिया है।[2] मेरे खयालसे, मेरी तरफसे किसी हस्तक्षेपके बिना तुम्हींको इस दायित्वसे निबट लेना चाहिए। देशी राज्योंका यह विचार दिखाई देता है कि कांग्रेसको और इस तरह प्रजा परिषद्को अलग-थलग कर दिया जाये और उनकी उपेक्षा की जाये। मैं 'हरिजन' में पहले ही सुझाव दे चुका हूँ[3] कि तुम्हारी समितिसे[4] पूछे बिना किसी रियासती संघ या मण्डलको अपने-आप कार्रवाई नहीं करनी चाहिए। मुझे कुछ कहना ही हो तो तुम्हारी मारफत कहना चाहिए, अर्थात् जब तुम मुझसे पूछो तो जैसे मैं कार्य-समितिको अपनी राय दे देता हूँ वैसे ही तुम्हें दे दूँ। कल ग्वालियर-वालोंसे भी मैंने ऐसा ही कहा है। तुम्हारी समितिको ठीक ढंगसे काम करना है तो तुम्हें उसको थोड़ा-सा पुनर्गठित करना होगा।

१. २७ जुलाईको भेजे गये इस तारमें सिकन्दर हयात खाँने २६ जुलाईको लाहौर रेलवे स्टेशन पर सिख भाइयों द्वारा किये गये असौजन्यपूर्ण प्रदर्शनके लिए माफी माँगी थी।

२. हिमालयी राज्य प्रजामण्डलकी ओरसे एक शिष्टमण्डल गांधीजीसे दिल्लीमें २७ जुलाईको मिला था और उसने धामीमें हुए गोली-काण्डसे उन्हें अवगत कराया था।

३. देखिए पृ० १८-१९।

४. अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा-परिषदकी स्थायी समिति, जिसके जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष थे।

आखिर मेरा कश्मीर जाना नहीं हुआ। शेख अब्दुल्ला और उनके मित्रोंको मेरा सरकारी मेहमान बननेका विचार सहन नहीं था। अपने पिछले अनुभवके आधारपर मैंने इस आशासे राज्यका प्रस्ताव मंजूर कर लिया था कि शेख अब्दुल्लाकी सहमति मिल जायेगी। परन्तु मैंने देखा कि मैं गलतीपर था। इसलिए राज्यके आतिथ्यकी स्वीकृति रद्द करके मैंने शेखका आतिथ्य स्वीकार किया। इससे राज्यको परेशानी हुई। इसलिए मैंने वहाँ जानेका विचार ही छोड़ दिया। मैं दुहरी मूर्खताका दोषी बना — एक तो मैंने तुम्हारे बिना वहाँ जानेका विचार करनेका दुस्साहस किया और दूसरे, राज्यका प्रस्ताव मान लेनेसे पहले शेखकी इजाजत नहीं ली। मैंने सोचा था कि राज्यका प्रस्ताव मंजूर करके मैं प्रजाकी सेवा करूँगा। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि शेख और उनके मित्रोंके साथ मेरा सम्पर्क सुखद नहीं था। वे हम सबको बहुत ही बेतुके मालूम हुए। खानसाहबने उन्हें समझाया, मगर कोई नतीजा नहीं निकला।

तुम्हारी लंका-यात्रा शानदार रही। मुझे इसकी परवाह नहीं कि तात्कालिक परिणाम क्या रहा। सालेह तैयबजी मुझसे अनुरोध कर रहे हैं कि तुम्हें बर्मा भेजूं और ऐन्ड्रयूज तुम्हें दक्षिण आफ्रिका भेजने के सम्बन्धमें सोच रहे हैं। लंकाके लिए कांग्रेसके शिष्टमण्डलका विचार तो मुझे सहज ही सूझा था। लेकिन इन दो स्थानोंपर भेजने की प्रेरणा उकसाने पर भी नहीं हो रही है। लेकिन इनके बारेमें तो जब मिलेंगे, तब चर्चा करेंगे। आशा है, तुम स्वस्थ हो और कृष्णा[1] मजेमें है।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृ० ३७७-७८ भी

४३. पत्र: अमतुस्सलामको

सेगांव
२९ जुलाई, १९३९

चि० अ० स०,

तू मुझे दुःखी कर में तुझे। यह तो अच्छा सौदा हुआ ना? तुझे रोज खत भेजे जाते थे। दा० सु[शीला]को तेरे खत देता था। मैंने गल्ती की, माफ कर। अब जैसे आवेंगे ऐसे फाड़ डालुंगा। जवाब किस चीजका दूं?

हां, रमण महर्षिके पास जायगी तो अच्छा तो होगा।

अगस्टमें छूटेगी तो क्या पतीयाला जायगी कि मुंबई?

१. कृष्णा हठीसिंह, जवाहरलाल नेहरूकी छोटी बहन

मैं तो शायद सारा अगस्त मासमें यही हूंगा। पीछे तो ईश्वर जाने। सु० दिल्लीमें रही है, एक महीना रहेगी।

बापूकी दुआ

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२६) से।

४४. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव,
२९ जुलाई, १९३९

दक्षिण आफ्रिकाकी सत्याग्रह-समितिके नेता डॉ० दादू और मेरे बीच तारोंका आदान-प्रदान होता रहा है। मुझे सत्याग्रह-समितिसे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि पहली अगस्तको वह जो संघर्ष आरम्भ करनेवाली है,[2] उसे कुछ समयके लिए स्थगित कर दिया जाये। मैं ऐसा इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे सम्मानजनक समझौतेकी कुछ आशा है। मैं जानता हूँ कि भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार राहत दिलाने की कोशिश कर रही हैं। मैं मन्त्रियोंके साथ सम्पर्क बनाये हुए हूँ। ऐसी स्थितिमें मैं थोड़े समयके लिए संघर्ष स्थगित करना जरूरी मानता हूँ। मैं सत्याग्रहियोंके जोशसे भली-भाँति अवगत हूँ। वे अपनी सामर्थ्य पहले भी सिद्ध कर चुके हैं, और जरूरत पड़ी तो फिर उसे सिद्ध कर देंगे। लेकिन सत्याग्रहियोका सिद्धान्त है कि सत्याग्रह टालने के हर अवसरका उपयोग किया जाये, बशर्ते कि ऐसा सम्मानपूर्वक किया जा सके। शान्तिकी खोजमें जब भी संघर्ष रोका जाता है, तब सच्चे योद्धाकी शक्ति बराबर बढ़ती ही है। उन्हें याद रखना चाहिए कि १९१४ का केप टाउन समझौता शान्तिकी खातिर संघर्ष रोक देने का ही परिणाम था। मुझे आशा है कि प्रस्तावित संघर्ष-विरामका परिणाम भी वैसा ही होगा। यदि दुर्भाग्यवश ऐसा न हो और संघर्ष छिड़ ही जाये, तो डॉ० दादू और उनके साथी सत्याग्रहियोंको जान लेना चाहिए कि सारा भारत उनके साथ होगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-८-१९३९

१. यह "टिप्पणियाँ" के अन्तर्गत "संघर्ष स्थगित करें" उप-शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। वक्तव्य *हिन्दुस्तान टाइम्स*के ३०-७-१९३९ के अंकमें भी प्रकाशित हुआ था।

२. यह संघर्ष १९३९ के एशियाई (ट्रान्सवाल) भूमि और व्यापार अधिनियमके विरुद्ध आरम्भ किया जानेवाला था। अधिनियमका उद्देश्य ट्रान्सवालमें भारतीय समाजके आर्थिक हितोंको लगभग समाप्त कर देना था। देखिए खण्ड ६९, पृ० १२८ भी। ३१-७-१९३९ के *बॉम्बे क्रॉनिकल*के अनुसार दादूने एक वक्तव्य जारी किया था, जिसमें उन्होंने गांधीजी के अनुरोधको स्वीकार करते हुए कहा था कि आगे उनकी सलाह मिलने तक संघर्ष स्थगित रखा जाये।

४५. धामी-काण्डसे सबक

धामी-प्रकरण अभी समाप्त नही हुआ है। सच्ची बात अभीतक प्रकट नही हुई है। हिमालयी राज्य प्रजामण्डलने राजनीतिक एजेंटके स्वभावत. एकतरफा बयानकी सचाईपर आपत्ति उठाई है। मण्डलके वक्तव्यसे जाहिर होता है कि उन घटनाओकी खुली अदालती जाँच किस प्रकार नितान्त आवश्यक है जिनके कारण धामीके राणाको गोली चलानी पडी।

दिल्लीमें मेरे कुछ देरके प्रवासके दौरान हिमालयी प्रजामण्डलके कुछ सदस्य मुझसे मिलने आये। धामी-काण्डने मुझे विचार-निमग्न कर दिया था। क्या ऐसे दुष्काण्डको रोकने का कोई उपाय सम्भव नही? इस बारेमें मुझे शिष्ट-मण्डलसे बहुत-कुछ कहना था, लेकिन मैंने यह महसूस किया कि हिमालयी राज्य प्रजामण्डलका मार्गदर्शन करने का भार अपने कन्धोपर लेना मेरी गलती होगी। यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी। इसी तरह इससे पैदा होनेवाले प्रश्न भी बहुत बड़े थे। इसीलिए मुझे यह लगा कि यह समस्या मुझे नही, बल्कि अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद्की स्थायी समितिको निपटानी चाहिए। रियासतोंकी समस्या दिनो-दिन विकराल होती जा रही है। राजा लोग अब बन्दूकका इस्तेमाल करने में बेझिझक होते जा रहे हैं। वे यह महसूस करते हैं कि जहाँतक अधीश्वरी सत्ताका सम्बन्ध है, वे सुरक्षित हैं। कांग्रेसका उनपर कोई विशेष प्रभाव नही है। अब तो बहुत-से राजा अपनी प्रजाके बढते हुए उत्साहको कुचलने का और बने तो कांग्रेसके लिए रियासती प्रजाकी समस्याओंमें हस्तक्षेप करना तो दूर, उनका प्रभावकारी पथ-प्रदर्शन करना भी असम्भव बना देने का सरजाम कर रहे हैं। मगर कांग्रेसको तो इस मामलेमें अपना फर्ज अदा करना ही है। मुझे प्रजा परिषद्के संविधानका ठीक ज्ञान नही है, मगर मेरा खयाल है कि वह किसी-न-किसी रूपमें कांग्रेससे सम्बद्ध है। कुछ भी हो, कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी सस्था है जिसकी रचना रियासती प्रजाका पथ-प्रदर्शन करने की दृष्टिसे विशेष उपयुक्त है। इस प्रकारके पथ-प्रदर्शनपर रियासतोंका नाराज होना गलत होगा। उन्हें भी यह समझ लेना चाहिए कि इस तरहकी नाराजगी बेकार होगी। कांग्रेस रियासतोकी प्रजाकी जरूरतके समय उसके पथ-प्रदर्शनके अपने कर्त्तव्यका परित्याग नही कर सकती। एक समय वह भी था जब कांग्रेस अधीश्वरी सत्ताके खिलाफ रियासतोका पथ-प्रदर्शन करती थी और उनके अधिकारोंकी रक्षा भी करती थी। यदि आवश्यकता के समय रियासतें कांग्रेसकी मैत्रीकी इच्छा और उसका स्वागत करती थी, तो अपनी प्रजाको कांग्रेससे सलाह, मार्ग-दर्शन और रक्षाकी प्रार्थना करते देखकर बिदकना उन्हें शोभा नही देता। दुर्भाग्यसे यह बात बिलकुल सच है कि कांग्रेस उन्हें हर समय प्रभावकारी मदद नही दे सकती। कांग्रेसको अपने

संगठनके आधारको मजबूत बनाकर तथा विवेकपूर्ण संयम द्वारा निष्पक्षता और कठोर न्यायपरायणताकी अपनी साख जमाकर आवश्यक शक्ति अर्जित करनी है। यदि कांग्रेसको सही तौरपर अपना कर्त्तव्य निभाना है, तो अपने कार्यकर्त्ताओंसे उसे इस बातका आग्रह रखना होगा कि वे अपने पक्ष तैयार करने में आजकी अपेक्षा अधिक यथार्थतासे काम लेना सीखें। स्थायी समितिके सामने जो भी चीज आये उसकी कड़ी जाँच होनी चाहिए, ताकि उसके सामने केवल खरी चीजें ही आयें। अगर रियासतोंका ऐसी कारगुजारियोंका सही-सही विवरण प्रकाशित किया जाये जिनमें प्रजाको साधारण न्यायसे भी वंचित कर दिया गया हो, तो उनसे कार्रवाई करने का समुचित आधार प्राप्त होगा।

यह तो मैंने कार्य-दिशाका संकेत-भर किया है। स्थायी समिति अपनी नीति और समय-समयपर उठनेवाली समस्याओंको सुलझाने के लिए अपने तरीके तो, बेशक, आप ही निर्धारित करेगी। मेरा यह लिखने का उद्देश्य रियासतोंके कार्यकर्त्ताओंको यह चेतावनी देना है कि वे मेरे पास न आया करें और न मुझसे किसी सलाहकी आशा करें। उन्हें स्थायी समितिके पास ही जाना चाहिए। मैं तो कांग्रेसजनोंको भी ऐसे आम मामलोंमें सलाह नहीं देता जिन्हें निपटाने का काम कांग्रेसकी कार्य-समितिका है। हाँ, मैंने अपनी सेवाएँ कार्य-समितिके हवाले कर रखी हैं। इसी तरह भविष्यमें नई रियासती समस्याओंके बारेमें भी करूँगा। जिन लोगोंसे पहलेसे ही मेरा सीधा सम्बन्ध है, उनका पथ-प्रदर्शन मैं नहीं छोड़ूँगा। कहने की जरूरत नहीं कि मैं रियासतोंके जन-आन्दोलनका सीधा मार्ग-दर्शन करने की झंझटमें न पड़कर, रियासतोंको प्रभावित करनेवाले मामलोंमें अपने खास ढंगसे जो-कुछ कर सकता हूँ वह करता रहूँगा। रियासती कार्यकर्त्ताओंसे मैं यह कहना चाहता हूँ कि वे स्थायी समितिको सूचना दिये और उसकी मंजूरी लिये बिना कोई आन्दोलन खड़ा न करें। कांग्रेसका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि राज्य प्रजा परिषद्के जरिये काम करते हुए, बन पड़े तो, रियासतोंके साथ झगड़ेको टालें।

सेगाँव, ३० जुलाई, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-८-१९३९

४६. टिप्पणियाँ

संस्कृतसे उद्भूत भाषाओंके लिए एक लिपि

यह सवाल अनेक वर्षोंसे लोगोंके सामने है कि संस्कृतसे उद्भूत या जिन्होंने स्वेच्छासे संस्कृतको अपने स्रोतके रूपमें ग्रहण कर लिया है, उन सब भारतीय भाषाओंकी एक लिपि होनी चाहिए। इसके बावजूद तीव्र प्रान्तीयताके इन दिनोंमें एक लिपिके पक्षमें कुछ कहना शायद धृष्टता समझी जायेगी। लेकिन सारे देशमें साक्षरताका जो आन्दोलन चल रहा है, उसके कारण एक लिपिका प्रतिपादन करनेवालों की बात सुननी ही चाहिए। मैं भी बरसोंसे एक लिपिका प्रतिपादन करता रहा हूँ। मुझे याद है कि अपने दक्षिण आफ्रिकी प्रवासके दौरान भारत-स्थित कुछ गुजरातियोंसे अपने पत्र-व्यवहारमें मैंने देवनागरी लिपि अपना ली थी। ऐसा करनेसे प्रान्तोंके पारस्परिक सम्पर्कमें बहुत सुविधा हो जायेगी और विभिन्न प्रान्तीय भाषाएँ सीखने में आजकी बनिस्बत बहुत ज्यादा आसानी होगी। अगर देशके शिक्षित लोग आपसमें मिलकर विचार करें और एक लिपिका निश्चय कर लें, तो सबके द्वारा उसका ग्रहण किया जाना आसान बात हो जायेगी। उन करोड़ों निरक्षर लोगोंके लिए इस बातसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पढ़ाईके लिए कौन-सी लिपि रखी गई है। अगर यह सुखद स्थिति आ जाये, तो भारतमें देवनागरी और उर्दू ये दो लिपियाँ ही रह जायेंगी और हरएक राष्ट्रवादी दोनों लिपियोंको भली-भाँति सीखना अपना फर्ज समझेगा। मैं सभी भारतीय भाषाओंका प्रेमी हूँ। यथासम्भव अधिकसे-अधिक लिपियाँ सीखने की मैंने कोशिश भी की है। सत्तर वर्षकी उम्रमें भी मुझमें इतनी शक्ति मौजूद है कि अगर वक्त मिले, तो मैं और भी भारतीय भाषाएँ सीख सकता हूँ। ऐसी पढ़ाई मेरे लिए मनोरंजनकी ही चीज होगी। लेकिन भाषाओंके प्रति अपने इतने प्रेमके बावजूद, मुझे यह कबूल करना पड़ेगा कि मैं सब लिपियाँ नहीं सीख पाया हूँ। अलबत्ता, अगर एक स्रोतसे निकली हुई भाषाएँ एक ही लिपिमें लिखी जायें, तो बहुत थोड़े समयमें प्रान्तोंकी खास-खास भाषाओंका कामचलाऊ ज्ञान मैं प्राप्त कर लूँगा। और जहाँतक देवनागरीका सवाल है, सौन्दर्य या सजावटकी दृष्टिसे लज्जित होने जैसी बात उसमें नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग साक्षरता का आन्दोलन चलाने में लगे हुए हैं, वे मेरे इस सुझावपर भी कुछ विचार करेंगे। अगर वे देवनागरी लिपिको ग्रहण कर लें, तो निश्चय ही वे भावी सन्ततिके परिश्रम और समयकी भारी बचत करके उसकी दुआएँ पायेंगे।

सेगाँव, ३० जुलाई, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-८-१९३९

४७. हरिजन-सेवक सम्मेलन

पूनामें पिछली ४-७ जूनको पश्चिमी और मध्य भारतके हरिजन-सेवकोंका एक सम्मेलन हुआ था। अखिल भारतीय संघकी उपाध्यक्षा श्रीमती रामेश्वरी नेहरूने उसकी अध्यक्षता की थी। मुझे खेद है कि अभी तक उस सम्मेलनके कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रस्तावोका मैं 'हरिजन' में जिक्र नही कर पाया। और हालाँकि ये प्रस्ताव आजसे लगभग दो महीने पहले पास किये गये, फिर भी वे अब भी प्रकाशनके योग्य हैं। यहाँ उनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव दिये जा रहे हैं।[1]

आशा है, इन्दौर और ग्वालियर राज्योको सम्बोधित करके जो प्रस्ताव पास किये गये है, उनका कुछ परिणाम निकलेगा। इसी आशयके देवास और काठियावाडसे सम्बन्धित जो प्रस्ताव पास किये गये है, उन्हे मैंने पुनरावृत्तिसे बचने के लिए छोड़ दिया है। निःसन्देह यदि राजा लोग भारतीय जनताके इस तिरस्कृत हिस्सेके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहते हों तो सबको उन्हें याद दिलाने की कोई आवश्यकता नही होनी चाहिए। सनातनियोकी तरह वे अस्पृश्यताका बचाव नही करते। उन्होंने अभी तक तो हरिजनोंके लिए कोई व्यवस्था नही की है, उसका कारण हरिजनोके प्रति उनकी उदासीनता ही मानी जा सकती है। हम आशा करते हैं कि सम्मेलन द्वारा की गई अपीलको अनसुना नही किया जायेगा।

सेगाँव, ३० जुलाई, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-८-१९३९

१. देखिए परिशिष्ट २।

४८. पत्र : द० बा० कालेलकरको

सेगांव
३० जुलाई, १९३९

चि० काका,

इसके साथ मगनभाईके[1] लिए एक पत्र है। यदि तुम्हें यह पसन्द आये तो इसपर अपनी टिप्पणी लिखकर भेज देना।

एक लिपिके बारेमें लिखा लेख[2] इसके साथ है। इसमें यदि तुम कोई रद्दोबदल करने का सुझाव देना चाहो तो उसकी सूचना मुझे जल्दी भेजना। यदि तुम्हें लेख पसन्द न आये तो मैं इसे रद्द करने के लिए तैयार हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९२३)से।

४९. पत्र : अमतुस्सलामको

३० जुलाई, १९३९

चि० अ० स०,

तेरा खत मिला। मैं क्या कहूं। तू तेरी प्रतिज्ञा तोड़ सकती है तो जो दिल चाहे सो कर। मैं रुपैये किसी औरको नहीं दूंगा। अकबरको[3] मैं यहां तेरे सिवा नहीं रख सकता और तू प्रतिज्ञा भंग करके यहां कैसे आ सकेगी? शंकरलालभाईसे मिलकर बात कर लेना और जो ठीक जंचे वह करना।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२७)से।

१. मगनभाई प्रभुदास देसाई
२. देखिए पृ० ५२।
३. अकबरभाई चावड़ा

५०. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
३१ जुलाई, १९३९

प्रिय पगली,

इससे पहले लिखने का समय ही नही मिला। मैं 'हरिजन' के काममें निमग्न था। अब भी मेरे सामने ढेरो पत्र उत्तर देने को पड़े हैं।

हमारी यात्रा कठिन रही — हर जगह असाधारण भीड़। रातके दो बजे ग्वालियर पहुँचने से पहलेतक आराम नही मिला। अचानक ही इस तरह लोग क्यो उमड़ पड़े, यह बात मेरी समझमें नही आई।

महादेव अभी कलकत्तामें ही है।

पहलेसे कोई सूचना दिये बिना ही मीरा कल यहाँ आ गई। मैं यह तो जानता था कि वह आनेवाली है, लेकिन यह नही मालूम था कि कब आ रही है। लोग आते ही जा रहे हैं।

आर्यसमाजियोकी समस्याकी[1] ओर मुझे बहुत ध्यान देना पड़ रहा है।

हम सब ठीक हैं। मीराको सख्त खाँसी और कब्ज है।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३५) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२४४ से भी

१. तात्पर्य आर्यसमाजियोंके 'आर्य सत्याग्रह' से है, जो उन्होंने निजाम सरकारकी हिन्दू-विरोधी नीतिके प्रति अपना असन्तोष व्यक्त करने के लिए किया था। निजाम सरकारने अन्ततः सुधारोंकी एक योजनाकी घोषणा की, जिसमें आर्यसमाजियों की धार्मिक माँगोंको सार-रूपमें स्वीकार किया गया था। *हिन्दुस्तान टाइम्स*ने २८-७-१९३९ के अंकमें लिखा था : "२७ जुलाईको एक शिष्टमण्डल गांधीजी से मिला। इस शिष्टमण्डलमें मध्य प्रान्त विधानसभाके अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह गुप्त, श्री विनायकराव और श्री देशबन्धु गुप्ता थे। शिष्टमण्डलने गांधीजी के सम्मुख श्री घनश्यामसिंह गुप्त और हैदराबादके प्रधान मन्त्री सर अकबर हैदरीके बीच हुआ पत्र-व्यवहार रखा। हैदराबाद-सुधारोंके प्रति आर्यसमाजियोंके मनमें जो शंकाएँ थीं उन्हीं के बारेमें यह पत्र-व्यवहार हुआ था।" देखिए "टिप्पणियाँ" का उप-शीर्षक "आर्यसमाज", पृ० १०० भी।

५१. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
३१ जुलाई, १९३९

चि० जयसुखलाल,

तुम्हारा पत्र मिला. और संयुक्ताका[1] भी। उसे अलगसे नही लिखूंगा। ईश्वरकी कृपा है कि कसुम्बा[2] ठीक होती जा रही है। तुम्हारे लिए मुझे कुछ नही सूझता। तुम यदि जमनालालजी को लिखना चाहो तो लिख सकते हो। तुम्हारे जैसा मामला विचार करने योग्य है। तुम्हारा धर्म तो मैं समझता हूँ। उसका पालन बहुत कठिन लगेगा ही। इसलिए वहाँ कमाई करने के लिए जो तुमसे हो सके, सो करो। विट्ठलदाससे मिलो। अमुक वेतन ही मिलना चाहिए. इसका लोभ छोड देना। कसुम्बाके अच्छा होने के बाद और विचार करना।

बापूके आशीर्वाद

श्री जयसुखलाल गांधी
सर हरकिशनदास हॉस्पिटल
न्यू चर्नी रोड, बम्बई

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० /३) से।

५२. पत्र : नारणदास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
३१ जुलाई, १९३९

चि० नारणदास,

तुम्हारे दोनो पत्र मिल गये हैं। तुम 'हरिजनबन्धु' मे देखोगे कि मैंने तुम्हारे सुझावपर अमल किया है।[3] तुम्हारा सुझाया सुधार[4] भी कर दिया है। गणितकी ऐसी भूलें मुझसे हो जाती हैं। यदि कागज लेकर हिसाब करता तो भूल न होती।

१. जयसुखलाल गांधी की पुत्री
२. जयसुखलाल गांधी की पत्नी
३. देखिए पृ० ६१।
४. देखिए पृ० ७७-७८।

महादेवने भी इसकी जाँच की थी। लेकिन उसे भी यह भूल नहीं दिखाई दी। उसे सन्देह तो हुआ, लेकिन बादमें वह सन्देह दूर हो गया।

साधु पुरुषके संकल्प-बलवाला वह वाक्य[1] ठीक है। वह संकल्प-बल तुम्हारा है, मेरे आशीर्वाद देनेकी यहाँ गुंजाइश नहीं है। सत्तर लाख [गज सूत] का संकल्प तुम्हारा है। उस संकल्पमें बल भरा हुआ है।

मुझे उम्मीद है कि मैं तुम्हें ७०० गज सूत दे सकूँगा। बा भी देगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

भगवानजीका मामला नाजुक है। मुझे लगता है कि उसे और पैसा दिये बिना छुटकारा नहीं है। समय मिला तो इस बारेमें विस्तारसे समझाऊँगा। फिलहाल तो दे देना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५५८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

५३. पत्र : देवदास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
३१ जुलाई, १९३९

चि० देवदास,

तेरा पत्र मिला। उससे मुझे क्लेश नहीं होता। तुझमें और मुझमें मतभेद हो गया है, यह बात खटकती है। लेकिन मैं यह उम्मीद कर रहा हूँ कि कालान्तरमें यह मतभेद खत्म हो जायेगा। तू मेरा जितना समय लेना चाहे उतना ले सकता है। मैंने जो सरदार आदिसे राय लेनेकी बात कही थी, वह सरल भावसे कही थी। उनकी रायका कदाचित् मुझपर कुछ असर हो। एक बात मत भूलना। तेरा और मेरा दृष्टिकोण भिन्न है। तू मानता है कि मेरे उपचारसे रोगीकी मृत्यु हो जाती है; मैं मानता हूँ कि मेरे उपचारके कारण ही रोगी टिक पाता है। अब इस दृष्टिभेदके बारेमें क्या करें? इसीसे मैं धीरज रखे हुए हूँ। जिसका दोष होगा उसका दोष एक-न-एक दिन दिख ही जायेगा।

तू सुशीलासे मिल और उसके साथ प्रेमसे बातचीत कर। उससे भी मैंने यही कहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एम० २०४९) से।

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४५८-५९।

५४. पत्र : जीवणजी डा० देसाईको

सेगाँव, वर्धा
३१ जुलाई, १९३९

चि० जीवणजी,

'आत्मकथा' का देवनागरी संस्करण कब प्रकाशित होनेवाला है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९९४४) से। सी० डब्ल्यू० ६९१९ से भी; सौजन्य : जीवणजी डा० देसाई

५५. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेगाँव
३१ जुलाई, १९३९

चि० कृष्णचन्द्र,

तुमारे खत मिले हैं। डाक जाती है। आज ज्यादा नहि लिखुंगा। तुमारे बारेमें सोच रहा हू। यहा पानी बिलकुल नहि, लोग परेशान हैं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३२३) से।

५६. तार : लॉर्ड लिनलिथगोको[1]

वर्धा
१ अगस्त, १९३९

वाइसराय महोदय
वाइसरायका कैम्प

मुझे अत्यन्त खेद है कि मैं इस पाँच तारीखको दिल्ली नहीं पहुँच सकता, विशेषकर इसलिए कि मुलाकातका कोई खास प्रयोजन नहीं है। यहाँ आवश्यक कार्य करने को हैं। सीमा-प्रान्तसे वापसीकी यात्रा

१. यह तार लॉर्ड लिनलिथगोके २८ जुलाईके पत्रके उत्तरमें था, जिसमें कहा गया था: "मैं कहना चाहता हूँ कि यदि शनिवार, ५ अगस्तको किसी भी तरह दिल्ली आना आपके लिए सुविधा-जनक हो सके तो मुझे आपसे फिर मिल कर बहुत अधिक प्रसन्नता होगी।. . . वैसे कोई विशेष विषय नहीं है जिसकी मैं आपके साथ चर्चा करना चाहता होऊँ, लेकिन हमें मिले अब कुछ महीने हो गये हैं और मैं आपसे दुबारा मिलनेके अवसरका स्वागत करूँगा।"

बहुत थकानेवाली थी। इस माहकी बीस तारीखके बादका कोई भी दिन मेरे लिए ठीक रहेगा।[1]

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८३० ए) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

५७. तार : नारणदास गांधीको

वर्धा
१ अगस्त, १९३९

नारणदास गांधी
राष्ट्रीय शाला
राजकोट

आशा है 'रेंटिया यज्ञ'[2] का उद्घाटन सफल रहा। यदि सूखा जारी रहा तो सत्तर प्रतिशत अकाल-पीड़ितोंकी सहायतार्थ दे दिया जाना चाहिए। इसलिए पैसे एवं सूतके रूपमें विशेष रूपसे व्यापक पैमाने पर योगदान होना चाहिए।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५५९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. वाइसरायके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ३।

२. गांधीजीके जन्म-दिनके उपलक्ष्यमें नारणदास गांधीने इस यज्ञकी शुरुआत की थी। यह 'रेंटिया बारस' भी कहलाता था। इसमें भाद्र बदी १२ से (विक्रम संवत्के अनुसार गांधीजीकी जन्म-तिथि, जो प्रायः सितम्बर मासके दूसरे पखवाड़ेमें पड़ती है) २ अक्तूबरतक अखण्ड कताई-यज्ञ चलता था। देखिए "टिप्पणियाँ", १०-९-१९३९ का उप-शीर्षक "अतिरिक्त खादी"; और खण्ड ६९, पृ० ४५८-५९।

५८. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेगांव
१ अगस्त, १९३९

चि० कृष्णचन्द्र,

मैं शकरीबहन अथवा कंचनबहनको भेजने की कोशीश कर रहा हूं। बालकृष्णको यों ही कभी नहीं रखा जाय। आज भी इतना ही समय है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३२४) से।

५९. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगांव, वर्धा
१ अगस्त, १९३९

चि० अ० स०,

कल तेरा खत नहीं था। तू अब कहां होगी? उसीका पता ही नहीं है इसलिए यह खत ल० भाई[1] [की] मार्फत भेज रहा हू। जिस तरह तू अब चल रही है उसके लिये मैं तैया[र] नहीं था। कोई जिम्मेदारीका काम तेरे सिपुर्द हो ही नहीं सकता है, ऐसा सिध्ध होता है। अच्छा जैसी ईश्वरकी इच्छा होगी ऐसे ही बन सकता है। उसमें से नया सबक मिलेगा। शायद मृदुलाबहनके[2] वापस आने तक ठहरेगी।

यहां सब अच्छे हैं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२८) से।

१. लक्ष्मीदास आसर
२. मृदुला साराभाई

६०. अकालका भय

काठियावाडमें बहुत-से स्थानोंपर अभीतक वर्षा नहीं हुई। श्री छगनलाल जोशी निम्न प्रकार लिखते हैं :[1]

यह खबर भयानक है। हम आशा तो करते हैं कि काठियावाड़ इस सकटसे बच जायेगा। कदाचित् ऐसा न हो तो दूसरी आशा मैं यह करता हूँ कि जिनके पास अनाज और चारा है अथवा उसकी व्यवस्था है, वे लोग सकटसे लाभ उठाकर दामोंमें वृद्धि न कर उन्हें लागत मूल्यपर बेचेंगे। तीसरी आशा मैं यह करता हूँ कि राजा अपने धर्मका पालन करते हुए लोगोंकी जितनी मदद की जा सकती है, उतनी मदद करेंगे। और चौथी उम्मीद यह है कि स्थान-स्थानपर स्वयसेवक मददके लिए निकल पड़ेंगे। २ अगस्तसे राजकोटकी राष्ट्रीय शालाकी ओरसे सत्तर दिनका चरखा-यज्ञ चलेगा। उसके सम्बन्धमें यह सुझाव है कि यज्ञ अधिक वेगसे हो और उससे जो आमदनी हो, उसका सत्तर प्रतिशत अकाल-पीड़ितोकी सहायतार्थ दिया जाये। और इस बीच यदि वर्षा होने लगती है और काठियावाड संकटसे बच जाता है तो सूत आदिका उपयोग पूर्व-निश्चित कार्यक्रमके[2] अनुसार किया जा सकता है। इस समय तो मुख्य बात उत्पादन बढ़ाने की है। और यह वृद्धि पैसा इकट्ठा करने और अधिक सूत कातने से ही सकती है। जो लोग सामान्यतया कताई-यज्ञमें भाग नहीं लेते, उम्मीद है कि वे लोग भी अकालकी स्थितिको देखते हुए इस यज्ञमें शामिल हो जायेंगे। यदि कताई के लिए उचित वातावरण तैयार हो गया तो अकाल-पीड़ित व्यक्तिको चरखेका काम देने में कम कठिनाई होगी और उसके द्वारा उसकी ठीक-ठीक मदद हो सकेगी तथा उससे उसके स्वाभिमानकी भी रक्षा होगी। अकालमें सहायता करने के निमित्त काम बड़े पैमानेपर करना होगा, इसलिए यह आवश्यक है कि उसके लिए योग्य व्यक्तियोंकी एक समिति नियुक्त की जाये।

पाँचवी और अन्तिम उम्मीद यह है कि चरखा-यज्ञ तथा सकटग्रस्त लोगोको चरखेका काम देने से जो खादी तैयार होगी, उसकी आसानीसे खपत हो सकेगी। यदि खादीकी तुरन्त खपत न हुई तो चरखेके द्वारा संकट-निवारण नहीं हो सकेगा।

सेगाँव, २ अगस्त, १९३९

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ६-८-१९३९

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें बताया गया था कि किस तरह लोग और मवेशी भूखों मर रहे हैं। नारणदास गांधीकी तरह उनका भी यह विचार था कि 'रेंटिया जयन्ती' से होनेवाली आयका ७० प्रतिशत सहायता-कार्यपर खर्च किया जाना चाहिए।

२. अर्थात् इसे काठियावाड़में हरिजन-कार्य, खादी-कार्य और राजकोट राष्ट्रीय शालापर समान रूपसे खर्च किया जाये। देखिए खण्ड ६९, पृ० ४५८-५९।

६१. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव,
२ अगस्त, १९३९

दमदम जेलके भूख-हड़ताली बन्दियोंने श्री महादेव देसाईकी मारफत मेरे लिए कुछ प्रश्न भेजे हैं। उनका यदि मैं सार्वजनिक रूपसे उत्तर देता हूँ तो यह उद्देश्यके हितमें बेहतर रहेगा। मुझे खेद है कि मैं उनकी रिहाईके लिए कोई तारीख पक्की नही कर सकता और न कोई और वादा ही कर सकता हूँ। मेरा बस चलता तो मैं अवश्य करता। मुझमें केवल इतनी ही सामर्थ्य है कि अपनी पूरी शक्तिके साथ उनके हितकी पैरवी करूँ। लेकिन वे लोग अपनी भूख-हड़ताल जारी रखकर मुझे कोई मौका ही नही दे रहे हैं। जहाँतक उपवासका उद्देश्य जनताका ध्यान इस समस्याकी ओर आकर्षित करना था, वह सफल हो चुका है। उपवास आगे जारी रखने का मतलब उसके प्रयोजनको विफल बनाना होगा। ऐसे बहुत-से लोग हैं जो बन्दियोंकी रिहाईके लिए सक्रिय रूपसे कार्य करने को तैयार हैं, बशर्ते कि वे लोग भूख-हड़ताल छोड़ दें। मेरा भी यह दृढ़ मत है कि उनकी यह भूख-हड़ताल उचित नही है। वे लोग अपनी-जैसी स्थितिवाले अन्य लोगोंको भी गलत रास्ता दिखा रहे हैं। यदि इन बन्दियोंका लोग भारी सख्यामें अनुकरण करने लगे तो उससे सारी अनुशासन-व्यवस्था भंग हो जायेगी और सुव्यवस्थित शासन चलाना असम्भव हो जायेगा। बन्दियोका पक्ष तो तत्त्वत. न्यायसंगत है, किन्तु अपने इस हठसे वे उसे कमजोर बना रहे है। मेरा उनसे अनुरोध है कि वे जीवित रहें और एक ऐसे व्यक्तिकी सलाहपर ध्यान दें जो उपवास-शास्त्रमें निष्णात होने का दावा करता है और राजनीतिक बन्दी बनकर रहने के शास्त्रको भी जानने का दावा करता है। जिसको वे अपना सर्वोत्तम हिमायती मानते हैं उसकी राहमें वे रोडे न अटकायें। मैं यह कहने का भी साहस करता हूँ कि यदि भाग्य उनके और मेरे विपरीत न होता तो पिछली १३ अप्रैलसे पहले ही उनकी रिहाई हो गई होती। किन्तु मैं विगतकी चर्चा नही करना चाहता। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यदि वे भूख-हड़ताल छोड़ने से इन्कार कर देंगे तो कार्य-समिति उनकी रिहाईके लिए जो भी प्रयत्न करना चाहेगी, उसमें उसे परेशानी होगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-८-१९३९

१. यह "टु बंगाल प्रिजनर्स" (बंगालके बन्दियोंसे) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। वक्तव्य २-८-१९३९ के हिन्दू और ३-८-१९३९ के हिन्दुस्तान टाइम्स में भी छपा था।

६२. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
३ अगस्त, १९३९

प्रिय पगली,

तुम्हें पत्र लिखने के लिए मुझे एक क्षणका भी समय नहीं मिला। मैंने थामीके बारेमें तुम्हें तार[1] भेजा था। जवाहरलाल तो संघर्षके लिए उतारू हैं।

कहने की जरूरत नहीं कि तुम अपने साथ कुकर और जरूरतकी हर वस्तु ले आना। लेकिन कुकर क्यों? पहलेकी तरह तुम्हें खाना तो मेरे साथ ही खाना है। यह देरी तो खेदजनक है। तुम यहाँ केवल कामके लिए ही तो नहीं आ रही हो। लेकिन अब और विलम्ब मत करो।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३६) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२४५ से भी

६३. पत्र : पोत्ती श्रीरामुलु चेट्टीको

सेगाँव, वर्धा
३ अगस्त, १९३९

प्रिय श्रीरामुलु,[2]

तुम्हारा पत्र मिला।

मुझे राजाजी को नहीं लिखना चाहिए। तुम्हें कोदम्बक्कम आश्रम[3] जाकर वहाँ स्वयंसेवकके रूपमें अपनी सेवाएँ अर्पित करनी चाहिए। यदि तुम स्थिरमन कार्यकर्ता हो तो वे तुम्हारी सेवा स्वीकार कर लेंगे।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११२) से।

१. देखिए पृ० २७।

२. नेल्लूरके एक कांग्रेसी कार्यकर्ता, जिन्होंने पृथक् आन्ध्र राज्यकी स्थापनाके लिए १९५३ में आमरण अनशन करके मृत्युका वरण किया।

३. हरिजन आश्रम

६४. पत्र : द० बा० कालेलकरको

३ अगस्त, १९३९

चि० काका,

मगनभाईवाला पत्र तुरन्त डाकमें डाल दिया गया था।

मेहर आश्रमकी रिपोर्ट देने के लिए आज ३ बजे आना।

उक्त भाईके बारेमें वैनलैस [अस्पताल]का अच्छा-खासा बिल आया है। वह मुझसे माँग लेना।

'आत्मकथा' के बारेमें जीवणजीसे पूछा है।[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९७१) से।

६५. पत्र : प्रभावतीको

सेगाँव, वर्धा
३ अगस्त, १९३९

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिल गया है। यदि राजेन्द्र बाबूका आग्रह ही है तो तू बोझ उठा ले और तुझसे जितना बन सके उतना कर। ईश्वर तुझे बल देगा।

सुशीलाका पता है: डॉ० सुशीला नैयर, लेडी हार्डिंग अस्पताल, नई दिल्ली।[2]

काकाजी को इस पतेपर लिख सकती है: सेठ जमनालालजी बजाज, स्टेट प्रिज़नर, जयपुर।[3]

विद्यावतीको[4] यदि फिर स्राव नहीं होता तो चिन्ताका कोई कारण नहीं है। इसके लिए उपचार तो मिट्टीकी पट्टी, कटिस्नान, बिना मसालेकी सादी खुराक, तेल नहीं, हरी सब्जियाँ, ककडी, तुरई आदिका साग, नारंगी, मोसंबी, अनार, अंगूर आदि खूब खाने चाहिए। तली हुई चीज बिल्कुल न ले, चावल कम खाये। खाखरा खा सकती है, लेकिन रातको कुछ नहीं। पानी खूब पीये।

१. देखिए पृ० ५८।
२ और ३. पते मूलमें अंग्रेजीमें हैं।
४. प्रभावतीकी बहन, राजेन्द्रप्रसाद की ज्येष्ठ पुत्रवधू

मैं तो फिलहाल यही हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह पत्र पढ़कर सुमंगलको[1] दे देना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३५) से।

६६. पत्र : तंजीम-उल-मोमिनीनके अध्यक्षको[2]

[४ अगस्त, १९३९ के पूर्व][3]

प्रिय मित्र,

मेरे सम्मुख इस समय इस दृष्टिसे पर्याप्त कागजात पड़े है कि मैं शिया-सुन्नी विवादके बारेमें अस्थायी तौरपर कोई राय बना सकूँ। मेरे पास पन्तजी[4] का लिखा एक लम्बा पत्र और कुछ ऐसे छपे कागजात भी हैं जिनमें स्थितिका निष्पक्ष विवरण प्रस्तुत करनेका दावा किया गया है।

इतनी बात तो स्पष्ट है। 'मधे सहाबा' में निर्वाचित खलीफाओंकी प्रशस्ति है; 'तबर्रा' में प्रथम तीन खलीफाओंके लिए दुर्वचन कहे गये हैं। लोगोंकी सार्वजनिक रूपसे प्रशंसा करने के अधिकारकी बात तो समझमें आ सकती है, लेकिन क्या मृत व्यक्तियोंको कोसने के अधिकार-जैसी भी कोई चीज है? पाक कुरानमें 'तबर्रा' की इजाजत दी गई हो, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि खलीफाका पद हजरत मुहम्मदकी मृत्युके बाद कायम हुआ। इसलिए मैं चाहूँगा कि आप मुझे 'तबर्रा' कहने के धार्मिक कर्त्तव्यके बारेमें बतायें।

मैं यह मानने को भी सहज ही तैयार हूँ कि खलीफाओंकी प्रशस्ति करने का कोई धार्मिक कर्त्तव्य नहीं हो सकता --- खास तौरपर सार्वजनिक स्थानों पर और ऐसे लोगोंकी उपस्थितिमें जिनकी भावनाओंको उससे ठेस पहुँचती हो। इसलिए मेरी इस रायके विपरीत आपके पास कुछ कहने को हो तो बात और है, अन्यथा फिल-हाल मैं आपको यह सलाह दूँगा कि आप शान्तिकी खातिर सत्याग्रह[5] वापस ले ले

१. सुमंगल प्रकाश

२. साधन-सूत्रमें लिखा था कि हालमें ही तंजीम-उल-मोमिनीनका एक शिष्टमण्डल गांधीजीसे मिला था और उन लोगोंने सार्वजनिक रूपसे सुन्नियों द्वारा 'मधे सहाबा' और शियाओं द्वारा 'तबर्रा' गाने के अधिकारको लेकर चल रहे विवादपर उनकी राय माँगी थी। यह आन्दोलन मार्चमें ही शुरू हो गया था। देखिए खण्ड ६९, पृ० ३०९ और ३१८-१९।

३. यह पत्र दिनांक "लखनऊ, ४ अगस्त" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

४. गोविन्दवल्लभ पन्त, संयुक्त प्रान्तके मुख्य मन्त्री और गृह-कार्य तथा वित्त-विभागके मन्त्री

५. जो शियाओंने जूनके शुरूमें आरम्भ किया था

और बिना किसी शर्तके सार्वजनिक रूपसे 'तबर्रा' कहना बन्द कर दें और इस बातको सुन्नियोंके सद्विवेकपर छोड़ दें कि वे ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे जिससे उनके शिया भाइयोंकी भावनाओंको आघात पहुँचता हो।

मैंने यह पत्र प्रकाशनार्थ नहीं लिखा है। चूँकि आपने इस बारेमें मेरी स्पष्ट राय माँगने का सौजन्य दिखाया, इसलिए मैंने अस्थायी तौरपर यह राय व्यक्तकी है। आपको मैंने जो सलाह दी है उसके अनुसार अपना निर्णय घोषित करने में यदि इससे आपको मदद मिलती हो तो आप इस पत्रको प्रकाशित कर सकते हैं। मैं अपनी इस रायकी प्रतिलिपि किसीको नहीं भेज रहा हूँ। यह तो केवल आपके और उन मित्रोंके लिए है जो आपके साथ आये थे और जिनकी ओरसे आप आये थे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ५-८-१९३९

६७. भेंट : गोवर्धनलाल शुक्लको

[४ अगस्त, १९३९ या उसके पूर्व][1]

गांधीजी ने श्री शुक्लसे[2] कहा कि मैं पंजाब और बंगाल दोनों ही राज्योंके राजनीतिक कैदियोंकी रिहाईके प्रश्नको कोई मामूली प्रश्न नहीं मानता। उन्होंने बताया कि बंगालकी जेलोंमें राजनीतिक कैदियों द्वारा की जा रही भूख-हड़ताल के कारण इस समस्याका हल ढूंढ़ने में दिक्कतें पैदा हो रही हैं।

गांधीजी ने घोषणा की कि राजनीतिक कैदियोंकी समस्या कांग्रेस कार्य-समिति के सामने उठाई जानेवाली है।

गांधीजी ने बताया कि बंगालमें राजनीतिक कैदियोंकी समस्याका हल ढूंढ़ लेने पर पंजाबके कैदियोंसे सम्बन्धित समस्या स्वयंमेव और तत्काल सुलझ जायेगी।

खबर है, इसके बाद गांधीजी ने श्री शुक्लसे कहा कि आप मुझे पंजाबके कैदियोंके बारेमें पूरा विवरण तथा उनकी रिहाईके लिए किये गये प्रयत्नोंका ब्योरा दे दें; इनके मिल जाने के बाद जो मेरे बूतेका होगा, मैं करूँगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ५-८-१९३९

१. इस भेंट का विवरण दिनांक "वर्धा, ४ अगस्त" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. कानपुरके

६८. शाबाश बम्बई !

जो विवरण मुझे मिले हैं, उन सबसे मालूम पड़ता है कि पहली अगस्तको, अर्थात् शराबबन्दीकी शुरुआतके दिन बम्बईने ऐसा-कुछ कर दिखाया जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। उस दिनके प्रदर्शनोंको अपनी आँखों देखनेवाले एक व्यक्तिने मुझे बतलाया है कि आजाद मैदानमें एकत्र होनेवाली मानव-मेदनीने उस भारी भीड़को भी मात कर दिया, जो अमर लोकमान्यकी अर्थीको जलूसके रूपमें लेकर चौपाटीके तटपर गई थी। उनके कथनानुसार, सारी बम्बई नगरी वहाँ उमड पड़ी थी। मजदूर लोग, जिनको इस कानूनसे खास तौरपर फायदा पहुँचेगा और साथ ही जिनपर शराबबन्दीका सबसे ज्यादा असर भी पड़ा है, अपनी स्त्रियोंके साथ हजारोंकी तादादमें मौजूद थे। जिस राक्षसके मृत्युपाशसे वे बाह्य सहायताके बिना मुक्त नही हो सकते थे, उससे मुक्ति मिल जाने के कारण वे उल्लसित हो रहे थे। तो क्या वे निहित स्वार्थोंके विरोधके समक्ष अडिग रहकर यह कल्याणकारी कदम उठाने का साहस दिखलानेवाले मन्त्रियोंके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने गये थे?

यह कोई मजदूरोका ही प्रदर्शन नही था। सभी वर्गोंने इसमें भाग लिया। उस विराट सभामें कही भी उत्साह भग करनेवाला कोई स्वर नही था। ये हजारो स्त्री-पुरुष शराबबन्दीकी सफल शुरुआतके लिए ईश्वरको धन्यवाद देने वहाँ एकत्र हुए थे।

महान् पारसी कौमने, शराबबन्दी कानूनकी प्रबल विरोधी होते हुए, भी जो सयम रखा उसके लिए वह बधाईकी पात्र है। स्पष्ट ही उन्होंने बुद्धिमानीसे काम लिया और उनके द्वारा कोई विरोधी प्रदर्शन किया गया मालूम नहीं पड़ता। मेरी यह आशा ठीक ही सिद्ध हुई मालूम पडती है कि पारसी कौमकी परोपकारी भावनाके आगे उसका विरोध-भाव तिरोहित हो जायेगा। शराबबन्दीकी पूरी सफलताके लिए पारसियोंके दिली सहयोगकी आशा करना क्या कोई बहुत बडी बात होगी? उन्हें यह याद रखना चाहिए कि बम्बईके इस प्रयत्नकी कीर्ति न केवल सारे प्रान्तमें, बल्कि समस्त भारतमें फैलेगी। मैं तो यह कहने का भी साहस करता हूँ कि अभी तो यद्यपि उन्हें ऐसा लगता है कि उनके साथ अन्याय हुआ है, लेकिन पारसियोकी भावी सन्तति डॉ० गिल्डरको अपना सच्चा प्रतिनिधि और हितैषी मानकर उन्हें दुआएँ देगी। जैसे भारतको इस बातका गर्व है, उसी तरह पारसियोंको भी सचमुच इस बातका गर्व होना चाहिए कि उन्होने डॉ० गिल्डर-जैसा आदमी पैदा किया जो बहिष्कार और उससे भी बुरी धमकियों से भरे भयंकर विरोधके बावजूद चट्टानकी तरह दृढ रहा।

सच तो यह है कि जिस दृढताके साथ मन्त्रिमण्डलने इस महान् नैतिक सुधारको लागू किया, उसके लिए पूरा मन्त्रिमण्डल हार्दिक बधाईका पात्र है। पहली

अगस्तके प्रदर्शनसे जाहिर है कि लगभग समस्त बम्बई उसके साथ था और है। इस महान् नैतिक सुधारका लोगोंने जितने उत्साहके साथ समर्थन किया, उतने उत्साहके साथ कांग्रेसके और किसी रचनात्मक कार्यका समर्थन नही किया गया है।

यह खेदकी बात है कि शराबबन्दीके नही, बल्कि सम्पत्ति-करके खिलाफ इसी दिन मुसलमानोंने एक जलूस निकाला, जिसका परिणाम पुलिसके साथ संघर्ष हुआ। लेकिन उससे तो उलटे शराबबन्दीके सिलसिलेमें होनेवाली सार्वजनिक सभाका महत्त्व बढा ही, क्योकि उस महान् और अदम्य प्रदर्शनपर उस जलूसका कोई असर नहीं हुआ। आजाद मैदानमें स्पष्ट हो गया कि बम्बई नगरी इस प्रश्नपर एकमत है।

हमें आशा करनी चाहिए कि इस शानदार शुरुआतमें इतना बल और तेज है कि इसी शानके साथ यह काम पूरा भी होगा। शराबकी दुकानें बन्द करने से जो लाभ प्राप्त हुआ है, उसको स्थायी पायेपर खड़ा करने के लिए बहुत-कुछ रचनात्मक प्रयत्नकी जरूरत होगी। दुकानें बन्द होने से शराब पीनेवाले को जो प्रलोभन मिलता था वह तो दूर हो गया, पर शराबकी तलब नही मिटी है। जरूरत इस बातकी है कि उसके मनको ठीक दिशामें ले जाया जाये। अत. उसे किसी ऐसे स्थानमें स्वास्थ्यप्रद जलपान मिलना चाहिए जहाँ वह अपने थके हुए मन और शरीरको विश्राम पहुँचाकर तरोताजा कर सके। मजदूरोंमें सेवाकार्य करनेवाले कार्यकर्त्ताओंको मजदूरोंके जीवनका अध्ययन करके शराबकी तलबपर विजय पाने में उनकी मदद करना अपना फर्ज समझना चाहिए। इस लाभको स्थायी आधारपर खड़ा करने का काम सरकार अकेले नही कर सकती। अमुक परिणाममें लोगोंकी सद्भावनासे सरकार कानून बनाकर शराबकी दुकानें तो बन्द कर सकती थी, लेकिन शराबकी तलबसे पीछा छुड़ाने में शराबियोंकी मदद करने के लिए सरकारी प्रयत्नके साथ-साथ उसे स्वेच्छापूर्वक काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंके दलके सक्रिय सहयोगकी भी आवश्यकता होगी।

सेगाँव, ४ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-८-१९३९

६९. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
४ अगस्त, १९३९

चि० अ० स०,

तुझे तार तो नही भेजता। क्या भेजु? आना है तो आयेंगी ही। जो काम नही हो सकेगा सो वो कैसे करेगी। तेरी प्रतिज्ञा यह थी कि जब मृदुला व ल० [लक्ष्मीदास] भाई तुझे छोडे तब वापिस आ सकती है। अब श० [शकर] भाई आ गये है उनसे मिलकर जो ठीक लगे सो कर। अकबरके बारेमें मैंने ल० भाईको लिखा तो है। यहां रखने की मेरी हिम्मत नही है। कल यहां एक मुस्लीम दाक्तरनी आ गई है। सी० पी० की है। उसके बाप भी दाक्तर है। एक महीना-भर रहेगी। अच्छी लडकी लगती है। सुशीलाका काम कर रही है।

नीमु तो है ही।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२९) से

७०. बातचीत : वी० वी० साठेके साथ[1]

सेगाँव
५ अगस्त, १९३९

गाधीजी : अगर आप सत्याग्रही है, तो मै भी तो एक सत्याग्रही हूँ और चूँकि मुझे मेरे अनेक मित्रोने बताया है, आप एक समझदार और संयमी आदमी है, इसलिए मैं आपको आपकी गलती समझाऊँगा।

१. यह बातचीत महादेव देसाई द्वारा लिखित "ए सत्याग्रही वर्सेज ए सत्याग्रही" (सत्याग्रही बनाम सत्याग्रही) शीर्षक लेखसे ली गई है। इसमें उन्होंने लिखा है: "श्री वी० वी० साठे एक पक्के अनशनकारी और कांग्रेसजन हैं। अपना भोजन खुद ही पकाने के अधिकारके लिए जेलमें उन्होंने अनशन किया था... और जेलमें बिना कपडोंके ही रहे... क्योंकि उन्हें खादी पहनने की इजाजत नहीं थी। वे पूरे प्रामाणिक आदमी हैं, पर अक्सर मालूम ऐसा होता है कि उनका तर्क उनकी व्यावहारिक बुद्धि पर हावी हो जाया करता है।... वे १४ दिन का अनशन करने का पक्का निश्चय करके ५ तारीखकी सुबह सेगाँव आये।... श्री साठेको ऐसा लगता है कि बम्बईके मन्त्रिमण्डलने कुछ बातोंमें भयंकर भूल की है, जैसे — जलसोंके बारेमें आज्ञाएँ निकालना, अखबारोंसे जमानतें माँगना और गोली चलवाना। गांधीजी की उपस्थिति में अनशन करने का निश्चय करके वे सेगाँव आये थे, क्योंकि उन्होंने कहा था कि गांधीजी 'कांग्रेसके विधाता' हैं, और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके इस्तीफे उनकी जेबमें पडे हुए हैं।..."

आपको पहले तमाम संवैधानिक उपायोको आजमाकर देखना चाहिए था। आपको यह याद रखना चाहिए कि बम्बईका कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और बम्बई, इन चार कांग्रेस कमेटियोंके अधीन है। आपको अपनी शिकायत उनके सामने पेश करनी चाहिए थी। वहाँ सन्तोप न मिलता, तो आपको कार्य-समितिके पास जाना चाहिए था। वहाँ भी सन्तोष न होता, तो महासमितिके पास और फिर कांग्रेसके खुले अधिवेशनमें अपनी शिकायतें लेकर जाना चाहिए था। और अगर आप सत्याग्रहके विशेषज्ञके रूपमें मेरे प्रमाणको मानते है, तब आपको मेरे पास आना चाहिए था, मगर अनशनका निश्चय करके नही।

साठे: मैं आपको आखिरी प्रमाण नहीं मानता, पर मैं आपकी सलाह जरूर लूंगा। लेकिन मैं आपसे एक सवाल पूछ लूं — यह कि ये सारी कांग्रेस कमेटियाँ मेरे पक्षमें राय दें या न दें, पर अगर मन्त्री लोग यह कहते हों कि उन्होंने कांग्रेसके सिद्धान्तोका भंग किया है, तब?

क्या वे ऐसा कहते है?

जी हाँ, पर वे यह भी कहते हैं कि वे इस्तीफा नहीं देंगे, जबतक कि उनसे इस्तीफा देने के लिए कहा नहीं जायेगा। लेकिन उन्होंने चुनावके घोषणा-पत्रमें जो वादे किये थे, उनको उन्होंने जरूर तोड़ा है।

घोपणा-पत्रोंके बारेमें ऐसी कोई सख्तीकी बात नही है। आप बहुत-सी बातें कह सकते हैं, पर उन सबको आप पूरा नही कर सकते।

मेरे अपने सदाशिव पेठके निर्वाचन-क्षेत्रको ही लें। वहाँ यह प्रस्ताव पास किया गया कि मन्त्रिमण्डलने अपने वादोंको पूरा नहीं किया।

अच्छा, तब उस कमेटीको महासमितिके पास जाना चाहिए। पर यह अनशन किसलिए? पहले आपको सभी स्वाभाविक कदम उठाकर देख लेना चाहिए।

ऐसा करने में कई साल लग जाते हैं। यह व्यवस्था ही ऐसी जटिल है।

कई साल तो नही, पर शायद एक साल लग जाये। इसकी आपको परवाह नही करनी चाहिए।

कांग्रेसके खुले अधिवेशनमें जाने का मेरा विचार तो है, क्योंकि कांग्रेस ही एक ऐसी सत्ता है, जो आपसे ऊपर है।

मेरी तो कुछ भी सत्ता नही। अमुक हदतक मेरा नैतिक प्रभाव जरूर है।

पर उसे आप अमलमें नहीं लाते।

यह आपको कैसे मालूम हुआ? आपको सारी हकीकतें मेरे सामने रखनी चाहिए, और मुझे कायल करना चाहिए कि जो मेरे बूतेका था, वह मैंने नही किया है।[1]

१. महादेव देसाई लिखते हैं: "अब श्री साठे अपनी तमाम शिकायतोंको एक-एक कर सुनाने लगे। . . . जलूसोंके सम्बन्धमें जारी की गई आज्ञाओंकी तमाम तफसील, और लोग इन आज्ञाओंकी अवहेलना कर जलूस निकालने के लिए कौन-कौन-सी तरकीबें काममें लाते हैं आदि।"

पर आप मुझसे यह आशा तो नही करते कि मैं इन मामलोपर अपना निर्णय दूँ?

अवश्य करता हूँ।

पर यह मैं कैसे दे सकता हूँ? सिर्फ इतने पर से कि आपने मुझे उन हुक्मोका मजमून पढकर सुना दिया और आपके पास जो हकीकतें थी, सब मेरे सामने रख दी, मैं किसी नतीजेपर कैसे पहुँच सकता हूँ? अब मन्त्री लोग इसपर क्या कहते हैं, वह भी तो मुझे सुनना चाहिए।

पर यह तो आप आसानीसे कर सकते हैं। आप आला कमान जो हैं।

आला कमान मैं कैसे हूँ?

क्योंकि आपने कहा है कि मन्त्रियोंके इस्तीफे मेरी जेबमें हैं।

मैंने ऐसा कब कहा? दिखलाइए मेरा कोई वक्तव्य।[1]

नही, नही, मैं आपसे सच कह रहा हूँ। अगर मैंने कोई ऐसा बेहूदगीसे भरा वक्तव्य दिया हो, तो उसे मेरी डींग ही समझना चाहिए। विधानमें आपको कही भी मेरे नामका उल्लेख नही मिलेगा। निश्चय ही मैं अपनी नैतिक सत्ताको काममें ला सकता हूँ, पर यह सिर्फ तभी, जब मैं देखता हूँ कि कार्य-समिति या मन्त्रिमण्डलको अमुक काम नैतिकतावश करना चाहिए।

तब इधर मेरा अनशन चलेगा और उधर आप इस सारे मामलेका अध्ययन कर डालें।

अनशन आप कैसे कर सकते हैं, जब कि आप अब भी मुझे कायल नही कर पाये हैं कि आपका अनशन करना उचित है?

मैं तो सिर्फ आपका ध्यान आकर्षित करनेके लिए अनशन कर रहा हूँ।

यह तो आप अनशन न करके ही कर सकते हैं। जिस क्षण आपने अनशन शुरू किया, मेरा ध्यान बँट जायेगा, निष्पक्ष निर्णय देनेकी मेरी क्षमता समाप्त हो जायेगी। अगर मुझे यह मालूम हो गया कि कोई आदमी बिना कारण ही अनशन कर रहा है, तो मुझे अपना खाना अच्छा नही लग सकता। और यह तो आपको मालूम ही होगा कि यह सारी बस्ती अनशनकारियोंकी है। भणसाली तो यहाँ सबसे बडे अनशनकर्त्ता हैं ही, फिर विनोबाने कई अनशन किये हैं, और काकासाहबने भी। बेहतर होगा कि आप उनसे जाकर मिले, बात करें और देखें कि वे आपका अनशन पसन्द करते हैं या नही।[2]

मैं आपकी रायसे सहमत नही हूँ। अगर हमारी राष्ट्रीय सरकार हो, और ऐसे अखबार हों, जो मुकदमोपर आधार रखकर ही चलते हों, तो हम क्या कर

१. इसपर साठेने कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ हँस पड़े।

२. महादेव देसाई लिखते हैं: "लेकिन श्री साठे अब अखबारोंसे जमानत माँगनेके अपने दूसरे आरोपपर आ गये। ब्रिटिश सरकार भले ही ऐसा कर सकती थी, पर कांग्रेस सरकारके लिए ऐसा करना बहुत बड़ा अन्याय है। सम्पादकोंपर मुकदमे क्यों न चलाये जायें? बिना मुकदमा चलाये जमानत माँगनी ही नहीं चाहिए।"

सकते हैं? पर इसका यही अर्थ हुआ कि हमारे बीच मौलिक मतभेद हैं। हमें हर चीजको जाँचना होगा। अगर आप चाहते हैं कि मैं अपनी नैतिक सत्ताको काममें लाऊँ, तो मुझे इस बातका कुछ विश्वास होना ही चाहिए कि जिन तीन मामलोंका आपने जिक्र किया है, उनमें मन्त्रियोंने गहरी भूल की है। और अगर मुझे विश्वास हो गया, तो मैं जरूर मन्त्रियों और कार्य-समितिसे इसके बारेमें कहूँगा। पर यह सब करनेके लिए मुझे आपके लगाये आरोपोंकी फुरसतसे जाँच जरूर करनी चाहिए। और आप यकीन रखें कि हालाँकि मेरे पास वक्त बहुत कम है, फिर भी आप जो कागजात मेरे पास भेजेंगे, उनका मैं सिर्फ आपकी खातिर जरूर अध्ययन करूँगा।

पर इस बीच मैं अनशन कर सकता हूँ।

नहीं, आप सारे मामलेको, चाहें तो कार्य-समितिके सामने रख सकते हैं।

मुझे इसका क्या अधिकार है?

अधिकार तो हर-किसीको है। कार्य-समितिका कर्तव्य है कि वह हरएक कांग्रेसी तथा गैर-कांग्रेसीकी शिकायत सुने। पर अब चूँकि आपने मुझसे मामलेका अध्ययन करनेके लिए कहा है, इसलिए शायद आप इसे कार्य-समितिके सामने न रखें। मेरे निर्णय देनेके बाद आप मुझसे बहस कर सकते हैं, पैरवी कर सकते हैं, और तब अगर आप देखें कि मैं हठधर्मिता कर रहा हूँ, तो आप मेरे विरुद्ध अनशन कर सकते हैं।

आप 'गीता' का अध्ययन करते हैं?

करता हूँ।

अच्छा, तो मैं आपको बताता हूँ कि आपका अनशन तीसरे प्रकारके तपमें आयेगा, जिसका वर्णन 'गीता' के १७ वें अध्यायमें आया है[1]—जिसे विमूढ़ता और दुराग्रहजनित 'तामस तप' कहा गया है।

अगर मुझे सन्तोष न हुआ, तो क्या मैं एक महीने बाद अनशन कर सकता हूँ?

पर अगर मुझे और ज्यादा समयकी जरूरत हुई तो आपको मुझे देना होगा।

जरूर।[2]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-८-१९३९

१. भगवद्गीता, १९ वाँ श्लोक।

२. महादेव देसाई आगे लिखते हैं: "श्री साठे बहुत ही सादे ढंगसे रहनेवाले आदमी हैं; उनकी जरूरतें भी बहुत थोड़ी हैं। वे कुछ समयतक एक राष्ट्रीय स्कूलके हेडमास्टर रह चुके हैं। गांधीजीने उन्हें वहाँ [सेगाँवमें] रहनेके लिए राजी करनेकी कोशिश करते हुए कहा कि वे वहाँकी विभिन्न प्रवृत्तियोंका अध्ययन करें, और जो प्रवृत्ति उन्हें अच्छी लगे, उसमें अपना समय दें। उनकी थोड़ी-सी आवश्यकताएँ वहाँ आसानीसे पूरी हो सकती हैं। पर वे अनशनसे चिपके रहनेवाले थोड़े ही थे! उन्होंने पूना वापस जाना ही तय किया।"

७१. पत्र : राखालको

सेगाँव, वर्धा
५ अगस्त, १९३९

भाइ राखाल,

तुमारे आने से और कुछ दिन सेगावमें रहने से मुझे आनद हूआ। मै चाहता हू कि जो विश्वास सत्य-अहिंसा इ० में तुमारेमें पैदा हूआ है वह सब क्रातिकारी भाई-बहिनोमें पैदा हो जाय। जिनके संपर्कमें मैं आया था उन्होने मुझे ऐसा विश्वास तो दिलाया था। मै जानता हू कि सत्य-अहिंसा इ० के सिवा हम कभी आझादी हासिल नही कर सकेंगे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४६६७)से।

७२. क्या मैं सर्वसमर्थ हूँ?

इस सप्ताह दो कांग्रेसजन मेरे पास आये। उनमें से एकने कहा :

मध्य प्रान्तमें हम लोगोंका खयाल है कि आप जो भी चाहें वह कर सकते हैं। आप चाहें तो मन्त्रिमण्डलको हटा सकते हैं, और उससे आप चाहे जो करवा सकते हैं।

दूसरे सज्जनने कहा :

असलमें कार्य-समिति तो आप हैं। इसलिए हरएक कांग्रेसजन मौजूदा भ्रष्टाचारके लिए आपको ही दोष देता है। आपने ही हमें यह बताया कि नैतिक सत्ता ही सबसे बड़ी सत्ता है। आपने हमें यह सिखाया कि मौजूदा शासन-प्रणाली शैतानियतसे भरी हुई है। यह भी आपने सिखाया था कि जब कांग्रेसका शासन होगा तब कोई शैतानियत नहीं रहेगी, बल्कि राष्ट्रके जीवनके हर क्षेत्रमें पवित्रता होगी। लेकिन आज तो हम इससे उलटा पाते हैं। कांग्रेसकी हुकूमत आज कई प्रान्तोंमें है, और फिर भी सर्वत्र भ्रष्टाचारका बोलबाला है। कांग्रेसजन आपसमें लड़-झगड़ रहे हैं। स्पष्टतः हालत बदतर हो गई है। शैतानियत गई नहीं। आप संख्या-बलपर भरोसा नहीं रखते। आपने अक्सर कहा है कि मुट्ठी-भर सच्चे और अच्छे कांग्रेसजन भी

अपने नैतिक गुणोंके बलपर सारे राष्ट्रका प्रतिनिधित्व कर सकते हैं और सच्चा लोकतन्त्र विकसित किया जा सकता है। लेकिन गुण-बलके बजाय आज तो सर्वत्र संख्या-बलका ही जयजयकार सुनाई देता है। हालमें कांग्रेस-विधानमें जो संशोधन हुए हैं, वे व्यर्थ हैं। न तो उनसे देशमें बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार दूर होगा, और न कांग्रेसके इस बेसँभाल रूपमें ही कोई कमी आयेगी। अगर आपका यह कहना है कि कार्य-समितिपर आपका वश नहीं चल सकता, तो हमें यह मालूम हो जाना चाहिए। हमारा तो विश्वास यह है कि आपमें सब-कुछ करने की सामर्थ्य है, और इसलिए हमें आश्चर्य होता है कि आप क्यो वस्तु-स्थितिको बदसे-बदतर होने दे रहे हैं। अपनी खादी-सम्बन्धी धाराको ही लीजिए। कांग्रेसमें इस धाराके कारण व्यापक पाखण्ड फैला हुआ है। खादीमें बहुत कम लोगोंका विश्वास है, और वे सिर्फ दिखावे के लिए उसका इस्तेमाल करते हैं। इस तरह वास्तवमें खादी तो झूठ और पाखण्ड का प्रतीक बन गई है। देशको आप एक नैतिक ऊँचाईपर ले गये थे, और आज आप उसे नीचे गिरा रहे हैं। अगर ऐसी ही हालत रही जैसी आज है, तो शीघ्र ही कांग्रेस देशमें उपहासका विषय बन जायेगी। अगर आप कांग्रेसको सुधार नहीं सकते, तो आप उससे अपना नाता बिलकुल तोड़ क्यो नहीं लेते?

यह दूसरे आलोचक एक विख्यात काग्रेसी और सगठनकर्त्ता हैं। उन्होने मुझसे यह गहरी मनोव्यथाके साथ कहा। मैंने वादा किया कि उन्हें मैंने जो जवाब दिया है, उसका साराग मैं इन स्तम्भोंमें दे दूँगा।

चाहे मध्य प्रान्त मन्त्रिमण्डलके संदर्भमें हो या कार्य-समितिके सदर्भमें, मैं सर्वसमर्थ नही हूँ। मन्त्री लोग कहाँ क्या करते हैं, इसका मुझे बहुत कम पता रहता है। मैं उनके काममें कभी दखल नही देता। इसे मैंने कभी अपना काम भी नही माना। ग्रामोद्योग, बुनियादी तालीम या ऐसे ही दूसरे मामलोंके बारेमें मैं उनसे कभी-कभी पत्र-व्यवहार करता हूँ, मगर यह पत्र-व्यवहार ठीक उसी तरह करता हूँ जिस तरह कोई भी नागरिक करेगा। उनके काममें दखल देने से मैं बराबर इन्कार करता रहा हूँ। मैं चाहूँ भी तो मेरे पास इसके लिए समय नही होगा। अगर ऐसा करने लगूँ, तो इसका अर्थ कार्य-समितिकी ससदीय उप-समितिके काम पर अनुचित अधिकार जमाना होगा।

जहाँतक कार्य-समितिका सम्बन्ध है, जब मेरी जरूरत समझी जाती है, तब मैं उसकी बैठकोमें शरीक जरूर होता हूँ। जिन मामलोमें मुझसे सलाह ली जाती है, उन मामलोमें मैं जरूर उसके निर्णयोंको प्रभावित भी करता हूँ। पर दूसरी बातोमें कभी दखल नही देता। समितिकी बहुत-सी बैठकोमें मैं बिलकुल शरीक नही होता। उसके बहुत-से प्रस्तावोका मुझे पता भी तभी लगता है, जब वे पास हो जाते हैं और सो भी अखबारोके जरिये। जब मैंने पहली बार काग्रेससे अपना

औपचारिक सम्बन्ध-विच्छेद किया, तब यही व्यवस्था की गई थी।[1] कार्य-समितिपर मेरा जो प्रभाव है, वह शुद्ध नैतिक प्रभाव है। मेरी राय उसी हदतक मानी जाती है, जहाँतक मैं उसे सदस्योंके गले उतार सकता हूँ। मैं यह राज़ बता दूँ कि अक्सर मेरी सलाह कार्य-समितिके सदस्योको प्रभावित नही करती। मसलन, अगर मेरी चलती तो काग्रेसमें छँटनी करके मैं उसका आकार यथासम्भव बहुत छोटा करवा देता। उसमें थोडे-से चुने हुए सेवक होते, जो राष्ट्रकी मर्जीपर हटाये जा सकते, मगर राष्ट्रके सामने जो कार्यक्रम वे रखते, उसमें उन्हें लाखोका स्वैच्छिक सहयोग मिलता। लेकिन कांग्रेसजनोंके लिए यह तजवीज बहुत ज्यादा सख्त और अलोकतान्त्रिक है।

मैं यह कबूल करता हूँ कि खादीकी धारासे बहुत असत्य और पाखण्ड फैला है। अगर मेरा वश चलता, तो यह धारा कभी की रद्द हो गई होती। जब मैं काग्रेससे अलग हुआ, उस समय भी मैंने इस धाराको हटवा देने की कोशिश की थी।[2] मैंने बादमें भी कई बार प्रयत्न किया है, पर सफलता नही मिली। दलील यह दी जाती रही है कि इस धाराके हटाने की बात आमतौरसे काग्रेसजन सुनेंगे नही।

इसी प्रकार, काग्रेस-संविधानमें से 'शान्तिपूर्ण और उचित' इन शब्दोको भी हटवाने की मैंने कोशिश की है,[3] लेकिन इसमें भी सफलता नही मिली। मैं ऐसे और भी बहुत-से प्रसग बतला सकता हूँ जिनमें मैं कार्य-समितिको अपनी रायसे सहमत करवाने में असफल रहा हूँ। इन असफलताओंका जिक्र मैं कार्य-समितिके खिलाफ शिकायतके रूपमें नही कर रहा हूँ। सदस्योंने जो मेरी सलाहपर ध्यान नही दिया, उसके लिए उनके पास वजनदार कारण थे। अपने पुराने साथियोके साथ जिस नैतिक बन्धनसे मैं बँधा हुआ हूँ, उसे तोड़ने की जरूरत मुझे महसूस नही हुई है। मैं कोई ऐसा दावा नही करता कि मैं उनसे किसी बातमें श्रेष्ठ हूँ। उनके साथ काम करना मैंने अपना सौभाग्य समझा है। राष्ट्रके वे उतने ही अच्छे और वफादार सेवक हैं जितना अच्छा एव वफादार सेवक होने का दावा मैं करता हूँ। चूँकि मुझे यह आशा है कि किसी दिन या तो वे मेरे दृष्टिकोणको मान लेंगे या मैं उनकी विचार-सरणीको मान लूँगा, इसलिए उनसे चिपटा हुआ हूँ।

मैं इस आरोपको भी नही मानता कि पुरानी हुकूमत मौजूदा हुकूमतसे ज्यादा शुद्ध थी। यह तो मैं स्वीकार करता हूँ कि काग्रेस सगठनमें बहुत ज्यादा भ्रष्टाचार आ गया है, उसमें बहुत-से स्वार्थ-साधक आ घुसे है, पर मेरा यह भी विश्वास है कि काग्रेसका शासन पहलेके शासनके मुकाबले अधिक शुद्ध है। मेरा यह भी विश्वास है कि काग्रेसी हुकूमत द्वारा आम जनताकी हालत सुधारने के लिए कई अच्छे-अच्छे काम किये गये है। मद्य-निषेधको मैं उनमें सबसे बड़ा काम समझता हूँ। पर इसमें कोई शक नही कि अब भी करने के लिए बहुत काम पडा हुआ है। मुझे पूरी आशा है कि किसी दिन काग्रेसके अन्दरकी गन्दगी भी साफ हो जायेगी, और

१. १९३४ में, देखिए खण्ड ५९, पृ० २८०-८१।
२ और ३. देखिए खण्ड ५९, पृ० १०-११।

हमारे दूसरे आलोचकोंकी आशंकाएँ दूर हो जायेंगी। इससे इन्कार नही किया जा सकता कि अपनी आशंकाओंके लिए उनके पास ठीक कारण है। एक अदम्य आशावादी होनेके कारण वर्त्तमान वस्तुस्थितिसे मैं उतना निराश नही हूँ जितने वे हैं। उनकी बताई बातें इतनी गम्भीर हैं कि उनसे प्रत्येक कांग्रेसजनमें सहज ही कर्त्तव्य-बुद्धि जागनी चाहिए। कांग्रेस यदि केवल अपने नैतिक गुणके सुदृढ़ आधारपर खड़ी नही रहेगी, तो वह जरूर नष्ट हो जायेगी।

सेगाँव, ६ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-८-१९३९

७३. टिप्पणियाँ

सेठ जमनालालजी

सेठ जमनालालजी एक असाधारण कैदी हैं। उनका विश्वास है कि कैदी होनेके नाते उन्हे अपने शरीरकी उससे अधिक सार-सँभाल नही करनी है जितनी उनके लिए तैनात किये गये डॉक्टर, करते हैं। इसलिए उनके स्वास्थ्यकी सही हालतका पता मुझे अब जाकर चला है। श्री शंकरलाल बैंकर जमनालालजी से मिलने के लिए जयपुर गये थे और वहाँ उन्होंने उनके स्वास्थ्यकी जो हालत देखी, उससे वे चिन्तित हो उठे और उन्होंने मुझे बताया कि दशा कितनी बुरी है।

इस विषयमें मुझे जो पत्र-व्यवहार प्राप्त हुआ है, उसे मैं फिलहाल प्रकाशित नही कर रहा हूँ। जयपुरके सिविल-सर्जनके मतानुसार उनकी हालत ऐसी है कि उनका विशेष रूपसे उपचार किया जाना चाहिए। अगर यह बात है तो रियासतका यह कर्त्तव्य है कि वह जमनालालजी को बिना शर्त रिहा कर दे और यह बात भी उन्ही पर छोड़ दे कि वे अपना विशेष उपचार रियासतमें ही करवायेंगे अथवा उससे बाहर जाकर। जमनालालजी से यह कहना बेकार है कि यदि वे रिहा कर दिये जाते हैं तो उन्हे जयपुर छोड देने का वचन देना चाहिए। जिस शर्तके भंगकी खातिर उन्होंने जेलका आह्वान किया उसीको स्वीकार करके रिहाई पाने से तो वे जेलमें ही मर जाना ज्यादा पसन्द करेंगे। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, राज्यमें जमनालालजी द्वारा सविनय अवज्ञाको प्रोत्साहन दिये जानेकी कोई आशंका नही है, क्योंकि वह तो अनिश्चित कालके लिए स्थगित कर दी गई है।[1] अधिकारी लोग जानते हैं कि जमनालालजी स्वभावत: अहिंसावादी हैं और यह भी जानते हैं कि वे वचनके पक्के हैं। उन्हें इस तरह जेलमें रखना मेरे लिए एक पहेली है और उनके स्वास्थ्यकी वर्त्तमान दशाको देखते हुए यह अपराध है।

जनताको सामान्यतया यह मालूम नही है कि जमनालालजी जहाँ कैद हैं, वह स्थान वैसे तो अच्छा है और वहाँ आसानीसे पहुँचा भी जा सकता है, किन्तु वह

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४३६।

हिंस्र पशुओका विचरण-स्थल है। जयपुर राज्यके शिकार-नियमोंके अधीन, जो मेरी दृष्टिमें सरासर बर्बरतापूर्ण हैं, इन जानवरोंको मारनेवाले भारी जुर्मानेके भागी है और इन्ही नियमोके अधीन रियासत इनकी सुरक्षा करती है। कहते है, वहाँ शेर तथा अन्य हिंस्र पशु बेखटके मनुष्यों और ढोर-ढगरोको मारकर खा जाते हैं। हालाँकि शिकार-सम्बन्धी ये नियम मुझे बहुत अमानुषिक जान पड़ते है, तथापि यहाँ मेरा उद्देश्य उनपर विचार करना नहीं है। मेरा हेतु तो व्याघ्रग्रस्त स्थानमें जमनालालजी को कैद रखने के विरुद्ध आवाज उठाना है। खबर मिली है कि उनके रक्षक भी अपने इस कामसे कोई खास खुश नही हैं। जमनालालजी के भाग जाने का कोई भय नही है। यदि उन्हें जेलमें ही रखना है तो उन्हें ऐसे स्थानमें क्यों नही रखा जाता जहाँ डाक्टरी तथा अन्य प्रकारकी सहायता सहज ही मिल सकती हो?

एक और मुद्देपर ध्यान देने की जरूरत है। बार-बार अनुरोध करने के बावजूद उन्हें अभीतक एक साथी रखने की अनुमति नही मिली है। उन्हें कोई नर्स नही दी गई है। ऐसे भी प्रसग जानकारीमें आये हैं जब उन्हें रातको परिचारककी बहुत आवश्यकता थी। उनके इस सम्बन्धमें शिकायत न करने का मतलब यह नही है कि अधिकारी परिचर्याके लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करने में लापरवाही करें। उनके निजी सचिवने कई बार अधिकारियोंका ध्यान इस ओर खींचा है।[1]

काठियावाड़का अनुकरण

राजकोट राष्ट्रीय शालाके श्री नारणदास गाधी द्वारा आयोजित सत्तर दिनके कताईके कार्यक्रमके[2] बारेमें पढकर श्री सीताराम शास्त्रीने उनका अनुकरण करने का निश्चय किया है, और आगामी २ अक्तूबरतक अपने सहकर्मियो द्वारा पच्चीस लाख गज सूत कतवाने का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया है। मेरी कामना है कि उन्हें इसमें पूरी सफलता मिले। इसकी सफलता इस बातपर निर्भर है कि पहलेसे कातनेवालो के नाम, और जितना सूत कातने का वे निश्चय करें, वह दर्ज कर लिया जाये, और प्रति सप्ताह उनके कार्यका हिसाब भी रखा जाये। कातनेवाले स्वेच्छापूर्वक कातेंगे, अत. स्वभावत उनसे यह आशा की जायेगी कि वे यथासम्भव मजबूत, समान और बारीक सूत कातेंगे और कमसे-कम रुई बरबाद करेंगे। ऐसे तमाम प्रयत्नोके पीछे उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे अपने-अपने क्षेत्रोंमें अच्छे विशेषज्ञ साबित होंगे और अपने पड़ोसियोंके सामने एक सुन्दर उदाहरण रखेंगे।

एक भूल-सुधार

काठियावाड़के कताई-कार्यक्रमपर मैंने जो टिप्पणी[3] लिखी है, उसमें हुई एक भूलकी ओर श्री सीताराम शास्त्रीने मेरा ध्यान आकर्षित किया है। उसमें मैंने लिखा है कि ७० दिनोंमें ७० लाख गज सूत कातने के लिए प्रतिदिन १००० गज

१. जमनालालजी ९ अगस्तको रिहा कर दिये गये थे।
२ और ३. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४५८-५९।

कातनेवाले ७०० कतैयोकी और १०० गज कातनेवाले ७००० कतैयोकी जरूरत होगी। यहाँ '७०००' के स्थानपर १०० और '७००' के स्थानपर १००० होना चाहिए। इस भूलको मैं खुशीसे सुधार देता हूँ, पर मैं यही कहूँगा कि चाहे ७०० या ७००० लोग कताई-यज्ञमें भाग लें, इससे कोई हानि नहीं होगी। जितने अधिक लोग कातेंगे उतना ही अच्छा होगा।

सेगाँव, ६ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-८-१९३९

७४. पत्र : वालजी गो० देसाईको

६ अगस्त, १९३९

चि० वालजी,

तुम्हारा पत्र कल मिल गया था, लेकिन इतना समय नहीं था कि उसका उसी समय उत्तर दिया जा सकता। चित्रेको लिख तो रहा हूँ लेकिन क्या वह तुम्हारा काम कर देगा? उसी पतेपर रामचन्द्रनको[1] भी लिख रहा हूँ। चित्रेके रवाना होने से पहले यह पत्र तुम्हें मिलेगा। इसलिए मैं जो लिख रहा हूँ यदि वह तुम्हें ठीक लगे तो चित्रेको रुकने का तार भेज देना। यह तो मेरी सलाह है। लेकिन चित्रेको तुम बहुत अच्छी तरह जानते हो। इसके अतिरिक्त वह तुम्हारा भक्त है इसलिए अच्छी तरहसे काम आयेगा। तुम्हारी तबीयत कैसे खराब हो गई? खाने-पीनेमें तो कोई गफलत नहीं हुई? मैं तो यह उम्मीद लगाये बैठा हूँ कि रोगको नेस्तनाबूद करके तुम वापस लौटोगे।

बापूके आशीर्वाद

प्रोफेसर वा० देसाई
सैनिटोरियम
डाकखाना वाणीविलास मुहल्ला, मैसूर

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४८५) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१. जी० रामचन्द्रन

७५. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेगाँव, वर्धा
६ अगस्त, १९३९

चि० मणिलाल और सुशीला,

तेरा लम्बा और खबरोंसे भरा पत्र मिला। उससे मुझे मदद मिलेगी।

यहाँ तो खूब धडल्लेसे काम चल रहा है। तुम्हारे प्रधान मन्त्रीके बाहर होने की वजहसे थोडी ढील हो गई है। विशेष जानने-लायक यदि कोई बात होगी तो मैं बताता रहूँगा। असल बात तो तुम्हारे जोर डालने पर निर्भर करती है और करेगी। नानाने मुझे तार भेजा है कि मैंने मुल्तवी रखने की जो सलाह दी, सो ठीक ही किया है। मैंने तारका जवाब नही दिया है। वहाँकी फूट मिट सके, क्या ऐसा कुछ नही हो सकता? हत्या की धमकी देनेवाले कौन लोग है? बात इतनी दूर तक कैसे गई?[1]

एजेन्ट-जनरल यदि वहाँ बिलकुल न रहे तो लाभ है, ऐसा क्योंकर मानते हो? उन्हें वापस बुलाना आसान है। लेकिन किसीको फिर नही भेजा जा सकेगा इसलिए अच्छी तरहसे विचार करके निर्णय करना चाहिए।

मुझे वहाँकी खबर जरूर मिलती रहनी चाहिए।

साथमें बा का पत्र है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९००) से।

७६. पत्र : अमृतलाल टी० नानावटीको

६ अगस्त, १९३९

चि० अमृतलाल,

साथका पत्र पढकर तुम्हें खुशी होगी।[2]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९१) से।

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४०५ भी।

२. चन्दनबहन पारेखने गांधीजी को अपनी देखभाल करने के लिए नानावटी-जैसा धीरजवाला व्यक्ति भेजने के लिए धन्यवाद देते हुए पत्र लिखा था।

७७. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव
६ अगस्त, १९३९

चि० अ० स०,[1]

तेरे दो खत एक साथ मिले। मैंने तो लिख दिया है जैसा दिल चाहे ऐसा कर। यहा आ जाना है तो आ जा। शकरलाल भाईमे बात कर लेना।

बापुकी दुआ

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३०) से।

७८. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेगाँव, वर्धा
६ अगस्त, १९३९

चि० कृष्णचंद्र,

तुमारा खत मिला। शकरीबहन[2] तैयार तो हो गई है लेकिन उनको कुछ हिचकिचाहट पैदा हो गई है। इसलिये मैंने उनको भेजने का मोकुफ किया है। अब दूसरी तलाशमें हू। हो मकते इतनी जल्दी कर रहा हू। गदेला ऐसा क्यों रखा है? खाट वहांकी नही है। साथका खत बछराजभाईको[3] देना। [बालकृष्णका] कान अच्छी तरह साफ किया जाता है ना? सुशीलाबहिनको सब बयान दिया करो। ठिकाना : लेडी हार्डिंग कालेज अस्पताल, नई दिल्ली है।[4] बालकृष्णको वहा बिलकुल अच्छा हो जाना चाहिये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३२५) से।

१. मूलमें सम्बोधन गुजरातीमें है।
२. चिमनलाल एन० शाहकी पत्नी
३. बच्छराज सेठ, जिन्होंने जमनालाल बजाजको गोद लिया था।
४. मूलमें पता अंग्रेजीमें है।

७९. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव
६ अगस्त, १९३९

उपवास करनेवाले वन्दियोको, दो महीनेके लिए ही सही, उपवास छोडने को राजी करने में सफल होने और इन बन्दियोंकी रिहाईके लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस समितिको प्रेरित करने का सुभाष बाबूने जो बीड़ा उठाया है, उसके लिए मै उन्हें बधाई देता हूँ। मुझे अलीपुरके कैदियोंकी ओरसे भी एक तार मिला है, जिसमें भूख-हड़तालके स्थगित होने की सूचना देते हुए मुझसे कहा गया है कि मैं अपने प्रयत्न फिरसे जारी कर दूं। कहने की जरूरत नही कि उन बन्दियोको रिहा करवाने के लिए मुझसे जो-कुछ भी बन पडेगा, सो मै करूँगा। मै इतना जरूर कह सकता हूँ, उनके द्वारा भूख-हड़ताल स्थगित कर दिये जाने से मुझे कुछ आशा बँधी है कि मेरे प्रयत्नोका कुछ असर होगा। मै यह भी आशा करता हूँ कि बगाल सरकार इस अवसरका लाभ उठाते हुए उदारतापूर्ण कदम उठायेगी और इस व्यथाका अन्त करेगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-८-१९३९

८०. सन्देश : बुनियादी शिक्षा-योजनाके शुभारम्भ पर[2]

[७ अगस्त, १९३९ या उसके पूर्व][3]

शिक्षाकी नई पद्धतिके अन्तर्गत १,७०० स्कूल खोलने का निर्णय एक महान् उपक्रम है। मुझे आशा है कि यह उपक्रम हर दृष्टिसे सफल होगा। उक्त साहसपूर्ण कदम उठाने के लिए मेरी बधाई।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ७-८-१९३९

१. यह "बंगाल प्रिजनर्स" (बंगालके राजनीतिक बन्दी) शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उक्त वक्तव्य ७ अगस्तके हिन्दुस्तान टाइम्स और हिन्दूमें भी प्रकाशित हुआ था।

२ और ३. यह सन्देश हिन्दूमें दिनांक "इलाहाबाद, ७ अगस्त" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था। उसके साथ निम्नलिखित टिप्पणी भी थी: "मुख्य मंत्री पण्डित गो० व० पन्त कल संयुक्त प्रान्तमें बुनियादी शिक्षा-योजनाका शुभारम्भ करेंगे, उससे वहाँ एक बड़ा प्रयोगात्मक शिक्षा-कार्य आरम्भ होगा। . . ."

८१. एक स्पष्टीकरण

पूर्वोक्त पत्रको[1] मैं खुशीके साथ प्रकाशित कर रहा हूँ और जो स्पष्टीकरण दिया गया है, उसे भी स्वीकार करता हूँ। इस स्पष्टीकरणके बिना प्रार्थना-पत्रके अन्तिम अनुच्छेदको केवल धमकी ही समझा जा सकता था। तथापि मद्य-निषेधके कार्यक्रमको आगे बढ़ानेमें भण्डारी जो मदद कर सकते हों वह इस स्पष्टीकरणसे अधिक उपयोगी होगी। उन्हें चाहिए कि वे कांग्रेस-सरकार और देशके सच्चे सिपाही बनें, ठीक उसी तरह जिस तरह कि वे ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सिपाही थे हालाँकि वह एक विदेशी कम्पनी थी और देशका शोषण करने के लिए यहाँ आई थी। यदि ये सच्चे हृदयसे सरकारके इस दुष्कर कार्यमें सहयोग करेंगे तो देखेंगे कि इस तरह वे अपनी सहायता भी करेंगे, जो वे अन्यथा कभी न कर पाते।

सेगाँव, ७ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-८-१९३९

८२. मिल बनाम चरखा

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ मगनवाड़ी, वर्धासे कुछ समयसे 'ग्राम उद्योग पत्रिका' नामकी एक मासिक पत्रिका निकाल रहा है। उसका सालाना चन्दा बारह आने हैं। उसके जुलाईके अंकमें राष्ट्रीय आयोजनापर एक दिलचस्प लेख प्रकाशित हुआ है। मैं चाहता हूँ कि जिज्ञासु पाठक उस लेखको जरूर पढ़ें। यहाँ तो मैं निम्न[2] आश्चर्यजनक आँकड़ोंकी तरफ ही ध्यान खींचना चाहता हूँ:

> . . . अगर हम अपनी जरूरतका सारा कपड़ा मिलोंके जरीये पैदा करें तो हमें ३ अरब रुपये की पूँजी और ३३ लाख आदमी चाहिए। पर अगर इस कपड़ेका उत्पादन कुटीर उद्योगसे हो तो करीब ७२ करोड़ रुपया लगाना

१. यह पत्र दिनांक "बम्बई, ३१ जुलाई, १९३९" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था। पत्र एल० के० बोलेने लिखा था। इसमें अन्य बातोंके अलावा यह कहा गया था: "उक्त आवेदन-पत्रके हस्ताक्षरकर्ताओंने जो-कुछ किया, वह ईमानदारीके साथ किया है और उनका इरादा बम्बईके मन्त्रिमण्डलको धमकी देने का नहीं था। उक्त आवेदन-पत्रके अन्तिम अनुच्छेदमें उस समयके हालातको देखते हुए मद्य-निषेधकी नीतिके लागू किये जाने से भण्डारी-समितिको जिन परिणामोंकी आशंका थी, उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति की गई थी।" देखिए पृ० २१ भी।

२. यहाँ कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

पड़ेगा और ८ करोड़ आदमियोंको काम मिलेगा। उत्पादनकी इन दोनों विधियोंमें प्रत्येकके अपने लाभ हैं, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। . . . हम लोग गरीब जरूर हैं, पर हमारे पास बेहिसाब श्रम-रूपी सम्पदा पड़ी हुई है। इसलिए बुद्धिपूर्वक की गई आयोजनासे मालूम होगा कि कुटीर-उद्योगका तरीका ही हमारे देशकी योजनामें ठीक-ठीक बैठ सकता है। . . . कोई भी आयोजना, जिसमें श्रम-सम्पदाका समुचित उपयोग करने की व्यवस्था न हो, व्यर्थकी आयोजना होगी। हमारे विश्लेषणने यह दिखा दिया है कि केन्द्रीकृत उत्पादन-पद्धतिमें चाहे जितना अधिक माल पैदा करने की शक्ति हो, पर हमें जिस विशाल जन-संख्याको रोजी देनी है, उसे काम देने की गुंजाइश इस पद्धतिमें नहीं है। अतः यह पद्धति इस देशके लिए निकम्मी है।

इन आँकड़ोपर कोई टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं। अगर यह साबित न किया जा सके कि यह गलत है तो इससे सिद्ध हो जाता है कि मिलोंके उत्पादनकी अपेक्षा चरखे द्वारा, और इसी दलीलसे, ग्रामोद्योग द्वारा होनेवाला उत्पादन हमारे लिए श्रेयस्कर है। पर इस विषयके विशेषज्ञोंको मैं आमन्त्रित करता हूँ कि वे इन आँकड़ोंकी जाँच-पड़ताल करें और इन्हें गलत साबित कर सकें तो जरूर करें।

सेगाँव, ७ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-८-१९३९

८३. हरिजनोंके लिए एक और मन्दिर खुला

हरिजन सेवक संघ, इलाजीके मन्त्री मुझे सूचित करते हैं कि २६ जुलाईको कोतालमके मन्दिरको व्यवस्थापकने हरिजनोंके लिए खोल दिया है। अपने कर्त्तव्यका पालन करने के लिए मन्दिरके व्यवस्थापकको मैं बधाई देता हूँ। स्थानीय संघके अध्यक्षने मन्दिर खोल देने के लिए व्यवस्थापकको राजी किया था। मैं आशा करता हूँ कि मन्दिरमें पूजाके लिए जानेवालों ने मन्दिर खोलने पर कोई आपत्ति नहीं की होगी।

सेगाँव, ७ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-८-१९३९

८४. पत्र : तोताराम हिंगोरानीको

सेगाँव, वर्धा
७ अगस्त, १९३९

प्रिय हिंगोरानी,

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपका आनन्द[1] और विद्यासे[2] मेल-मिलाप हो गया है और वे दोनों जैसी सेवाकी आपको जरूरत पड़ सकती है वैसी पुत्रोचित सेवा करने के लिए आपके पास हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री तोताराम हिंगोरानी
कराची

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार, और आनन्द तो० हिंगोरानी

८५. पत्र : आनन्द तो० हिंगोरानीको

सेगाँव. वर्धा
७ अगस्त, १९३९

चि० आनंद.

मुझको तो तुमारा निर्णय अच्छा लगता है। निर्वाहके लिए धंदा करना कोई बूरी चीज नहीं है। पिताकी इच्छाकी तृप्ती करना पुत्रका धर्म है — जबतक वह इच्छा अपवित्र न हो। पिताजी की इच्छा कि तुमारे धंदा करना और अपने पैरोंपर खड़ा रहना शुभेच्छा है। मेरा विश्वास है कि जो मनुष्य अपनी आजीविका नीतिसे कमाता है और अपना गृहस्थाश्रम नीतिपूर्वक चलाता है वह भी देशकी सेवा करता है। इसलिये मैं चाहता हूं कि अपना धंदा दिलचस्पीसे करो। पिताजी को खुश करो और धंदा करते हुए जितनी हरिजन-सेवा हो सके किया करो।

---

१ और २. तोताराम हिंगोरानीके पुत्र और पुत्रवधू

मुझको तो जितना पैसा भेजेंगा इतना हजम करूंगा। लेकिन नही भेज सकेगा तो भूखों नही मरूंगा। जैसा सुभिता रहे ऐसा करो।

साथकी चिट्ठी[1] पिताजी को देना।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिल्मसे, सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार, और आनन्द तो० हिंगोरानी

८६. पत्र : प्रभावतीको

सेगाँव, वर्धा
७ अगस्त, १९३९

चि० प्रभा,

यदि तू गिरधरको छुट्टी दे सके तो देना ही अच्छा होगा। न दे सके तो एक महीना पूरा करके काममें लग जाना। काम जितना हो सके उतना करना। यदि राजेन्द्र बाबू तुझे छोड़ें तो छूट जाना, और अभ्यास जारी रखना। क्या सीखेगी, कितना समय लगेगा और शिक्षक कौन है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५२७)से।

८७. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
७ अगस्त, १९३९

चि० अ० स०,

तुमारी शिकायत मिली। मैं तो बराबर लिखता रहा हूं। शिकायत पोस्ट मास्तर से कर। मैंने ये भी लिख दिया है कि जैसा दिल चाहे ऐसा कर। शकर-लालभाईसे मश्विरा कर। इसलिये तार नही भेज रहा हू।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३१) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

८८. पत्र : वसुमती पण्डितको

सेगाँव
७ अगस्त, १९३९

चि० वसुमती,

तेरा पत्र मिला है। वनुसे[1] कहना कि वह कितनी डरपोक लड़की है! क्या अमतुस्सलाम तुम्हारे साथ नहीं रह रही है?[2] बा आनन्दपूर्वक है। कमजोर तो जरूर है। यहाँ वर्षा नहीं हुई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३१) से।

८९. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[3]

सेगाँव, वर्धा
७ अगस्त, १९३९

मैं जब एबटाबादमें था, तब मेरे और डॉ० खान साहब[4] तथा काज़ी अताउल्ला साहबके[5] बीच जो बातचीत हुई थी, उसकी रिपोर्टके रूपमें एसोसिएटेड प्रेस द्वारा भेजे गये सन्देशकी तरफ मेरा ध्यान गया है। वह खानगी बातचीत थी। डॉ० खान साहबने हिन्दू सदस्योंकी किसी भी साजिशके बारेमें मुझसे शिकायत की हो या उन सदस्योंको हटा देने के बारेमें मैंने सहमति दी हो, ऐसी कोई बात मुझे याद नहीं पड़ती। यह बात तो स्पष्टतः असम्भव है, क्योंकि जिनके विरुद्ध ऐसे गम्भीर आरोप लगाये जायें, उनसे मिले बगैर मैं ऐसी बातपर कोई राय दे ही नहीं सकता। इसी प्रकार डॉ० खान साहब ऐसी अशोभन चीज मुझसे कराने की आशा नहीं रख सकते। इसी प्रकार मुझे इस बातका जरा भी स्मरण नहीं आ रहा है कि काज़ी साहबने

१. वनमाला न० परीख

२. गांधीजी ने यह पत्र अमतुस्सलामको पत्र लिख चुकने के बाद लिखा था; देखिए पिछला शीर्षक।

३. यह "ए डिनाइल" (इन्कार) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था। उपर्युक्त वक्तव्य ८-८-१९३९ के हिन्दूमें भी प्रकाशित हुआ था।

४. उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तके मुख्य मंत्री

५. उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तके शिक्षा-मंत्री

नौकरियोंके प्रश्नपर मुझसे कोई चर्चा की थी। पत्रकार लोग ऐसी महत्त्वकी खबरें प्रकाशित करनेसे पहले सम्बन्धित पक्षोंसे उनकी मजूरी ले लें, तो कितना अच्छा हो! मैंने सुना है, सीमा-प्रान्तके हिन्दू इस खबरको पढ़कर बहुत बेचैन हो गये हैं।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १९-८-१९३९

९०. पत्र : शारदाबहन गो० चोखावालाको

सेगाँव, वर्धा
८ अगस्त, १९३९

चि० बबुडी,

तेरा पत्र मिला। तू अच्छी हो गई, यह खुशखबरी है। अब कोई निशान बाकी तो नहीं है न? यहाँ तो सारे कमरे भरते जा रहे हैं। दुर्गाबहन[1] आज आई है। ढेबरभाई[2] आ गये हैं। आज तो नानावटी भी यहाँ है। अन्य दो जन सोजित्रासे आये हैं। वे कुछ समय रहना चाहते हैं। भणसालीभाई फिलहाल तो पढ़ाने में व्यस्त हैं। मैथ्यूजी बालकोबाकी झोंपड़ीमें हैं। सुशीलाबहनकी जगह उसके ही कॉलिजकी एक महिला डॉक्टर आई हैं। बहुत भली महिला है। नीमु आदि तो हैं ही। अब तो पत्र खबरोंसे भर गया न? मैं मजेमें हूँ। बा ठीक है।

तुम दोनोको,

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००१५) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

९१. पत्र : मणिलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
८ अगस्त, १९३९

चि० मणिलाल,

तेरा पत्र मिला है। अब तो तुझे मेरे पत्र बराबर मिलते ही रहेंगे।

कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंके विरुद्ध केस करने में व्यर्थ ही समय बरबाद होगा और कटुता बढ़ेगी। इसके विपरीत, यदि तुम लोग अपना काम करते रहोगे तो तुम्हारा बल बढ़ेगा और कांग्रेस भी तुम्हें अप्रत्यक्ष रूपसे तो मदद देती रहेगी। न दे तो कोई हर्ज नहीं। तुझे याद नहीं है, किन्तु क्रिस्टोफरको याद होगी कि मैंने तो जान-बूझकर कांग्रेस और ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशनको अलग-अलग रखा था। मैंने पैसिव

1. महादेव देसाईकी पत्नी
2. उ० न० ढेबर

रेसिस्टेंस एसोसिएशनकी स्थापना की और मुझे कांग्रेस आदि संस्थाओंकी मदद मिलती रहती थी। ये लोग जेल नहीं जाते थे, अपने पैसेका त्याग भी नहीं करते थे, लेकिन मेरी तो पैसेसे मदद करते थे। एजेंट तुम्हारी संस्थाको ही स्वीकार करेगा और उसे आदर देगा।

इस सम्बन्धमें मैं कदाचित् 'हरिजन' में लिखूंगा।[1] संलग्न पत्र तुम्हारे काम आयेगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

इसके पीछे दो पत्र[2] हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०१) से।

९२. पत्र : सीता गांधीको

सेगाँव
८ अगस्त, १९३९

चि० सीता,

तेरी चिट्ठी मिली। यदि तू भी जेल जायेगी तो 'ई० ओ०'[3] कौन चलायेगा?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०१) से।

९३. पत्र : सुशीला गांधीको

सेगाँव
८ अगस्त, १९३९

चि० सुशीला,

मेढ़[4] लिखता है कि तूने भी जेल जाने का निश्चय किया है। लेकिन यदि समझौता हो गया तो? जेल जाने के लिए क्या तू अपना स्वास्थ्य अच्छा रखेगी?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०१) से।

१. देखिए "टिप्पणियाँ" का उप-शीर्षक "दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका संघर्ष", पृ० १०२।
२. देखिए अगले दो शीर्षक।
३. इंडियन ओपिनियन।
४. सुरेन्द्र मेढ़

९४. पत्र : दिलखुश बी० दीवानजीको

सेगाँव, वर्धा
८ अगस्त, १९३९

भाई दिलखुश,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम उधार माँगते हो तो पैसा कब वापस दोगे? कमसे-कम कितने चाहिए? जो खादी तैयार होती है उसका क्या करते हो? गाहकी काफी है क्या? कोई कातनेवाली वापस न जाये तो अच्छा होगा। कातनेवाली हमारे नियमोंका अनुसरण करनेवाली होनी चाहिए। जो सूत काता जाये, वही बुना जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च.]

बुननेवाले यदि कम हों तो नये तैयार किये जायें।

दिलखुश दीवानजी
गांधी कुटीर
कराड़ी
बरास्ता जलालपुर

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६४२) से।

९५. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

सेगाँव, वर्धा
८ अगस्त, १९३९

चि० राधाकिसन,

तुमारा खत मिला है। मेरा लेख[1] तो देखोगे। कमलनयनने मुझको थोडे कागज दिये हैं। उसमें हिंस्र जानवरोंका आधा वर्णन है।[2] आधा बाकी है। मुझे पूरा चाहिये। अब जमनालालकी तबीयत कैसी है?

कमलनयन[3] सावित्रीकी[4] प्रसूती नजदीक होनेके कारण कलकत्ता गया है।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१२८) से।

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४३६-३७।
२. देखिए पृ० ७६-७७।
३ और ४. जमनालाल बजाजके पुत्र और पुत्रवधू

९६. पत्र : गोपबन्धु चौधरीको

सेगाँव, वर्धा
८ अगस्त, १९३९

भाई गोपबाबु,[1]

यह खत[2] पढ़ो। उस[के] बारेमें कुछ हो सकता [है] क्या?

तुमारा स्वास्थ्य कु[छ] बिगड़ा था?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २७९३) से।

९७. पत्र : डॉ० जीवराज एन० मेहताको

सेगाँव, वर्धा
९ अगस्त, १९३९

भाई जीवराज,

बारडोलीमे आपकी सुशीलाके[3] साथ कुछ बातचीत हुई थी, मैं उसी समय आपको लिखना चाहता था लेकिन काममें अधिकाधिक व्यस्त होता चला गया और बादमे मैंने लिखने का विचार छोड़ दिया। लीलावतीके[4] समक्ष आपने कुछ आलोचना की थी, इसीमे मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। आपने जो आलोचना की उसमे लीलावतीको दु:ख हुआ। वस्तुत. लीलावतीको उसी समय अपने मनकी बात कह देनी चाहिए थी और आपसे पूछना चाहिए था[5]। मन-ही-मन तुलती रहती है उससे क्या फायदा? आप मेरे शरीरके रक्षक हैं इसलिए मेरी नीतिके (अर्थात् आचरणके) भी रक्षक हैं, ऐसी मेरी मान्यता है। यदि मैं कुछ न करने

१. उत्कल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष

२. उड़ीसा विधान-सभाके अध्यक्ष मुकुन्दप्रसाद दास द्वारा गांधीजी को भेजा गया ४ अगस्त, १९३९ का पत्र, जिसमें लिखा था: "उड़ीसाके कांग्रेसियोंके आपसी झगड़े खत्म हो जाने चाहिए।... क्या आप गोपबन्धु चौधरीको इस मामलेमें हस्तक्षेप करनेके लिए लिख सकते हैं? उन्हें सब दलोंका विश्वास प्राप्त है।"

३. डॉ० सुशीला नैयर

४. लीलावती आसर

५. देखिए अगला शीर्षक भी, और "पत्र: लीलावती आसरको", पृ० १०५-६।

लायक काम करता हूँ तो उससे आपको निस्सन्देह दुःख होगा। लेकिन मुझे इसके बारेमें बताना आपका कर्तव्य है। इसलिए यदि आपको मेरा व्यवहार टीका अथवा निन्दा करनेके योग्य लगा हो तो आप निःशंक होकर मुझे बताना। इसे मैं सच्ची मित्रता मानूँगा। मैं जानता हूँ कि आजकल समाचारपत्र मेरे प्रति गालियोंसे भरे रहते हैं। मैं उन्हें पढ़ता ही नहीं। मेरे सुनने में अवश्य आती हैं। इन गालियोंका मुझपर कोई असर नहीं होता। लेकिन आप-जैसे मित्रोंके मनमें इसे लेकर क्या प्रतिक्रिया होती है, यह जाननेकी इच्छा अवश्य होती है। मेरा जीवन खुली पुस्तक है। मैंने किसी दिन किसीसे कुछ छिपाकर नहीं रखा है। इसलिए जहाँ आपको पूछने लायक कोई बात दिखाई दे, आप खुशीसे पूछ सकते हैं। आप-जैसे साथियोंसे मैं बहुत काम लेने की आशा रखता हूँ और यदि मेरे जीवनमें गोपनीय-जैसी कोई बात हुई तो मैं ऐसा कर कैसे सकता हूँ।

मोहनदासके वंदेमातरम्

मूल गुजरातीसे . जीवराज मेहता पेपर्स , सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

९८. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव, वर्धा
९ अगस्त, १९३९

चि० लीला,

तेरा पत्र मिला। मैं लड़कियोंके 'बलेव दिवस'[1] अथवा किसी अन्य अवसर पर भिक्षा माँगने के लिए निकलने की कोई जरूरत नहीं समझता। उनका ऐसा उपयोग नहीं होना चाहिए। पैसा उगाहने का काम संचालकोंका है।

तू अपने अभ्यासमें तल्लीन रहना। उत्पात मत करना। जितनी मेहनत हो सके उतनी मेहनत करना और उसके बाद जो भी परिणाम निकले उससे संतोष मानना।

डॉ० मेहताके कहने पर तू चुप क्यों रही?[2] उन्होंने सिर्फ विनोद ही किया हो तो? यदि उसमें दंश था तो तू उसे तुरन्त निकाल सकती थी। लड़की पिताकी बगलमें सोये और किसी संस्थामें लड़कियाँ एक-दूसरेपर सोयें, क्या ये दोनों बातें एक-जैसी हैं, यह तू उनसे पूछ सकती थी। मैं समझता हूँ कि तेरा चुप रहना

१. इसे 'रक्षाबन्धन' के नामसे भी जाना जाता है जो श्रावण मासकी पूर्णमासीके दिन मनाया जाता है।

२. देखिए पिछला शीर्षक भी।

ही कुछ हदतक दोषको स्वीकार करना था। लेकिन मुझे तेरा जो पिछला पत्र मिला था उसमें भी मुझे लज्जाका आभास होता है। इसीसे तो जीभ नहीं खुलती। तो इसमें डॉ० जीवराजका क्या दोष? यदि कोई मेरी कटु आलोचना करता है तो उसका मुझपर कोई असर नहीं होता। लेकिन यदि मैं कोई निन्दनीय काम करता हूँ तो किसीके कुछ न कहने पर भी शरमाऊँगा और झिझकूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १००९१) से; सौजन्य: लीलावती आसर

९९. पत्र: तारा जसाणीको

मगनवाड़ी, वर्धा
९ अगस्त, १९३९

चि० तारा,

अपनी छड़ियोंके बिना घूमने जाना मुझे अरुचिकर लगता है। कनु[1] और बाबलो[2] तो ठहरे कामकाजी, इसलिए मेरे साथ नहीं निकलते।

मैं पहाड़ोंका वर्णन तुझे लिख भेजूं इससे तो बेहतर होगा कि तू किसी दिन अपनी आँखोंसे ही देख लेना।

अकाल पड़ा तो तू क्या सेवा करेगी? सूत-यज्ञमें कितना योगदान देगी?

कानजी मुनिका[3] व्याख्यान सुनती है, यह अच्छी बात है। पूजनीय बा और बापू तो उसमें लीन थे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९८३४) से; सौजन्य: ताराबहन प्रताप

१. नारणदास गांधीके पुत्र
२. महादेव देसाईके पुत्र, नारायण देसाई
३. श्वेताम्बर जैन मुनि

१००. पत्र : आर० एल० हांडाको

सेगाँव
१० अगस्त, १९३९

प्रिय मित्र,

मैंने तुम्हारा पत्र[1] तथा काठियावाड़की रियासतोंपर लिखे संलग्न लेख[2] देखे। दोनों अच्छे हैं। तुम्हारा पत्र 'हरिजन' के आगामी अंकमें छप रहा है, लेकिन लेख बादमें स्थान मिलने पर ही छापे जायेंगे। मैं समझता हूँ कि रियासतोंकी समस्याके सम्बन्धमें तुम्हारा दृष्टिकोण कुल मिलाकर युक्तिपूर्ण और व्यावहारिक है।[3]

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

लीव्ज फ्रॉम ए डायरी, पृ० ७७

१०१. पत्र : सुरेन्द्र बी० मशरूवालाको

सेगाँव, वर्धा
१० अगस्त, १९३९

चि० सुरेन्द्र,

मनुको[4] जो पत्र मैं लिखता हूँ क्या वह तुझे लिखने जैसा नहीं है? मैं मान लेता हूँ कि तुम दोनों परस्पर एक-दूसरेमें इतने तल्लीन हो कि तुम्हें मेरी ओरसे किसी प्रकारके आश्वासनकी जरूरत नहीं रह जाती। इससे हालाँकि तुम मेरी नजरोंके आगे तो रहते ही हो फिर भी पत्र लिखने का समय बचा लेता हूँ। मनुडी मेरे साथ बहुत समयतक रही है, इसलिए जाहिर है कि वह मुझसे कभी-कभी पत्रकी अपेक्षा रखती है, इस कारण उसे लिखता हूँ और यह मान लेता हूँ कि तुझे भी लिख दिया है।

१. देखिए पृ० ९८-९९।
२. उद्धरणोंके लिए देखिए परिशिष्ट ४।
३. देखिए "काठियावाड़की रियासतें", ११-९-१९३९ भी।
४. सुरेन्द्र मशरूवालाकी पत्नी

तेरा काम ठीक-ठीक चल रहा है, ऐसा मनु कहती थी। उम्मीद है, तेरा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५०४९) से; सौजन्य: मनुबहन सु० मशरूवाला

१०२. कांग्रेस कार्य-समितिका प्रस्ताव[1]

[११ अगस्त, १९३९][2]

राष्ट्रीय कांग्रेसके भूतपूर्व अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोसने[3] अ० भा० कां० क० की पिछली बैठकमें पारित "प्रान्तोंमें सत्याग्रह" और "कांग्रेस मन्त्रिमण्डल तथा प्रा० कां० कमेटियाँ", इन दो प्रस्तावोंके[4] सम्बन्धमें जो कारंवाई की है, उसपर कार्य-समितिने बहुत सावधानीके साथ विचार किया है। कार्य-समितिने श्री सुभाष बाबूके उसे लम्बे पत्रपर[5] भी विचार किया है जो संलग्न है। कार्य-समिति बहुत दुःख और अनिच्छाके साथ इस निष्कर्षपर पहुँची है कि कांग्रेस-अध्यक्षने जो मुख्य मुद्दा उठाया है और जो उनके घोषणा-पत्रमें[6] — यह भी संलग्न है — स्पष्ट रूपसे प्रस्तुत किया गया है उसे सुभाष बाबू बिलकुल समझ नहीं पाये। भूतपूर्व अध्यक्षके रूपमें उन्हें यह भी महसूस करना चाहिए था कि कांग्रेस-अध्यक्षकी ओरसे अपरिहार्य निर्देश[7] प्राप्त करने के बाद राष्ट्रके सेवकके नाते उनका यह स्पष्ट कर्तव्य था कि वे अध्यक्षसे मतभेद होने के बावजूद उन निर्देशोंपर श्रद्धापूर्वक अमल करते। अध्यक्षके निर्णयसे सन्तुष्ट न होने पर यदि वे चाहते तो कार्य-समिति अथवा अ० भा० कां० क० के सम्मुख अपील कर सकते थे। लेकिन जबतक अध्यक्षके निर्देश कायम थे तबतक वफादारीके साथ उनका पालन करने को वे बाध्य थे। किसी भी संस्थाके उचित संचालनके लिए यह पहली शर्त है तथा राष्ट्रीय कांग्रेस-जैसी उस विशाल संस्थाके लिए तो और भी, जो संसारके सबसे ज्यादा संगठित और शक्तिशाली साम्राज्यवादी संगठनके विरुद्ध जीवन-मरणके संघर्षमें लगी हुई है। सुभाष बाबूके पत्रसे उनका तो यह विचार लगता है कि प्रत्येक सदस्यको कांग्रेस-संविधानकी मनमानी व्याख्या करने का

१. इसका मसौदा गांधीजी ने तैयार किया था; देखिए "वक्तव्य: समाचारपत्रोंको", पृ० १२५-२७।
२. गांधी — १९१५-१९४८: ए डिटेल्ड क्रॉनोलॉजी से।
३. उन्होंने लोगोंसे कहा था कि वे ९ जुलाई, १९३९ को 'विरोध-दिवस' मनायें।
४. देखिए खण्ड ६९, पृ० ३९९-४०१।
५. जो कांग्रेस-अध्यक्षको लिखा गया था; देखिए परिशिष्ट ५।
६. देखिए परिशिष्ट ६।
७. देखिए परिशिष्ट ७।

हक है। इस विचारको मान लेने से तो कांग्रेसमें अराजकता फैल जायेगी और थोडे ही समयमें उसके टुकडे-टुकडे हो जायेंगे।

कार्य-समिति अत्यन्त दु:खके साथ इस निष्कर्षपर पहुँची है कि यदि वह सुभाष बाबूके जान-बूझकर और खुल्लमखुल्ला किये गये अनुशासन-भंगके कार्यकी उपेक्षा करती है तो वह अपने कर्त्तव्यसे च्युत होती है। इसलिए कार्य-समिति यह निश्चय करती है कि अनुशासन-भंग करने के गम्भीर अपराधमें सुभाष बाबू अगस्त, १९३९ से तीन वर्षके लिए बंगाल प्रान्तीय कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिए अयोग्य होंगे। कार्य-समितिको विश्वास है कि सुभाष बाबू अपनी भूलको पहचानेंगे और उनके विरुद्ध यह जो अनुशासनात्मक कार्रवाई की गई है, उसे सच्चे हृदयसे स्वीकार करेंगे।

अन्य अनेक कांग्रेसियोंकी, जिनमें कई जिम्मेदार पदाधिकारी भी शामिल हैं, अनुशासनहीनताकी ओर भी कार्य-समितिका ध्यान गया है। लेकिन क्योंकि उन्होंने सुभाष बाबूकी प्रेरणापर ऐसा कार्य किया है, अत. कार्य-समितिने उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नही की है। तथापि यदि प्रान्तीय समितियाँ अनुशासनके ठीक-ठीक पालनके लिए और विशेष रूपसे उन लोगोंके विरुद्ध, जिन्होंने अनुशासन भंग किया और अपने किये पर पश्चात्ताप नही किया है, अनुशासनात्मक कार्रवाई करना आवश्यक समझें, तो वे ऐसा कर सकती हैं।

कार्य-समिति अध्यक्षको यह अधिकार भी देती है कि वे ऐसे सदस्योंके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करें जो अपनी वाणी अथवा आचरणके द्वारा अनुशासन-हीनताके लिए पश्चात्ताप करने के बजाय अनुशासन भंग करने का दुराग्रह जारी रखते हैं।

[अंग्रेजीसे]

द इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २१२-१३

१०३. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
११ अगस्त, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

मेरा मन हो रहा था कि तुमसे कार्य-समितिके सम्मुख ही (समयके अभावके कारण) योजना-समितिके बारेमें बातचीत करूँ।[1] तुमसे बातचीत करने के बाद शंकरलाल आज सवेरे मेरे पास आये थे और इस सम्बन्धमें कृपलानीको[2] लिखे अपने पत्रकी प्रतिलिपि भी लाये थे। उन्होंने जो आपत्ति उठाई है उसपर मैंने सहानुभूति

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४१७।

२. जे० बी० कृपलानी, महामंत्री, अ० भा० कां० कमेटी।

व्यक्तकी। योजना-समितिका यह सारा श्रम न कभी मेरी समझमें आया और न मुझे जँचा है। जिस प्रस्तावके जरिये इस समितिकी रचना हुई थी, उसकी सीमा-रेखाके बीच यह काम करती नहीं जान पड़ती। मुझे नहीं लगता कि कार्य-समितिको उसके क्रिया-कलापकी सूचना दी जाती रही है। ये जो बहुत-सी उप-समितियाँ बनाई गई हैं उनका क्या उद्देश्य है, सो मैं नहीं समझ सका हूँ। मुझे तो लगता है कि एक ऐसे कार्यमें बहुत श्रम और धन लगाया जा रहा है जिससे कोई लाभ नहीं होगा। मेरी ये शंकाएँ हैं। मैं इनका समाधान चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम्हारा मन चीनमें[1] है। यदि तुम्हारा यह खयाल हो कि शाह[2] मुझे तुम्हारे विचारोंसे अवगत करा सकेंगे तो मैं उनसे जानने की कोशिश करूँगा अन्यथा इस महान् यात्रासे तुम्हारे वापस लौटने तक प्रतीक्षा करूँगा। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे और तुम सकुशल स्वदेश लौट आओ।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृ० ३७८-७९ से भी

१०४. पत्र: गुलाम रसूल कुरैशीको

सेगाँव
११ अगस्त, १९३९

चि० कुरैशी,

तुम्हारा पत्र मिला। १०० रु० आने तो शुरू हो गये हैं, ऐसा मानता हूँ। मुझे खुशी है कि तुमने 'मुगन्वी' से छुटकारा पा लिया।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

यदि अ० स० वहाँ हो तो कह देना कि मैंने यह सोचकर पत्र नहीं लिखा कि वह अबतक वहाँसे चली गई होगी।

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०७७३) से; सौजन्य: गुलाम रसूल कुरैशी

१. जवाहरलाल नेहरू चीन जानेवाले थे; लेकिन वे २० अगस्त, १९३९ को चीनके लिए रवाना हुए।
२. के० टी० शाह

१०५. भूख-हड़ताल

भूख-हड़ताल आजकल निश्चय ही एक महामारी बन गई है। जरा-जरा-सी बातपर कुछ लोग भूख-हड़तालोंका सहारा लेना चाहते हैं। इसलिए यह अच्छा ही है कि कमसे-कम जहाँतक कैदसे रिहाईके लिए भूख-हड़ताल करने का सम्बन्ध है, कांग्रेस कार्य-समितिने[1] स्पष्ट शब्दोंमें उसकी निन्दा की है। चाहिए तो यह था कि कार्य-समिति कुछ और आगे बढ़ती और जबरन् खाना खिलानेकी भी निन्दा करती। इस तरह जबरदस्ती खाना खिलाने को मैं मानव-शरीरपर, जो कि कैदीका होने पर भी इतना पवित्र है कि उसके साथ कोई खिलवाड़ नहीं करना चाहिए, एक अनुचित ज्यादती ही समझता हूँ। निःसन्देह, कैदियोंके शरीरपर राज्यका नियन्त्रण होता है, लेकिन इतना नहीं कि वह उनकी आत्माको ही हनन कर दे। इस नियन्त्रणकी निश्चित सीमाएँ हैं। अगर कोई कैदी भूखों मर जाने का निश्चय करे तो, मेरी रायमें, उसे ऐसा करने देना चाहिए। भूख-हड़तालीको जबरदस्ती खाना खिलाने से भूख-हड़ताल अपना जोर, यदि उसमें अपना कोई जोर हो तो, खो देती है। अगर किसी-न-किसी तरह पर्याप्त मात्रामें भोजन मुँह या नाकके जरिये गलेमें उतार दिया जाता है, तो फिर भूख-हड़ताल कोरा मजाक ही हो जाती है। अलबत्ता, नाकके जरिये खाना खिलाने के विरुद्ध मन सहज ही विद्रोह करता है, लेकिन मुझे मालूम हुआ है कि कुछ दिनोंके अभ्यासके बाद ऐसा करना स्वयं उस व्यक्तिको अटपटा नहीं लगता जिसे इस प्रकार नाकके जरिये खिलाया जाता हो। हाँ, जब कोई कैदी जबरदस्त प्रतिरोध करे, तो बात मुश्किल हो जाती है। लेकिन ऐसे प्रतिरोधके उदाहरण विरल ही होते हैं। क्योंकि इस मामलेमें प्रभावकारी प्रतिरोध ज्यादा समयतक नहीं किया जा सकता। अलबत्ता, दृढ़ निश्चयसे प्रतिरोध करनेवाला पहले प्रयत्नमें ही मर जायेगा और इस प्रकार उसे असफल कर देगा। लेकिन ऐसे प्रतिरोधके लिए बड़े भारी साहसकी, मौतकी ओरसे लापरवाहीकी जरूरत है। हर हालतमें, मेरा तो यह पक्का विश्वास है कि जबरदस्ती खाना खिलाने के तरीकेको बर्बरताका अवशेष समझकर त्याग देना चाहिए। मैं यह जानता हूँ कि कुछ कैदी जबरदस्ती खाना खिलाये जाने को इसलिए पसन्द करते हैं कि इससे बिना बात ही उन्हें भूख-हड़ताली कहलाने का गौरव मिल जाता है। जेलरोंने अक्सर मुझसे कहा है कि जबरदस्ती खाना खिलाना बन्द हो जाये, तो ऐसे कैदियोंको अफसोस होगा। मुझे यह भी बताया गया है कि मौजूदा कानूनके अधीन समझाने-बुझाने से काम न चले, तो जेल-अधिकारी जबरदस्ती खाना खिलाने के लिए बाध्य हैं। अगर ऐसा कोई कानून हो, तो मैं उसमें संशोधन करने की सिफारिश करूँगा।

१. ९ से १२ अगस्ततक हुई अपनी बैठकमें

यह भी विचारणीय है कि क्या कार्य-समिति द्वारा ऐसा नियम पास नहीं कर दिया जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत इजाजत लिये बगैर सार्वजनिक या राजनीतिक भूख-हड़ताल करना अनुशासनका भंग समझा जाये। किसी व्यक्तिकी स्वतन्त्रतापर अंकुश लगाना मुझे उस वक्ततक पसन्द नहीं है जबतक कि ऐसा उसके अपने और उस समाजके लाभके लिए ही न किया जाये जिनका वह एक सदस्य है। लेकिन भूख-हड़ताल एक ऐसी बला बन गई है कि इसके खतरनाक रूप धारण करने से पहले ही अगर कार्य-समिति इसे रोकने की कुछ कार्रवाई करे तो ठीक होगा। ऐसे मामलोंमें कार्य-समितिके प्रस्तावका अर्थ है सुविचारित लोकमतकी अभिव्यक्ति, जिसका उस प्रथाको दुरुपयोगसे बचाने के लिए अच्छा असर पड़ सकता है। यह दूसरी बात है कि उसे कभी अमल में लानेकी जरूरत न पड़े।

सेगांव, वर्धा, १४ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १९-८-१९३९

१०६. छोटी-छोटी रियासतोंका परिसंघ

क्या मैं पत्र लिखकर काठियावाड़की रियासतोंकी समस्याकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करने की धृष्टता कर सकता हूँ? वेस्टर्न इंडिया एजेंसीमें जो रियासतें शामिल हैं उनका बारीकीसे अध्ययन करने पर किसीको भी यह विश्वास हो जायेगा कि काठियावाड़की असली समस्या अलग-अलग रियासतोंमें उत्तरदायी शासनकी नहीं है। यह माँग तो वस्तुतः ऐसी है जिसकी आर्थिक दृष्टिसे कोई सम्भावना नहीं है। इनमें से पाँच या छह रियासतोंको छोड़कर कोई भी ऐसी नहीं है जो शुद्ध रूपमें पृथक् और स्वशासित इकाई के रूपमें रह सके। आर्थिक पहलूको छोड़ भी दिया जाये तो भी उनके भौगोलिक सान्निध्य और सांस्कृतिक तथा भाषा-सम्बन्धी एकताके कारण निश्चित रूपसे यही वांछनीय मालूम पड़ता है कि प्रशासनिक रूपसे उन सबका एक समूह बना दिया जाये। इन रियासतोंका एक परिसंघ बना देने पर ही इनके प्रजाजन बम्बई प्रान्त, या कहिए कि ब्रिटिश भारत, के किसी भी अन्य प्रान्तके समकक्ष हो सकते हैं।

रहा यह भय कि राजा लोग शायद इस बातको बहुत नापसन्द करें, तो कहा जा सकता है कि ऐसी किसी भी सुधार-योजनाका, जिसमें वास्तविक अधिकार प्रजाको देने की बात हो, राजाओंकी तरफसे घोर विरोध होना सुनिश्चित है। और जब हर हालतमें इस विरोधके खिलाफ हमें लड़ना ही है (निश्चय ही वह लड़ाई अहिंसात्मक होगी), तो हमारे लिए ऐसे सवालपर लड़ना बुद्धिमत्ता होगी जो हमारी मुख्य और अन्तिम माँग होनी चाहिए।

हमारी तात्कालिक और न्यूनतम माँग कुछ भी क्यों न हो, अन्तिम उद्देश्यको हमें कभी दरगुजर नहीं करना चाहिए। क्या मैं कह सकता हूँ कि काठियावाड़के — और भारतकी कोई तीन-चौथाई रियासतोंके — मामलेमें सब राजनीतिक सुधारकोंका अन्तिम उद्देश्य ऐसे परिसंघका निर्माण ही होना चाहिए जिसकी रूपरेखा संलग्न मुद्रित लेखोंमें बताई गई है।

मैं आशा करता हूँ कि आप मानेंगे कि यह विचार नया या मौलिक न होते हुए भी ऐसा है कि इसका प्रचार किया जाना चाहिए। क्योंकि कई रियासतोंके गुट या समूह द्वारा संयुक्त रूपसे परिसंघके लिए आन्दोलन करने में कुछ स्पष्ट लाभ हैं जो किसी एक राज्यमें शासन-सुधारोंके लिए आन्दोलन करने में नहीं हो सकते। जब आप राजकोटके मामलेमें सक्रिय रूपसे व्यस्त थे, कितना अच्छा होता यदि उस समय आप इस विचारका प्रचार करते। अब भी इसके समर्थनमें आपका एक ही शब्द — किन्तु उसी स्थितिमें जब आप सामान्यतः इस विचारसे सहमत हों — इस विचारको एक दृढ़ आधार प्रदान करेगा।

यह महत्त्वपूर्ण पत्र[1] मुझे एबटाबादमें मिला था। संलग्न लेख लाहौरके 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित हुए थे और उनमें इस समस्यापर खास तौरसे विचार किया गया है। इन लेखोंमें[2] काठियावाड़की रियासतोंका दिलचस्प विश्लेषण है और बटलर-समितिकी[3] रिपोर्ट तथा वाइसरायकी हालकी एक घोषणाके[4] उद्धरणोंसे उसकी पुष्टि की गई है। फिलहाल मैं इस प्रस्तावका हृदयसे समर्थन करके ही सन्तोष मानता हूँ। छोटी-छोटी रियासतोंसे सहानुभूतिपूर्वक अगर इसके लिए कहा जाये, तो मुझे उनमें उतने विरोधका भय नहीं है जितनेकी आशंका उक्त पत्र-लेखकने व्यक्त की है। जल्दी ही उन्हें महसूस हो जायेगा कि किसी-न-किसी तरहके संघमें शामिल होने और प्रजाको अधिकारोंमें साझीदार बनाने में ही उनकी सुरक्षा है। खास बात यह है कि बिना भावावेशमें आये समस्या सामने रखी जाये और ऐसा लोकमत पैदा करने की कोशिश की जाये जिसका न तो जवाब दिया जा सके और न विरोध ही हो सके।

सेगाँव, वर्धा, १४ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १९-८-१९३९

१. आर० एल० हाडाकी ओरसे; देखिए पृ० ९३।

२. उद्धरणोंके लिए देखिए परिशिष्ट ४।

३. इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, जिल्द १, पृ० ४५९ के अनुसार हारकोर्ट बटलरकी अध्यक्षतामें गठित इस समितिने "सिफारिश की थी कि भारतीय रियासतों तथा ब्रिटिश भारत, दोनोंसे सम्बन्धित कुछ-एक महत्त्वपूर्ण मामलोंका निपटारा करने के लिए विशेष न्यायाधिकरण स्थापित किये जायें"।

४. यहाँ संकेत सम्भवतः नई दिल्लीमें १३ मार्च, १९३९ को नरेश-मण्डलके वार्षिक अधिवेशनमें दिये गये वाइसरायके भाषणकी ओर है।

१०७. टिप्पणियाँ

आर्यसमाज

आर्य-सत्याग्रहका अन्त[1] सुखद रहा। अबतक मैंने इस सत्याग्रहके सम्बन्धमें एक भी शब्द नही लिखा। विषय इतना नाजुक था कि सार्वजनिक रूपसे कुछ कहना या लिखना मुझे ठीक नही प्रतीत हुआ। देश यह जानता है कि सार्वजनिक या खानगी बातोंसे निपटने का मेरा अपना विशेष तरीका है। कुछ तो इसे अव्यावहारिक भी कहते हैं। इसलिए आर्य-सत्याग्रहपर मेरे मौनका यह मतलब नही लगाना चाहिए कि इस सघर्षमें मेरी गहरी दिलचस्पी नही थी। मैं इन दोनो आर्यसमाजी नेताओ और हैदराबादके मामलोंसे किसी भी तरहका सम्बन्ध रखनेवाले मुस्लिम नेताओ के सम्पर्कमें था।[2] निस्सन्देह, मैं मौलाना अबुल कलाम आजादकी रायसे काम कर रहा था। जहाँतक आर्यसमाजियोंकी माँगोका सम्बन्ध है, मेरी सहानुभूति उनके साथ थी। वे मुझे अत्यन्त सादी और प्राथमिक लगी। पर मैं अपने ही दृष्टिकोणसे उनके सत्याग्रह करने के विरुद्ध था। यह दृष्टिकोण मैंने उनको बता दिया था। लेकिन जब उन्होंने कहा कि यह सत्याग्रह मेरे नेतृत्वमें किये गये सत्याग्रहोसे यदि अच्छा नही तो बुरा भी नही है, तो मैं चकित रह गया। उन्होंने यह भी कहा कि आप हमसे यह आशा न रखें कि हम आपके नये तरीके या नई शर्तोको समझेंगे और उनके अनुसार काम करेंगे। मैंने महसूस किया कि मुझे इनको दलीलसे समझाने के सिवा और किसी प्रकारका दबाव डालने का अधिकार नही है। फिर जहाँतक सम्भव था, मैं निजाम-सरकारको भी परेशानीमें नही डालना चाहता था। इसलिए व्यक्तिगत रूपसे मुझे बड़ी खुशी है कि यह सघर्ष सद्भावनाके साथ समाप्त हो गया। निजाम-सरकार और आर्य-सभा[3] दोनो ही बधाईके पात्र हैं। आशा करता हूँ कि आर्यसमाजी लोग श्री घनश्यामसिंह गुप्तके शानदार वक्तव्यका उचित उत्तर देंगे। इसमें सन्देह नहीं कि संघर्षके दौरान बहुत कटुता पैदा हो गई है। यदि आर्यसमाजी लोग श्री गुप्तके अनुरोधकी भावनाके अनुसार काम करे और निजाम-सरकार अपनी विज्ञप्तिकी[4] भावनासे काम करे,

१. ८ अगस्तको

२. देखिए पृ० ५५ ।

३. आर्यसमाज की सर्वोच्च कार्यकारिणी।

४. द इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० १४ के अनुसार इस विज्ञप्तिमें "निजाम सरकार द्वारा १७ जुलाई, १९३९ को जारी विज्ञप्तिके मुद्दोंको, जिसमें धार्मिक स्वतन्त्रताके प्रश्नपर सरकारका दृष्टिकोण बताया गया था, स्पष्ट किया गया था। साथ ही, १९ जुलाई, १९३९ के असाधारण 'राजपत्र' में धार्मिक सुधारोंकी जो घोषणा की गई थी, उससे उठनेवाले कुछ सवालोंका भी स्पष्टीकरण किया गया था।"

तो कटुता दूर हो जायेगी और जहाँतक सीधी-सादी धार्मिक तथा सास्कृतिक स्वतंत्रताका सम्बन्ध है, फिरसे सघर्ष छेड़ने का कोई अवसर उपस्थित नही होगा।

पंजाब कांग्रेस

डॉ० सत्यपालने[1] सार्वजनिक जीवनसे हटने के लिए नाहक ही मेरा हवाला दिया है। अगर अन्तरात्माकी प्रेरणासे उन्होंने ऐसा किया है, तो उनका निर्णय ठीक है। लेकिन अगर लाला दुनीचन्दको सरल भावसे लिखे मेरे पोस्टकार्डके[2] कारण ऐसा किया है, तो उन्होंने बहुत बडी गलती की है। अव्वल तो वह पोस्टकार्ड पजाबके उस पूरे वातावरणके सम्बन्धमें था, जिसके फलस्वरूप न केवल इस या उस व्यक्तिके, बल्कि खुद मेरे खिलाफ अविश्वासकी भावना पैदा हो गई है। कोई आलोचक चाहे तो इसे कायरता कह सकता है। उसे चाहे कायरता कहा जाये या आत्मविश्वासका अभाव, पर जबतक मुझमें यह दोष मौजूद है, तबतक मैं मध्यस्थताके लिए बेकार हूँ। इसलिए डॉ० सत्यपालकी ओरसे जब सरदार मंगलसिंह और लुधियानाके अन्य मित्र वर्धा आये, तब मैंने उनसे कहा कि मैं तो इस कामके लिए बेकार हूँ, लेकिन कांग्रेस-सगठनके प्रधानकी हैसियतसे राजेन्द्र बाबू पंजाब जाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति है। राजेन्द्र बाबूने यह मजूर भी कर लिया है कि ज्यो ही स्वास्थ्य ठीक हुआ और दूसरे काम-काजसे फुरसत मिली त्योंही वे वहाँ जायेंगे। लेकिन मैंने तो इन मित्रोको सुझाया है कि अपने-आप अपनी मदद करने के समान कोई मदद नही है। अत उन्हें अपने प्रयत्नोंसे ही अपने घरको व्यवस्थित करना चाहिए। डॉ० सत्यपाल अगर अपनी अन्तरात्माकी प्रेरणासे सार्वजनिक जीवनसे नही हटे है, तो बहुत देरतक वे अपनेको उससे बाहर नही रख सकेंगे। खुद उनकी प्रकृति ही इस कृत्रिम आत्मदमनके विरुद्ध विद्रोह कर देगी। इसलिए मैं उससे अच्छा एक तरीका सुझाता हूँ। वह यह है कि वे दलबन्दीसे अलग हो जायें। पुराने झगडे-टटोको भूल जायें और पजाबमें सच्ची एकता पैदा करने के काममें जुट जायें। यह कैसे किया जा सकता है, सो मैं नही कह सकता। मेरे पास ऐसी कोई सामग्री भी नही है कि इसके लिए कोई कार्यक्रम बना सकूँ। खुद उन्हीको इसे तैयार करना चाहिए। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि वे अगर सचमुच चाहते है तो ऐसा कर सकते हैं। यह तो सब जानते है कि पजाबमें उनके अनुयायियोंकी काफी बडी सख्या है, वे एक अनवरत परिश्रम करनेवाले कार्यकर्त्ता है और उन्होंने काफी कुर्बानी की है। इसलिए पजाबके कांग्रेसियोंके बीच अगर कोई शान्ति स्थापित कर सकता है, तो निश्चय ही वह डॉ० सत्यपाल है। लेकिन चाहे वे हो या कोई और, जो कोई ऐसा करना चाहता है उसे अपनेको भूलकर अपने या अपने दलके हितके मुकाबले जनताके हितको पहले रखना चाहिए, क्योंकि वही वास्तवमें कांग्रेसका भी हित है। मेरी हिचकिचाहटके पीछे मेरी यह तीव्र भावना समझनी चाहिए कि पजाबके

१. पंजाब विधान-सभाके सदस्य
२. देखिए पृ० १५।

कांग्रेसियोंको मनमें कोई गाँठ रखे बगैर आपसमें हिलमिल जाना चाहिए और एक होकर काम करना चाहिए।

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका संघर्ष

दक्षिण आफ्रिकामें हमारे प्रवासी देश-भाइयोंको अनाक्रमक प्रतिरोधका सहारा चाहे लेना पड़े या न लेना पड़े, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर उन्होंने अपने आपसी झगड़े दूर न किये और एकमन होकर निःस्वार्थ भावसे काम न किया, तो वे बाजी जीत नहीं सकेंगे। अगर व्यक्तियोंने अपने स्वार्थ-साधनके लिए जातिके हित और सम्मानपर आँच आने दी, तो वे अपने संयुक्त अस्तित्वको कायम नहीं रख सकेंगे। इस समय वहाँ स्थानीय कांग्रेस और सत्याग्रहियोंके बीच फूट है। लगता है अधिकतर भारतीय सत्याग्रहियोंके साथ हैं। लेकिन दक्षिण आफ्रिकी कांग्रेसका नाम और प्रतिष्ठा गैर-सत्याग्रहियोंके साथ है। कांग्रेसके बही-खातों, कोष और आफिसोंके कब्जेके सवालपर मुकदमेबाजीकी सम्भावना है। मैं सत्याग्रहियोंको आगाह करता हूँ कि वे कानूनी जालमें न पड़ें। वे मेरे उदाहरणपर चलें। मेरे जमानेमें वहाँ कांग्रेसकी बराबरीकी संस्था ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन थी।[1] सत्याग्रहकी शुरुआतके समयसे ही मैंने देखा कि सभी भारतीय लड़ाईमें शरीक नहीं होंगे, न हो सकते हैं, भले ही उन सबकी उसके प्रति सहानुभूति हो, जैसी कि असलमें थी भी। यद्यपि मन्त्रीकी हैसियतसे मैं एसोसिएशनके नाम और प्रतिष्ठाका उपयोग निर्बाध रूपसे कर सकता था, फिर भी मैंने एक अलग ही संगठनकी स्थापनाकी और ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन सवैधानिक मर्यादाओंके अन्दर रहकर वह जो-कुछ करना चाहे, सो करने के लिए उसे स्वतन्त्र छोड़ दिया। इस व्यवस्थासे गैर-सत्याग्रहियोंको हानिसे बचाना सम्भव हो सका और सत्याग्रहियोंके प्रति उनकी सहानुभूति भी बनी रही और सत्याग्रहियोंको उस उलझनसे बचाया जा सका, जो यदि वे उसी संस्थाके सदस्य होते तो गैर-सत्याग्रहियो द्वारा जरूर पैदा की जाती। मौजूदा सत्याग्रही अपने खुदके तरीकोंसे काम करें, और अपनी शक्ति, बलिदान और कष्ट-सहनके द्वारा प्रतिष्ठासे भी अधिक ऊँची वस्तु प्राप्त करने पर भरोसा रखें। सत्याग्रहीको उदार हृदयका होना चाहिए, और उसे मात्र अपने साथियोंका ही नहीं, बल्कि अपने विरोधियोंतक का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। जो भी हक वह हासिल करेगा, सबके लिए करेगा। वह सभीका मित्र होता है, शत्रु किसीका नहीं। सफल अनाक्रामक प्रतिरोध या सत्याग्रहकी यह पहली शर्त है।

अकालसे सुरक्षा और शिक्षाके माध्यमके रूपमें खादी

वर्धामें इसी माह १२ तारीखको होनेवाली अखिल भारतीय चरखा संघकी बैठकमें और उसके बाद खादी-कार्यकर्त्ताओंने खादी-सम्बन्धी समस्याओंपर विस्तारसे चर्चा की है। खादीके तीन सुनिश्चित लाभ हैं, ऐसा दावा किया गया है। यह भारतके करोड़ों अधभूखे और अधनंगे लोगोंको, अन्य किसी भी कार्यकी अपेक्षा

१. नेटाल भारतीय कांग्रेस; देखिए खण्ड १।

अधिक बड़े पैमानेपर पूरक काम-धन्धा प्रदान करती है। यह कमसे-कम नुकसानके साथ अकाल-पीड़ित इलाकोंमें लोगोंको काम उपलब्ध कराती है, और यह भारतके बालक-बालिकाओंके लिए प्राथमिक स्तरपर शिक्षाका सर्वोत्तम माध्यम है।

लेकिन खादी अकालसे सुरक्षाके रूपमें या प्राथमिक स्तरपर शिक्षाके माध्यमके रूपमें सफल हो, इसकी एक निश्चित शर्त है। अकाल-पीड़ित क्षेत्रों और स्कूलोंमें तैयार की गई खादीका क्या किया जाना है? यदि खादी बेची नही जा सकती, तब तो वह उसी प्रकार बेकार है जिस प्रकार भारतके अनेक भागोंमें अकालके समय तुड़वाये गये पत्थर बेकार होते है। मैंने इन स्तम्भोंमें अक्सर कहा है कि अकाल-ग्रस्त क्षेत्रों और स्कूलोंमें तैयार की गई खादीको सरकार ले ले। यह चीज अखिल भारतीय चरखा सघकी मारफत अत्यन्त सरलतासे की जा सकती है, बशर्ते कि जिस प्रकार आज रेलवेमें लाभांश और अन्य चीजोंकी गारंटी सरकार देती है उसी प्रकारकी गारंटी सरकार खादीपर होनेवाले नुकसानके खिलाफ भी दे। मूल्यके लिहाजसे खादी निश्चय ही मिलके कपड़ेसे महँगी है। इसीलिए उसे केवल राष्ट्रप्रेमी और परोपकारी लोग ही खरीदते हैं। लेकिन जिन लोगोंके पास फालतू पैसे नही है वे लोग तो देशप्रेम या परोपकारकी भावनासे ऐसा करनेको आसानीसे प्रेरित नही होंगे। वे लोग तो सस्तीसे-सस्ती चीज ही लेंगे। इसलिए यह काम सरकारका है कि जो चीजें सामान्य लोगोंके कल्याणकी दृष्टिसे बिकनी चाहिए, ऐसी चीजोंसे प्रतियोगिता करनेवाली वस्तुओंपर भारी कर लगा दे या उनका बाजारमें आना ही रोक दे। मेरा खयाल है कि यह बात स्वयंसिद्ध मानी जा सकती है कि खादी ऐसी ही लोकोपकारी वस्तुओंकी श्रेणीमें आती है। कांग्रेसका आठ प्रान्तोंके शासनपर इतना नियन्त्रण तो है ही कि वह चाहे तो खादी और ऐसी ही वस्तुओंको संरक्षण दे सकती है। खादीके सवालपर जब कही कोई मतभेद नही है तब कोई कारण नही है कि अन्य प्रान्त भी खादी-जैसी चीजोंको संरक्षण प्रदान करने में कांग्रेस-नियन्त्रित प्रान्तोंका अनुकरण क्यों न करें। हममें से बहुत-से लोग जितनी जल्दी हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित होते देखना चाहते हैं, शायद वह उतनी जल्दी न हो सके। लेकिन जिस प्रकार हम समान रूपसे उसी हवामें साँस लेते हैं, उन्ही नदियों, कुओं अथवा नलोंका जल पीते हैं, उसी प्रकार हम यदि अपने मतभेदोंको दुर्भाग्यवश कायम ही रखना चाहते हैं, और उनका बहाना लेकर आपसमें लड़ना ही चाहते हैं तो भी, उन मतभेदोंके बावजूद जीवनके लिए आवश्यक अन्य वस्तुओंके बारेमें हम एक समान नीतिका निश्चय ही पालन कर सकते हैं। लेकिन अन्य प्रान्त अनुकरण करें या न करें, कांग्रेसी प्रान्तोंके लिए यह जरूरी है कि वे अखिल भारतीय चरखा सघ और अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सघके साथ परामर्श करें और एक ऐसा कार्यक्रम बनायें जिसकी मददसे मैंने जो कठिनाई बताई है, उस कठिनाईको अविलम्ब हल किया जा सके।

सेगांव, वर्धा, १४ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-८-१९३९

१०८. पत्र : जीवणजी डा० देसाईको

सेगाँव, वर्धा
१४ अगस्त, १९३९

भाई जीवणजी,

तुम मुझसे कैसे लेखकी अपेक्षा रखते हो? क्या मुझे छोड नहीं देना चाहिए? यदि मैं तुम्हारे सौंपे अन्य कार्य कर सकूँ तो भी तुम्हें मुझको इनाम देना चाहिए।

'आत्मकथा' के बारेमें समझा।[1]

बापूके आशीर्वाद

भाई जीवणजी
पो० ऑ० बॉक्स १०५
अहमदाबाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९९४७) से। सी० डब्ल्यू० ६९२१ से भी; सौजन्य · जीवणजी डा० देसाई

१०९. पत्र : रविशंकर शुक्लको[2]

१४ अगस्त, १९३९

भाई शुक्लजी,

इसका मैंने यह उत्तर दिया है[3] "मुझे आपका 'अल्टीमेटम' मिल गया है। आपको मालूम होना चाहिए कि आपके लिए सही रास्ता प्रधान मन्त्री या ससदीय बोर्डसे पूछना है।"

आप कुछ कहेंगे?

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य · प्यारेलाल

१. देखिए पृ० ५८।

२. यह पत्र मध्य प्रान्तके मुख्य मत्री रविशंकर शुक्लके एक पत्रके जवाबमें था। शुक्लजी ने गांधीजी को दलित वर्गोंकी सत्याग्रह समिति नागपुरके सचिव एच० जे० खाडेकर, एम० एल० ए० का एक तार भी पत्रके साथ भेजा था। खाडेकरने मध्य प्रान्तके मन्त्रिमण्डलमें एक हरिजन-मन्त्री रखने की माँग पन्द्रह दिनके अन्दर पूरी न किये जाने पर "सेगाँव सत्याग्रह" फिर शुरू करनेकी धमकी दी थी। देखिए खण्ड ६७, पृ० २५६-५७ और ३२३-२४ भी।

३. आगे उद्धरण-चिह्नोंमें दिये गये दो वाक्य अंग्रेजीमें हैं।

११०. पत्र : लक्ष्मीश्वर सिन्हाको

सेगाँव, वर्धा
१५ अगस्त, १९३९

प्रिय लक्ष्मीश्वर,[1]

मैं आशा करता हूँ कि तुम आर्यनायकम्से[2] सलाह किये बिना अन्तिम निर्णय नहीं करोगे। यदि किसी तरह भी सम्भव हो तो मैं तुम दोनोंसे एक साथ मिलना चाहूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १४७३) से, सौजन्य ए० के० सेन

१११. पत्र : डॉ० जीवराज एन० मेहताको

सेगाँव, वर्धा
१५ अगस्त, १९३९

प्रिय जीवराज,

आपका स्पष्टवादितापूर्ण पत्र आज ही मिला। पढकर मुझे बहुत खुशी हुई है। मैंने और कुछ सोचा ही न था। आपने जो लिखा है, सो मैं समझ गया हूँ। आपकी सलाहपर मैं कदाचित् पूरी तरह अमल नहीं करूँगा। यदि कोई पुरुष मालिश करे और मैं नग्नावस्थामें होऊँ तो इसपर क्या आपको आपत्ति होगी? यदि खुली हवामें लोग साथ-साथ सोयें तो इस बातको भी क्या आप स्वास्थ्यके लिए हानिकर मानेंगे? पुरुष और स्त्रीके एक साथ सोनेमें अनौचित्यके विचारको एक तरफ रखकर मेरे उपर्युक्त प्रश्नपर विचार करना।[3]

१. टीचर्स हैन्डबुक ऑफ बेसिक एज्युकेशन थ्रू कार्डबोर्ड मॉडेलिंगके लेखक। वे वर्धामें बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग सेंटरमें कार्य कर रहे थे और उन्होंने गांधीजी से सेंटरसे अलग होने की अनुमति माँगी थी।

२. गांधीजी के कहने पर हिन्दुस्तानी तालीमी संघके मंत्री ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम्ने लक्ष्मीश्वर सिन्हासे अनुरोध किया था कि जाकिर हुसेन समितिकी रिपोर्टमें शामिल करने के लिए बुनियादी दस्तकारियोंसे सम्बन्धित पाठ्यक्रमका एक मसौदा तैयार कर दें।

३. देखिए "पत्र: डॉ० जीवराज एन० मेहताको", पृ० ९०-९१ भी।

पाखानेमें पढ़ने आदिकी आदत वर्षोंसे पड़ी हुई है। इसे आप एक प्रकारका व्यसन मानें। मेरे पास अगर उपयोगी पाठ्यसामग्री रहती है तो मुझे खुलकर पाखाना आता है अन्यथा इसमें विघ्न पड़ता है। यह तो दयनीय स्थिति कही जायेगी लेकिन मैं इस स्थितिका भी लाभ उठा लेता हूँ। यदि आप कोई भय दिखाकर मेरी यह आदत छुड़वा दें तो बहुत अच्छा होगा।

मो० क० गांधीके वन्देमातरम्

मूल गुजरातीसे: जीवराज मेहता पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

११२. पत्र: अरोड़ासिंहको

१६ अगस्त, १९३९

मुझे पता चला है कि आप माननीय एम० वाई० नूरीके बारेमें जो शंका करते हैं, वह निराधार है।[1]

अंग्रेजीकी नकलसे. प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

११३. पत्र: लीलावती आसरको

१६ अगस्त, १९३९

चि० लीला,

तू देखेगी कि डॉक्टरका पत्र स्पष्ट है। वे मुझपर कोई कलंक नहीं लगा रहे हैं। इसलिए तेरे दु.खी होने का कोई कारण नहीं था। उन्होंने तेरे साथ हुई बातचीतका जो विवरण दिया है वह तो ठीक है न? मुझे समस्याको[2] किस तरह सुलझाना चाहिए, यह सवाल अलहदा है। इसकी चिन्ता तू मत कर।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५९३) से। सी० डब्ल्यू० ६५६५ से भी; सौजन्य: लीलावती आसर

१. अरोड़ासिंहने शिकायत की थी कि कांग्रेसी मन्त्री नूरीने बहुत ज्यादा धन इकट्ठा कर लिया है।
२. देखिए पृ० ९१-९२।

११४. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१६ अगस्त, १९३९

चि० कृ० च०,

हां, एक घंटे बैठो, तकली चलाओ, घूमने के लिये आना। बाकी जो मिले सो। हिंदी तो जो चाहे पेट-भरके तुमारे साथ पढे, भले तारावहिन भी।

बापु

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३२६) से।

११५. तार : जवाहरलाल नेहरूको

वर्धागंज

१८ अगस्त, १९३९

जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन
इलाहाबाद

ईश्वर करे तुम्हारी चीन-यात्रा सफल हो। ईश्वर तुम्हारी सहायता करे और तुम सकुशल वापस लौट पाओ। श्रीप्रकाश जो कर रहे हैं, उसपर दुःख है। उन्हें तुम्हारे वापस लौटने तक कोई कदम नहीं उठाना चाहिए।[1] तुम्हारा यदि कोई और विचार न हो तो संकट और युद्ध-प्रस्तावपर एक वक्तव्य[2] जारी करने का इरादा है। अपना चीनका पता भेजना। स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजीसे : गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. श्रीप्रकाश कांग्रेससे त्यागपत्र देना चाहते थे। देखिए "तार : श्रीप्रकाशको", पृ० १३९ भी।
२. देखिए "एक वक्तव्य", २०-९-१९३९।

११६. मुल्कराजके नाम तारका मसौदा[1]

१८ अगस्त, १९३९

कोप इम्पीरियल बैंक वर्धाकी मारफत बैंक ऑफ नागपुर वर्धा स्थानान्तरित कर दीजिए।

मूल अंग्रेजीसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

११७. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

सेगाँव, वर्धा
१८ अगस्त, १९३९

प्रिय सी० आर०,

आपने महादेव देसाईको कितना दुःख-भरा पत्र लिखा है! जब आपका मन साफ है, तब श्रीनिवास आयगर[2] कुछ भी कहें उससे क्या फर्क पड़ता है? आप अन्दर रहते हैं या बाहर, एक ही बात है। दोनों ही स्थितियोंमें आपको काम करना होगा।

उम्मीद है, लक्ष्मी[3] और बच्चे ठीक होंगे।

पंजाबके कैदियोंके सिलसिलेमें महादेव शिमला गया है।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०७५) से।

१. जलियाँवाला बाग स्मारक-निधि समितिके सचिव; देखिए खण्ड ६९, पृ० १२३, १७३ और १८१

२. ७ अगस्तको च० राजगोपालाचारीने मद्रास विधान परिषद्में असेम्बली द्वारा पास किया गया "मन्दिर-प्रवेश प्राधिकरण और क्षतिपूर्ति विधेयक" पेश किया था। टी० सी० श्रीनिवास आयंगरने यह मत व्यक्त किया था कि लोकमतकी जाँच करनेके कामको न्यासीपर नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए और सुझाव दिया था कि एक प्रातिनिधिक आयोग नियुक्त किया जाना चाहिए, जो मतदानसे भिन्न तरीकोंसे लोकमतका जायजा ले सके।

३. च० राजगोपालाचारीकी पुत्री

११८. पत्र : नारणदास गांधीको

सेगांव, वर्धा
१८ अगस्त, १९३९

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला है। यदि समय मिला तो फिर कुछ लिखूंगा। छगनलालसे[1] कहना कि मैं उसे पत्र नहीं लिख पाया। यदि अकालकी[2] स्थिति जारी रही तो मैं किसीको भेजने की तजवीज करूंगा। 'रेंटिया बारस' दिवसपर किसे भेजूं? क्या मीराबहन आये?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५६० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

११९. सन्देश : दलितवर्ग-सम्मेलनको[3]

[१९ अगस्त, १९३९ या उसके पूर्व][4]

मुझे सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए निमन्त्रण प्राप्त हुआ। मैं इसकी सफलताकी कामना करता हूं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २४-८-१९३९

१. छगनलाल जोशी

२. काठियावाड़के विभिन्न भागोंमें; देखिए पृ० ६१ भी।

३ और ४. साधन-सूत्रके अनुसार यह सन्देश अखिल भारतीय दलितवर्ग राष्ट्रीय लीग सम्मेलनमें पढ़ा गया था। सम्मेलन १९ अगस्तको दिल्लीमें संयुक्त प्रान्तके शिक्षा-मंत्रीके संसदीय सचिव, [illegible] सभापतित्वमें हुआ था।

१२०. पत्र : एन० एस० हर्डीकरको

सेगाँव, वर्धा
१९ अगस्त, १९३९

प्रिय डॉ० हर्डीकर,

तुम व्यर्थकी परेशानीमें पड़े हुए हो। हम बुरे समयसे गुजर रहे हैं, लेकिन यदि हम सीधे रास्तेपर चलते रहेंगे तो संकटके बादल अपने-आप छँट जायेंगे। मैंने जिस वक्तव्यपर हस्ताक्षर किये थे, उसपर मैं अब भी कायम हूँ। मुझे दुःख है कि उसके जो अंश तुमने भेजे हैं, उन्हें तोड़ा-मरोड़ा गया है। मेरी सलाह यही है कि उसका जवाब न दिया जाये। जहाँ आवश्यक हो वहीं झूठी बातका खण्डन करना और सत्यपर आग्रह रखना, फिर चाहे कुछ समयके लिए तुम्हें अलोकप्रिय ही क्यों न होना पड़े।

तुम्हारा,

अंग्रेजीकी नकलसे: एन० एस० हर्डीकर पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१२१. पत्र : ईश्वरशरणको

सेगाँव, वर्धा
१९ अगस्त, १९३९

प्रिय मुंशीजी,

आपका पत्र बडा रोचक है। मुझे खुशी है कि आप तेजीसे प्रगति कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०२००) से; सौजन्य: नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद

१२२. पत्र : वल्लभराम वैद्यको

नेगांव, वर्धा
१९ अगस्त, १९३९

भाई वल्लभराम,

तुम्हारा पत्र मिला। चन्दनबहन[1] यदि बिलकुल अच्छी हो जाये तो उससे मुझे बहुत संतोष होगा। यदि विजयाके[2] पिताका[3] उपचार करने की हिम्मत हो तो उनका बुलावा न आने पर भी तुम वहाँ पहुँचकर उन्हें देख लेना। विजया वराडमें होनी चाहिए। कुछ दिनोंमें उसका कोई पत्र नहीं मिला है।

बापूके आशीर्वाद

श्री वल्लभराम वैद्य
माडवीनी पोल, देवनी शेरी
अहमदाबाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २९०७) से; सौजन्य : वल्लभराम वैद्य

१२३. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

१९ अगस्त, १९३९

चि० अमृतलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं समझता हूँ कि विजया अभी वराडमें ही है। उसका फिर कोई पत्र नहीं आया। वैद्यका पत्र मैं वहीं भेज रहा हूँ।[4]

वह बम्बई गई ही नहीं। नारणभाई उसके रवाना होने से पहले बम्बई गये थे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९३) से।

1. चन्दन पारेख, सतीश कालेलकरकी धर्मपत्नी
2. और 3. विजयाबहन पंचोली और नारणभाई पटेल
4. देखिए पिछला शीर्षक भी

१२४. कतैयोंकी मजदूरी

अ० भा० चरखा संघने इसी १५ तारीखको वर्धामें हुई बैठकमें जो प्रस्ताव पास किया, उसका अनुवाद[1] नीचे दिया जा रहा है:

अ० भा० चरखा संघ पिछले चार वर्षोंसे अपना यह फर्ज समझ रहा है कि कत्तिनोंको दी जानेवाली मजूरीमें क्रमशः वृद्धि की जाये। इस कर्त्तव्यकी पूर्तिके उद्देश्यसे संघकी महाराष्ट्र-शाखाने अन्य सब शाखाओंकी बनिस्बत सबसे ज्यादा मजूरी दी है। लेकिन उसके इस प्रयोगका नतीजा यह हुआ कि खादी इस बोझको सँभालने में असमर्थ साबित हुई है और उसकी बिक्री काफी घट गई है। मजूरीमें वृद्धिका यह परिणाम तो न होना चाहिए कि बेरोजगारोंको काम देने की खादीकी क्षमतामें ही कमी हो जाये। मौजूदा परिस्थितिको देखते हुए ऐसा लगता है कि कत्तिनोंको आठ घंटेकी कताईके लिए तीन आनेसे अधिक देने के आग्रहको फिलहाल स्थगित कर देना ही ठीक है। क्योंकि बेकारी यहाँ बहुत है। ऐसी कत्तिनोंकी बहुत काफी संख्या मौजूद है जो आठ घंटेकी कताईका काम एक आना रोजसे कमपर भी करने को तैयार हैं और दूसरे लोग अ० भा० चरखा संघ द्वारा रखे गये सिद्धान्तको नुकसान पहुँचाकर भी उन्हें एक आना रोजकी कम मजूरीपर काम देने को तैयार हैं। अतः संघ उनके लिए भी कामकी व्यवस्था करे, इसके सिवा इस बुराईके मुकाबलेका कोई दूसरा तरीका नहीं मालूम पड़ता। इस प्रकार संघके दो कर्त्तव्य हैं। एक तो यह कि कत्तिनोंकी मजूरी बढ़ाकर आठ घंटेको आठ आने रोज कर दी जाये, और दूसरा यह कि बेरोजगार स्त्रियोंके लिए कामकी तलाश की जाये। इन दोनों कर्त्तव्योंका एकसाथ पालन करने से पहले कुछ वक्त भी लगेगा।

इसके अलावा, देशके कुछ भागोंमें अकालका भी खतरा है। चरखा ऐसे वक्त सबसे ज्यादा सहायक सिद्ध हो रहा है। लेकिन सवाल यह उठता है कि क्या मजूरीकी दर तीन आनेसे भी कम कर देना आवश्यक है? एक तीसरी समस्या वर्धा-शिक्षण-योजनाके अनुसार चलनेवाले स्कूलोंमें तैयार होनेवाले सूतकी पैदा होती है।

इन सब बातोंको मद्देनजर रखकर संघ निम्नलिखित परिणामपर पहुँचा है:

१. यहाँ २६-८-१९३९ के हरिजनसेवकमें उपलब्ध प्रस्तावका हिन्दी पाठ उद्धृत किया जा रहा है।

आम तौरपर निश्चित प्रमाणका काम आठ घंटे करने पर तीन आने मजूरी देने की दरमें फिलहाल कोई कमी न की जाये। लेकिन इस बातकी छूट होनी चाहिए कि कोई शाखा चाहे तो इससे अधिक मजूरी भी दे सके, बशर्ते कि अधिक मजूरीवाले मालको बेचने की जिम्मेदारी वह खुद ही उठाये। दुर्भिक्ष-पीड़ित इलाकोंमें कारीगरोंकी मजूरी कम करने की आवश्यकता हो तो मन्त्रीकी पहलेसे स्वीकृति लेकर ऐसा किया जाये। दुर्भिक्ष-पीड़ित इलाकों और वर्धा शिक्षण-योजनाके अनुसार चलनेवाले स्कूलोंमें तैयार होनेवाली खादी सम्बन्धित सरकारोंसे संघको ले लेनी चाहिए, बशर्ते कि ऐसी खादीको खपाने में जो घाटा हो उसको वे सरकारें बरदाश्त करें।

यह एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव है। यह उस गतिको धीमा करनेका संकेत है जिस गतिसे मैं संघको इस बातके लिए प्रेरित कर रहा था कि कत्तिनोंकी मजूरी बढ़ाते हुए उन्हें आठ घंटेकी कताईके आठ आने दिये जायें। मैं यह जानता था कि एक छलांगमें इस लक्ष्यपर नहीं पहुँचा जा सकता। फिर भी मैंने इस आशाको पोसा था कि हर कुछ मासमें मजूरीमें कुछ क्रमिक वृद्धि होगी। लेकिन विभिन्न शाखाओंसे आनेवाली रिपोर्टों, और मजूरी बढ़ाते जानेकी ऊँची आशाके साथ श्री विनोबाकी देखरेखमें श्री जाजूजीने[1] मेरी आँखोंके सामने ही जो काम शुरू किया था उनकी आंशिक असफलताने मेरी आँखें खोल दी हैं और यह कठोर और निर्दय सत्य प्रकट कर दिया है कि यह देश इतना गरीब है कि लाखों स्त्रियोंको आठ घंटे कामकी आठ आने रोज मजदूरी नहीं दे सकता। आम तौरपर देहातोंमें कहीं भी देहाती मजदूरों या कारीगरोंको आठ घंटे कामकी आठ आने रोज मजूरी नहीं मिलती। जबतक सभी वर्गवालोंको इतनी मजूरी न मिले, तबतक कत्तिनें भी आठ आने नहीं कमा सकतीं। और जबतक परिस्थितिमें कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन न हो, सभी लोगोंको आठ आने रोज मजूरी देने लायक पैसा खरीदार वर्गके पास नहीं है। सेनाका कुचलनेवाला और अनुत्पादक भार देशको बिलकुल निर्धन बनाता जा रहा है। फिर, सरकारी अधिकारियोंको असाधारण रूपसे मिलनेवाली वे बड़ी-बड़ी तनख्वाहें और पेंशनें हैं, वे भी विदेशोंमें ही खर्च होती हैं। इसके अलावा, इस भयकर गरीबीके कुछ अन्य आन्तरिक कारण भी हैं। लेकिन मुझे इस लेखके विषयसे बाहर नहीं जाना चाहिए।

कारण चाहे जो हो, खादी-कार्यकर्ताओंने हमें इस दुःखद बातका भान कराया है कि खादी खरीदनेवाले मध्यम श्रेणीके लोग चाहे जितना चाहें तो भी उनके पास इतना पैसा नहीं है कि वे उन महँगे मोल खादी खरीद सकें, जो मजदूरीमें तीन आनेसे अधिक वृद्धि करने के कारण जरूरी हो गया है। उनका कहना है कि कमसे-कम फिलहाल तो तीन आने ही हद है। उपर्युक्त प्रस्ताव इसी दुःखद सत्यकी स्वीकृति है।

1. श्रीकृष्णदास जाजू

लेकिन अगर प्रान्तीय सरकारें मदद न करें तो तीन आनेकी दर भी कायम नही रखी जा सकती। प्रान्तीय सरकारें कानून बनाकर और प्रशासनिक स्तरपर प्रयत्न करके भी ऐसा कर सकती हैं। लेकिन ऐसा वे तभी कर सकती हैं जब चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ और हिन्दुस्तानी तालीमी संघका इस्तेमाल अपनी ही विशेषज्ञ, नि:शुल्क और स्वयंसेवी एजेंसियोकी तरह करें। यह बात मैं इस सम्भावनाके साथ उनके सामने रखता हूँ कि इस तरह भूखों मरते हुए ग्रामवासियोंको उनके अवकाशके समय काम देकर उनको कई लाख रुपयेकी मदद पहुँचाई जा सकेगी। लेकिन अगर ग्रामीणों द्वारा तैयार किये गये मालका इस्तेमाल आम नही होगा, तो इस दिशामें कोई प्रगति नही हो सकती।

सेगाँव, २० अगस्त, १९३९
[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-८-१९३९

१२५. टिप्पणियाँ

'जरायमपेशा जातियों' के बीच

बीजापुरके निकट 'जरायमपेशा जातियों' की जो बस्ती है वहाँकी स्त्रियो द्वारा तैयार की हुई कुछ सुन्दर पूनियाँ और वैसा ही अच्छा उनका काता हुआ सूत अ० भा० चरखा संघकी कर्नाटक-शाखाके श्री एच० एस० कौजलगीने मेरे पास भेजा है और लिखा है:

> ये स्त्रियाँ खुद जरायमपेशा नहीं हैं, बल्कि इस बस्तीमें कुछ प्रतिबन्धोंके साथ रखे गये पुराने अभ्यस्त जरायमपेशा लोगोंकी नजदीकी आश्रित हैं। बस्तीके मैनेजरने अ० भा० चरखा संघकी कर्नाटक शाखासे कहा कि वह बस्तीके अन्दर चरखा दाखिल कराने के लिए प्रयत्न करे। चूँकि इन स्त्रियोंके लिए चरखा एक नई चीज थी, इसलिए उनके मनमें किसी खास तरहके चरखे या पिंजाईके सम्बन्धमें कोई आग्रह नहीं था। इसलिए हमने सोचा कि यदि हम कातने और पींजने की आंध्र-पद्धतिसे उन्हें सिखायेंगे तो उससे कत्तिनोंको बहुत लाभ होगा। १९ जुलाईको हमने काम शुरू किया। पाँच स्त्रियाँ वर्गमें आती हैं। वे भाट, कोरवी और वडर जातियोंकी स्त्रियाँ हैं। उन्हें कताईकी तालीमके दौरान डेढ़ आना रोज मजूरी दी जाती है। अब वे तीन घंटेमें ५०० गज सूत कात सकती हैं। हम जयवन्त नामक रुईका इस्तेमाल करते हैं और जो सूत काता जाता है वह ३० से ४० नम्बरतक का होता है। हम अगस्तके अन्ततक यह वर्ग चलायेंगे, जिसके बाद हम उन्हें रुई देकर उनसे सूत खरीदा करेंगे। अगर हमारा यह प्रयोग सफल

रहा तो हम अन्य जरायमपेशा बस्तियोंमें भी कताईकी तालीम शुरू करेंगे। पूनाके पिछड़े वर्गके अधिकारी श्री ध्रुव इस काममें बड़ा उत्साह रखते हैं।

अगस्तके अन्तमें हम कताई-प्रतियोगिताका आयोजन कर रहे हैं। जो स्त्रियां एक घंटेमें ३० नम्बरका तीन सौ गजसे अधिक सूत कातेंगी उन सबको हम उपहारमें साड़ियां प्रदान करेंगे। चूंकि ये स्त्रियां फुर्तीली और समझदार हैं, अतः मुमकिन है कि पाँचों कत्तिनोंको एक-एक साड़ी मिले।

यह एक अच्छी शुरुआत है। यदि प्रान्तीय सरकारें अ० भा० चरखा संघ, अ० भा० ग्रामोद्योग संघ और हिन्दुस्तानी तालीमी संघ इन तीनों विशेषज्ञ और रचनात्मक संस्थाओंका पूरा-पूरा फायदा उठायें तो वे कमसे-कम शक्ति और पैसा खर्च करके अधिकतम रचनात्मक कार्य करवा सकती हैं। लेकिन इन तीनों संस्थाओं की प्रवृत्तियोंमें तैयार हुए मालकी बिक्रीकी समस्याका उन्हें निस्सन्देह सामना करना पड़ेगा। ऐसा प्रश्न इन अभागे देशमें ही पैदा होता है। दूसरे देशोंमें तो राज्य द्वारा अथवा राज्यके नियंत्रणमें तैयार होनेवाले मालका राज्यके लोग इस्तेमाल करें, ऐसा प्रबन्ध करना खुद राज्यका ही काम होता है। प्रान्तीय सरकारोंके लिए स्थितिको सुधारने का — कुछ हदतक ही सही — यह अच्छा अवसर है।

सेगाँव, २० अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-८-१९३९

१२६. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

वर्धा
२० अगस्त, १९३९

चि० विजया,

तू आजकल पत्र नहीं लिखती, यह तू जुल्म करती है। मैंने कल जो पत्र भेजा था यदि वह मिल गया है, तब तो ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११२)से। सी० डब्ल्यू० ४६०४ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

१२७. ग्राहक चाहिए

निम्नलिखित अंश गांधी आश्रम, मेरठके एक पत्रसे लिया गया है:

> अ० भा० चरखा संघ आज तीन लाखसे अधिक आदमियोंको काम दे रहा है। संघका खादी-कार्य १३,००० गाँवोंमें फैला हुआ है। राष्ट्र-निर्माणकी इस महान् प्रवृत्तिमें २,५७१ कार्यकर्त्ता लगे हुए हैं। इसमें संयुक्त प्रान्तका योगदान कुछ कम नहीं है। हमारे रजिस्टरोंमें ४०,००० से अधिक कातनेवालोंके नाम दर्ज हैं। अन्य कारीगरों — जुलाहों, धोबियों, पींजनेवालों आदि — की संख्या ४,७८० है। तकरीबन ३,०४३ गाँवोंमें हमारी प्रवृत्तियां चल रही हैं, और ६०० कार्यकर्त्ता प्रान्तके विभिन्न भागोंमें खादीका सन्देश पहुँचा रहे हैं। इससे राष्ट्रकी समस्त रचनात्मक शक्तियाँ सक्रिय हो उठी हैं। हम लोग सहयोग करना, योजनाएँ बनाना और संगठित होना और निर्माण करना सीखते हैं। बताया जाता है कि पंडित नेहरूने कार्य-समितिकी बैठकमें कहा है कि चरखा हमारे कपड़ेकी आजकी सारी जरूरतोंको पूरा नहीं कर सकता। मुझे लगता है कि यह कथन चरखेकी संभावनाका ठीक मूल्यांकन नहीं करता। हमारे जो अनुभव हैं उनके आधारपर मैं यह कह सकता हूँ कि हम इस समस्याकी परिधितक भी नहीं छू सके हैं। हम जो खादी बनाते हैं यदि उसके लिए तैयार मंडी मिल जाये, तो हम बहुत ही कम अर्सेमें हजार गुनी ज्यादा खादी तैयार कर सकते हैं।

मैंने वह अंश छोड़ दिया है जिसमें लेखकने बिक्रीके सम्बन्धमें अपील की है। मैं आशा करता हूँ कि उनके प्रयत्नको उचित सफलता मिलेगी। लेकिन यहाँ मैं इस बातपर विचार करना चाहता हूँ कि उत्पादनके साथ बिक्रीका मेल न बैठने का क्या कारण है। प्रचार-कार्यका भी निःसन्देह अपना स्थान है, किन्तु प्रचारसे भी ज्यादा जरूरत वैज्ञानिक शोध की है। इसमें सन्देह नही कि हमारे यहाँ प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति औसतन १५ गज कपड़ा इस्तेमालमें आता है। इसमें भी कोई सन्देह नही कि इस कपड़ेपर देशका प्रतिवर्ष करीब १०० करोड़ रुपया खर्च होता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि ३५ करोड़की जनसंख्यामें प्रति व्यक्ति ३ रुपयेसे कुछ कम कपड़ेका खर्च आता है। यह बड़ी आसानीसे कहा जा सकता है कि अगर सरकारकी ओरसे खादीको संरक्षण मिल जाये, तो इसका बिक्रीपर प्रभाव पड़ सकता है। मेरी रायमें यह स्वयंसिद्ध बात है कि खादी संरक्षणकी[1] पात्र है। लेकिन क्या

१. देखिए "टिप्पणियाँ" का उपशीर्षक "अकालसे सुरक्षा और शिक्षाके माध्यमके रूपमें खादी", पृ० १०२ भी।

गार्टीके कार्यकर्ताओंने, जिनमें योग्यता है, इस बातका पता लगाया है कि सरक्षण बिना किसी बढ़ाने के लिए हमने अपनी शक्ति-भर प्रयत्न कर लिया है? इसमे दो बाधाएँ हैं। मिलका बना कपड़ा खादीसे अधिक सस्ता कहा जाता है, और वह कई रंगोंका, कई डिजाइनोंका होता है और उसमें अपनी एक सफाई होती है। ये बातें खादीमें नही होतीं। जहाँतक डिजाइनोका सवाल है, यह कमी काफी हदतक पूरी कर दी गई है, पर शायद अब भी बहुत-कुछ करने को बाकी है। खादीकी सम्भवत कुछ सीमा होनी ही चाहिए, जिससे आगे वह नही जा सकती। यदि ऐसी कोई सीमा है, तो हमें स्पष्टतया उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। पर मुझे भय यह है कि दामोंके सम्बन्धमें अभी पर्याप्त खोज नही की गई है। श्री कुमारप्पाने चरखेके विषयमे आश्चर्यजनक दावा पेश किया है। अपने दावेके पक्षमें उन्होंने आँकड़े भी दिये है।[1] लेकिन साधारण मनुष्य तो यही पूछेगा 'तो फिर खादी मिलके कपड़ेसे महँगी क्यों है?' इस प्रश्नका सन्तोषजनक उत्तर देना होगा। इसके लिए आम तौरपर जो उत्तर दिये जाते हैं, उन्हें मैं सन्तोषजनक नही समझूँगा। जो उत्तर दिये जायें, उनकी पूरी-पूरी जाँच की जानी चाहिए और जबतक खादी अपनी स्वाभाविक महत्ता प्राप्त नहीं कर लेती तबतक मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त करने के उपाय ढूंढ निकालने चाहिए और उनका अनुसरण किया जाना चाहिए।

यह बड़ी शर्मकी बात है कि हम जो अपनी जरूरतसे ज्यादा कपास पैदा करते हैं, उसे अपनी जरूरतके वस्त्र बनवाने के लिए बाहर भेजें। यह भी हमारे लिए उतनी ही शर्मकी बात है कि हम, जबकि हमारे गाँवोंमें बेशुमार बेकार मजदूर मिल सकते हैं और माल तैयार करने के लिए हमें जितने साधनोंकी जरूरत हो वे सब भी गाँवोंमें प्राप्त कर सकते है, अपनी वस्त्र-सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए अपनी कपास शहरोंकी मिलोंमें भेजते हैं। इस शर्मका इतिहास हमें मालूम है। पर अभी तक जनताकी देश-प्रेमकी भावनाको जगाकर इस दिशामें उससे थोड़ा-बहुत करवाने के अतिरिक्त हम इस दुहरी शर्मको दूर करने का कोई निश्चित मार्ग नही खोज पाये हैं। जनताकी ओरसे हमें तो हमारी अपीलका उत्साहवर्धक उत्तर मिला है। पर हालका प्रस्ताव जाहिर करता है कि जनताने खादीको आजतक जो आश्रय दिया है वह उसकी सामर्थ्यकी सीमा है। हमें तबतक सन्तोष नही होना चाहिए जबतक कि खादी सबके पहननें की चीज न बन जाये। हो सकता है कि अपनी खोजके दौरान हमें यह मालूम हो — जैसा कि कुछ लोगोका कहना भी है — कि खादी कभी आर्थिक दृष्टिसे महत्त्वकी वस्तु नही बन सकती। यदि ऐसा हो तो हमारे स्वाभिमानको चाहे कितनी ही ठेस क्यो न पहुँचे और हम जिन अवधारणाओंको इतने विश्वासके साथ आगे रखते आये हैं, हमें भले ही उन्हें छोड़ देना पड़े फिर भी उसे स्वीकार करने में हमे कोई हिचकिचाहट नहीं होनी

1. देखिए पृ० ८२-८३।

चाहिए। किन्तु हम तबतक यह स्वीकार नही कर सकते जबतक मेरे द्वारा उठाये सवालका स्पष्ट उत्तर ढूँढ़ने के लिए हम हर सम्भव प्रयत्न नही कर लेते।

सेगाँव, २१ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-८-१९३९

१२८. टिप्पणियाँ

सिर्फ मद्य-निषेध ही क्यों?

एक सज्जन मुझे लिखते हैं:

> मद्य-निषेधपर आपने इतना जोर दिया यह तो ठीक ही किया। पर क्या आप समझते हैं कि शेयर बाजारमें होनेवाले सट्टे, 'आँक-फरक', जुएके अड्डों, घुडदौड़ और सिनेमासे लोगोंकी नैतिकता और उनकी जेबोको शराबकी अपेक्षा कम नुकसान होता है? मैंने सुना है कि आप कभी सिनेमा देखने नही गये हैं। मैं कहता हूँ कि आप, चाहे एक ही बार हो, जरूर जायें और यदि आप जायेंगे तो आपको चित्रपटपर और दर्शकोंके बीच ऐसी बातें दिखाई देंगी जिनसे आप सोचमें पड़ जायेंगे। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि मैंने जिन चीजोका जिक्र किया है, वे चीजें भी शराबकी तरह ही ध्यान देने योग्य हैं।

यह गुजरातीमें लिखे हुए एक काफी लम्बे आरोप-पत्रका सार है। इस पत्रमें और भी बहुत-सी बाते है। लेकिन उसके प्रासगिक अशोको ही मैंने यहाँ अपने शब्दोमें दिया है।

मुझे पत्र-प्रेषककी इस बातसे सहमत होने में कोई कठिनाई नही है कि जिन बुराइयोका उन्होंने नाम लिया है, वे गम्भीर है और उनकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। लेकिन बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बाँधे? अगर मै ऐसा कर सकता, तो कभी का मैंने ऐसा कर दिया होता। लेकिन मेरी तो अपनी मर्यादाएँ है। अभी हाल ही में मै यह बतला चुका हूँ[1] कि जैसा कुछ लोग समझते हैं वैसा सर्वसमर्थ मैं नही हूँ। शराबकी बुराईको तो इस देशके लोगोने बुराई मान लिया है। लेकिन दूसरी बुराइयाँ तो कमोवेश फैशनकी चीज बन रही है। यदि मैं शेयरोंके सट्टेके खिलाफ आन्दोलन उठाता हूँ तो मैं स्वेच्छासे और नियमित रूपसे चन्दा देनेवाले कुछ लोगोसे हाथ धो बैठता हूँ। और यदि घुडदौड और वहाँ जो घृणित जुआ होता है, उसके खिलाफ लोगोको भडकाता हूँ तो वाइसरायसे लेकर नीचेतक सब बडे-बडे आदमी मेरे खिलाफ कमर कसकर तैयार हो जायेंगे। और जिन लोगोंके कारण घुड़दौड़

१. देखिए पृ० ७३-७६।

के लिए विशेष रेलगाड़ियाँ चलती हैं उनका क्या होगा? और यदि मैं सिनेमाओंके खिलाफ जिहाद बोलता हूँ, तो शिक्षाशास्त्रियों और सुधारकोंकी बिरादरीसे निकाल दिया जाऊँगा। उन्होंने तो अकसर ऐसी दलीलें देकर मुझे भी अपने पक्षमें करने की कोशिश की है कि सिनेमा शिक्षाका बड़ा अच्छा साधन है और पश्चिममें तो सब नया सुधारक लोग भी उसे बराबर अधिकाधिक प्रोत्साहन देते हैं। इसलिए जो रवैया मैंने शराबखोरीके प्रति अपनाया है यदि वही इन सब बुराइयोंके प्रति भी अपनाऊँ और उनके खिलाफ धरनेका आयोजन करूँ, तो मुझे बिरादरीसे अलग कर दिया जायेगा, मेरा महात्मापन मुझसे छिन जायेगा और अपनी जान भी, जिसकी निस्सन्देह मेरे जीवनकी इस अवस्थामें बहुत कम कीमत है, गँवा दूँगा। लेकिन चूँकि मैं यह तिहरी हानि बरदाश्त नहीं करना चाहता, अतः मैं इन पत्र-प्रेषक तथा इन-जैसे दूसरे लोगोंको यह समझने दूँगा कि मैं एक स्पष्ट कर्त्तव्यसे जी चुरा रहा हूँ। इन बुराइयोंको मैं जानता हूँ। पर मैं उम्मीद करता हूँ कि मुझसे भी बड़े सुधारक इनसे निपटेंगे। मेरे लिए तो एक कदम ही काफी है।

खादीमें धोखाधड़ी

अखिल भारतीय चरखा संघकी पंजाब-शाखाके मंत्री लिखते हैं:

> मैं अलग पार्सलसे बटाला खादीका एक विज्ञापन भेज रहा हूँ। ये १९३७ के अन्ततक हमारे प्रमाणित केन्द्र थे। उसके बाद उनके द्वारा प्रयोगमें लाये जानेवाले सूतकी शुद्धताको लेकर कुछ शंका उत्पन्न हुई। इसपर मामलेकी जाँच की गई और अहमदाबादके कार्यालयने निर्णय किया कि इन को अपने केन्द्रमें अखिल भारतीय चरखा संघका एक निरीक्षक रखना होगा, जो यह देखेगा कि केन्द्रमें मिलके बने सूतका उपयोग न किया जाये। उन्होंने इस निर्णयको मानने से इन्कार कर दिया, जिसके फलस्वरूप उनका प्रमाण-पत्र रद्द कर दिया गया। अब वे हमारे उस प्रमाण-पत्रका नाजायज फायदा उठा रहे हैं जो हमने उन्हें उस समय दिया था जब वे हमारे प्रमाणित केन्द्रके रूपमें कार्य कर रहे थे। वे यह नहीं कहते कि उनका प्रमाण-पत्र रद्द कर दिया गया है, बल्कि वे जनताको अब भी अपना पुराना प्रमाण-पत्र दिखाते हैं और इस तरह उसे यह आभास देते हैं कि उन्हें अब भी महात्मा गांधी, श्री जमनालाल बजाज और अन्य माननीय नेताओंका संरक्षण प्राप्त है। मुझे लगता है कि इस धारणाको दूर करने के लिए कुछ प्रयत्न किया जाना चाहिए।

यहाँ मैंने विज्ञापन नहीं दिया है। पत्रमें जिस तरहकी कार्रवाईकी शिकायत की गई है, वह खादीके सम्बन्धमें स्पष्टतः धोखाधड़ीका मामला है। इस दिशामें सम्भवतः अदालती कार्रवाई की जा सकती है। यद्यपि चरखा संघ खादीमें धोखा न हो, इसके सम्बन्धमें जनमतपर भरोसा करने की नीतिका अनुसरण करता रहा है

तथापि गलत काम करनेवालों को यह समझ लेना चाहिए कि उसने आवश्यकता पड़ने पर कानूनका सहारा न लेने की कोई कसम नही खाई है। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग रद्द प्रमाण-पत्रका उपयोग कर रहे हैं, वे विवेकपूर्वक उसका उपयोग करना छोड़ देंगे और प्रमाण-पत्र चरखा संघको वापस दे देंगे और चरखा संघके नियमोंको भंग करके नकली खादीका व्यापार नही करेंगे। पंजाब-शाखाके मन्त्रीको चाहिए कि वे गलत काम करनेवाले व्यक्तिको रद्द प्रमाण-पत्रका उपयोग करने के विरुद्ध चेतावनी दे दें और केन्द्रीय कार्यालयको उसके परिणामसे अवगत करायें।

सेगाँव, २१ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-८-१९३९

१२९. पत्र : एम० मुजीबको

सेगाँव, वर्धा
२१ अगस्त, १९३९

प्रिय मुजीब,

जमीयत-उल-उलेमाने जो पुस्तिका निकाली है क्या तुमने उसे पढ़ा है? उन्होंने इस पुस्तिकाकी एक प्रति कार्य-समितिको भेजी थी। राजेन्द्र बाबूने उसमें से कुछ अंश पढ़कर सुनाये। उनमें से एकमें यह कहकर वर्धा-योजनापर आक्षेप किया गया है कि यह कहना गलत है कि अहिंसा इस्लामका अनिवार्य अंग है और इस्लाम प्रसिद्ध धर्मोंके प्रति समान रूपसे आदर-भाव रखना सिखाता है तथा वह सहिष्णुताकी शिक्षा देता है। एक अन्य व्यक्तिने सुझाव दिया कि हिन्दुस्तानी तो उर्दूका ही पर्यायवाची शब्द है।

यदि तुमने यह पुस्तिका नही पढ़ी है तो इसे प्राप्त करो और यदि पुस्तिका तुम्हारे पास है तो उन उद्धरणोंके सम्बन्धमें अपनी प्रतिक्रिया लिख भेजो जिन्हें मैंने अपने शब्दोंमें तुम्हें लिखा है। मेरे पास मूल पुस्तिका नही है।

तुम अपना खर्च कैसे चला रहे हो? और कैसा चल रहा है? क्या जामियामें छात्रोंकी उपस्थितिपर भी कुछ असर पड़ा है? जाकिर [हुसैन]की प्रगति कैसी है?

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १४६५) से।

१३०. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

सेगाँव, वर्धा
२१ अगस्त, १९३९

चि० अमृतलाल,

काकाका पत्र इसके साथ है। अपने बोझको अच्छी तरहसे उठाना। मैं तो यह समझता हूँ कि काकाको सफर करना बन्द कर देना चाहिए। मैं तो आदेश द्वारा ही उन्हें रोक सकता हूँ, लेकिन तुम समझा-बुझाकर, विनयपूर्वक ऐसा कर सकते हो। वे जो लिखते हैं बिलकुल सच है। फर्क इतना ही है कि वे हमेशा बालक-जैसे ही रहे हैं, बुढ़ापेके कारण ऐसे नहीं हो गये हैं। विजयाको तुम हमेशासे जैसे लिखते आये हो वैसे ही लिखते रहना और उसने सुझाव दिया था कि तुम्हें नारणभाईका पूरा नाम लिखना चाहिए। उसका कोई पत्र नहीं आया। इससे लगता है कि वह परेशानीमें है। लेकिन उससे उबर जायेगी। आज-कलमें उसका पत्र जरूर आयेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९४) से।

१३१. पत्र : संयुक्ता गांधीको

सेगाँव, वर्धा
२१ अगस्त, १९३९

चि० सयुक्ता,

तुझे पत्र क्यों लिखूँ? क्या जयसुखलालमें तेरा समावेश नहीं हो जाता? नहीं, अब तुझमें जयसुखलालका समावेश नहीं करता। तू जितनी सेवा कर रही है उन सबसे तुझे अवश्य लाभ होगा। कनुम्बाको तो नया जीवन मिल रहा है। देखा जाये, अब वह क्या-क्या पराक्रम दिखाती है?

जयसुखलाल वहाँ जो प्रयत्न कर सकता है सो करे और फिलहाल उससे सन्तुष्ट रहे।[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. देखिए पृ० ५६ भी।

१३२. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेगाँव, वर्धा
२१ अगस्त, १९३९

चि० मणिलाल और सुशीला,

अब तुम लोग मेरे पत्र न आने की शिकायत नहीं कर सकते। लेकिन संघर्षको लेकर अवश्य कर सकते हो। याद रखना कि तुम दोनोंको वहाँ अपना सर्वस्व लुटा देना होगा। संघर्ष छिड़ा तो तुरन्त बन्द नहीं होगा। बच्चोंका क्या करोगे? तुमने सब बातोंपर विचार कर लिया होगा। यदि उन्हें वहाँ नहीं रखा जा सकता तो कदाचित् सुशीला संघर्षसे अलग रहेगी और बच्चोंको यहाँ ले आयेगी अथवा यदि उसमें हिम्मत हुई तो वह अकेले ही 'इंडियन ओपिनियन' को चलायेगी। इस तरह इन सब बातोंपर पहलेसे ही सोच-विचार कर लेना।

यहाँ सब कुशल है। और अब यहाँके बारेमें जानने के लिए तुम्हें समय ही कहाँ मिल पाता होगा?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०२) से।

१३३. पत्र : जमनालाल बजाजको

सेगाँव
२१ अगस्त, १९३९

चि० जमनालाल,

पंजाब नेशनल बैंकके बारेमें तुम जो-कुछ कहते हो, उसके लिए क्या करना है? मैं नागपुर [बैंक] के विषयमें पहले ही सूचना भेज चुका हूँ।[1]

बापू

मूल गुजरातीसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. बापू-स्मरणसे; देखिए "मुल्कराजके नाम तारका मसौदा", पृ० १०८ भी।

१३४. पत्र : किशोरलाल घ० मशरूवालाको

२१ अगस्त, १९३९

चि० किशोरलाल,

क्या उनके बारेमें तुम्हें कुछ मालूम है?[1] वेदोंकी छपाईकी यह क्या चर्चा हो रही है? चन्दा इकट्ठा करनेके बारेमें वह क्या कह रहा है?[2]

उम्मीद है, तुम्हें मेरी कलकी टिप्पणी मिल गई होगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

गाथका चेक मेरे खातेमें जमा करवा दो। चेकके बारेमें तुम यह विवरण दे सकते हो कि यह चेक मगन जेराजाणीकी ओरसे अकाल [सहायता-कार्य] अथवा ऐसे ही किसी अन्य उद्देश्यके लिए मिला है।

बापू

श्री किशोरलालभाई

मूल गुजरातीसे : गांधी निधि फाइल; सौजन्य : गांधी स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१ और २. यहाँ संकेत गांधी सेवा संघके एक सदस्य सुमन्त वासवदत्ता द्वारा लिखित २० अगस्त, १९३९ के साप्ताहिक कार्य-विवरणकी ओर है। इसमें अन्य बातोंके अलावा उन्होंने लिखा था कि उन्होंने वेदोंके प्रकाशनार्थ चन्दा इकट्ठा करनेके लिए विनयाश्रम (जहाँ वे रह रहे थे) से बाहर आठ दिन बिताये हैं। यह रिपोर्टके पृष्ठभाग पर लिखा हुआ है।

१३५. पत्र : पोपटलाल चुडगरको[1]

सेगाँव, वर्धा
२२ अगस्त, १९३९

भाई चुडगर,

सरदारके हाथमें ही सारा कार्य-भार है। वह जो करते हैं वह मुझे स्वीकार्य होगा, बशर्ते कि मेरी स्वीकृति की जरूरत हो।

बापूके आशीर्वाद

श्री पोपटलाल चुडगर
बैरिस्टर
राजकोट सिटी
काठियावाड़

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९८३१) से, सौजन्य. पोपटलाल चुडगर

१३६. पत्र : किशोरलाल घ० मशरूवालाको

२२ अगस्त, १९३९

चि० किशोरलाल,

लक्ष्मीदास . . .[2]को पत्र लिख रहा हूँ। जमनालालसे सम्बधित [कुछ भी] खातोंमें मत चढाना। फिलहाल तो ऐसे ही रहने देना।

क्षमाके बारेमें तुमने जो कहा वह मेरे गले नहीं उतरा, मुझे समझानेकी कोशिश करना। अभी न समझा सको तो समय मिलने पर समझाना। तुम यदि थोड़ा-सा भी लिखोगे तो मैं समझ जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजरातीसे : गांधी निधि फाइल, सौजन्य : गांधी स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. बैरिस्टर; सीकरके राव राणाके कानूनी सलाहकार
२. साधन-सूत्रमें यह अंश पढ़ा नहीं जाता।

१३७. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव
२३ अगस्त, १९३९

कार्य-समितिने सुभाष बाबूके बारेमें जो प्रस्ताव[2] पास किया है उसको लेकर मेरे पास बराबर ऐसे खत आ रहे हैं जिनमें से अधिकांश गाली-गलौजसे भरे होते हैं। राजेन्द्र बाबूके नाम लिखा एक पत्र भी मैंने देखा है, जिसमें इतनी गन्दी भाषाका प्रयोग किया गया है कि उससे बढ़कर गन्दी भाषाका इस्तेमाल शायद ही हो सकता है। युद्ध-सम्बन्धी प्रस्तावकी[3] भी कुछ आलोचनाएँ मैंने देखी हैं।

इन दोनों प्रस्तावोंके बारेमें जनताके सामने अपनी स्थिति साफ कर देना मैं अपना फर्ज समझता हूँ। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि सुभाष बाबूवाले प्रस्तावका मसौदा मैंने ही तैयार किया था। मैं यह कह सकता हूँ कि कार्य-समितिके सदस्य ऐसी कार्रवाई करनेकी जिम्मेदारीको अगर टाल सकते तो जरूर टालते। वे जानते थे कि उनकी इस कार्रवाईपर विरोधका तूफान उठ खड़ा होगा। इसलिए ऐसा प्रस्ताव पास करनेकी बनिस्बत, जिसमें व्यक्तियोंका खयाल न रखा गया हो, कोई हलका-सा प्रस्ताव पास करने में उन्हें कहीं ज्यादा आसानी होती। यदि वे कोई कार्रवाई न करते तो कांग्रेसजनोंमें अनुशासन बनाये रखनेके अपने प्राथमिक कर्त्तव्यसे च्युत हो जाते। फिर, सुभाष बाबूने तो खुद ही इस कार्रवाईको आमंत्रित किया था। उन्होंने बहादुरीके साथ यह कहा था कि अगर कोई कार्रवाई करनी ही हो, तो कार्य-समितिके प्रस्तावका विरोध करनेवाले प्रमुख व्यक्तिके नाते वह मेरे ही खिलाफ की जाये। मेरी रायमें तो कार्य-समितिने जो कार्रवाईकी है वह यथासम्भव नरम-से-नरम है। इसके पीछे बदला लेनेकी कोई इच्छा नहीं थी। सुभाष बाबूकी स्थितिका विचार करने पर बदला लेनेका तो निश्चय ही कोई सवाल नहीं उठता। वे जानते थे कि कार्य-समिति उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकती। उनका खयाल था कि उनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई है कि कार्य-समितिकी किसी कार्रवाईका उनपर कोई असर नहीं पड़ सकता। सुभाष बाबूने यदि कांग्रेस-संगठनके नहीं तो कार्य-समितिके विरुद्ध मोर्चा लिया है। इसलिए कार्य-समितिके सदस्योंको अपना फर्ज अदा करना था और इस बातका निर्णय कांग्रेसजनों तथा जनतापर छोड़ देना था कि वे सही

१. यह "द टू रेज़ोल्यूशन्स" (दो प्रस्ताव) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। वक्तव्य २३-८-१९३९ के हिन्दू, और २४-८-१९३९ के हिन्दुस्तान टाइम्समें भी प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए पृ० ९४-९५ ।

३. देखिए परिशिष्ट ८ ।

है या सुभाष बाबू। यह कहा गया है कि ऐसी परिस्थितिमें जो मैं करता वही सुभाष बाबूने किया है। मुझे तो अपनी सारी जिन्दगीमें ऐसा एक भी उदाहरण याद नही पडता जिसमें मैंने सुभाष बाबूने जो किया है वैसा किया हो, अर्थात् जिस संस्थाके प्रति मै वफादार होऊँ, उसकी अवज्ञा की हो। अलबत्ता, विद्रोहकी बात मैं समझ सकता हूँ, लेकिन तभी जब उस संस्थासे अपना सम्बन्ध तोड़ लूँ। १९२० के अहिंसापूर्ण असहयोगका अर्थ और रहस्य यही था।

लेकिन ये पक्तियाँ मै मुख्यतः कार्य-समितिकी कारंवाईका औचित्य सिद्ध करने के लिए नही बल्कि सुभाष बाबू और उनके समर्थकोंसे यह प्रार्थना करने के लिए लिख रहा हूँ कि कार्य-समितिके प्रस्तावको वे सद्भावनाके साथ ग्रहण करें और जबतक वह मौजूद है तबतक उसे मानें। कांग्रेस महासमितिसे इस निश्चयके विरुद्ध अपील करने का उन्हें पूरा हक है। वहाँ अगर कामयाब न हों, तो कांग्रेसके सालाना अधिवेशनमें वे मामलेको उठा सकते हैं। यह सब वे बिना किसी कटुता और कार्य-समितिके सदस्योंपर ऐसी बुरीसे-बुरी किस्मकी बदनीयतीका इलजाम लगाये बिना कर सकते हैं। वे ऐसा मानकर सन्तोष क्यो नही करते कि निर्णय करने में सदस्योसे भूल हो गई होगी? मै समझता हूँ कि कांग्रेस महासमितिके सदस्योका बहुमत अगर कार्य-समितिके कार्यसे लिखित रूपमें असहमति प्रकट करता है तो कार्य-समिति खुशीसे इस्तीफा दे देगी। मतभेद उपस्थित होने पर एक-दूसरेकी नीयत पर हमला करके कांग्रेसजन उस ढाँचेको नष्ट करते हैं जो आधी सदीके अविरल परिश्रमसे तैयार किया गया है। वस्तुतः देखा जाये तो अगर किसी बुरे उद्देश्यका सन्देह हो, तो भी जबतक असंदिग्ध रूपसे वह साबित न कर दिया जाये, तबतक उसका आरोप न लगाना ही अच्छा है। कल्याणकर लोकमत तैयार करने के लिए यह जरूरी है कि लोकमतके नेता विविध घटनाओं और निर्णयोका फैसला उनके गुण-दोषोकी दृष्टिसे ही किया करें।

युद्ध-सम्बन्धी प्रस्तावपर मेरी पूरी हार हुई। मुझसे प्रस्तावका मसौदा तैयार करने के लिए कहा गया। इसी तरह प० जवाहरलाल नेहरूसे भी कहा गया था। मुझे अपने मसौदेपर गर्व था, पर मेरा गर्व चूर-चूर हो गया। मैंने देखा कि जबतक मैं दलील और आग्रहसे काम न लूं, मेरा प्रस्ताव पास नही हो सकता। लेकिन मुझे ऐसी कोई इच्छा नही थी। तब हमने जवाहरलालजी का प्रस्ताव सुना। और मैंने तुरन्त यह स्वीकार कर लिया कि उनका प्रस्ताव मेरे प्रस्तावकी बनिस्बत देशके मतको बल्कि कुल मिलाकर कार्य-समितिके मतको भी ज्यादा अच्छी तरह व्यक्त करता है। मेरा प्रस्ताव तो पूर्णतः अहिंसापर आधारित था। यदि कांग्रेस एक नीतिके रूपमें ही दिलसे सम्पूर्ण अहिंसामें विश्वास करती है तो यह उसकी कसौटीका समय था। लेकिन कुछ लोगोंको छोड़कर कांग्रेसजन ऐसी अहिंसामें विश्वास नहीं करते और जो करते हैं वे भी यह मानते है कि सत्ता प्राप्त करने के लिए सरकारसे लड़ने में ही इसका उपयोग है। लेकिन कांग्रेसके पास संसारके लिए अहिंसाका कोई सन्देश नही है। काश यह मानने का कोई आधार होता कि उसके पास ऐसा सन्देश है।

जरूरी नही कि दोनो प्रस्तावोंके उपसहार एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न होते। लेकिन चूँकि इन दोनोंके प्रेरक हेतु भिन्न थे इसलिए भिन्न परिदृश्यमें इनका अर्थ भी भिन्न-भिन्न होता। आज हिन्दुस्तानमें जो हिंसा हो रही है और कांग्रेस सरकारोंको जो फौज और पुलिसकी मदद लेने के लिए मजबूर होना पड़ा है, उसको देखते हुए संसारके सामने अहिंसाकी घोषणा करना उपहास ही मालूम पड़ता। उसका न तो हिन्दुस्तानपर कोई असर पड़ता, न ससारपर। इतने पर भी अगर खुद अपने प्रति मैं सच्चा हूँ, तो जो मसौदा मैंने तैयार किया उसके सिवा कोई और नहीं कर सकता था।

मेरे प्रस्तावका जो हश्र हुआ और जिस हश्रको लाने में खुद मैं भी शरीक था उसने यह साबित कर दिया है कि कांग्रेससे अपना बाजाब्ता सम्बन्ध तोड़कर मैंने ठीक ही किया। कार्य-समितिकी बैठकोंमें मैं कोई इसलिए शरीक नही होता कि उसके प्रस्तावो या सामान्य नीतिमें भी मेरी सहमति हो। मैं तो अहिंसाके अपने उद्देश्यको पूर्ण करने के लिए ही उनमें शामिल होता हूँ। जबतक वे लोग मेरी उपस्थिति चाहते है, मैं उनके कार्यों और उनके द्वारा कांग्रेसजनोंके कार्योंमें अहिंसापर जोर देने के लिए वहाँ चला जाता हूँ। हम सब एक ही उद्देश्यको लेकर चल रहे हैं। वे सब यदि हो सके तो पूरी तरह मेरे साथ चलें, लेकिन जैसे मैं अपने प्रति सच्चा रहना चाहता हूँ इसी तरह वे भी अपने प्रति और उस देशके प्रति सच्चे रहना चाहते हैं जिसका इस समय वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि अहिंसाकी प्रगति जाहिरा तौरपर बहुत धीमी प्रक्रिया[1] है। लेकिन अनुभवने मुझे बतलाया है कि हमारे सम्मिलित लक्ष्यका यही सबसे निश्चित मार्ग है। लड़ाई और शास्त्रसे न तो भारतको मुक्ति मिल सकती है, न संसारको। हिंसा तो न्याय-प्राप्तिके लिए भी लगभग निष्फल साबित हो चुकी है। अहिंसामें पूरी श्रद्धा रखने में अगर कोई मेरा साथी न हो तो अपने इस विश्वासके साथ मैं अकेला ही इस पथपर चलने में सन्तुष्ट हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-८-१९३९

१. साधन-सूत्रमें 'प्रगति' है।

१३८. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

सेगाँव, वर्धा
२४ अगस्त, १९३९

चि० नरहरि,

मुझे पता चला है कि अमतुस्सलामका हनीफ[1] तुम्हारे नियन्त्रणमें है और पीजना सीख रहा है। यदि यह लड़का होनहार है तो उसे कुशल कारीगर बनाना हमारा धर्म है। यदि वह अच्छा और कुशल कारीगर भी बने तो सबसे अच्छा हो। मेरी इच्छा तो उसे बुनाईतक की सब प्रक्रियाएँ सिखाने की है। समस्त प्रक्रियाओंमें पारगत लोग हमारे पास कम ही हैं। यदि हम एक-दो मुसलमानोंको तैयार कर सकें तो बहुत काम हो। मेरी यह मान्यता जरूर है कि जिस तरह गोधरामें मैंने यह चाहा था कि मोची अथवा बढ़ई सभापति बने उसी तरह मैं समझता हूँ कि सामान्य मुसलमानोंकी मारफत हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित हो सकता है। इसलिए यदि हनीफ और अकबर-जैसे लोग भी इनमें आते हैं तो मुझे खुशी होगी। लेकिन तुम तो अपनी सामर्थ्य और अनुभवके अनुसार ही व्यवहार करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९११५) से।

१३९. पत्र : आजम आबेदको

सेगाँव, वर्धा
२४ अगस्त, १९३९

भाई आजम आबेद,

आपका पत्र मिला। स्वर्गीय नवाब खानके बारेमें, और अन्य कतरनें भी मिली हैं। नवाब खानके सम्बन्धमें यहाँसे कुछ हो सकता है, ऐसा मैं नहीं समझता। उनके बारेमें सुनकर दुःख हुआ।

मो० क० गांधीके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८१५) से।

1. पंजाबके एक खादी-कार्यकर्ता

१४०. पत्र : रावजीभाई ना० पटेलको

सेगाँव, वर्धा
२४ अगस्त, १९३९

चि० रावजीभाई,

देखता हूँ कि तुम्हारा यज्ञ तो बहुत बड़ा होता जा रहा है। खादीको किस तरह निकाला जाये, इस प्रश्नका समाधान तो तभी होगा जब हम गहरे उतरकर अभ्यास करेंगे। आँकड़े इकट्ठे करने की बात इसमें निहित है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०१०) से।

१४१. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

[२५ अगस्त, १९३९ के पूर्व][1]

चि० अमृतलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। जब तुम आ सको, तब आना। बादमें विजयाका कोई पत्र नहीं आया लेकिन उसे बराडमें होना चाहिए। इसके साथ उसके लिए पोस्टकार्ड है। इसमें थोड़ा कोरा भाग है, उसमें तुम लिखना। नारण पटेलके पिताका नाम मैं भूल गया हूँ। वह लिख भेजना। पिताका नाम न दिया जाये तो पत्र नहीं मिलता।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च .]

साथके पोस्टकार्डपर पूरा पता लिखकर डाकमें डाल देना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९२) से।

१. "विजयाका कोई पत्र नहीं आया" और "इसके साथ उसके लिए पोस्टकार्ड है" के उल्लेखसे। यह कार्ड लिखने के तुरन्त बाद ही उसका पत्र मिल गया था; देखिए "पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको", पृ० १३४।

१४२. स्वेच्छा-प्रेरित संघ-व्यवस्थाकी जरूरत

हिन्दुस्तानपर यदि जबरदस्ती संघ-व्यवस्था लादी गई तो सम्भवतः वह आजसे भी अधिक विभक्त हो जायेगा। ब्रिटिश सरकार अगर यह घोषणा कर दे कि वह अपने संघके ढाँचेको हिन्दुस्तानपर जबरदस्ती नहीं लादेगी तो यह एक बहुत बड़ा कदम होगा। वाइसराय चाहे ऐसा कहें या नहीं, लेकिन वे इसी दिशामें कार्य करते प्रतीत होते हैं। अगर मेरी धारणा सही है, तो मैं कहूँगा कि इस बारेमें स्पष्ट घोषणा कर देने से उनके कामकी खूबसूरती बढ़ेगी और उससे शायद वास्तविक संघका और इसलिए सच्ची एकताका रास्ता भी साफ हो जायेगा। वह संघ स्वभावतः भारत सरकार अधिनियममें सुझाये ढंगका हरगिज नहीं हो सकता। वह जैसा भी हो, यह आवश्यक है कि वह सारे हिन्दुस्तानके स्वतन्त्र इच्छाकी उपज हो।

लेकिन स्वतन्त्र रूपसे पसन्द किया गया ऐसा राजनीतिक और कानूनसम्मत संघ बनने से पहले, शुरुआत करने के लिए अगर सारे भारतका नहीं तो उसके कुछ भागोंका ही स्वेच्छा-प्रेरित संघ बनाया जाये तो अच्छा होगा। लघु गुजरातके कुछ भागों तथा सारे काठियावाड़में आज दुर्भिक्षका जो प्रकोप है उसके आधारपर यह विचार मेरे दिमागमें आ रहा है। मुझे ऐसे रोष-भरे पत्र मिले हैं जिनमें चारा और अनाज लाने-लेजाने के सम्बन्धमें बम्बई सरकारने जो प्रतिबन्ध लगा रखा है और जिसे उन लोगोंने हृदयहीन नीति कहा है, उसकी ओर मेरा ध्यान खींचा गया है। मैं पत्र भेजनेवालों की बातोंपर विश्वास नहीं कर सका। मैं यह जानता था कि गुजरात और काठियावाड़, दोनो जगहोंके कष्ट-निवारणके लिए सरदार जमीन-आसमान एक कर रहे हैं। फिर भी अपनी और दिलजमई करने के लिए मैंने मुख्य मन्त्रीको तार भेजा, जिसका उन्होंने मुझे उसी दिन तत्काल यह जवाब दिया:

> छह जिलोंसे कलक्टरकी इजाजतके बिना चारा बाहर ले जाने की मनाही कर दी गई है, क्योंकि अपने प्रान्तकी आवश्यकतापर पहले ध्यान दिया जाना चाहिए। जितना चारा हमारी जरूरतसे ज्यादा होगा उसे बाहर ले जाने की जरूर इजाजत दी जायेगी।

इस तारके बाद एक पत्र मुझे मिला, जिसमें उस विधेयककी प्रति भी संलग्न थी जो बम्बई विधान-सभामें पेश किया जानेवाला है। इसमें अकाल अथवा तंगीके समय अनाज और चारेके यातायात तथा मूल्यको नियंत्रित करने की ही बात है। यह प्रतिबन्ध नही बल्कि चारे और अनाजपर ऐसा नियंत्रण रखने की नीति है, जिससे सटोरिये लोग उसे अपने कब्जेमें जमा करके न रख लें या इतने बड़े पैमानेपर उसे बाहर न खपा दें जिससे जहाँ वह पैदा हुआ वहींके ढोरों और लोगोंको उसके अभावमें भूखों मरना पड़े। मुख्य मन्त्रीके पत्रके अनुसार प्रान्तके बाहर भी जहाँ-

कहींसे अनाज और चारा मिल सके, उसे इकट्ठा करके काठियावाड़-सहित सभी दुर्भिक्ष-पीड़ित इलाकोंमें बाँटने की तजवीज चल रही है। बम्बई सरकारकी इस कार्रवाईको मैं न केवल आवश्यक समझता हूँ, बल्कि प्रान्तके ब्रिटिश भागकी तरह ही उसके समस्त रियासती भागके लिए भी लाभदायक मानता हूँ। मैं इसे स्वेच्छा-प्रेरित संघीकरण कहता हूँ। पाठकोंको संघ शब्दमें ऐसा अर्थ आरोपित करने का बुरा नही मानना चाहिए।

यह छोटी-सी कार्रवाई पाठकोको उस बड़ी कार्रवाईका कुछ परिचय देती है जो कि स्वेच्छा-प्रेरित संघकी दिशामें हो सकती है। कुछ दिन पहले मैंने एक ऐसा पत्र[1] उद्धृत किया था जिसमें सामान्य हितकी अनेक बातोंके लिए काठियावाडकी रियासतोंका एक सघ बनाने की बात सुझाई गई थी। उस पत्र-लेखकका अन्तिम उद्देश्य राजनीतिक सघ था। मैं जो कह रहा हूँ उसका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नही है। यहाँ तो मेरा तात्कालिक और अन्तिम उद्देश्य विशुद्ध रूपसे मानव-सेवा ही है।

यदि काठियावाड़की रियासतें पानी, जगलात और सडकोके लिए, केवल जीवन-रक्षाकी दृष्टिसे ही, स्वेच्छापूर्वक अपना सघ बना लेती है तो आज वहाँकी रियासतोंके समूहके सम्मुख पानीके अकालका जैसा भय है वैसा भय नही रहेगा। क्योंकि वहाँ कई रियासतें इतनी समृद्ध है जो सारे काठियावाड़को पानी दे सकती है। मैं जानता हूँ कि एक दिनमें ऐसा नही हो सकता। लेकिन बात तो दरअसल यह है कि 'न खायें न खाने दें' की नीतिने काठियावाड़में पानीकी किसी भी बडी योजनाको असम्भव बना रखा है। काठियावाड़में काफी अच्छी नदियाँ और पहाड़ियाँ है। कुँओकी भी वहाँ इतनी सभावना है जिसकी कोई हद नही। यदि काठियावाडकी सारी रियासतें आपसमें मिल जायें और उनमें जो समृद्ध है वे सम्मिलित हितके लिए अपने साधनोका उपयोग करें, तो वे मनुष्यो तथा मवेशियोके प्यासे मर जाने की भीषण सभावनाको टाल सकती है। मुझे इस बातका विश्वास है कि काठियावाडमें सूखे सालोंमें भी काफी पानी मुहैया करने की सामर्थ्य है। लेकिन जबतक पेड़ लगाने की दूरदर्शितापूर्ण योजनापर अमल नहीं किया जाता तबतक कोई भी सयुक्त जल सयोजना इस समस्याको हमेशाके लिए हल नही कर सकती। वस्तुत देखा जाये तो काठियावाडमें कोई जगल नही है। अत राजाओं और जनताको मिल-जुलकर विस्तृत पैमानेपर पौधे लगवाने चाहिए। लेकिन यह तभी हो सकता है जब रियासतें और उनके निवासी लोग समस्त काठियावाड़को अपनी सयुक्त और सम्मिलित भूमि मानें और उनमें इन्द्रदेवके वर्षा न करने पर भी प्यासे मरने के शाश्वत भयसे मुक्त होकर अपनी भूमिमें रहने की इच्छा करने-जितनी पर्याप्त बुद्धि हो।

सेगाँव, २५ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-९-१९३९

१. देखिए पृ० ९८-९९।

१४३. मोटर बनाम बैलगाड़ी

गाँवोंमें प्रचार-कार्य करने के लिए मोटर गाड़ियाँ उपयोगी होंगी या बैलगाड़ियाँ, इस विषयपर अगस्तकी 'ग्राम उद्योग पत्रिका' में एक लेख प्रकाशित हुआ है। जो लोग पूरा तर्क समझना चाहते हों उन्हें पत्रिकाकी प्रति मँगवाकर पढ़नी चाहिए। मैं उसमें से सबसे महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत कर रहा हूँ।[1]

> हमसे पूछा गया है कि जिला बोर्ड और इसी प्रकारकी अन्य स्थानीय संस्थाएँ, जो ग्रामोद्धारके लिए कुछ धनराशि अलग रखना चाहती हैं, उस रकमको गाँवोंमें विभिन्न प्रकारके प्रचार-कार्यके लिए मोटर गाड़ी खरीदनेमें लगायें तो कैसा हो। . . . यहाँ सवाल यह उठता है कि मोटर गाड़ियोंका, जो एक रातमें कई गाँवोंका चक्कर लगा सकती हैं, इस कामको जल्दी करने के लिए उपयोग किया जा सकता है या नहीं।
>
> सब खर्चोंमें, विशेषकर उन खर्चोंमें जो विशुद्ध रूपसे ग्रामीणोंकी भलाईके लिए किये जाते हैं, हमें यह देखना जरूरी है कि व्यय हुई धनराशि लौटकर गाँवोंमें जाती है या नहीं। जिला और स्थानीय बोर्ड जनतासे धन प्राप्त करते हैं, अतः उन्हें ऐसी चीजें खरीदनी चाहिए, जिनसे यह धन जनतामें वापस पहुँचे।
>
> इस समय गाँववालोंको जिस चीजकी सबसे अधिक जरूरत है वह है लाभदायक रोजगार। हम बाहरसे चीजें मँगाकर धीरे-धीरे उन्हें कामसे वंचित करते जा रहे हैं और उसके मुआवजेमें उन्हें भाषण, मैजिक लालटेनके खेल और डिब्बेमें बंद संगीत देते हैं, जिसके लिए वे स्वयं खर्च करते हैं, और हम अपनी पीठ ठोकते हैं कि हम उनके कल्याणके लिए कार्य कर रहे हैं। क्या इससे ज्यादा बेतुकी और कोई बात हो सकती है?
>
> अब तुलना कीजिए कि मोटर गाड़ीकी जगह बहुत उपेक्षासे बैलगाड़ीका उपयोग किया जाये तो क्या होगा। . . . वह दूर-दूरके गाँवोंमें पहुँच सकती है, जहाँ मोटर गाड़ीका जाना कठिन है। बैलगाड़ी खरीदने में मोटर गाड़ीकी अपेक्षा बहुत कम पैसा खर्च होता है और इसलिए यदि जरूरत हो तो उतनी ही रकममें कई बैलगाड़ियाँ खरीदी जा सकती हैं, जो जिलेके कई ग्राम-समूहोंका भला कर सकती हैं। इनपर खर्च किया हुआ पैसा गाँवके बढ़ई, लुहार और गाड़ीवानकी जेबमें जाता है। उसका एक भी पैसा जिलेसे बाहर नहीं जाना चाहिए। . . .

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

इसलिए मोटर गाड़ियाँ और ग्राम-कार्यका एक साथ चलना बहुत बेतुका मालूम होता है। हमें जरूरत है स्थिर रचनात्मक प्रयत्नकी, न कि बिजली-जैसी तेज रफ्तार और ऊपरी तड़क-भड़ककी। हम स्थानीय बोर्डों और सार्वजनिक संस्थाओंको, जो गाँववालों की भलाईके कार्यमें वस्तुतः दिलचस्पी रखती हैं, सलाह देंगे कि वे ग्रामोद्धारके कार्यको गाँवकी बनी हुई चीजोंके इस्तेमालसे प्रारम्भ करें और उन हालातका अध्ययन करें जिनसे गाँवोंमें लगातार गरीबी बढ़ती जा रही है, और उन्हें एक-एक करके हटाने में अपनी सारी शक्ति लगा दें। जब ग्रामीण जीवनके हर पहलूको खूब सोच-विचारकर गहन प्रयत्न करने की जरूरत है, तब ऐसे उपायोंपर, जो एक रातमें ग्रामोद्धारका सब्ज बाग दिखाना चाहते हैं, सार्वजनिक धन खर्च करना उस धनका नाश करना ही है।

आशा है जो लोग ग्रामसेवाके कार्यमें दिलचस्पी रखते है, वे बैलगाड़ीके पक्षमें दी गई स्पष्ट दलीलो को हृदयगम करेंगे। गाँवोकी भलाईके उद्देश्यसे जो सस्थाएँ कायम की गई है उन्हीके द्वारा गाँवोकी अर्थ-व्यवस्था का नाश हो, यह बड़े दुःखकी बात होगी।

मेगाँव, २५ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-९-१९३९

१४४. पत्र : शिवजी देवशंकरको

सेगाँव, वर्धा
२५ अगस्त, १९३९

भाई शिवजी,

तुम्हारा पत्र मिला। चूँकि लोग मेरे शब्दोको जरूरतसे ज्यादा महत्त्व देते है इसलिए लिखे बिना काम नही चलता, इसी कारण मै लिखता हूँ। तथापि किसी समय यदि भूल रह जाये तो लोगोको उसे दरगुजर करना चाहिए न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/३) से।

१४५. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
२५ अगस्त, १९३९

चि० विजया,

तेरा पत्र मिलने से पहले ही मैं तुझे पत्र लिख चुका था, उम्मीद है वह पत्र तुझे मिल गया होगा। मैं तो फिलहाल यहीं हूँ। इसलिए यदि तू वहाँसे मुक्त हो सकती हो तो तुरन्त आ जा। आशा है, तेरी तबीयत ठीक रहती होगी। नारणभाईका स्वास्थ्य सुधर रहा होगा।

यहाँ तो [वर्षाके कारण सर्वत्र] आनन्द छाया हुआ है। अकालका भय दूर हो गया है। आशा है, वहाँ भी सब ठीक होगा।

बापूके आशीर्वाद

श्री विजयाबहन
मारफत नारणभाई वल्लभभाई पटेल
वराड

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११३) से। सी० डब्ल्यू० ४६०५ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

१४६. मिलका या घानीका तेल

एक समय था जब गाँवकी घानी, चक्की, करघा, चरखा तथा गन्ना पेरनेका कोल्हू गाँवके अविभाज्य अंग थे। अब अखिल भारतीय चरखा संघ और अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ उनमें से कुछ को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह तो हम काफी अच्छी तरह समझ गये हैं कि चरखे और करघेको कैसे पुनर्जीवित किया जा सकता है। खादीको उसके सब अंगों-सहित हस्तगत कर लेना एक शास्त्र बन चुका है। मगनलाल गांधीने इस शास्त्रकी नींव रखी थी। गाँवकी चक्की और गन्नेके कोल्हू चलानेकी क्रियाको शास्त्रीय रूप प्रदान करनेवाले प्रणेता अभी सामने नहीं है। किन्तु घानीको ऐसा व्यक्ति मिल गया है। मगनवाडीके झवेरभाई पटेल शास्त्रीय अन्वेषककी सूक्ष्मता और उत्साहके साथ घानीका सर्वांगीण अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने घानीमें कुछ सुधार किये हैं और उनका दावा है कि इन सुधारोंके फलस्वरूप घानी चलानेवाले व्यक्ति और बैल दोनोंकी मेहनतमें कमी और तेलके उत्पादनमें वृद्धि हुई है। उन्होंने तेलके बाजार और तिलहन अपने उत्पादन-स्थलसे

कहाँ-कैसे जाते है, इसका भी अध्ययन किया है, जिसके परिणामस्वरूप वे लगभग बाजार-भावपर ही अपना तेल बेच सकते है और इस कारण उनके तेलकी तुरन्त खपत हो जाती है। उनका तेल मशीनके तेलसे बढ़िया होता है, क्योकि उसमें तो सामान्यत: मिलावट होती है और वह ताजा भी नही होता। लेकिन वर्धाके स्थानीय बाजारमें वह मिलके बने तेलके साथ सफलतापूर्वक होड़ कर पाते है, श्री झवेरभाईको इतने-भरसे सन्तोष नही है। उन्होने तो इस रहस्यको भी ढूंढ निकाला है कि मिलका बना तेल घानीके तेलकी अपेक्षा क्यो सस्ता होता है। वे तीन कारण बताते है, जिनमें से दो अपरिहार्य है। एक तो पूंजी है और दूसरा मशीनकी तेलकी अन्तिम बूंदतक निकाल लाने की क्षमता और वह भी घानीसे कम समयमें। किन्तु तेलके मिल-मालिकको दलालो और आढतियोको जो कमीशन देना पड़ता है उससे इन लाभोका कोई अर्थ नही रह जाता। किन्तु तीसरा कारण है मिलावट और इससे श्री झवेरभाई तबतक पार नहीं पा सकते जबतक कि वे भी यही तरीका अख्तियार न कर ले। और यह तो स्वभावत. वे नही करेंगे। अतएव उनका सुझाव है कि मिलावटको कानून द्वारा रोका जाना चाहिए। यदि मिलावट के विरुद्ध कोई कानून मौजूद है तो उसको लागू करके अन्यथा कोई नया कानून बनाकर और तेलकी मिलोको लाइसेंस जारी करके ऐसा किया जा सकता है।

श्री झवेरभाईने ग्रामीण घानीके ह्रासके कारणोकी जाँच भी की है। सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि तेली नियमित रूपसे तिलहन नही जुटा पाता। मौसम खत्म होने पर गाँवोमें तिलहनका लगभग नाम-निशान भी नही रहता। तेलीके पास इतना पैसा नही होता कि वह तिलहनोको सग्रह करके रख सके और शहरोसे तिलहन खरीदने की तो उसमें और भी सामर्थ्य नही होती। यही कारण है कि या तो तेली नजर नही आते या बड़ी तेजीसे ऐसी स्थिति आ रही है कि वे नजर नही आयेंगे। आजकल लाखो घानियाँ बेकार पड़ी है, जिसके कारण देशकी साधन-सम्पदाकी भारी बरबादी हो रही है। जहाँ तिलहनकी पैदावार होती हो उसी स्थानपर तिलहनका सग्रह करना और गाँवके तेलियोको उचित दरपर तिलहन बेचना और इस प्रकार जो घानियाँ अभी नष्ट नही हुई है, उनका पुनरुद्धार करना नि सन्देह सरकारका ही काम है। यह सहायता प्रदान करने में सरकारको कोई हानि नही होगी। श्री झवेरभाईके विचारानुसार यह सहायता सहकारी समितियो या पंचायतोके माध्यमसे दी जा सकती है। शोधके आधारपर श्री झवेरभाई इस निष्कर्षपर पहुँचे है कि ऐसा करने से घानीका तेल मशीनके तेलसे टक्कर ले सकेगा और गाँवोंपर आजकल जो मिलावटी तेल थोपा जाता है उससे उन्हे मुक्ति मिल जायेगी। इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि ग्रामीणोको भोजनमें यदि कुछ चिकनाई मिलती भी है, तो वह केवल तेलसे ही मिलती है। सामान्यत. घी से वे अपरिचित ही रहते है।

सेगाँव, २६ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-९-१९३९

१४७. एक महाराजाकी धमकी

कुछ सप्ताह पूर्व पटियालासे मुझे एक महत्त्वपूर्ण पत्र मिला था। उसमें महाराजा साहब पटियाला द्वारा दिये गये कुछ ऐसे गम्भीर वक्तव्य पेश किये गये कि वे ठीक हैं या नहीं, यह मालूम करनेके लिए मैंने महाराजा साहबको लिखा। इस बातको अब तीन हफ्तेसे अधिक हो गये हैं, लेकिन मुझे कोई जवाब नहीं मिला।[1] इसलिए मैं मान लेता हूँ कि मुझे पत्र भेजनेवाले सज्जनने उनके बारेमें जो-कुछ लिखा है वह ठीक ही है। पत्रका मुख्य भाग यह है:

> १९८८[2] की हिदायत के खिलाफ, जो प्रजाके नागरिक अधिकारोंका अपहरण करनेवाला एक गैर-कानूनी कानून है, पटियाला राज्य प्रजामण्डलने सत्याग्रह शुरू किया था। आपकी सलाहपर वह सत्याग्रह बिना किसी शर्तके स्थगित कर दिया गया था। राज्यकी ओरसे पटियालाके प्रचार-अधिकारीने १५ अप्रैलको एक विज्ञप्ति निकालकर कहा था कि सरकार उस हिदायत को ३-४ हफ्तेके अन्दर या तो रद्द कर देगी या वापस ले लेगी। साथ ही, यह भी बतलाया गया था कि उसपर विचार करके जल्द रिपोर्ट पेश करनेके लिए सरकारने एक समिति नियुक्त की है। लेकिन यह घोषणा अभीतक अमलमें नहीं आई है। उसके बजाय, महाराजा साहबने २५ मईके इजलास खासके हुक्म द्वारा उस हिदायतपर अगले छह महीने और कड़ाईसे अमल करनेका निर्देश दिया है। वह हिदायत इतनी व्यापक है कि उसके कारण प्रजामण्डलके कार्यकर्त्ता किसी तरहका कोई प्रचार-कार्य नहीं कर सकते। इस आन्दोलनके सिलसिलेमें गिरफ्तार कार्यकर्त्ता अब भी जेलमें हैं और दूसरोंपर मुकदमे चल रहे हैं। इसके अलावा, राज्यमें जमींदारों और किसानोंके बीच भी एक आन्दोलन चल रहा है।
>
> प्रजामण्डलके कुछ कार्यकर्त्ताओंने १८ तारीखको महाराजा साहबसे मुलाकात की थी। मुलाकातके समय महाराजा साहबने कार्यकर्त्ताओंको सम्बोधित करते हुए कहा:
>
> "मेरे पूर्वजोंने यह राज्य तलवारसे जीता है और मैं तलवारसे ही इसे कायम रखना चाहता हूँ। मैं किसी भी संस्थाको अपनी प्रजाके प्रतिनिधिके

१. बादमें महाराजाकी ओरसे इसका उत्तर प्राप्त हुआ था; देखिए परिशिष्ट ९। उत्तरके साथ उसपर गांधीजी की टिप्पणी भी प्रकाशित हुई थी; देखिए "टिप्पणी: 'एक महाराजाकी धमकी' पर", १२-९-१९३९।

२. विक्रम सम्वत्का, अर्थात् ईस्वी सन् १९३२ का।

रूपमें स्वीकार करने अथवा उस संस्थाको प्रजाकी ओरसे बोलने देने से इन्कार करता हूँ। उनका तो एकमात्र प्रतिनिधि मैं ही हूँ। राज्यमें प्रजामण्डल-जैसी कोई संस्था नहीं रहने दी जा सकती। तुम अगर कांग्रेसका काम करना चाहते हो, तो मेरे राज्यसे बाहर चले जाओ। कांग्रेस ब्रिटिश सरकारको डरा-धमका सकती है, लेकिन यदि उसने मेरे राज्यमें कभी हस्तक्षेप करने की कोशिश की, तो मैं भयंकर रूपसे उसका मुकाबला करूँगा। मैं अपने राज्यकी सीमामें अपने झण्डेके अलावा और कोई झण्डा लहराता हुआ देखना बरदाश्त नहीं कर सकता। तुम प्रजामण्डलकी अपनी हलचलें बन्द कर दो, नहीं तो मैं ऐसा दमन-चक्र चलाऊँगा कि तुम्हारी आनेवाली पीढ़ियाँ भी उसे नहीं भूलेंगी। अपने प्यारे प्रजाजनोंमें से कुछको जब मैं दूसरी तरफ जाते हुए देखता हूँ तो मुझे मार्मिक वेदना होती है। इसलिए मैं तुम्हें सलाह देता हूँ कि मण्डलको छोड़कर सब तरहका आन्दोलन बन्द कर दो, या फिर याद रखो कि मैं एक फौजी आदमी हूँ; मैं खरी बात कहता हूँ और सीधी मार करता हूँ।"

यह हो सकता है कि मेरा पत्र महाराजा साहबके पासतक पहुँचा ही न हो, और अगर पहुँचा होता तो वे, पत्र भेजनेवाले ने मुझे जो बातें लिखी हैं, उनका अवश्य खण्डन करते। उनका कोई खण्डन मुझे मिला तो मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित करूँगा। लेकिन मुझे यह जरूर कह देना चाहिए कि मुझे जिन्होंने पत्र भेजा है वे एक जिम्मेदार व्यक्ति हैं।

अगर हम यह मान ले कि उक्त पत्रमें जैसा कहा गया है वैसी बातें महाराजा साहबने कही हैं, तो ऐसी धमकी देना किसी भी राजाके लिए, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, एक बहुत गम्भीर बात है। उनके प्रति पर्याप्त आदर-भाव रखते हुए, मैं कहना चाहूँगा कि सारे हिन्दुस्तानके लोगोमें आज इतनी जागृति आ गई है कि धमकियों या उनके मुताबिक कार्रवाई करने से भी उन्हें दबाया नही जा सकता। निरकुश स्वेच्छाचारके दिन अब हमेशाके लिए लद गये। प्रजाकी उभरती हुई भावनाको भीषण आतकसे कुछ समयके लिए दबा देना तो शायद सम्भव हैं, लेकिन उसे हमेशाके लिए नही दबाया जा सकता, इस बातका मुझे पूरा यकीन है।

राजाओको खत्म कर देने की मेरे मनमें कोई इच्छा नही है। मित्रोंने मुझसे यह शिकायत जरूर की है कि प० जवाहरलाल नेहरूने एक बार ऐसा कहा है, यद्यपि काग्रेसने ऐसी नीतिका प्रतिपादन नही किया है। उनसे इस बारेमें पूछने का मौका तो मुझे नहीं मिला, लेकिन अगर हम यह मान ले कि उन्होने ऐसा कहा होगा, तो उसका यही अर्थ हो सकता है कि कुछ राजा खुद ही अपने सर्वनाशकी तैयारी कर रहे हैं। समाचारपत्रोंके आधारपर जवाहरलालके बारेमें कोई निर्णय करना ठीक नही है। उनकी निश्चित राय तो अ० भा० देशी राज्य प्रजामण्डलकी स्थायी समितिकी ओरसे दिये गये उनके वक्तव्यसे जानी जा सकती है। उसमें तो उन्होंने लोगोको ऐसी चेतावनी तक दी है कि वे जल्दबाजीमें कोई काम न करे। उन-

जैसे निष्ठावान् कांग्रेसी कांग्रेसकी प्रत्यक्ष नीतिसे आगे जाकर कोई भी कार्रवाई नही करेंगे। इसलिए कुछ नरेशोंको कांग्रेससे जो भय और नफरत है वह ठीक नही है और उससे उन्हें मदद मिलने के बजाय हानि ही होगी। कांग्रेस रियासतोंके मामलोंमें सीधे कोई हस्तक्षेप नही करना चाहती। लेकिन कांग्रेस रियासतोंकी प्रजाका पथ-प्रदर्शन जरूर करती है। वे लोग कांग्रेस संगठनका अंग हैं। कांग्रेससे अपने सम्बन्धके कारण वे शक्ति और प्रेरणा प्राप्त करते हैं। मैं नही जानता कि इस जीवन्त और अटूट सम्बन्धको कैसे रोका जा सकता है। इसको खत्म करने की इच्छा करना तो बच्चोंसे अपने माता-पिताको छोड़ देने के लिए कहना है। यह बात अच्छी-बुरी जैसी भी हो, पर इसे मान लेना ही ठीक है कि जिस तरह ब्रिटिश भारतके लोगोंका विराट् समुदाय अपने कष्ट-निवारणके लिए सरकारकी बनिस्बत कांग्रेस पर ही ज्यादा भरोसा करता है, उसी तरह रियासतोंके लोग भी अपने छुटकारेके लिए कांग्रेसका मुँह जोहते हैं। जब वे लोग यह कहते हैं कि वे अपने-अपने राजाओंकी छत्रछायामें ही अपना विकास पूरा करना चाहते हैं तो ऐसा वे कांग्रेसकी सलाह और प्रेरणासे ही कहते हैं। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि पटियालाके महाराजा साहब तथा उन-जैसे विचार रखनेवाले अन्य नरेश अपने विचारोंको बदलेंगे और अपनी प्रजाके उस आन्दोलनका स्वागत करेंगे जो वह अपना पूरा विकास करने की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए चला रही है, तथा अपने राज्योंके सुधारकोंको अपना दुश्मन नही समझेंगे। अपनी प्रजाकी माँगोंको निबटाने में वे अगर कांग्रेससे मदद ले, तो अच्छा होगा। लेकिन अगर कांग्रेसकी मित्रतामें उनका अविश्वास हो तो उन्हें ऐसा करने की जरूरत नही है। यदि वे पर्याप्त सुधारो द्वारा अपनी प्रजाके प्रगतिशील भागको सन्तुष्ट कर ले तो इतना ही काफी होगा।

पत्र-लेखकने अपने पत्रमें वचन-भंग किये जाने की जो बात लिखी है वह मेरे विचारसे महाराजाकी कथित धमकीसे भी बुरी चीज है। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, इस बातमें तो कोई सन्देह ही नही है कि १९८८ की हिदायतको वापस लेने का वादा किया गया था; इसी तरह यह बात भी निस्सन्देह सच है कि वह वादा तोड़ दिया गया है। एक शक्तिशाली और धनवान राजाके लिए वचनको भंग करना बहुत खतरनाक बात है। वचन-भंग भी अपने कर्जको अदा करने से इन्कार करने की बनिस्बत कुछ कम दिवालियापन नही है। मैं महाराजा साहबसे प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने वादेको पूरा करें और आशा करता हूँ कि उनके सलाहकार उन्हें ऐसा ही करने की सलाह देंगे।

सेगाँव, २६ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-९-१९३९

१४८. तार : श्रीप्रकाशको

सेगाँव
२६ अगस्त, १९३९

[सुनकर] प्रसन्न हुआ। तुम्हारे अनुरूप है।[1] तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

अंग्रेजीकी नकलसे. प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१४९. पत्र : मुल्कराजको

सेगाँव, वर्धा
२६ अगस्त, १९३९

प्रिय लाला मुल्कराज,

पंजाब नेशनल [बैंक] के बारेमें मुझे श्री मुकर्जीका तार मिला था। चूँकि नागपुर बैंकके बारेमें कागजात मैंने आपको भेज दिये हैं इसलिए मैंने उसका जवाब नहीं दिया है। अब रुपया अन्यत्र जमा कराने का कोई सवाल नहीं है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आपने मेरे निर्देशोंके अनुसार सब कर दिया होगा।[2]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१५०. टिप्पणियाँ

बम्बई नगरनिगम और हरिजन

बम्बई नगरनिगमकी १७ तथा १८ अगस्तकी बैठकोंमें क्रमश: निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये

> यह कि नगरनिगमके मजदूर कर्मचारियों और विशेषकर स्वास्थ्य-विभागके मेहतर और नाली-विभागके भंगियों आदिके लिए सड़कोंकी सफाई करने के बाद नहाने-धोने की कोई सुविधा नहीं है उसकी ओर निगम आयुक्त का

१. श्रीप्रकाशने कांग्रेससे अपना त्यागपत्र वापस ले लिया था; देखिए "तार : जवाहरलाल नेहरूको", पृ० १०७ भी।

२. देखिए पृ० १०७।

ध्यान खींचा जाये और उनसे आग्रह किया जाये कि वे एक रिपोर्ट तैयार करके यह बतायें कि क्या इन लोगोंके कार्यस्थलके निकट ऐसे स्नानगृह बनवाना वांछनीय नहीं है जहाँ वे दिन-भरका काम खत्म करने के बाद नहा-धोकर स्वच्छ तथा ताजा होकर घर लौट सकें।

आयुक्तका ध्यान इस तथ्यकी ओर भी खींचा जाये कि नगरनिगम मेहतरों तथा इसी तरहके काम करनेवाले अन्य मजदूर कर्मचारियोंके कपड़े, उन्हें जैसा काम करना पड़ता है उसके कारण, बेहद गन्दे हो जाते हैं और काम खत्म होने के बाद भी वही कपड़े पहने रहने से वे बहुत गन्दे दिखाई देते हैं और उनका उन्हीं कपड़ोंको पहने रहना स्वास्थ्यके लिए भी हानिकर है। आयुक्त महोदयसे अनुरोध किया जाये कि इन परिस्थितियोंको देखते हुए क्या यह उचित नहीं होगा कि इन कर्मचारियोंको विशेष पोशाक दी जाये, जिसे वे कामपर लगने से पहले पहन सकें और काम समाप्त होते ही उतार दें; इस सम्बन्धमें वे एक रिपोर्ट तैयार करें।

ये प्रस्ताव तो बहुत समय पहले ही पास किये जाने चाहिए थे। प्रस्तावोंमें जिन दो मुद्दों की चर्चा की गई है, वे नगरनिगमके कर्मचारियो तथा नागरिको, दोनोंके लिए महत्त्वपूर्ण हैं। बम्बई-जैसे विशाल नगरकी सफाई अधिकांशत: सफाई कर्मचारियोंकी कुशलतापर निर्भर है। तथापि, यदि देखा जाये तो सारे हिन्दुस्तानमें इन लोगोका सबसे कम ध्यान रखा जाता है। और ये अत्यन्त आवश्यक प्रस्ताव भी बम्बई नगरनिगममें कांग्रेसका बहुमत होने पर ही पास किये जा सके। हम सब आशा करे कि आयुक्त अविलम्ब अनुकूल रिपोर्ट तैयार करके देंगे। सिद्धान्तत: इन सुधारोंका कोई विरोध हो ही नही सकता। एतराज तो, जहाँतक मैं समझता हूँ, आर्थिक दृष्टिसे ही हो सकता है। लेकिन नगरकी सफाई आदि मामलोंके सम्बन्धमें आर्थिक दृष्टिसे विरोध कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता। इसलिए यदि हम यह मान लेते हैं कि आयुक्त अपनी रिपोर्ट अविलम्ब तैयार करेंगे और वह अनुकूल होगी, तथापि इससे पहले कि उसमें सुझाये गये सुधारोंको कार्यरूपमें परिणत किया जाये, उन्हें एक और दौरसे गुजरना होगा और वह यह है कि इसके लिए निगमके सदस्योंकी आवश्यक स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। मैं आशा करता हूँ कि इन प्रस्तावोंको पेश करनेवाले तथा अनुमोदन करनेवाले लोग तबतक चैनसे नही बैठेंगे जबतक कि मेहतरों, भंगियो तथा अन्य मजदूर कर्मचारियोको स्नानागार और काम करनेकी पोशाककी सुविधाएँ नही मिल जाती।

सेगाँव, २७ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-९-१९३९

१५१. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव,
[२७ अगस्त, १९३९][2]

गत २४ अगस्तको लन्दनसे एक बहनने यह तार दिया :

कृपा करके कुछ कीजिए। दुनिया आपकी रहनुमाईकी राह देख रही है।

लन्दनसे एक दूसरी बहनका यह तार आज मुझे मिला है :

मैं आपसे अनुरोध करती हूँ कि आपको पशुबलके बजाय विवेकमें जो अचल श्रद्धा है उसे शासकों और सब लोगोंके सामने अविलम्ब प्रकट करने की बातपर गौर करें।

मैं उस आसन्न विश्व-संकटके बारेमें कुछ कहने से हिचकिचा रहा था, जिसका कुछ राष्ट्रोंके ही नही बल्कि सारी मानव-जातिके हितपर असर पड़ेगा। मेरा यह विचार रहा है कि मेरे शब्दोंका उन लोगोंपर कोई प्रभाव नही पडेगा जिनपर लड़ाईका छिड़ना या शान्तिका कायम रहना निर्भर करता है। मैं जानता हूँ कि पश्चिमके बहुत-से लोग समझते हैं कि मेरे कहने का लोगोंपर अवश्य प्रभाव होता है। काश, मैं भी ऐसा ही समझता! चूँकि मैं ऐसा नही समझता, इसलिए मैं चुपचाप ईश्वरसे प्रार्थना करता रहा हूँ कि वह हमें युद्धके सकटसे बचाये। लेकिन यह घोषणा करने में मुझे जरा भी हिचकिचाहट नही मालूम होती कि मेरा विवेकमें विश्वास है, और विवेक अहिंसाका ही दूसरा नाम है। अन्यायको मिटाने के लिए या झगड़ोंके निपटारेके लिए युद्धका तरीका अपनानेके बजाय विवेकपूर्ण साधनोंके उपयोगमें ही मेरा विश्वास है। मैं अपने विश्वासपर सबसे अधिक जोर यही कहकर दे सकता हूँ कि यदि मेरे अपने देशको हिंसाके द्वारा स्वतन्त्रता मिलना सम्भव हो तो भी मैं स्वय उसे हिंसासे प्राप्त नहीं करूँगा। तलवारसे जो मिलता है वह तलवारसे लिया भी जाता है, इस सुभाषितमें मेरा अचल विश्वास है। क्या ही अच्छा हो यदि हर हिटलर संयुक्तराज्यके राष्ट्रपतिकी अपीलको सुनें और अपने दावेकी जाँच मध्यस्थोंको करने दें जिनके चुनावमें उनकी उतनी ही आवाज होगी जितनी उन लोगोंकी जो उनके दावेको ठीक नही समझते।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-९-१९३९

१. यह "टिप्पणियाँ" के अन्तर्गत "भावी संकट" उप-शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। यह वक्तव्य २९-८-१९३९ के *हिन्दू* में भी प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए अगला शीर्षक। तथापि साधन-सूत्रमें "२८ अगस्त" है।

१५२. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रचूजको

सेगाँव, वर्धा
२७ अगस्त, १९३९

प्रिय चार्ली,

तुम्हारी बीमारीसे मैं चिन्तित हूँ। मैं सोचता हूँ कि बीमारीका यह सबसे ताजा हमला परमात्माकी ओरसे चेतावनी है कि तुम्हें दक्षिण आफ्रिकाकी यात्राका विचार बिलकुल छोड़ देना चाहिए। इस विषयपर चिन्ता करते रहने से तुम्हारा स्वास्थ्य सुधरनेमें देर लगेगी। इसका मतलब यह हुआ कि तुम भारतमें ही रहो, अलबत्ता जब जरूरी हो तब स्वास्थ्यकी खातिर इंग्लैंड चले जाओ।

डौरोथी हॉग और अब एगथाने मुझे तार[1] भेजे हैं, जिनमें उन्होंने मुझसे विश्वकी स्थितिपर दो शब्द कहने का अनुरोध किया है। उसके सम्बन्धमें मैं समाचारपत्रोंमें जो-कुछ भेज रहा हूँ, उसकी एक प्रति इस पत्रके साथ है। जेसुदासनको उनके पत्रके लिए धन्यवाद दे देना। मैं अलगसे उन्हें कुछ नहीं लिख रहा हूँ।

स्नेह।

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२९९) से।

१५३. एक पत्र[2]

सेगाँव, वर्धा
२७ अगस्त, १९३९

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। आपने जल्दबाजीमें निर्णय किया है। हालाँकि 'नागपुर टाइम्स' मन्त्रिमण्डलका ही मुखपत्र है लेकिन उसमें जो प्रकाशित होता है उसका सम्बन्ध आप मन्त्रियोंके साथ कैसे जोड़ सकती हैं? जो लोग लोकसेवा करते हैं उन्हें उचित-अनुचित दोनों प्रकारकी आलोचनाको सहन करना पड़ता है। आपने मुझे जो लिख भेजा है उसमें से अधिकांश तो महज व्यंग्य है।

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. गांधीजी ने यह पत्र सम्भवतः मध्य प्रान्त विधान-सभाकी उपाध्यक्ष अनसूयाबाई काळेको लिखा था।

मैं नहीं जानता कि श्री भूलाभाई देसाईने क्या अनुचित व्यवहार किया है। मुझे मालूम हुआ था कि शिकायत करनेवाले दलके अगुओंने भूलाभाईकी नियुक्तिका[1] स्वागत किया था। लेकिन आपको मुझसे उन मामलोंमें दिलचस्पी लेने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए जो कार्य-समितिके कार्यक्षेत्रमें आते हैं।

मुझे डॉ० सोनकके बारेमें कुछ मालूम नहीं है और आप निश्चय ही मुझसे यह उम्मीद नहीं करेंगी कि मैं एक ऐसे मामलेकी तहकीकात करूँ जो आखिरकार एक निजी मामला है। मैं यदि ऐसे कार्यको हाथमें लेने लगूँ तो मैं किसी सार्वजनिक कामका नहीं रह जाऊँगा। मुझमें जो थोड़ी ताकत बची है उसका उपयोग मुझे उन कार्योंमें करना चाहिए जो मेरे जीवनका अंग बन गये हैं। मैं कांग्रेससे जान-बूझकर अलग हुआ हूँ, क्योंकि मैं अन्य बातोंके अलावा प्रशासन-सम्बन्धी बातोंसे बचना चाहता था। आपने जिन तीन बातोंका जिक्र किया है वे सब प्रशासनसे सम्बन्ध रखती हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ६९०२) से।

१५४. पत्र : इन्दु एन० पारेखको

सेगाँव, वर्धा
२७ अगस्त, १९३९

चि० इन्दु,

तेरी मूर्खताकी भी कोई हद है? यदि मेरी माने तो इस जंजालसे बिलकुल निकल जा और किसी छोटे-से सेवा-कार्यमें लग जा। इसीमें तेरा उद्धार है। भाई अपनी चिन्ता आप कर लेंगे। जो कमी है उसके बारेमें बापासाहबसे कह देना। सरदारको तो अवश्य बताना। मेरी तो यही इच्छा है कि तू इस जंजालसे जल्द मुक्त हो जाये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२५७) से।

१. द इण्डियन एनुअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २१५-१६ के अनुसार मध्य प्रान्तके स्थानीय स्वशासन मन्त्री डी० पी० मिश्रके विरुद्ध विधान-सभाके कुछ सदस्यों द्वारा लगाये गये आरोपोंकी जाँच करनेके लिए कार्य-समितिने भूलाभाईकी नियुक्ति की थी। जाँच शुरू हुए अभी दो ही दिन हुए थे कि शिकायत करनेवालों के प्रतिनिधियों, टी० जे० केदार तथा अन्य लोगोंने, "इस कारण जाँचसे अलग रहने की माँग की कि (१) भूलाभाई देसाई उन्हें जाँचके लिए कुछ ऐसे कागजात नहीं दे रहे हैं जिन्हें वे जरूरी समझते हैं और (२) उन्होंने ऑफिशियल सीक्रेट्स ऐक्ट की दुहाई देते हुए उन्हें कुछ सरकारी कागजात सामने नहीं रखने दिये। ... भूलाभाई देसाईने ... उनकी शंकाओंको निराधार बताते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे जाँचमें अपना सहयोग जारी रखें। ... तथापि उन लोगोंने वैसा करने से इन्कार कर दिया। . . . जिसपर जाँच स्थगित कर दी गई।"

१५५. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
२७ अगस्त, १९३९

चि० विजया,

राखीके सम्बन्धमें तू जैसा कहती है वैसा करूँगा, हालाँकि वह चाँदीकी है। गलेपर मिट्टीकी पट्टी रखने पर भी तू राजकुमारीकी तरह मुँहसे भाप ले सकती है। खानेमें फलोंका रस ही लेना। लेकिन यह सब तू अकेली ही नहीं कर सकती। वैद्यमें यदि हिम्मत हो तो वह जैसा कहे वैसा करना। अन्यथा भास्करके[1] कहने के मुताबिक करना। गुस्सा करने के कारण दाँत खिंचवाने के लिए तू जितनी जल्दी आ सके उतनी जल्दी आना। लेकिन जबतक वहाँ रहना तेरा कर्तव्य हो तबतक मुझे और कुछ नहीं कहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११४) से। सी० डब्ल्यू० ४६०६ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

१५६. तमिलनाडुमें खादी

तमिलनाडुमें खादी-कार्यकी ३० जूनतक की अर्धवार्षिक रिपोर्टके कुछ अंश इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित किये जा रहे हैं। आशा है, पाठकगण उन्हें दिलचस्पीके साथ पढ़ेंगे। इस विवरणके बाद ही अखिल भारतीय चरखा संघकी तमिलनाडु-शाखाके अध्यवसायी मन्त्री श्री रामस्वामीका एक व्यक्तिगत पत्र भी मुझे मिला है। पत्रके कुछ अंश अत्यन्त शिक्षाप्रद होने के कारण नीचे दिये जा रहे हैं :

> कत्तिनोंके लिए जीवन-यापन योग्य निम्नतम वेतनके निर्णयका जो पहला प्रयास किया गया था, उसे आज तीन साल बीत गये हैं। इस मासकी पहली तारीखसे इस दिशामें दूसरा कदम भी उठाया जा चुका है। कत्तिनोंकी आमदनीमें निश्चित रूपसे वृद्धि हुई है, हालाँकि यह उतनी नहीं है जितनी कि हम चाहते हैं। कत्तिनोंकी धुनने और कातने की कुशलता बढ़ाने के लिए

१. डॉ० भास्कर पटेल

बहुत प्रयास किये जा चुके हैं। मशीनकी धुनी हुई रुईका उपयोग छोड़ दिया गया है और सारी कताई कपाससे हो रही है। सुधरे हुए औजार बाँटे गये हैं। युगों पुराने गाँवके चरखेमें एक नया पुर्जा लगाकर नवजीवन दिया गया है। इस कदमके फलस्वरूप जो परिवर्तन हुए हैं उनपर विचार करने का, उन्हें समझने-परखने का अब समय आ गया है।

आपने हमेशा खादीको ग्रामीणोंकी घरेलू अर्थ-व्यवस्थाके अंग-रूपमें ही देखा है। हमारे पूर्वजोंने हमें यह छोटा-सा चरखा और तकुआ आनेवाली सारी पीढ़ियोंके लिए विरासतमें दिया था। इसके पीछे उनकी भावना यही थी कि प्रत्येक परिवारको अपनी जरूरत-भरका सूत कातना चाहिए। उन्होंने खादी-उत्पादनके लिए केवल सहज उपभोक्ता अर्थात् उत्पादक और उसके परिवारको और बहुत हुआ तो गाँवको ध्यानमें रखा था। शायद गाँवका बुनकर कुछ कपड़ा हाटमें ले जाता रहा होगा। किन्तु दूरके उपभोक्ताओंकी आवश्यकताको पूरा करने के लिए चरखेका पैसा कमाने की दृष्टिसे उपयोग करने का उन्हें खयाल ही नहीं आया होगा।

१९३५ में कत्तिनोंकी मजदूरी बढ़ाने की दिशामें जो पहला प्रयास किया गया उससे पहलेतक संघको कत्तिनोंके हितकी अपेक्षा खरीदारोंका ही अधिक खयाल था। संघका उद्देश्य हमेशा खादीके मूल्यमें कमी करना रहा है जिससे कि अधिकसे-अधिक लोग खादी खरीद सकें। इसने लोगोंको इस क्षेत्रमें प्रवेश करके उपभोक्ताओंसे नाजायज फायदा उठाने की कोशिश करने से रोका। बहुत थोड़े लोग खादीका व्यवसाय करने को उत्सुक थे और जिन थोड़े-से लोगोंने इसमें कदम रखा उन्हें जब इसमें विशेष लाभ नहीं दिखाई दिया तब वे भी पीछे हट गये।

१९३५ तक आम तौरपर कत्तिनें कताईके पारिश्रमिकके रूपमें औसतन केवल चार आने प्रति पौंड ही कमा पाती थीं। और जो कत्तिनें साधारण स्तरके सूतसे कुछ बढ़िया सूत कातती थीं उन्हें जरा ज्यादा पैसे मिल जाते थे; ज्यादा-से-ज्यादा एक पौंडके छह आने मिलते थे। उन दिनों यदि किसी कत्तिनपर १ पैसा भी जुरमाना लग जाता था तो उसे इतना महसूस होता था कि उसकी आँखें भर आती थीं। इसी प्रकार जब उसे आशासे अधिक पैसे-दो पैसे भी मिल जाते तो उसके चेहरेपर मुस्कान बिखर जाती थी। एक पैसा कम या ज्यादा मिलना भी उसके लिए बहुत महत्त्व रखता था, क्योंकि एक पैसा भी इतना ज्यादा लगता था।

१९३६ में कत्तिनके माँगे बिना ही कातने की मजदूरी इतनी बढा दी गई जिसकी उसे सपनेमें भी आशा नहीं थी। जहाँ १९३५ में कताईकी सामान्य मजदूरी प्रति पौंड चार आने थी, १९३८ में यह बढ़ाकर सवा बारह

आने कर दी गई, अर्थात् उसकी मजदूरीमें दो सौ प्रतिशतकी वृद्धि हुई। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होना चाहिए था कि वह और अच्छा, ज्यादा बटा हुआ और इकसार सूत कातती, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उसके जीवन-स्तरको सुधारनेके हमारे प्रयासकी उसपर इतनी ही प्रतिक्रिया हुई कि उसे अस्पष्ट रूपसे यह प्रतीत होता है कि उसे उसकी मजदूरीकी तुलनामें कहीं अधिक — बहुत अधिक पैसे दिये जाते हैं। यहाँतक कि घटिया सूत कातने पर जब उसपर जुरमाना लगाया जाता है तो उसका भी उसे कोई दुःख नहीं होता। हम केवल उसी सूतकी पूरी मजदूरी देते हैं जो हमारी कड़ी कसौटीपर खरा उतरता है। किन्तु कत्तिनको केवल दस आने प्रति पौंडकी मजदूरी मिलने पर किसी प्रकारका घाटा महसूस नहीं होता, उसको केवल आठ आने पाकर भी दुःख नहीं होता। यदि केवल छह आने मिलें तब भी उसे परवाह नहीं, क्योंकि तब भी उसे अपने श्रमके उसके अन्दाजसे ५० प्रतिशत अधिक मिलता है और उसे उस भावपर खरीदनेवाला कोई-न-कोई ग्राहक भी हमेशा मिल जाता है। वह ग्राहक चरखा संघकी तरह सूतकी कड़ी जाँच नहीं करता और वह उसी भावपर सूत खरीदकर खुश रहता है। ये अप्रमाणित व्यापारी संघकी दरके मुकाबले पचास प्रतिशत मजदूरी देते हैं और इस सूतसे बुने कपड़ेको हमारे निर्धारित सामान्य भावके ७५ या ८० प्रतिशत भावपर बेच देते हैं। १९३६ से हम ग्राहकोंकी अपेक्षा कत्तिनोंमें अधिक दिलचस्पी लेने लगे हैं। हमारा ध्येय ग्राहकोंसे ज्यादासे-ज्यादा दाम लेकर कत्तिनोंको मजदूरीकी तरह देना रहा है। और अप्रमाणित व्यापारी (जिनकी संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है) को तो कत्तिनों और ग्राहकों दोनोंका शोषण करने की खुली छूट मिल गई है। फल यह हुआ है कि कताईका पारिश्रमिक बढ़ाने के बावजूद और वह भी कत्तिनोंके बिना माँगे ही — हम उसी अनुपातमें किस्ममें सुधार नहीं दिखा सके हैं।

कताईकी दर बढ़नेके परिणामस्वरूप ज्यादातर स्त्रियोंने कताईके लिए अपने नाम दर्ज कराये हैं। १९३५ तक कताईकी दर इतनी आकर्षक नहीं थी कि स्त्रियाँ पूरे दिन चरखा लेकर बैठी रहें। लेकिन दर बढ़ जाने के कारण कताई उनके पूरे दिनके धन्धेके रूपमें लाभदायक जँच रही है। १९३६ में हमने ६ लाख रुपयेकी खादी तैयार की; १९३८में यह बढ़कर १६ लाख रुपयेकी हो गई। हमारे पास जितनी पूँजी है उससे सारा कता हुआ सूत खरीद सकना हमारे लिए संभव नहीं है और न खादीकी बिक्री ही उस अनुपातमें बढ़ी है। कितनी ही कत्तिनोंका सूत हमें वापस कर देना पड़ता है, जिसे वे स्वभावतः अप्रमाणित व्यापारियोंके हाथों, वे जो भी दाम तय कर देते हैं, उसीपर बेच देती हैं; फलतः वे हमसे सस्ती खादी बेच सकते हैं।

१९३६ से हमारा हमेशा यही विचार रहा है कि उत्पादकोंको ही सबसे बड़ा उपभोक्ता होना चाहिए और उनकी आवश्यकताके बाद जो बचे केवल वही बेचा जाना चाहिए। इस लक्ष्यको ध्यानमें रखते हुए कत्तिनोंसे कहा गया है कि वे अपने कते सूतका एक भाग अपने उपयोगके लिए हमारे पास जमा कर दें और बाकीके सूतको हम खरीद लेते हैं। १९३६में इस तरह जमा किया हुआ सूत पूरे उत्पादनका १३ प्रतिशत था और १९३८ में बढ़कर यह ३१ प्रतिशत हो गया। यदि अप्रमाणित खादी-व्यापारीकी ओरसे गड़बड़की आशंका न हो तो इसे किसी भी सीमातक बढाया जा सकता है। शायद इस मामलेमें उसकी गतिविधियाँ सबसे ज्यादा खराब हैं। हमारे द्वारा वितरित यह कपड़ा सस्ता खरीदकर दूसरी जगह मुनाफा उठाकर बेचने में भी वह नहीं हिचकिचाता। इस मामलेमें तो वह हमें मिलका कपड़ा बेचनेवालों से भी अधिक नुकसान पहुँचाता है।

इन सबका इलाज शायद यही है कि कुछ ऐसी व्यवस्था की जाये कि जिस स्थानमें जितनी खादीकी खपत हो उतनी खादी उसी स्थानपर तैयार की जाये और उसकी बिक्री भी वहीं हो। खादीको व्यापारकी वस्तु न बनाया जाये, अर्थात् ऐसा नहीं होना चाहिए कि खादीका उत्पादन गाँवोंमें और बिक्री सुदूर नगरोंमें हो। क्योंकि इस समय कत्तिनें यह समझती हैं कि वे अपनी तथा अपने परिवारकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए नहीं काततीं, बल्कि सूतको किसी अज्ञात स्थानपर ले जाकर बेचने के लिए कातती हैं। इसी कारण वे समझ नहीं पातीं और न समझना चाहती हैं कि उन्हें किस प्रकारका सूत कातना चाहिए। हमें जिस अंकके सूतकी जरूरत होती है उस तरहका सूत हम नहीं कतवा सकते। यदि हमें केवल बेचने के लिए खादी तैयार करनी है तो हमें उपभोक्ताओंकी आवश्यकताओंकी ओर ध्यान देना पड़ेगा। जरूरत क्या है और कितनी, और किस कोटिकी खादी तैयार करनी चाहिए, इन सब बातोंका ध्यान भी हमें रखना होगा। मिल-जैसे संगठित उद्योगमें उत्पादनको ऐसा रूप देना सम्भव है जिससे केवल वही चीज तैयार की जाये जिसकी माँग हो। वहाँ सारी कताई सीमित स्थानपर होती है, मशीनोंके तकुए निश्चित गतिसे चलनेवाले और जैसा चाहिए वैसा सूत कातनेवाले निर्जीव पुर्जे होते हैं। लेकिन खादीपर यह बात लागू नहीं होती। कत्तिन और उसके तकुए दोनों अलग-अलग वस्तुएँ हैं। कत्तिनके जीवन और विचारधारापर हमारा वश नहीं। किन्तु यदि उसे केवल उसकी निजी प्रत्यक्ष आवश्यकताओंके अनुरूप सूत कातने को प्रेरित किया जाये तो उसकी जरूरत क्या है, उसे किस प्रकारका और कितना सूत चाहिए, वह इन सब बातोंको अच्छी तरह समझ लेगी। यदि उसकी आवश्यकता पूरी

होने के बाद सूत बच जाता है तो कोई केन्द्रीय संस्था उसे इकट्ठा करके बेच सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि ग्राम-पंचायतको यह अधिकार दे दिया जाये कि वह गाँवमें जो फालतू सूत तैयार होता है उसे अपने पास इकट्ठा कर ले और उसे ऐसी कीमतपर बेचे जिससे कत्तिनोंको अपने प्रति घंटेके कामके लिए मानक मजदूरी मिल सके।

२७ जूनको तिरुपुरमें खादी-सेवकोंका सम्मेलन हुआ था। इसमें श्री शंकरलाल बैंकरने भाषण दिया था। इस सम्मेलनमें कताईकी दर और बढ़ाये जाने का सवाल भी उठाया गया था। सम्मेलनमें उपस्थित ९३ कार्यकर्त्ताओंमें से केवल दो कार्यकर्त्ता ही इसके पक्षमें थे। बाकी सब इसके विरुद्ध थे — इस कारण नहीं कि वे कत्तिनोंको अधिक मेहनताना नहीं देना चाहते थे, बल्कि इसलिए कि उसका अपेक्षित परिणाम नहीं निकलता है। मेहनताना बढ़ाने से उत्पादनकी किस्ममें कोई सुधार नहीं होता है; इतना ही नहीं बल्कि इसके कारण अप्रमाणित विक्रेताओंको कतैयों और ग्राहकों, दोनोंसे नाजायज फायदा उठाने का और भी मौका मिल जाता है। अप्रमाणित व्यापारीके कपट-भरे कार्योपर अंकुश न रख पाने के कारण हम अपने-आपको असहाय महसूस करते हैं। श्री शंकरलालजी के सामने हम अपनी स्थिति अच्छी तरहसे स्पष्ट नहीं कर सके। और इस पत्रमें भी हम खुलासा कर सके हैं या नहीं, इसका भी हमें पूरा विश्वास नहीं है। हमारा तो आपसे यही अनुरोध है कि आप हमारे दृष्टिकोणसे इस समस्यापर विचार करें और हमारी कठिनाइयोंको पहचानें।

शायद इसका एकमात्र उपाय यही है कि सरकार हस्तक्षेप करे और कत्तिनोंको जो संरक्षण दिया जाना चाहिए, वह संरक्षण दे। वह चाहे या न चाहे, उनकी रक्षा की ही जानी चाहिए। यह भी किया जा सकता है कि हाथ-कते सूतकी दर कानून बनाकर निश्चित कर दी जाये और उससे कम भावपर सूत खरीदना अपराध माना जाये। ऐसी व्यवस्था भी की जा सकती है कि जिस समय कत्तिनको अपने कपड़ोंके लिए सूतकी जरूरत हो उस समय यदि कोई व्यक्ति उससे सूत खरीदता है तो वह जुर्म करता है। ग्राम-पंचायत या उसकी ओरसे अखिल भारतीय चरखा संघको फालतू सूत जमा करके निश्चित दरोंपर बेचने का अधिकार दिया जा सकता है। आज जबकि अनेक प्रान्तोंमें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल हैं इसलिए वहाँ ऐसा संरक्षक कानून बनाना कुछ असम्भव नहीं। हमारी आपसे केवल यही प्रार्थना है कि आप इस विषयपर विचार करें और मन्त्रिमण्डलोंको उचित कानून बनाने की सलाह दें।

ये मन्त्री महोदय बहुत अधीर उत्साही व्यक्ति हैं। किसी भी बड़े उद्यममें उत्साह और अधीरता कुछ सीमातक उचित होती है। मैं आजतक जितने भी उद्यमोंकी

कल्पना कर पाया हूँ, खादी उन सबसे बड़ा उद्यम है, क्योंकि इसमें हैसियत और धर्मके भेदभावके बिना करोड़ो मनुष्योंका हित एक साथ सन्निहित है। यही कारण है कि जितने भी अधीर उत्साही लोग इसमें आते हैं उन सबको खपा लेने की यह क्षमता रखता है, बशर्ते कि वे ईमानदार, निर्दोष, किसी भी तरहके प्रलोभनमें न आनेवाले और नि.स्वार्थ लोग हों। और इन अधीर उत्साही लोगोको याद रखना चाहिए कि अन्तत. शान्ति, धैर्य और अनथक शोधकी ही विजय होती है।

और अब मैं श्री ऐयामुत्तुने जिन कठिनाइयोंका जिक्र किया है, उनपर आता हूँ।

१ अप्रमाणित व्यापारी एक अभिशाप हैं, अपनी बहनोंके — कत्तिनें उनकी बहनें ही हैं — शत्रु हैं; वे प्रगतिके और अन्ततः स्वयं अपने ही शत्रु हैं। किन्तु उनकी हानिकारक गतिविधियोंके निराकरणका सबसे बढ़िया एक ही तरीका है और वह यह है कि कत्तिनें जितना सूत कातती हैं वह सारा सूत खरीद लिया जाना चाहिए। यह तो विशुद्ध अकगणितकी बात है। ऊँची दर निर्धारित करने का अधिकार श्री ऐयामुत्तुको ही है। वे चुनिन्दा कत्तिनोको आठ आने प्रतिदिन भी दे सकते हैं। ये उनके प्रयोग-कार्यके लिए उपयोगी हैं। उनकी संख्यापर वे अकुश रखे। यदि अन्य कत्तिनें सूत बेचने को तैयार हो तो उनका सारा सूत वे बड़ी दरकी अपेक्षा कम दरपर खरीद लें। इस प्रकार जहाँतक सूतका प्रश्न है, वे अप्रमाणित व्यापारी-रूपी कंटकको सहज ही निकाल बाहर करेंगे। मैं जानता हूँ कि यदि प्रयोगकर्त्ता अपने प्रत्येक कार्यमें कत्तिनोका और प्रत्येक कत्तिनको वह जो आदर्श मेहनताना प्रदान करने को आतुर है, उसका निरन्तर विचार नहीं करता तो यह एक खतरनाक प्रयोग है। यदि वह इस शर्तका पालन करता है और प्रत्येक कत्तिनको अपने नियन्त्रणमें रखकर अप्रमाणित व्यापारी-रूपी कंटकको निकाल फेंकता है तो वह कत्तिनोको अपने कामका अच्छा पारिश्रमिक प्राप्त करने की कलामें पारंगत कर देगा। अन्तमें वह भी समझ जायेगी कि उसे किसके साथ व्यवहार रखना चाहिए और तब वह सीखने लायक बातें सहर्ष सीखेगी। फिर तो कत्तिनोंके निजी उपयोगकी खादीका चोरी-छुपा व्यापार अपने-आप बन्द हो जायेगा।

२ मैं इस प्रस्तावका पूर्णतया समर्थन करता हूँ कि खादीका इस हदतक विकेन्द्रीकरण किया जाये कि प्रत्येक गाँव अपनी जरूरतकी कपास स्वय उगाये और कपडा भी तैयार करे। यदि फालतू बचे तो जहाँ उसकी माँग हो वहाँ बेची जाये अर्थात् शहरोमें या उन स्थानोंपर बेची जाये जहाँ कपास पैदा नही की जाती और जहाँ निकटतम खादी-केन्द्रसे सस्ते दामोंपर खादी खरीदी जा सकती हो। इस आदर्शको तभी प्राप्त किया जा सकता है जब चरखा संघकी प्रत्येक शाखा एक गाँव चुनकर वहाँ यह प्रयोग करे, जिसके लिए अच्छेसे-अच्छे विशेषज्ञकी जरूरत होगी। मैं जिन आदर्शोको मनमें सँजोये सेगाँवमें आ बसा था, उन आदर्शोंमें यह भी एक था, लेकिन मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं इससे आज भी उतना ही दूर महसूस करता हूँ जितना कि तीन साल पहले यहाँ आने के समय था। प्रगतिकी रफ्तार इतनी धीमी क्यो है, इसकी चर्चा करने की जरूरत नही। किन्तु यह तथ्य कार्य-

कर्त्ताओंको सचेत करने और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए काफी है। उन्हें यह आशा नही रखनी चाहिए कि उनके गाँवमें जाते ही चमत्कार होने लगेंगे और उन्हें यह सोचकर प्रोत्साहित होना चाहिए कि यदि गाँवमें तीन साल रहने के बाद भी मैं बहुत थोड़ा या नहींके बराबर परिणाम दिखा पाया तो यदि वे उचित प्रयासके बावजूद परिणाम न दिखा सकें तो उन्हें उसके लिए निराश अथवा लज्जित नही होना चाहिए।

३. खादी-सेवक यदि कांग्रेसी सरकारसे चमत्कार कर दिखाने की आशा रखेंगे तो उससे उनमें आलस्य आयेगा।

अप्रामाणिक लोग तो किसी भी कानूनसे नाजायज फायदा उठाने का रास्ता ढूँढ ही निकालेंगे। कांग्रेसी सरकारोंकी भी अपनी सीमाएँ हैं। साथ ही कानून बनाने से कुछ मदद अवश्य मिल सकती है। कानून बनाये जाने से जिस दिशामें लाभ हो सकता है वह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ। यदि अप्रमाणित व्यापारी खादी बेचें तो इसके लिए उन्हें सजा दी जानी चाहिए। टाटा कम्पनीके उत्पादनको सरकारी अनुदान द्वारा जैसा संरक्षण प्रदान किया गया था, वैसा ही खादीको भी दिया जा सकता है और यह धनराशि मिलके कपड़ेकी बिक्रीपर कर लगाकर उगाही जा सकती है। अप्रमाणित व्यापारियोंसे जो जुरमाना वसूल किया जाये उसमें से अनिवार्य खर्च निकालने के बाद शेष धनराशि अखिल भारतीय चरखा संघको दी जा सकती है।

४ बिक्रीका सवाल निस्सन्देह एक समस्या है। पिछले एक लेखमें मैं इसपर चर्चा कर चुका हूँ।[1] लेकिन इसमें तो सन्देह नही कि प्रत्येक कांग्रेसीको अपना सारा कपड़ा खादी-भण्डारोंसे ही खरीदना चाहिए। इस प्रश्नपर उचित ढंगसे काम करते हुए कांग्रेसी और गैरकांग्रेसी सरकारें खादीकी सहायता कर सकेंगी और कमसे-कम खर्चमें बेरोजगारोंको रोजी दे सकेंगी और इस तरह स्वयं अपनी सहायता भी कर सकेंगी।

सेगाँव, २८ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-९-१९३९

१. देखिए पृ० ११६-१८।

१५७. टिप्पणियाँ

क्या इससे सबक लेंगे?

हृदयनाथ वैजल आगराके मेडिकल कॉलेजका विद्यार्थी था। जब-कभी मैं लम्बे समयके बाद बडे-बड़े स्टेशनोसे गुजरता हूँ, तो मुझे हमेशा अनियन्त्रित प्रदर्शनोका सामना करना पड़ता है। अभी हालमें जब मैं सीमा-प्रान्त गया उस समय — पता नही क्यो — और ज्यादा अनियन्त्रित प्रदर्शन किये गये और वहाँसे लौटते समय तो और भी ज्यादा अनियन्त्रित ढगसे। इसी तरहका एक प्रदर्शन २७ जुलाईको आगरेमें हुआ। शोरगुल और नारोकी आवाजको, चाहे वे कितने ही प्रेम-भरे क्यों न हो, मेरे कान बरदाश्त नही कर सकते। कानोमें रुईकी डाटें लगाने से भी कुछ नही होता। आवाज न सुनाई दे, इसके लिए मुझे अपनी उँगलियोसे जितने जोरसे हो सकता है कान बन्द करने पड़ते है। लोग अपने जोशमें इतने पागल हो जाते है कि मेरी और मेरे साथियोकी करुण प्रार्थनाओंकी ओर वे जरा भी ध्यान नही देते। इसमें उनका दोष नही। वे नही जानते कि उनसे क्या कहा जा रहा है। और वे यह नही समझ सकते कि जिन व्यक्तियोंके सम्मानमें प्रदर्शन किये जाते है वे उनपर नाराज क्यो होते है। वे दिन और रातमें कोई फर्क नही करते। आगरेका यह प्रदर्शन रातको हुआ था, मेरे खयालमें ९ बजेके बाद। हृदयनाथ इन्ही प्रदर्शनकारियोमें था। वह मुझ तक पहुँचकर मेरे हस्ताक्षर लेनेके लिए ट्रेनपर चढ गया। मगर मेरे डिब्बेके पास आनेसे पहले ही उसका पैर फिसल गया और वह गिर पड़ा। गाडी चल पडी और वह नीचे आ गया और उसे दोनो टाँगोसे हाथ धोना पड़ा।

एक सज्जन लिखते है कि रेलके अधिकारी भीडको काबूमें रखनेका इन्तजाम कर सकते थे, या उन्हें ऐसा करना चाहिए था, गाड़ीको फौरन रोक देना चाहिए था। साथ ही, जो प्रारम्भिक उपचार किया जाना चाहिए था, वह नही किया गया। चाहे जो हो, हृदयनाथको चोट तो आई ही। इस दुर्घटनाके बाद दयालु पत्र-लेखक मुझे बराबर खबर देते रहे है। हृदयनाथके पिताने भी मुझे लिखा। इस तरह मैं उस नवयुवकको एक-दो उत्साहप्रद शब्द लिख सका, और उसके पिता तथा मित्रोको जितना हो सका उतनी तसल्ली भी दे सका। दुर्भाग्यवश, अच्छेसे-अच्छा इलाज होने पर भी, २२ तारीखको उसका शरीरांत हो गया। मैं हृदयनाथके पिता तथा मित्रोके प्रति समवेदना प्रकट करता हूँ। इन पक्तियोको लिखनेके पीछे मेरा उद्देश्य उन प्रदर्शनोंके विरुद्ध चेतावनी देना है जिनमें कोई व्यवस्था नही होती। अगर प्रदर्शनोंके बिना काम नही चल सकता, और मेरा खयाल है कि नही ही चलेगा, तो या तो खुद प्रदर्शनकारी या फिर पुलिसको उनपर नियन्त्रण रखना चाहिए। गत कुछ महीनोंके अन्दर यह

१५९. पत्र : जगलाल चौधरीको[1]

सेगाँव, वर्धा
२८ अगस्त, १९३९

प्रिय जगलाल,

कृपलानीको लिखे तुम्हारे पत्रकी प्रतिलिपि मुझे मिली। तीन सालकी मियाद है। यदि मन्त्री एक सालमें नशाबन्दी कर सकते हैं तो उनसे ऐसा करनेकी आशा की जाती है। इसके विपरीत, यदि बड़े प्रयत्नोंके बावजूद वे नियत समयमें कार्यक्रम पूरा नही कर सके, तो उन्हें दोष नही दिया जायेगा। तीन सालकी गिनती कांग्रेसके प्रस्तावकी तारीखसे की जानी चाहिए। लेकिन निश्चय ही अध्यक्षका निर्णय तुम्हारा असली पथ-प्रदर्शक होना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

माननीय जगलाल चौधरी
मन्त्री
पटना

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१६०. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

२९ अगस्त, १९३९

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आपके २६ तारीखके पत्रके[2] लिए धन्यवाद। आपकी तरह मेरी भी यही कामना है कि ससार युद्धकी विभीषिकासे बच जाये। लेकिन यदि ऐसा न हुआ और आपको मेरा शिमला आना जरूरी जान पड़ा तो मैं अवश्य आऊँगा।

मैं हूँ,
हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे : लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. बिहार मन्त्रिमण्डलमें आबकारी मन्त्री
२. जिसमें अन्य बातोंके अलावा यह कहा गया था : "... हालाँकि मुझे ऐसा मानने का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता कि युद्ध अवश्यम्भावी है तथापि आप इस बातसे अवश्य सहमत होंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत अमंगलसूचक है और यदि युद्ध आरम्भ हो जाता है तो मेरे मनमें आपसे

१६१. पत्र : ए० गुप्तको

सेगाँव, वर्धा
२९ अगस्त, १९३९

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मैं इस बातमें आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि दूसरों पर बदनीयतीका आरोप लगानेका दोष सबमें देखा जाता है। आप मेरा वक्तव्य[1] दुबारा पढ़ेंगे तो देखेंगे कि वह सामान्य किस्मका है। मैंने आजके अखबारमें अभी पढ़ा है कि पटनामें सुभाष बाबूके विरोधमें काले झंडोंका प्रदर्शन हुआ। मुझे यह जानकर दुःख हुआ।

हृदयसे आपका,

श्री ए० गुप्त
बंगाली एसोसिएशन
दीनापुर, बिहार

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

१६२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेगाँव, वर्धा
२९ अगस्त, १९३९

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र आज ही मिला। राखी तो अमतुस्सलामने बाँधी और अब मैं तुझे यह पत्र लिख रहा हूँ।

पहले तो तेरे प्रश्न : १२५ रुपये तू देवको[2] क्यों नहीं दे देती? पुस्तकके[3] लिए यदि कोई कुछ देता है तो उसे लेनेमें अड़चन नहीं होनी चाहिए। और जो-कुछ मिले वह सब अथवा उसमें से जितना सम्भव हो उतना देवको दे दे।

तुरन्त आकर मुझसे मिलनेका अनुरोध करनेका विचार रहा है। . . . यदि सभी पक्ष विवेक-बुद्धिसे काम नहीं लेते और युद्ध भड़क उठता है तो अगर मैं आपको . . . आकर मुझसे मिलनेका . . . तार दूँ तो आशा है कि आप उसे गलत नहीं समझेंगे।"

१. देखिए पृ० १२५-२७।

२. शंकरराव देव

३. प्रेमाबहन द्वारा लिखित उपन्यास काम अने कामिनी

देवकी इस बातसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि उसका खर्च महाराष्ट्रको ही उठाना चाहिए और यदि महाराष्ट्र उसका खर्च नहीं उठाता तो समझना चाहिए कि महाराष्ट्रको उसकी सेवाकी जरूरत नहीं है।

पटवर्धन[1] जब चाहे तब मेरे साथ आकर रह सकता है। यहाँ भीड़ तो हमेशा रहती ही है।

तू जब सम्भव हो तब आ जा। तेरे सम्बन्धमें भीड़-भाड़का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ आयेगी तो समझ ले कि अच्छी हो जायेगी। हाँ, इस बातकी सम्भावना जरूर है कि इस बीच मुझे कहीं जाना पड़े। तो क्या हुआ? और यदि जाना भी पड़ा तो उसके बारेमें तुझे तुरन्त मालूम हो जायेगा।

केलकरको[2] जीतने के मैंने जितने प्रयत्न किये हैं सो मेरा मन ही जानता है और वे जानते हैं। उन्हें कार्य-समितिमें लेनेवाला व्यक्ति भी मैं ही हूँ। उसका उद्देश्य एक ही था कि उन्हें लोकमान्यका वारिस समझा जाता है। मैं जहाँतक अपने-आपको उनके अनुकूल बना सकता था और उन्हें जीत सकता था वहाँतक मैंने वैसा करना अपना धर्म समझा। अब भी समझता हूँ। लोकमान्यके साथ मतभेद होने के बावजूद मैं अपने-आपको उनका भक्त मानता हूँ। उनकी विद्वत्ता, देशभक्ति और बहादुरीके प्रति मेरे मनमें अत्यन्त आदर-भाव था।

स्वामी सत्यदेवने जो-कुछ कहा है उसमें सत्यका लेशमात्र नहीं है। मेरे मुँहसे ऐसे शब्द निकल ही नहीं सकते। यदि मेरे मुँहसे ऐसे शब्द निकलें तो मेरे सत्य और अहिंसाको लजायेंगे।

मैं यह अवश्य मानता हूँ कि देशहितके लिए वे असत्य और हिंसाका आश्रय भी ले सकते हैं। उन्होंने स्वयं मेरे आगे इस बातको स्वीकार किया है। इसको लेकर तो हममें कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ है। उन्होंने 'शठं प्रति शाठ्यम्' के सिद्धान्तका प्रतिपादन किया और उसके विपरीत मैंने कहा कि मैं तो 'शठं प्रत्यपि सत्यम्' में विश्वास करता हूँ।[3] क्या तुझे यह मालूम नहीं है?

मुझे लगता है कि मैंने तेरे सारे प्रश्नोंके उत्तर दे दिये हैं।

तेरे पत्रकी मैं बाट जोह रहा था। तूने अपनी प्रवृत्तियोंके बारेमें जो लिखा है उसपर मुझे कोई टीका नहीं करनी है। तू जो भी करे सो मुझसे पूछकर करे, ऐसा मैं नहीं मानता। भूल हो जाये, तो भी क्या हुआ? मुझे इस बातका विश्वास है कि तू आश्रमके व्रतोंको ध्यानमें रखकर ही जो करना उचित हो सो करती है और करेगी।

हाँ, राजेन बाबूने तेरे बारेमें पूछा था।[4] मैंने कहा कि तू निश्चय ही जिम्मेदारी उठाने लायक है और यदि तू जिम्मेदारी लेगी तो मैं उसका विरोध नहीं करूँगा।

१. पी० एन० पटवर्धन

२. एन० सी० केलकर

३. देखिए खण्ड १५।

४. राजेन्द्र बाबूने, रामगढ़, बिहारमें महिला स्वयंसेवकोंका संगठन करनेके लिए प्रेमाबहनको भेजनेके बारेमें पूछा था; देखिए अगला शीर्षक भी।

मैंने उनसे कहा कि इससे आपका बोझ हलका हो जायेगा, लेकिन मैंने कहा कि इसके लिए मैं तुझपर दबाव नहीं डालूँगा। उसके लिए तो आपको देवसे माँग करनी चाहिए क्योंकि तू उनके अधीन काम करती है। अब बस न?

सुशीलाका पत्र इसके साथ है। धोती[1] मिलने पर उसका इस्तेमाल करूँगा, भले ही वह कैसी भी हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०१) से। सी० डब्ल्यू० ६८४० से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

१६३. पत्र: प्रभावतीको

सेगाँव, वर्धा
२९ अगस्त, १९३९

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। मैं कनुसे कहे देता हूँ कि वह तुझे ५० रुपये भेज दे। राजेन बाबूके साथ बात हुई थी। उन्होंने कहा कि प्रभावती बीमार है, इसलिए उन्होंने आग्रह नहीं किया। अन्य नामोंपर विचार करने के बाद प्रेमाको चुना गया है। यह निश्चय किया गया है कि तुझसे जितनी हो सकेगी उतनी प्रेमाकी मदद करेगी। प्रेमाका आज पत्र मिला है। उसमें उसने लिखा है कि वह अक्तूबरमें वहाँ[2] आयेगी। कान्ति[3] मैसूरमें पढ़ता है। मुझे पत्र नहीं लिखता। सरस्वती[4] भी नहीं लिखती। वह गर्भवती है, उसे पाँच-एक महीने पूरे हो गये हैं। अब तो वह अपने पिताके घर गई होगी। वह मैसूरमें मेडिकल कॉलेजमें पढ़ता है। मेरे विचारसे तो उसका खासा पतन हो गया है। ईश्वर उसका भला करे। सुशीला दिल्लीमें है। १५ सितम्बरतक रहेगी। फिलहाल तो यही व्यवस्था है। उसका पता है:

लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज, नई दिल्ली। अमतुस्सलाम और राजकुमारी यहीं है। कृष्णदास[5] और मनोज्ञा[6] फिलहाल यहाँ रहने के लिए आये हैं। कृष्णदास बीमार है। मैं ठीक हूँ, बा भी अच्छी है। आश्रम लोगोंसे भर गया है। अमतुस्सलाम एक मुसलमान लड़कीको भी लाई है।

१. प्रेमाबहन कंटकने गांधीजीको हर साल और विशेष रूपसे उनके जन्मदिवसपर हाथकती दो धोतियाँ भेजने का निश्चय किया था। उन्होंने पहली बार १९३९में धोतियाँ भेजी थीं और अपना यह निश्चय अन्ततक निभाया।

२. देखिए पिछला शीर्षक भी।

३ और ४. हरिलाल गांधीके ज्येष्ठ पुत्र, और उनकी पत्नी

५ और ६. छगनलाल गांधीके छोटे पुत्र, और उनकी पत्नी

अपने स्वास्थ्यका बराबर ध्यान रखना। अपने पाठका नमूना भेजना। अभी जो पढ़ाई चल रही है उसे जारी रखना। तेरे दिमागपर ज्यादा बोझ नही पड़ना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३१)से।

१६४. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगांव, वर्धा
२९ अगस्त, १९३९

चि० विजया,

तू मुझे नियमपूर्वक पत्र नहीं लिखती, यह बात ठीक नही है। अन्तत तूने क्या निश्चय किया है? वल्लभरामको बुलाने का मन नही होता क्या? मैंने तो उन्हें लिखा है कि यदि उनमें हिम्मत हो तो वे खुद ही वराड जाकर देख आयें। मुझे पटनाका मोह नहीं है, लेकिन अगर पिताजी को अथवा तुझे हो, तो वहाँ जाना तेरा कर्त्तव्य हो जाता है। उम्मीद है, तू [पिताजीको लेकर] घबरा नही उठी होगी।[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११५)से। सी० डब्ल्यू० ४६०७ से भी, सौजन्य: विजयाबहन एम० पंचोली

१६५. सन्देश : पोलैंडवासियोंको

[३० अगस्त, १९३९ के पूर्व][2]

पोलैंडके उन सब लोगोंको मैं अपनी शुभकामनाएँ और आशीर्वाद भेजता हूँ जो विश्वास करते है कि मानवताके सुखद भविष्यका आधार केवल सत्य और प्रेम ही हो सकता है और जो अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर उन आदर्शोंकी रक्षाकी पूरी कोशिश कर रहे हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३१-८-१९३९

१. देखिए "पत्र: विजयाबहन एम० पंचोलीको", पृ० १९२ भी।

२. पत्रके लन्दन-स्थित सम्वाददाताने ३० अगस्तको समाचार दिया था कि यह सन्देश "वार्सासे प्रकाशित यीओदोमोस्की लितेराकीके आज रातके अंकमें प्रकाशित होगा। देखिए "तार: पेडरेवस्कीको", पृ० १८१-८२ भी।

१६६. पत्र : ए० वैद्यनाथ अय्यरको

सेगाँव, वर्धा
३० अगस्त, १९३९

प्रिय वैद्यनाथ अय्यर,

एक अलग लिफाफेमें मैं तुम्हें श्री प्रसादरावसे प्राप्त कागजात भेज रहा हूँ। मैं चाहूँगा कि तुम उनके आरोपोंका जवाब मुझे लिखो। वे एक पुराने और अनुभवी सहयोगी कार्यकर्त्ता प्रतीत होते हैं। यदि उनके आरोप झूठे हैं तो उन्हें समझा सकना क्यों कठिन है? यदि वे सच्चे हैं तो पूरे मामलेमें कहीं कुछ गलती हुई है। क्या ब्राह्मणों और रूढ़िवादी अब्राह्मणोंने मन्दिरका बहिष्कार कर दिया है?[1]

तुम्हारा,

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य . प्यारेलाल

१६७. पत्र : वी० एम० प्रसादरावको

सेगाँव, वर्धा
३० अगस्त, १९३९

प्रिय मित्र,

आपने जो ढेर सारे कागजात मुझे भेजे हैं, उन सबको मैंने सावधानीसे पढ़ लिया है। जिन लोगोंके खिलाफ आपने गम्भीर आरोप लगाये हैं, उनका क्या कहना है यह जाने बगैर तो आप मुझसे अपनी राय व्यक्त करने की आशा नहीं ही रखेंगे। इसलिए पहले तो मैं ये कागजात श्री वैद्यनाथ अय्यरके[2] पास भेज रहा हूँ। लेकिन मैं देखता हूँ कि आप उन सबके सहयोगी कार्यकर्त्ता रहे हैं जिनके विरुद्ध आपको शिकायत है। इसलिए मेरा कहना है, यह आपका कर्त्तव्य है कि आप उनका दृष्टिकोण भी समझें और साथ-साथ सेवा करने का आधार खोज लें। आप अब भी यह रास्ता अपना सकते हैं।

जहाँतक राव बहादुरकी बात है, मैंने उन्हीं लोगोंसे पूछा जिनसे पूछने के लिए उन्होंने मुझसे कहा था, और उन लोगोंने उनकी बातोंका बिलकुल साफ खंडन कर

१. यहाँ संकेत मदुराके मीनाक्षी मन्दिरकी ओर है जो ८ जुलाईको हरिजनोंके लिए खोल दिया गया था।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

दिया। मैंने तो उन्हीकी वात मान ली और फिर इसीलिए उन्होंने जिन लोगोंसे पूछने को कहा था, उनकी वातका विश्वास कर लिया।

हृदयसे आपका,

श्री वी० एम० प्रसादराव
वेस्ट आवणि मूल स्ट्रीट
मदुरा

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य प्यारेलाल

१६८. पत्र : वालजी गो० देसाईको

सेगाँव, वर्धा
३० अगस्त, १९३९

चि० वालजी,

यदि खुराक तुम्हें भारी जान पड़े तो उसे अवश्य कम कर देना। ऐसे मामलेमें डॉक्टरका विरोध नही करना चाहिए। रोगीको उतना ही खाना खाना चाहिए जितना पच सके। कभी-कभी केवल फल और दूव लेकर देखो। चित्रेकी वातमें वजन है। तबीयत विगड़ने मत देना। जिस व्यक्तिको पथरी हो उसे वह निकलवा लेनी चाहिए, यह सवसे सरल उपाय है। चित्रेके भोजनका खर्च यदि सैनिटोरियम उठाये तो इसमें मैं कोई दोप नही देखता। यदि सैनिटोरियम यह खर्च नही उठाता और तुम आसानीसे यह खर्च उठा सको तो भले उठाओ, लेकिन कष्ट सहकर नही। चित्रेको मैं अलगसे नही लिख रहा हूँ।

वापूके आशीर्वाद

प्रोफेसर वी० देसाई
सैनिटोरियम
डाकखाना वाणीविलास मोहल्ला
मैसूर

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४८६)से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१६९. टिप्पणियाँ

ग्राम-शिक्षा बनाम शहरी शिक्षा

एक शिक्षाशास्त्री लिखते हैं :

> अगर आपने ध्यान न दिया, तो आप यह पायेंगे कि शहरोंमें बुनियादी शिक्षा एक ऐसा रूप धारण कर लेगी जो देहाती क्षेत्रोंसे भिन्न होगा। उदाहरणके तौरपर, अंग्रेजी पाठ्यक्रममें दाखिल कर दी जायेगी, जो मातृभाषाके लिए एक घातक बात होगी, और शहरके लोगोंमें गाँववालों के मुकाबले अपनेको ऊँचा मानने की भावना आ जायेगी।

मुझे यह स्वीकार करना ही चाहिए कि मैंने अपनी योजनाकी परिकल्पना ग्रामवासियोंको सामने रखकर की थी, और जब मैं उसे पल्लवित कर रहा था तब मैंने यह जरूर कहा था कि शहरोंमें इस योजनाको लागू करने में कुछ रद्दोबदल करना जरूरी होगा। यहाँ तात्पर्य उन उद्योगोंसे था जिन्हें शिक्षाके माध्यमके रूपमें उपयोग करना होगा। मैंने कभी यह सोचा भी न था कि प्राथमिक शिक्षामें अंग्रेजी स्थान पा सकती है और बुनियादी शिक्षाकी इस योजनाका सम्बन्ध अभी केवल प्राथमिक स्तरसे है। निस्सन्देह प्राथमिक शिक्षा वगैर अंग्रेजीके मैट्रिक्युलेशनके बराबर कर दी गई है। बच्चोंपर अंग्रेजी लादने का अर्थ है उनके प्राकृतिक विकासको कुण्ठित कर देना और शायद उनकी मौलिकताको नष्ट कर डालना। किसी भाषाको सीखने का अर्थ मुख्य रूपसे स्मरण-शक्तिका विकास करना है। शुरूसे ही अंग्रेजी सिखाना बच्चोंपर अनावश्यक बोझ डालना है। मातृभाषाकी कीमत देकर ही वह उसे सीख सकता है। शहरी तथा देहाती दोनों ही जगहोंके बच्चोंके लिए मैं यह जरूरी मानता हूँ कि उनके विकासकी बुनियाद मातृभाषाकी मजबूत चट्टानपर रखी जाये। यह बात अभागे हिन्दुस्तानमें ही देखने में आती है कि ऐसी स्पष्ट बातको भी सिद्ध करना पड़ता है।

सेगाँव, ३१ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-९-१९३९

१७०. लीम्बडी

हालांकि लीम्बडीके लोगोंसे मेरा लम्बा पत्र-व्यवहार चलता रहा है, तथापि उन्हें जो कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं उनके बारेमें कुछ लिखने की बातको मैं काफी अर्सेसे टालता चला आ रहा हूँ। मैं इस आशासे चुप बैठा हुआ था कि राजा और प्रजाके बीच जो लोग सुलह कराने का प्रयत्न कर रहे हैं उन्हें सफलता मिलेगी। लेकिन मेरी आशा झूठी सिद्ध हुई। लीम्बडीके सघर्षके बाद इधर बहुत-कुछ हुआ है। लीम्बडीमें निर्ममताकी नीति जिस मुस्तैदी और हठके साथ अमलमें लाई गई है, वैसा शायद ही कहीं हुआ हो। मेरे पास जो खबरें आई हैं अगर उनपर विश्वास किया जाये — और विश्वास न करने का मेरे पास कोई कारण नहीं है — तो किसानोंको उनके घरोंसे खदेड़-खदेड़कर निकाला गया है। सबसे सख्त चोट तो उस अभागे बनियेपर पड़ी है, जो किसी समय राज्यका मित्र, कृपापात्र और प्रधान समर्थक था। पर उसे कुचलना आवश्यक था, क्योंकि उसने उत्तरदायी शासनके बारेमें सोचने और बात करने की धृष्टता की थी, किसानोंके बीच जाने और उनसे यह कहने का साहस किया था कि उनके क्या अधिकार हैं और उन्हें वे किस तरह प्राप्त कर सकते हैं। उन व्यापारियोंकी, जो हिजरत कर गये हैं, दुकानों और घरोंको एक तरहसे लूट लिया गया है। मैं इसके लिए किसी और शब्दका प्रयोग नहीं कर सकता। जहाँतक मैं जानता हूँ, इस मामलेमें कानूनी जाब्तेतक का पालन नहीं किया गया। वहाँ तो अत्याचारकी नीति चलानेवाले शासककी इच्छा ही सर्वोपरि कानून है। इसमें उनका विचार लोगोंको आतंक दिखाकर काबूमें करने का है। इसमें आश्चर्य नहीं कि कुछ लोगोंकी हिम्मत पस्त भी हो गई है। मैं आन्दोलनके सचालकोंको यह सलाह दूँगा कि वे उन्हें आत्म-समर्पण करने से रोकने का प्रयत्न न करें। बेशक, उन्हें यह बता देना चाहिए कि समर्पणके बाद उन्हें क्या-क्या भोगना पड़ सकता है। लेकिन ऐसे भी लोग होते हैं जो स्वाभिमानकी अपेक्षा जायदादकी ज्यादा कद्र करते हैं। ऐसे आदमी स्वतन्त्रताके आन्दोलनके लिए भाररूप ही हो सकते हैं। स्वतन्त्रता तो आत्म-बलिदान करनेवाले ऐसे चन्द बहादुर लोग ही हासिल करते हैं जो आत्म-सम्मानकी खातिर अपना सर्वस्व कुर्बान करने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। जो लोग बलिदानकी कीमत और जरूरत समझते हैं — फिर चाहे वे मुट्ठी-भर हों या बहुत — उन्हें तो इससे खुश ही होना चाहिए कि लीम्बडीमें उनकी जो जायदाद थी वह उनसे छीन ली गई है। उन्हें न तो दुविधामें रहना चाहिए, और न यही आशा रखनी चाहिए कि जल्दी कोई समझौता हो जायेगा। उन्हें राज्यके बाहर शुभ प्रवृत्तियोंमें लगे रहना चाहिए और दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि एक दिन ऐसा जरूर आयेगा जब लीम्बडीकी प्रजा अपना प्राप्य अवश्य प्राप्त करेगी। जब वह दिन आयेगा,

और जरूर आयेगा, तब वह उन लोगोंकी कुर्बानी और बहादुरीके कारण आयेगा जिन्होंने कठोरतम दमनके आगे झुकनेसे इन्कार कर दिया होगा। थोरोके इन अमर शब्दोंको वे याद रखें — अत्याचारी राज्यमें संपत्तिका होना पाप और दरिद्रता पुण्य है।

यह सब तो मेरे पास जो विश्वसनीय प्रमाण आये हैं, उनके आधार पर है। पर क्या लीम्बडीको एक अत्याचारी राज्य बनना चाहिए? मेरे सामने जो बातें कही गई हैं यदि उनमें अतिशयोक्ति है, तो राज्यके अधिकारियोंको मेरे पास उसका प्रतिवाद भेज देना चाहिए। मैं उसे सहर्ष प्रकाशित कर दूंगा। जो आरोप लगाये गये हैं उनकी सचाईमें अगर सन्देह हो, तो यह और भी बेहतर होगा कि उनकी निष्पक्ष अदालती जाँच कराई जाये। मैं लीम्बडीके ठाकुर साहबसे सार्वजनिक अपील करना चाहता हूँ। मुझे उन्हें जानने का सौभाग्य प्राप्त है। मैं उनका आतिथ्य ग्रहण कर चुका हूँ। उनके विषयमें यह खयाल है कि वे एक धर्मिष्ठ और ईश्वर-भीरु पुरुष हैं। यह ठीक नही है कि उनके और उनकी प्रजाके बीच ऐसा अलगाव पैदा हो। उनकी प्रजामें कुछ तो ऐसे जाने-माने लोग हैं जिनकी अच्छी प्रतिष्ठा है, और जिनका लीम्बडी राज्यमें काफी कुछ दावें पर है। उन सबको यों ही असन्तुष्ट समझना ठीक नही। उन्हें कोई स्वार्थ सिद्ध नही करना है। राज्यके विरुद्ध खड़े होकर उन्हें कोई सांसारिक लाभ नही उठाना है। उन्होंने अपने देशसे निष्कासित होकर काफी आर्थिक हानि उठाई है। ऐसी प्रजाके असन्तोषका सामना करनेसे पहले बुद्धिमान राजा एक बार नही पचास बार सोचेगा। उससे वह यह निष्कर्ष निकालेगा कि राज्य-प्रबन्धमें अवश्य कहीं अव्यवस्था है और अधिकारी लोग अन्यायी हैं। वह असन्तुष्ट प्रजा-जनोंको बुलायेगा, उनकी शिकायतोंको सुनेगा, और उन्हें आश्वस्त करेगा। ठाकुर साहबने यह रास्ता नही अपनाया है। अब भी यदि वे ऐसा करें तो बहुत देर हुई नही कही जायेगी।

सेगाँव, ३१ अगस्त, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-९-१९३९

१७१. तार: घनश्यामदास बिड़लाको

३१ अगस्त, १९३९

घनश्यामदास
लकी
कलकत्ता

मेरी यह पक्की सलाह है कि जबतक परिणामका ठीक पता नही चल जाता तबतक व्यापारी वर्गको[1] चुप रहना चाहिए।

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८३३) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१७२. तार: मुल्कराजको[2]

३१ अगस्त, १९३९

यदि स्थानान्तरणके लिए न्यासियोंकी अनुमति जरूरी है तो नागपुर बैंकके विषयमें मेरी और जमनालालजी की रायवाला स्मरण-पत्र प्रचारित करें।

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

१. महादेव देसाईके नाम लिखे अपने २६ अगस्तके पत्रमें घनश्यामदास बिड़लाने लिखा था: "मैं इसके साथ एक घोषणा-पत्र नत्थी कर रहा हूँ। युद्ध शुरू होनेकी स्थितिमें यह घोषणा-पत्र विभिन्न व्यापारियोंके हस्ताक्षरोंसे जारी किया जा सकता है। मैं इस मामलेके बारेमें जल्द ही, आवश्यक हो तो तार द्वारा, बापूकी राय जानना चाहूँगा। यह घोषणा-पत्र हमारे अपने स्वतन्त्र विचारोंको अभिव्यक्त करता है और हमारा अपना विचार यह है कि हमारा यह दृष्टिकोण कांग्रेसके दृष्टिकोणके प्रतिकूल नहीं है। तथापि यदि बापूका इस सम्बन्धमें भिन्न मत हो, तो हम इस मामलेको आगे नहीं बढ़ायेंगे।..." घनश्यामदास बिड़लाने ३० अगस्तको महादेव देसाईको भेजे अपने तारमें भी उपर्युक्त बात कही थी।

२. यह मुल्कराजको अमृतकौर द्वारा लिखे गये इसी तारीखके एक पत्र से उद्धृत किया गया है, जो इस प्रकार था: "गांधीजीके आदेशानुसार मैं आपके २७ तारीखके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार कर रही हूँ। वे चाहते हैं कि मैं आपको बताऊँ कि आपके द्वारा उठाये गये सारे मुद्दोंपर ठीक तरहसे विचार किया गया था।" देखिए पृ० १०८ और १३९ भी।

१७३. पत्र : वी० ए० सुन्दरम्‌को

सेगाँव आश्रम, वर्धा
३१ अगस्त, १९३९

प्रिय सुन्दरम्,

यह तो एक बड़ी बात है कि सर राधाकृष्णन् उप-कुलपति बन गये हैं।[१] मुझे आशा है कि तुम सब मालवीयजीसे[२] आराम करनेके लिए आग्रह करोगे।

तुम दोनोंको प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१८५) से।

१७४. पत्र : पत्तम ताणु पिल्लैको

सेगाँव, वर्धा
३१ अगस्त, १९३९

प्रिय ताणु पिल्लै,

कितना अच्छा होता यदि तुम मुझे और समय देते, लेकिन शायद तुम दे नहीं सकते थे।

मुझे दीवानका उत्तर अच्छा नहीं लगा। मेरा खयाल है कि तुम्हें अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिए। तुम्हें इसका ध्यान रखना चाहिए कि रियासत कांग्रेस कोई काम गुप्त रूपसे न करे। इसलिए यद्यपि वह अपने निर्णय आप लेगी और रियासतमें बाहरसे कोई व्यक्ति नहीं लायेगी तथापि जब आवश्यक होगा तब वह त्रावणकोरसे बाहरके व्यक्तियोंका मार्गदर्शन और सलाह लेगी। तुम यह भी स्पष्ट कर देना कि पारस्परिक विचार-विमर्शके बाद जो भी योजना बनाई जायेगी उसपर कांग्रेस ईमानदारीके साथ अमल करेगी तथापि उस योजनाको कार्यान्वित करने का उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम योजनाके द्वारा भी उत्तरदायी सरकार बनाने की दिशामें प्रगति करें।

यदि किसी भी रूपमें ये दोनों बातें अनिर्णीत रह जाती हैं तो तुम्हें चाहिए कि वार्ता भंग कर दो और ऐसे रचनात्मक कार्यमें लग जाओ जो संभव हो।

१. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके

२. मदनमोहन मालवीयने स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण २९ अगस्तको उप-कुलपतिके पदसे इस्तीफा दे दिया था।

तुम्हें अपनी बातचीत और लेखोंमें कटु तथा आडम्बरपूर्ण भाषाका बिलकुल प्रयोग नहीं करना चाहिए। और तुम्हें हमेशा उपर्युक्त दोनों बातोंको दोहराते रहना चाहिए। ये दोनों बातें हमेशा-हमेशाके लिए नहीं मानना।

तुम्हें कैदियोंके बारेमें सोचना बन्द कर देना चाहिए। उनका जेलमें होना ही उनका बेजोड़ योगदान है, बशर्ते कि वे यह महसूस करें कि जेलमें आदर्श कैदी होना संघर्षका एक अंग है।

मैं आशा करता हूँ कि आगामी सम्मेलन सफल होगा और जो लोग कथन-कुलममें इकट्ठे होंगे वे इन बातको अधिकाधिक महसूस करेंगे कि आत्म-नियन्त्रण तथा आडम्बरको छोड़कर चुपचाप निरन्तर रचनात्मक कार्य करना, फिर चाहे वह कार्य कितना ही तुच्छ क्यों न प्रतीत हो, कितना ज्यादा प्रभावकारी होता है।[1]

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०२०१) से; सौजन्य : केरल सरकार। पत्तम ताणु पिल्लै पेपर्स से भी; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१७५. पत्र : मनुबहन सु० मशरूवालाको

सेगाँव आश्रम, वर्धा
३१ अगस्त, १९३९

चि० मनुडी,

तेरे प्रसवका समय निकट आता जा रहा है। तू प्रसवके लिए कहाँ जानेवाली है? राजकोटके बारेमें तेरा क्या विचार है? मुझे बराबर लिखती रहना। तेरी तबीयत अच्छी रहती है क्या? तू क्या खाती है?

बा यहीं बैठी है और तुम सबको आशीर्वाद भेजती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २६७१) से; सौजन्य मनुबहन सु० मशरूवाला

१. यह अनुच्छेद ७-९-१९३९ के हिन्दूमें प्रकाशित हुआ था।

१७६. पत्र : पुरुषोत्तमदास अ० पाटडियाको

सेगाँव आश्रम, वर्धा
३१ अगस्त, १९३९

भाई पुरुषोत्तमदास,

आपका पत्र मिला था। मैंने आपको जो तार भेजा था वह मिला होगा। सरदारने भी कुछ बन्दोबस्त किया है। उम्मीद है, आवश्यक घास मिल गई होगी। अब तो कदाचित् ही जरूरत पड़ेगी।

मो० क० गांधीके वंदेमातरम्

डॉ० पुरुषोत्तमदास अमरशी पाटडिया
वढवाण कैम्प
काठियावाड़

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६८७) से; सौजन्य: डॉ० पु० अ० पाटडिया

१७७. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

सेगाँव आश्रम, वर्धा
३१ अगस्त, १९३९

बापा,

तुम्हारे लिखने से पहले ही मुझे तुम्हारी कारगुजारियोंकी कहानी सुनने को मिल जाती है। दूसरोकी हालत चाहे जो हो हमें तो कांग्रेसके राज्यसे लाभ ही हुआ है। हरिजनोका काम ठीक तरहसे हुआ माना जा सकता है। यदि वे लोग चाहें तो बहुत-अधिक कर सकते हैं। बर्वेका पत्र शान्तिलालने भेजा था। 'हरिजन' में लिखने की बजाय अधिक तेजीके साथ काम हो सके इस विचारसे मैं खेरके[1] साथ काम कर रहा हूँ। बर्वे ७ तारीखको मिलेंगे। क्या तुम थोड़ा आराम नहीं करोगे?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११८४) से।

[1] १. बम्बईके मुख्य मन्त्री, बी० जी० खेर

१७८. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१ सितम्बर, १९३९

चि० जयसुखलाल,

तुम्हारा तार मिला। कसुम्बा तो मुक्त हो गई। यदि वह जीवित रहती तो हमेशा बीमार ही रहती। यह तो डॉक्टरोंके कठोर प्रयत्नका ही फल था कि उसकी जिन्दगीके कुछ दिन बढ गये। उसे तुमसे जो लेना था, वह लेकर चलती बनी। कोई भी लड़की न रोये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

१७९. अशोभनीय प्रदर्शन

सुभाष बाबूके पटना जानेपर उनके खिलाफ काले झण्डोका जो प्रदर्शन हुआ, उसका हाल सबसे पहले मुझे बाँकीपुरके बंगाली संघके मन्त्रीके[1] एक शिष्टतापूर्ण पत्रसे मिला था। इसके बाद मैंने अखबारोंमे भी यह खबर पढ़ी। ठीक-ठीक क्या हुआ था, यह निश्चित रूपसे मालूम करनेके लिए मैंने श्री प्रियरजन दासको सही-सही और आद्योपान्त विवरण भेजनेके लिए तार दिया। धनवादसे उनका जवाब मिला कि चूंकि वे वहाँ उपस्थित नही थे इसलिए इस सम्बन्धमे कुछ नहीं जानते। अखबारोंमे यह जरूर निकला है कि वहाँ पत्थर और जूते फेंके गये, जिससे स्वामी सहजानन्द और दूसरोंको चोटें आई।

हो सकता है कि इसमें थोड़ी अतिशयोक्ति भी हो, मगर इसमें सन्देह की गुंजाइश बहुत कम मालूम पड़ती है कि वहाँ ऐसा विरोधी प्रदर्शन हुआ जरूर जो अशोभनीय था और जिससे कांग्रेसकी प्रतिष्ठा नही बढी।

इस दुःखद घटनापर राजेन्द्र बाबूने जो जोरदार वक्तव्य दिया, वह मैंने पढ़ा है। वह इतना तथ्यपूर्ण और हृदयको झकझोरनेवाला है कि उसमे कुछ और जोड़ने या सुधारनेकी कोई जरूरत नही। उस सुन्दर वक्तव्यके हरएक शब्दका मैं अनुमोदन करता हूँ। इस लेखके अन्तमे उसे उद्धृत किया गया है।[2]

प्रदर्शन करनेवालोंने अनुचित असहिष्णुताका परिचय दिया है। कार्य-समितिकी

१. देखिए "पत्र: ए० गुप्तको", पृ० १५४।
२. वक्तव्य यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है।

कार्रवाईके विरुद्ध आन्दोलन करने और उसके विरुद्ध लोकमत तैयार करने का सुभाष बाबूको पूरा हक है।[1] उनके विरुद्ध जो अनुशासनात्मक कार्रवाई की गई है उससे वे उतने संयमको छोड़कर जिसका पालन कांग्रेस-संविधानकी बुनियादी धारासे बँधे प्रत्येक कांग्रेसीका फर्ज है, बाकी किसी भी संयमके उत्तरदायित्व से मुक्त हो गये हैं। उस कार्रवाईके बाद उनके विरुद्ध कोई सार्वजनिक प्रदर्शन नही किया जाना चाहिए। और जो लोग कार्य-समितिकी कार्रवाईको पसन्द नहीं करते, उन्हें सुभाष बाबूके पक्षमें होनेवाले किसी भी प्रदर्शनमें भाग लेने का अधिकार है। जबतक इस साधारण नियमका पालन नही होता, तबतक हम जनतन्त्रका विकास हरगिज नही कर सकेंगे। मेरी रायमें तो काले झण्डोंका प्रदर्शन करनेवाले लोगोने स्वतन्त्रताके ध्येयको हानि पहुँचाई है। अत: आशा है कि पटनाका यह प्रदर्शन कांग्रेसजनो द्वारा की जानेवाली ऐसी कार्रवाइयोमें अन्तिम सिद्ध होगा। यह पूछा जा सकता है कि 'जो लोग कार्य-समितिकी कार्रवाईका समर्थन करते हैं और सुभाष बाबूके प्रचारको नापसन्द करते हैं, वे अपनी नापसन्दगी कैसे जाहिर करें?' निस्सन्देह सुभाष बाबूके सम्मानमें होनेवाली सभाओमें गड़बडी मचाकर या उन्हें काले झण्डे दिखाकर तो नही ही। दूसरी सभाएँ करके वे अपनी नापसन्दगी जाहिर कर सकते हैं, लेकिन वे सभाएँ सुभाष बाबूके समर्थनमें की गई सभाओंके साथ-साथ न होकर उनसे पहले या बादमें होनी चाहिए। पक्ष-विपक्षमें होनेवाली ये सभाएँ लोकमतको शिक्षित करने का साधन समझी जानी चाहिए। ऐसी शिक्षाके लिए शान्त वातावरणकी आवश्यकता है। शिक्षात्मक और बोधप्रद प्रचारमें काले झण्डों, हुल्ले-गुल्ले और पत्थर-जूते फेंकने का कोई स्थान नही है।

इस अशोभनीय प्रदर्शनके सन्दर्भमें ही मेरे पास जो एक और शिकायत आई है, मुझे उसका भी जिक्र करना चाहिए। उसमें बताया गया है कि जो कांग्रेसजन सुभाष बाबूके स्वागतमे भाग लेंगे उनके खिलाफ कुछ कांग्रेस-समितियोने कार्रवाई करने की धमकी दी है। मैं आशा करता हूँ कि उक्त शिकायत वस्तुत निराधार है। ऐसी कार्रवाई तो हमारी असहिष्णुता बल्कि वैर-भावनातक का परिचायक होगी। जो कांग्रेसजन कार्य-समितिकी कार्रवाईको पसन्द नही करते वे सुभाष बाबूके स्वागतमें अवश्य भाग लेंगे। अनुशासनात्मक कार्रवाईकी धमकियोसे उनका मुँह बन्द करना असम्भव है। अगर जरा-जरा-सी बातपर ऐसी कार्रवाई की जाये, तो उसका कोई महत्त्व नही रह जाता। अगर यह सच है — और वास्तवमें यह सच है — कि ऐसी सत्ताके बगैर किसी संस्थाका काम नही चल सकता, तो यह भी उतना ही सच है कि जो संस्था ऐसी सत्ताका अन्धाधुन्ध उपयोग करे उसे कायम रहने का कोई हक नही है। वह कायम रह ही नही सकती, क्योंकि उसका मतलब तो स्पष्ट ही यह होगा कि उसने जनताका समर्थन खो दिया है।

सेगाँव, २ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-९-१९३९

१. देखिए पृ० ९४-९५।

१८०. तार : राजेन्द्रप्रसादको

वर्धागंज
२ सितम्बर, १९३९

राजेन्द्रप्रसाद
रामगढ़
(हजारीबाग)

तुम्हारा तार मिला। वाइसरायका निमंत्रण पाकर आज रात शिमला रवाना हो रहा हूँ। शायद ज्यादा अच्छा यह होगा कि शिमलामें मेरा सन्देश मिलने के बाद बैठक[1] रखो। बैठकका स्थान अपने स्वास्थ्यकी दृष्टिसे तय करो।

बापू

मूल अंग्रेजीसे : राजेन्द्रप्रसाद पेपर्स, सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१८१. तार : लॉर्ड लिनलिथगोको

वर्धागंज
२ सितम्बर, १९३९

भयानक समाचार[2] सुना, सुनकर दुःख हुआ। मैं सबसे पहले जो गाड़ी मिलेगी उससे रवाना हो रहा हूँ और ४ तारीखकी सुबह शिमला पहुँच रहा हूँ।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे : लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स, सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. संकेत कांग्रेस कार्य-समितिकी अत्यावश्यक बैठकसे है, जो अन्ततः ८ से १५ सितम्बरतक वर्धा में हुई थी।

२. जर्मनीने १ सितम्बरको पोलैण्डपर आक्रमण कर दिया था। जिसके परिणामस्वरूप ३ सितम्बरको इंग्लैंड और फ्रांसने जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी थी।

१८२. टिप्पणियाँ

पाठ्य पुस्तकें

आजकल जो बार-बार पाठ्य पुस्तकें बदलने का प्रचलन हो गया है उसे शिक्षाकी दृष्टिसे अच्छा नहीं कहा जा सकता। यदि पाठ्य पुस्तकोंको शिक्षणका माध्यम माना जायेगा, तब तो शिक्षककी सजीव वाणीका बहुत कम मूल्य रह जायेगा। जो शिक्षक पाठ्य पुस्तकों से पढ़ाता है, वह अपने विद्यार्थियोंको स्वतन्त्र और मौलिक रूपसे विचार करने की शक्ति नहीं देता। इससे शिक्षक स्वयं भी पाठ्य पुस्तकोंका गुलाम बन जाता है और उसे अपनी मौलिकताका प्रयोग करने का मौका या प्रसंग ही नहीं मिलता। इससे मालूम होता है कि पाठ्य पुस्तकें जितनी कम होंगी, उतना ही शिक्षकों और विद्यार्थियोंको लाभ होगा। पाठ्य पुस्तकें आज पैसा कमाने का साधन बन गई लगती हैं। जो लेखक और प्रकाशक लेखन और प्रकाशनको कमाईका जरिया बनाते हैं उनका पाठ्य पुस्तकें बार-बार बदलती रहें, इसमें स्वार्थ रहता है। कई बार तो शिक्षक और परीक्षक खुद पाठ्य पुस्तकोंके लेखक होते हैं। अपनी पुस्तकें बेचने में उनका स्वार्थ हो, यह स्वाभाविक है। इनके अलावा, पाठ्य पुस्तकोंका चुनाव करनेवाली समितिमें भी स्वभावतः ऐसे ही लोग होते हैं। इस तरह यह दुष्चक्र पूरा हो जाता है। और हर साल नयी-नयी पुस्तकें खरीदने के लिए पैसेकी व्यवस्था करना माता-पिताके लिए बहुत कठिन हो जाता है। लड़के-लड़कियोंको पाठ्य पुस्तकोंका उठाया न जा सकनेवाला बोझ ढोते देखकर बड़ी दया आती है। इस सम्पूर्ण पद्धतिकी पूरी तरह जाँच होनी चाहिए। व्यापारकी वृत्ति जड़-मूलसे नष्ट की जानी चाहिए और इस प्रश्नपर केवल विद्यार्थियोंकी दृष्टिसे ही विचार किया जाना चाहिए। ऐसा करने पर सम्भवतः मालूम होगा कि ७५ प्रतिशत पुस्तकें कचरेकी टोकरीमें फेंकने लायक हैं। यदि मेरा बस चले तो मैं पाठ्य पुस्तकें अधिकतर विद्यार्थियोंके लिए नहीं, परन्तु शिक्षकोंकी मदद करने के लिए ही रखूँ। जिन पाठ्य पुस्तकोंके बिना विद्यार्थियोंका काम चल ही न सके, वे ऐसी होनी चाहिए जो उनके बीच बरसों घूमती रहें, ताकि मध्यम वर्गके परिवार आसानीसे उनका खर्च उठा सकें। इस दिशामें पहला कदम शायद यह हो सकता है कि सरकार पाठ्य पुस्तकोंके प्रकाशन और मुद्रणपर अपना अधिकार रखे और खुद उसकी व्यवस्था करे। इस तरहसे पाठ्य पुस्तकोंकी अनावश्यक वृद्धिपर अपने-आप अंकुश लग जायेगा।

अधकचरी निष्ठा

श्री अप्पा पटवर्धन लिखते हैं :

> बम्बई सरकार बुनकरोंकी मदद करने के लिए बहुत बड़ी रकम खर्च करती है। उसने एक विपणन अधिकारी और एक विक्रेता रखा है। वे

लोग कर्ज भी देते हैं। इतना होने पर भी बुनकर लोग मिलोंके साथ होड़ नहीं कर सकते, और उनके लिए जो खर्च उठाया जाता है, उसका मेरे विचारमें, उचित परिणाम नहीं निकलता। इसके अलावा बुनकर विदेशी सूतका भी इस्तेमाल करते हैं। बुनकरोंको ऐसी निष्फल सहायता देने के अलावा सरकार खादीको भी थोड़ी सहायता देती है। मैं नहीं जानता कि यह अधकचरी निष्ठा कहाँतक उचित है।

मेरी तो हमेशा यह मान्यता रही है कि जो बुनकर विदेशी अथवा देशी मिलके सूतका प्रयोग करते हैं उनकी सहायता करना पैसे और प्रयत्नका अपव्यय करना है। अनुभवसे मेरे इस दृष्टिकोणमें कोई अन्तर नहीं आया है, और कुछ प्रान्तोंमे कांग्रेसका शासन होने से भी मेरे इस दृष्टिकोणमें फर्क नहीं पड़ता। मेरी यह मान्यता इसलिए है कि मिलके सूतका इस्तेमाल करनेवाले बुनकरोंका विनाश निश्चित है; कुछ समय इसमें भले लगे। आज जो परिस्थितियाँ हैं उनमें इसके अतिरिक्त और कुछ हो भी नहीं सकता। बुनकरोंकी एकमात्र आशा हाथ-कताईके सार्वत्रिक पुनरुद्धारमें ही निहित है। हाथ-कताई और हाथ-बुनाई अन्योन्याश्रित हैं, हाथ-बुनाई और मिलकी कताई कभी अन्योन्याश्रित नहीं हो सकती। इसलिए मैंने यह सुझाव दिया है कि यदि हाथ-कताईसे बुनकरकी जरूरतें तत्काल पूरी नहीं हो सकती और यदि वे स्वयं सूत नहीं कातना चाहते तो उन्हें इस बातके लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे अपने परिवारोंमें हाथ-कताई और धुनाई आदिको दाखिल करें। अब चूँकि कुछ प्रान्तोंमें कांग्रेसका शासन है इसलिए बुनकरोंको बचाना ज्यादा आसान हो गया है। तात्पर्य यह है कि प्रान्तीय सरकारें बड़े पैमानेपर कताईको प्रोत्साहन दे सकती हैं और जिस तरह राज्य विदेशी रेल कम्पनीको गारंटी देता है उस तरह वे खादीकी बिक्रीमें नुकसान होने के विरुद्ध गारंटी दे सकता है। हर जरूरतमन्द व्यक्तिको अपने मनपसन्द रोजगारमें लगाने की गारंटी देना सरकारका प्रथम कर्त्तव्य है। उसमें बुनकर भी शामिल हैं। यदि संक्रमण कालके दौरान प्रत्येक बुनकरको बुनाईके धन्धेकी गारंटी देना असम्भव हो तो सरकारको चाहिए कि वह उसे ऐसे धन्धेमें लगाये जो उसके और राज्य, दोनोंके लिए लाभकर हो। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि आजतक किसी भी सरकारने हाथ-कताईकी सम्भावनाओंका पूरा-पूरा पता नहीं लगाया है। मेरी यह राय है कि यदि कताईकी सम्भावनाओंका पता लगाने के प्रयत्न किये जायें तो उसके चौंकानेवाले और उत्साहवर्धक परिणाम दिखाई देंगे। मेरी दलीलमें निश्चय ही मिलोंको कोई स्थान नहीं है। विदेशी अथवा देशी किसी भी उद्योगको बेकारी बढ़ाकर समस्त समाजके सच्चे हितको हानि नहीं पहुँचाने दी जा सकती।

दुर्भिक्षमें सहायताके तरीके

चाहे देरसे ही क्यों न हो, बारिश हो जाने से बहुत भयंकर अकालका भय अब नहीं रहा है, फिर भी कुछ महीनोंतक थोड़ी तकलीफ तो रहेगी ही, इसलिए राहत-कार्य करनेवालों का ढीला पड़ जाना ठीक नहीं होगा। बात यह है

कि वर्षाके अभावसे होनेवाली कठिनाईको रोकने के लिए स्थायी उपाय करने का यह बहुत अच्छा अवसर है। इस सम्बन्धमे मैं पहले ही कुछ ठोस सुझाव दे चुका हूँ। सौराष्ट्र सेवा समितिने सहायकोको भरती करके सहायताका जो व्यापक कार्य किया, उसका बडा तथ्यपूर्ण विवरण उसके मन्त्रीने मेरे पास भेजा है। उस पूरे विवरणको पाठकोके सामने रखने की जरूरत मैं नही समझता। उन्होने कुछ निवारणात्मक उपाय भी सुझाये हैं। चूँकि वे अब भी काममें लाये जा सकते है, मैं उनका, जो मूलत. गुजरातीमें है, सार यहाँ देता हूँ :

१. राज्योंको चाहिए कि वे अपनी जमा की हुई घासको नीलाम न कर एहतियातन सूखेके समयके लिए जमा रखें। जब ताजा चारा मिल सके, तब उसे निकालकर ताजा भर लिया जाये। आजकल जमा किये हुए चारेमें आग लग जाने का भय रहता है। राज्योंको उसकी हिफाजत करने में कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। जो लोग निजी तौरपर इस तरह घास जमा करना चाहे, राज्य उसकी भी उन्हे इजाजत दे सकता है।

२. नदियोंके मौजूदा किनारोंको घेरकर बाढका पानी जमा कर लेना चाहिए।

३. अकालके समय जिन स्थानोमे मवेशी भेजे जाते है, वहाँ उन्हे पर्याप्त रूपमे पानी मिल सके, उसके उपाय किये जाने चाहिए।

४. खानेके उपयोगकी चीजोंकी उपेक्षा करके ऐसी चीजोंकी काश्तपर अंकुश लगा देना चाहिए, जिनकी खेती नकदी कमाईके लिए की जाती है। आजकल लोग ज्वार-बाजरा-जैसे कीमती चारे और अन्नके बजाय मूँगफली बोने लग गये हैं।

५. मौजूदा जगलोंको सुरक्षित रखा जाये, पेड़ोंकी मनमानी कटाई दण्डनीय करार दी जाये और एक योजना बनाकर उसके अनुसार पेड़ लगाने के लिए लोगोंको प्रोत्साहित किया जाये।

६. पिंजरापोलोंकी व्यवस्थामे सुधार किया जाना चाहिए और उन्हे ठोस आधारपर स्थित करना चाहिए। उन्हें अकालके विरुद्ध पशुओका बीमा बन जाना चाहिए। पिंजरापोलोंमें बछडेको बधिया करवाने की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए।

७. राज्योंको चाहिए कि वे दुर्भिक्षके विरुद्ध बीमेके रूपमें खादीको प्रोत्साहन दे।

ये सब सुझाव ठोस दिखाई देते है और काठियावाडकी रियासतो तथा वहाँकी प्रजाको इनपर सामूहिक रूपसे विचार करना चाहिए। मानव-सेवाके इस काममें राजनीतिक मतभेदो और संघर्षोके बावजूद सब एक हो सकते है और उन्हें एक होना चाहिए।

आन्ध्रमें सूत्र-यज्ञ

श्री शंकरलाल बैंकरने चरखा सघकी आन्ध्र-शाखासे प्राप्त एक पत्र मेरे पास भेजा है। उसमें से मैं निम्नलिखित अश उद्धृत कर रहा हूँ :

२२-७-१९३९ के 'हरिजन' में[1] महात्माजी की टिप्पणी देखकर हमें राजकोटकी राष्ट्रीय शालाके श्री नारणदास गांधीकी तरह सूत्र-यज्ञ करने का ख्याल आया। उसके अनुसार २९-७-१९३९ को हमने स्थानीय 'कृष्ण पत्रिका'[2] और 'आन्ध्र पत्रिका में'[3] प्रकाशित करने के लिए एक अपील भेजी, जिसमें हमने ऐसे खादी-प्रेमियोंसे आवेदन-पत्र भेजने के लिए कहा है जो आगामी गांधी-जयन्तीके सिलसिलेमें आन्ध्र शाखाकी ओरसे होनेवाले सूत्र-यज्ञमें भाग लेना चाहें। उसमें सभी लोगोंसे यह प्रार्थना की गई है कि इसमें भाग लेने के लिए वे या तो १४,००० (७०×२००) गज अपना कता हुआ सूत भेजें या गाधीजी की मौजूदा उम्रके अनुसार ७० पैसे (रु० १-१-६) भेजें। लोगोंने हमारी प्रार्थनापर तत्काल ध्यान दिया। अबतक हमारे पास ५०० आवेदन-पत्र आ चुके हैं। अर्जी भेजनेवालोंमें से अधिकांशने या तो १४,००० गज सूत या रु० १-१-६ भेजने की इच्छा व्यक्त की है। लेकिन कुछ गरीब कत्तिनें सिर्फ ७,००० गज ही सूत देने को तैयार हैं और उनकी गरीबीको देखते हुए हमें वह स्वीकार भी है, यद्यपि अपनी अपीलमें हमने जो न्यूनतम मात्रा रखी है, उससे वह कम है। अब हम आन्ध्र देशकी कत्तिनोंके नाम एक खास अपील निकाल रहे हैं, जिसमें महात्माजी की ७१ वीं वर्षगाँठपर भेंट-स्वरूप ७,००० गज, अर्थात् लगभग एक तानेके बराबर सूत देने के लिए उनसे कहा जायेगा। अपनी अपीलमें चरखा संघके सब सदस्योंसे हमने प्रार्थना की थी कि वे केवल सूत ही दें। हमारे केन्द्रीय भण्डार और केन्द्रीय कार्यालयमें पिछले पन्द्रह दिनों, अर्थात् २-८-१९३९ से लगातार सूत्र-यज्ञ चल रहा है। कुछ लोग तकलीपर कात रहे हैं और कुछ अन्य सुधरे हुए चरखे-पर। कार्यकर्त्ताओंसे कहा गया है कि वे अपने सूतकी किस्म तथा परिमाणमें सुधार करें और उसका विवरण रखें। आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस समितिसे हमने प्रार्थना की है कि वह सूत्र-यज्ञके लिए स्वयंसेवक भरती करने में हमारी मदद करे और इस बातका ध्यान रखे कि कांग्रेस समितियोंके सब सदस्य इसमें भाग लें। हमारी प्रार्थनापर उसने सब कांग्रेस-सदस्योंके नाम इस आशयका गश्ती पत्र जारी किया है कि वे सूत्र-यज्ञके स्वयंसेवक बनें और खादी-आन्दोलनको भरसक पूरी मदद दें। ऐसी आशा है कि गांधी जयन्तीसे पहले हम कमसे-कम १,००० स्वयंसेवक बना लेंगे।

मुझे अन्य स्थानोंसे भी पत्र मिले हैं, जिनसे जाहिर होता है कि श्री नारणदास गांधीके उदाहरणने लोगोंका ध्यान आकर्षित किया है। मैं आशा करता हूँ कि सूत्र-

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४५८-५९।
२. मछलीपट्टनमसे प्रकाशित होनेवाला तेलुगु साप्ताहिक
३. के० नागेश्वरराव द्वारा संस्थापित और मद्राससे प्रकाशित होनेवाला तेलुगु दैनिक

यज्ञका आयोजन करनेवाले बहुत ज्यादा किफायतके साथ सूत्र-यज्ञका आयोजन कर रहे हैं। उदाहरणके लिए, उन्हें इस तरह काता हुआ सूत एक जगहसे दूसरी जगह लाना-ले जाना नहीं चाहिए, क्योंकि इससे डाक-खर्चका बोझ उसपर पड़ जायेगा। सूत इस कामके लिए नियुक्त एजेंटों द्वारा इकट्ठा किया जाना चाहिए, जिससे वह हाथों-हाथ भेजा जा सके। यदि इसका प्रामाणिक हिसाब रखा और प्रकाशित किया जाये तो उसे यज्ञकी पूर्णाहुति समझा जाना चाहिए। जो लोग अपनी कताईका हिसाब नारणदास गांधीको भेजना चाहते हैं, उन्हें इसके लिए अपनी कताईके प्रमाण-पत्र वहाँ भेजने चाहिए। मैं तो यह भी कहता हूँ कि जहाँतक हो सके, सूत वहाँ-का-वहीं बुना जाना चाहिए। निश्चित स्थानोंमें ही बुनाईको केन्द्रित करना तो खादी-आन्दोलनकी भावनाके विरुद्ध है। हमें जिस तरह घर-घरमें कताईका प्रचार करना है, उसी तरह प्रत्येक गाँवमें बुनाईका भी प्रचार करना है।

शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें, ३ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-९-१९३९

१८३. मामलेकी जाँच की जाये

मैंने कुछ समय पहले नल्लथुरके हरिजनोंके[1] बारेमें तथ्य प्रकाशित किये थे। श्री के० ताताचारने कुछ समय पहले अपनी डायरीमें से मुझे टिप्पणियाँ लिख भेजी थीं; उनमें तेनपटनम चेरीके हरिजनोंके साथ दुर्व्यवहार किये जाने की जो बात कही गई है वह कोई कम गम्भीर नहीं है। मैं नीचे पूरा विवरण प्रकाशित कर रहा हूँ.[2]

लगता है इस मामलेमें बिलकुल न्याय नहीं किया गया है और हालाँकि यह मामला अपेक्षाकृत पुराना है, तथापि इसकी जाँच की जानी चाहिए। हरिजनों अथवा उनके मित्रोंने राहत पाने के प्रयत्नोंमें कोई लापरवाही नहीं की है। लेकिन यदि ताताचारका विवरण बिलकुल ठीक है तो हरिजनोंके साथ इसलिए न्याय नहीं किया गया क्योंकि वे हरिजन थे। निम्नतम दर्जेकी पुलिसको यह शिक्षा दी जानी चाहिए कि उन्हें अन्य लोगोंके समान हरिजनोंकी भी सेवा करनी है। हरिजनोंको यह महसूस करना चाहिए कि कमसे-कम कांग्रेसके राज्यमें उनके साथ न्याय किया जायेगा।

शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें, ३ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-९-१९३९

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४७५-७६।
२. यहाँ नहीं दिया गया है।

१८४. टिप्पणियाँ

धनिक न्यासी हैं

एक मित्र लिखते हैं:

> आपको यह जानकर खुशी होगी कि धनिकोंके न्यासी होनेके बारेमें आपके जो विचार हैं उनकी कल्पना १,३०० वर्ष पूर्व भी की गई थी। 'हदीस' में यह पद्य है —
>
> **लोगों के पास जो भी धन-दौलत है वह मेरी सम्पत्ति है, गरीब मेरे बच्चे हैं और अमीर, उनके पास जो धन-दौलत है, उसके न्यासी। इसलिए जो धनी मेरे गरीब बच्चोंके लिए खर्च नहीं करेंगे, उन्हें मैं दोजख (नरक) में भेज दूँगा, और उनकी कोई परवाह नहीं करूँगा।**

यह पत्र गुजरातीमें है और किसी अखबारसे लिया गया है। अखबारका नाम नहीं दिया गया है। वह सारा पद्य गुजराती लिपिमें उसके गुजराती अनुवादके साथ दिया गया है। देवनागरी लिपिमें उसका अविकल स्वरूप इस प्रकार है:

अल मालु माली वल फकराओ
अयाली वल अग्नियाओ वक्लाई
फमन बखलाव माली अला अयाली
उदखलुहुन्नार वला उबाली।

पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि गुजराती पाठक इसके पच्चीस प्रतिशत शब्दोंको आसानीसे समझ लेते हैं। दूसरे शब्दोंमें, ये शब्द गुजराती भाषामें खूब प्रचलित हो गये हैं।

२ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-९-१९३९

१८५. पत्र : मीराबहनको

दिल्ली,
३ सितम्बर, १९३९

चि० मीरा,

तुम सबको प्यार भेजनेके लिए बस एक पंक्ति ही लिख रहा हूँ।

बापू

श्री मीराबहन
सेगाँव, वर्धा

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४४८) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० १००४३ से भी

१८६. उत्तर : ऑक्सफोर्ड ग्रुपके सदस्योंको[1]

[३ सितम्बर, १९३९ के पश्चात्][2]

कलकत्ताके मेट्रोपॉलिटन बिशपको वर्धा लाना ठीक नहीं है, लेकिन युवक लोग आकर मिल सकते हैं, क्योंकि उनके लिए मेरे मनमें कोई दयाभाव नहीं है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-१०-१९३९

१८७. तार : सी० पी० रामस्वामी अय्यरको

५ सितम्बर, १९३९

मुझे एक चौंका देनेवाला तार मिला है जिसमें कहा गया है कि आपने युद्धकी दृष्टिसे एहतियातन सभी प्रकारकी सभाओं और

१ और २. यह महादेव देसाई द्वारा लिखित "ए वर्ड टु द ऑक्सफोर्ड ग्रुपर्स" (ऑक्सफोर्ड ग्रुपके सदस्योंसे दो शब्द) शीर्षक लेखसे लिया गया है, जिसमें वे लिखते हैं : "युद्ध आरम्भ होनेके तुरन्त बाद गांधीजीको ऑक्सफोर्ड ग्रुपकी ओरसे एक तार मिला जिसमें कलकत्ताके मेट्रोपॉलिटन बिशपके नेतृत्वमें कुछ सदस्योंके वर्धा आने और गांधीजीसे मुलाकात करनेकी बात कही गई थी।" देखिए "बातचीत : ऑक्सफोर्ड ग्रुपके सदस्योंके साथ", पृ० २१५-१७ भी।

जलूसोंपर प्रतिबन्ध लगा दिया है।[1] मालूम हुआ है प्रजा परिषद्का प्रस्तावित आयोजन आपकी जानकारीमें और आपकी अनुमतिसे किया जा रहा है। आशा करता हूँ कि सम्मेलनपर यह प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायेगा।[2]

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य. प्यारेलाल। हिन्दू, ७-९-१९३९ से भी

१८८. तार: जमनालाल बजाजको[3]

[५ सितम्बर, १९३९][4]

यदि आसानीसे हो सके तो तुम आठ तारीखको वर्धामें होनेवाली बैठकमें उपस्थित रहो।[5]

बापू

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २२२

१. हिन्दूमें छपा था: "आधिकारिक रूपसे यह बताया जाता है कि ४ सितम्बरको त्रावणकोर सरकारने जलूसों और प्रदर्शनोंके लिए जो तैयारियाँ की गई बताई जाती हैं उन्हें देखते हुए करुणागपल्ली सम्मेलनके संयोजकों और इसी तरहको अन्य संस्थाओंसे कहा है कि वे किसी प्रकारकी सभाएँ अथवा प्रदर्शन न करें अथवा फिलहाल उन्हें स्थगित कर दें।"

२. तारके उत्तरमें त्रावणकोरके दीवानने गांधीजी को जो उत्तर भेजा था, हिन्दूके अनुसार उसका सार यह था: "खेद है आपको एक बार फिर गलत सूचना मिली है। सभाओं, जलूसोंपर कोई रोक नहीं है, प्रतिबन्ध भी नहीं लगाया गया है। केवल रियासत कांग्रेसको यह सुझाव दिया गया है कि वह कोई जलूस अथवा प्रदर्शन न करे तथा कोई विवादास्पद प्रस्ताव न पास करे, खास तौरसे इसलिए कि यहाँ ऐसे लोगोंका एक जबरदस्त दल है जो सम्मेलनके स्थानीय संगठनकर्त्ताओंके बहुत खिलाफ है। उपर्युक्त परिस्थितियोंको देखते हुए तथा विवादास्पद प्रस्ताव पास किये जाने की सम्भावना एवं उपद्रव होने की आशंकासे कुछ समयके लिए सम्मेलनको स्थगित करने का सुझाव दिया गया था। ऐसे मामलेमें भी गलत जानकारी और भ्रामक तथ्य देकर आपसे कोई अपील की जाये, यह देखकर आश्चर्य होता है। एक विज्ञप्ति जारी की गई है, जिसमें वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिको देखते हुए ऐसी किसी भी कार्रवाईकी निन्दा की गई है जिससे लोगोंमें उत्तेजना फैले।" और देखिए "तार: पत्तम ताणु पिल्लैको", पृ० १८१।

३. साधन-सूत्रमें इस तारको दिनांक "जयपुर, ५ सितम्बर, १९३९" के अपने खानगी पत्रमें उद्धृत करते हुए जमनालालने लिखा था कि जयपुर की परिस्थितिमें आशानुसार अनुकूल मोड़ आनेपर "तो मैं आने की कोशिश करूँगा", अन्यथा "मेरी गैरहाजिरीमें सम्भव है बीचके लोग गड़बड़ी डाल देवें। इसलिए रह जाना भाग पड़ेगा।"

४. जमनालालजी को उक्त तार इसी दिन रातको ८-४५ बजे मिला था।

५. देखिए पृ० १८०।

१८९. पत्र : डॉ० जीवराज एन० मेहताको

शिमला
५ सितम्बर, १९३९

भाई जीवराज,

तुम वहाँ बैठे हुए भी मेरी तबीयतका ध्यान रखते हो। रामजीभाईने[1] तुम्हारा तार मुझे दिखाया था। मुझे मालूम था कि मुझे चढाई नहीं चढ़नी चाहिए इसलिए मुझे रिक्शापर बैठने का कड़वा घूंट पीना पड़ा। तुम्हारे तारने तो इस बातपर मुहर लगा दी।

बापू

[पुनश्च :]

आज सेगाँव वापस जा रहा हूँ।

डॉ० जीवराज मेहता
खम्भाता हॉल
एलटामाउन्ट रोड
बम्बई

मूल गुजरातीसे : जीवराज मेहता पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१९०. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[2]

शिमला
५ सितम्बर, १९३९

जिस समय मैं दिल्लीसे कालकाके लिए गाडीपर सवार हो रहा था उस समय एक भारी भीड़ बड़े मुदित भावसे "महात्मा गांधीकी जय" के जीर्ण-शीर्ण नारेके साथ-साथ यह नारा भी लगा रही थी कि "हम समझौता नहीं चाहते।" उस

१. तथापि साधन-सूत्रमें "रामीभाई" दिया हुआ है।

२. यह "द शिमला विज़िट" (शिमला-यात्रा) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। इस वक्तव्यकी एसोसिएटेड प्रेस द्वारा दी गई रिपोर्ट भी ५-९-१९३९ के हिन्दू और ६-९-१९३९ के हिन्दुस्तान टाइम्समें प्रकाशित हुई थी, जिसमें बताया गया था कि इसे गांधीजी ने शिमलासे "प्रस्थान करने के पूर्व तीसरे पहर" जारी किया था।

समय[1] मेरा साप्ताहिक मौन था, इसलिए मैं केवल मुस्करा रहा था। और जो लोग गाड़ीके पायदानपर मेरे पास खड़े हुए थे वे भी उत्तरमें मुस्करा रहे थे, यद्यपि मुझे यह आग्रहपूर्ण सलाह भी देते जा रहे थे कि मैं वाइसराय महोदयसे समझौता न करूँ। मुझे एक कांग्रेस समितिकी ओरसे भी पत्र मिला था, जिसमें ऐसी ही चेतावनी दी गई थी। मेरे ये परामर्शदाता मुझे नही जानते। अपनी सीमित शक्तिका ज्ञान कराने के लिए मुझे चेतावनी देने की जरूरत नही थी। दिल्लीके प्रदर्शन और कांग्रेसकी चेतावनीके अतिरिक्त वाइसराय महोदयसे भेंटके दौरान क्या बातचीत हुई, यह बताना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

मैं यह बात भली-भाँति जानता था कि मुझे अपने सिवा किसी और व्यक्तिकी ओरसे बोलने का अधिकार प्राप्त नही है।[2] मैं जानता था कि इस बारेमें कार्य-समितिने मुझे कोई आदेश नहीं दिया है। मैं तो तारसे प्राप्त एक निमन्त्रणके उत्तरमें जो पहली गाड़ी मिली उसीसे रवाना हो गया। इसके अतिरिक्त, मैं यह बात अच्छी तरहसे जानता था कि अदम्य और पूर्णरूपेण अहिंसाका समर्थक होने के नाते राष्ट्रीय मानसका प्रतिनिधित्व करने का मुझे अधिकार नही है और यदि मैंने ऐसा करने की कोशिश की तो मेरी दुर्गति ही होगी। वाइसराय महोदयसे भी मैंने यही कहा। ऐसी स्थितिमें मुझसे समझौते या समझौतेकी बातचीतका कोई सवाल ही नहीं उठता और मैंने देखा कि उन्होने भी मुझे समझौता-वार्त्ता करने के विचारसे नही बुलाया है। मैं वाइसराय महोदयके स्थानसे खाली हाथ लौटा हूँ। मुझसे स्पष्ट या गुप्त कोई समझौता नहीं हुआ। अगर कोई समझौता होगा, तो वह कांग्रेस और सरकारके बीच होगा।[2]

कांग्रेस-सम्बन्धी अपनी स्थितिको वाइसराय महोदयके सामने स्पष्ट करते हुए मैंने उन्हें बताया कि मानवताके दृष्टिकोणसे मेरी सहानुभूति ब्रिटेन और फ्रांसके साथ है। मैंने कहा कि जिस लन्दनको अबतक अभेद्य समझा गया है उसके विध्वसकी बात सोचते ही मेरा दिल दहल जाता है। पार्लियामेंट भवन और वेस्टमिन्स्टर ऐबि तथा उनके सम्भावित विध्वसका चित्र खीचते-खींचते मेरा दिल भर आया और मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो गया। मैं सचमुच अधीर हो उठा हूँ। और मन-ही-मन मेरी परमात्मासे इस प्रश्नपर हमेशा लड़ाई होती रहती है कि वह ऐसी बातें क्यो होने देता है। मुझे अपनी अहिंसा बिलकुल अशक्त मालूम पड़ती है। परन्तु दिन-भरके मथनके बाद यह उत्तर मिलता है कि न तो ईश्वर अशक्त है और न अहिंसा ही अशक्त है। अशक्त तो मनुष्य है। चाहे मुझे अपनी कोशिशमें टूट जाना पड़े, परन्तु पूरी श्रद्धाके साथ मुझे कोशिश तो करते ही रहना चाहिए। और इसलिए — मानो मुझे आगे

१. ४ सितम्बर, १९३९ को
२. यह वाक्य हिन्दुस्तान टाइम्ससे लिया गया है।
३. यहाँ संकेत द्वितीय विश्व-युद्धकी ओर है जो ३ सितम्बर, १९३९ को आरम्भ हो गया था।

जिस व्यथाको झेलना था उसका पूर्वाभास पाकर — मैंने गत २३ जुलाईको एवटा-वादसे हर हिटलरके पास निम्न पत्र भेजा था:[1]

क्या ही अच्छा हो कि हर हिटलर अब भी विवेकसे काम लें तथा तमाम समझदार आदमियोकी अपीलको,-जिनमें जर्मन भी हैं, सुनें। मैं यह स्वीकार करनेके लिए तैयार नही हूँ कि मनुष्यके अमानवीय बुद्धि-कौशलसे निर्मित उपकरणो द्वारा किये जानेवाले विध्वंसके डरसे लोगोको लन्दन-जैसे बड़े शहरोंको खाली कर देना पड़ सकता है, यह बात जर्मन लोग शान्त रहकर सोच सकते होंगे। वे शान्तिके साथ स्वयं अपने विध्वंसकी और अपने स्मारकोके नष्ट होनेकी बात नही सोच सकते। इसलिए इस समय मैं भारतकी मुक्तिकी बात नही सोच रहा हूँ। भारतको अवश्य मुक्ति मिलेगी। लेकिन अगर इंग्लैंड और फ्रांसका पतन हो जाता है, अथवा यदि उन्हें विध्वस्त जर्मनीके ऊपर फतह मिल जाती है तो उसका क्या मूल्य रह जायेगा?

तथापि ऐसा ही लगता है कि हर हिटलर किसी परमात्माके अस्तित्वमें विश्वास नही करते और केवल पशुबलको ही मानते हैं और जैसा कि श्री चेम्बरलेनने कहा है, बल-प्रयोगके सिवा वे [हिटलर] किसी युक्तिकी परवाह नहीं करेंगे। ऐसी बेमिसाल आफतके समय कांग्रेसियों तथा भारतके अन्य समस्त नेताओंको व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूपसे निर्णय करना होगा कि इस विनाश-लीलामें भारतकी क्या भूमिका होगी?[2]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-९-१९३९

१९१. पत्र: जमनालाल बजाजको

दिल्ली
६ सितम्बर, १९३९

चि० जमनालाल,

दिवानके बारेमें कठिन बात है। सीमलामें जैसी कुछ बात हुई ही नही थी। अगर तुमारी दृष्टिसे तुमारा यही रहना अधिक लाभदायी है तो वही किया जाय। आरामसे आ सकते है तो आ जाना।[3]

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३००४) से।

१. देखिए पृ० २३।
२. देखिए पृ० १७८-८९ भी।
३. देखिए पृ० १७७ भी और "जयपुर-सत्याग्रह" पृ० १९६-९८।

१९२. तार: पत्तम ताणु पिल्लैको

सेगाँव
८ सितम्बर, १९३९

दीवानका लम्बा तार[1] मिला जिसमें कहा गया है कि कोई निषेधात्मक आदेश जारी नहीं किया गया, केवल सलाह दी गई है। पाठ डाकसे भेज रहा हूँ।

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

१९३. तार: पादरेफ्स्कीको[2]

सेगाँव
८ सितम्बर, १९३९

पोलैण्डके निवासी अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करनेके लिए आज जो असमान लड़ाई लड़ रहे हैं उसमें निस्सन्देह पूरे हृदयसे मैं उनके साथ हूँ। लेकिन यह बात मुझे अच्छी तरहसे मालूम है और इसका मुझे दुख है कि मेरे शब्दोंका कोई प्रभाव नहीं है। आज यूरोपमें जो पागलपन-भरी विनाश-लीला मची हुई है, काश कि मेरे पास उसे रोकनेकी ताकत होती। मैं उस देशका वासी हूँ जो अपनी स्वाधीनता खो चुका

१. देखिए पृ० १७७, पाद-टिप्पणी २।

२. "टु द ब्रेव पोल्स" (बहादुर पोलैण्डवासियोंसे) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित यह तार गांधीजी ने पोलैण्ड गणराज्यके वयोवृद्ध भूतपूर्व अध्यक्ष और प्रसिद्ध पियानोवादक पादरेफ्स्की द्वारा स्विट्ज़रलैण्डसे प्रेषित तारके उत्तरमें भेजा था। पादरेफ्स्कीने अपने तारमें लिखा था: "आज हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र रहनेके अपने पवित्र अधिकारकी रक्षाके लिए एक क्रूर और अकथनीय अत्याचारी शासनके विरुद्ध लड़ रहा है। आप संसारकी एक महान् नैतिक विभूति हैं और इस नाते आपसे मैं अपने राष्ट्रकी ओरसे अपील करता हूँ कि आप अपने देशवासियोंके दिलोंमें पोलैण्डके प्रति सहानुभूति और मैत्रीकी भावना उत्पन्न करें। अपने एक हजार सालके इतिहासमें पोलैण्डने हमेशा मानवताके उच्चतम आदर्शों, श्रद्धा, न्याय और शान्तिका समर्थन किया है। आप अपने राष्ट्रके एक महान् शिक्षक हैं और संकटकी इस घड़ीमें जब प्रतिदिन असंख्य निर्दोष स्त्रियों और बच्चोंका संहार हो रहा है, आपके मुखसे निकले सहानुभूति और प्रोत्साहनके चन्द शब्दोंको सुनकर प्रत्येक पोलैण्डवासीको अति सान्त्वना प्राप्त होगी।" देखिए "सन्देश: पोलैण्डवासियोंको", पृ० १५७ भी।

है और आज संसारकी सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्तिके चंगुलसे अपनेको आजाद करानेके लिए संघर्ष कर रहा है। अपनी खोई हुई स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेके लिए उसने अहिंसाका अनोखा तरीका अपनाया है। हालाँकि अहिंसाका यह तरीका काफी हदतक कारगर सिद्ध हुआ है फिर भी लक्ष्य अभी बहुत दूर जान पड़ता है। इसलिए मैं बहादुर पोलैण्डवासियोंके लिए सच्चे हृदयसे ईश्वरसे यह प्रार्थना ही कर सकता हूँ कि वह उनके इस दारुण कष्टका शीघ्र ही निवारण करे और उन दुःखोंको सहनेकी शक्ति प्रदान करे जिनके विचार-मात्रसे हृदय काँप उठता है। वे जिस उद्देश्यको लेकर लड़ रहे हैं वह न्यायोचित है और उनकी विजय निश्चित है क्योंकि ईश्वर सदैव न्यायका पक्ष लेता है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १६-९-१९३९

१९४. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव
८ सितम्बर, १९३९

चि० लीला,

तेरा पत्र मिला। तुझे तो गई-बीती बातोंपर रोनेकी आदत ही पड़ गई जान पड़ती है। जबसे महादेवने मुझे तेरे बारेमें हकीकत बताई तबसे मैं निश्चिंत हो गया हूँ। वनिता विश्राममें भी तुझे कोई परेशानी नहीं है। भीड़-भाड़को तो सहन करना ही होगा। वहाँ पढ़नेकी पूरी सुविधा है। तू मेहनत भी कर सकती है। सब अध्यापकगण तेरा ध्यान रखते हैं। इतना होनेपर भी यदि तू दुःखी रहे तो यह तुझे और मुझे भी सहन करना होगा। तू यहाँ नहीं आ सकी तो कोई हर्ज नहीं। जब लम्बी छुट्टियाँ हों, तब आना। अल्पकालिक छुट्टियोंका लाभ भाई-भाभीको देना और अपना समय पढ़नेमें बिताना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

महादेवको राँची भेजा है। उन्हें कल वापस लौटना चाहिए।

श्री लीलावतीबहन आसर
मारफत श्री आचार्य [एम० टी०] व्यास
न्यू ईरा स्कूल, ह्यूजस रोड, बम्बई

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १००९२)से; सौजन्य : लीलावती आसर

१९५. पत्र : बलवन्तसिंहको

सेगांव, वर्धा
८ सितम्बर, १९३९

चि० बलवतसिंह,

मेरा खत तो मिला होगा। दिल्लीकी डेरीमें आक्टोबरमें जा सकोगे। ईश्वरदासका खत आया है। उसको दस दिन या अधिक देना है तो दिया जाय। लायक पुरूष है। सरदारजी[1] मुझे सीमलामें मिले थे। महादेव राजेन्द्र बाबुके पास राची गये हैं, कल शायद यहां आवेंगे। हम सब अच्छे है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९२४) से।

१९६. पत्र : रंगराव रा० दिवाकरको

सेगांव आश्रम[2]
९ सितम्बर, १९३९

प्रिय दिवाकर,

बेशक अहिंसाको भी सगठित किया जा सकता है। लेकिन अहिंसाको सगठित करने का तरीका हिंसाको संगठित करने के तरीकेसे सर्वथा भिन्न है। और जो मैं इसमें बुरी तरह असफल रहा हूँ, वह तो मेरी अपनी अयोग्यता ही सिद्ध करता हैं। मेरी साधना अधूरी है। इससे मुझे निराशा नही होती। मुझमें अपार धीरज होना चाहिए और है। धीरजके बिना आस्था एक निस्सार वस्तु है।

अहिंसाके सन्दर्भमें हमारा आचरण कैसा होना चाहिए, यह तुम 'हरिजन' के पृष्ठोंमें देखोगे।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
महात्मा, खण्ड ५, पृ० २००-२०१ के बीच प्रकाशित प्रतिकृतिसे

१. सरदार दातारसिंह
२. साधन-सूत्रमें यह हिन्दीमें है।

१९७. टिप्पणियाँ

अतिरिक्त खादी[1]

अ० भा० चरखा संघने स्वेच्छापूर्वक कत्तिनोंकी मजदूरीमें जो भारी वृद्धि की, उसके फलस्वरूप बहुत ज्यादा सूत तैयार हुआ है। इस तरह खादीके उत्पादनमें जो वृद्धि हुई है उसको खपाना हर जगह मुश्किल हो रहा है। अकेले तमिलनाडुमें ही खादीका उत्पादन ५½ लाखसे बढ़कर १५ लाखके करीब हो गया है, जबकि बिक्री लगभग ९ लाखसे बढ़कर ११ लाख ही हो पाई है। संयुक्त प्रान्तकी कठिनाईपर मैं पहले ही विचार कर चुका हूँ।[2] ये जो उदाहरण दिये गये हैं वे तो नमूने-भर हैं। यह कठिनाई तो सभी जगह मौजूद है। मैंने सुझाया है कि खादी-विशेषज्ञोंको खादीके इस पहलूका वैज्ञानिक रूपमें अध्ययन करके इसका उपाय ढूँढ़ना चाहिए। लेकिन खोजके दूसरे सब कार्योंकी तरह इसमें भी समय लगेगा। इस बीच बचे हुए मालको तो खपाना ही होगा। देशभक्त जनताका यह काम है कि वह इसमें सहायता करे। मुझे अपनी वर्षगाँठ मनाये जाने का कोई शौक नहीं है। मेरे लिए कोई और दिन भी वर्षगाँठ-जैसा ही शुभ-अशुभ है। जहाँतक मुझे याद है, मेरे माता-पिता अपने बच्चोंकी वर्षगाँठ कभी नहीं मनाते थे। मुझे अपने जन्मदिनकी तारीख इसलिए याद है, कि अपनी लन्दनकी परीक्षाके लिए मुझे अपने जन्मका प्रमाण-पत्र लेना पड़ा था। लेकिन इस तारीखका खयाल मुझे खादीके पुनर्जन्मसे पहले कभी नहीं हुआ। खादी-प्रेमियोंने मेरे जन्मदिनको खादीकी बिक्री बढ़ाने का अवसर बना लिया है। अपने जन्मदिनका इस तरह उपयोग किये जाने की मैंने परवाह नहीं की, बल्कि जहाँतक गुजराती भाषा-भाषियोंका सम्बन्ध है, उसे मैंने थोड़ी-बहुत सफलताके साथ 'रेंटियाजयन्ती' (चरखा जयन्ती) का नाम देने की कोशिश की। क्योंकि सबसे पहले उन्होंने ही यह तिथि मनाने का रिवाज शुरू किया। तबसे खादी और ग्रामोद्योगोंको लोकप्रिय बनाने के लिए भारतके अनेक भागोंमें निरन्तर खादी-सप्ताह मनाया जा रहा है। पाश्चात्य पंचांगके अनुसार आगामी २ अक्तूबर और विक्रम संवत्के अनुसार १० अक्तूबरसे खादी-प्रेमियोंको बड़ी आशाएँ हैं। संयुक्त प्रान्त, तमिलनाडु और अन्य प्रान्तोंमें खादी-हुंडियाँ जारी की गई हैं, जिनकी इस अवसरपर बहुत माँग होने की उन्हें आशा है। इस बातको खास तौरसे

१. "गांधीजीकी ७१ वीं वर्षगाँठके अवसरपर" अ० भा० चरखा संघके सहायक मन्त्री द्वारा भेजी गई रिपोर्ट हिन्दुस्तान टाइम्स, २९-९-१९३९ के अंकमें गांधीजीकी "अपील" के रूपमें प्रकाशित हुई थी।

२. देखिए पृ० ११६-१८।

महत्त्व दिया जा रहा है कि इन तारीखोपर मैं अपनी आयुके सत्तर वर्ष पूरे कर चुकूंगा — अलबत्ता इसी अनुमानपर कि तबतक मैं जिन्दा रहूँगा। लेकिन मैं जिन्दा रहूँ या नही, ये तारीखें तो आयेंगी ही। और अगर जनताके लिए यह जानना कोई महत्त्व रखता है तो उसे जान लेना चाहिए कि मेरी आत्माको, चाहे वह इस शरीरमें रहे या इसके बाहर, यह सोचकर निश्चय ही खुशी होगी कि आज हिन्दुस्तानमें पर्याप्त सख्यामें ऐसे भाई-बहन मौजूद है जो अधभूखे ग्रामीणो द्वारा तैयार की गई सारी खादीको दरिद्रनारायणकी खातिर खरीद लेने के कार्यमें इकट्ठा होने के लिए हमेशा तत्पर रहेंगे। खादी न खरीदने के लिए युद्धका बहाना किसीको नही करना चाहिए। युद्ध हो या न हो, जबतक हममें जीवन है तबतक हमें खाने-कपडेकी जरूरत तो होगी ही। फिर इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि गाँवोंके हमारे जरूरतमन्द बहन-भाइयोंके परिश्रमसे जो कपड़ा तैयार हो उसीसे हम अपने तन ढके ?

त्यागकी जरूरत

श्री शकरलाल बैंकर लिखते है कि युद्धके कारण विदेशी रगके दाम काफी बढ गये है। खादीको आकर्षक बनाने के लिए अ० भा० चरखा संघने विदेशी रगसे खादीको रँगने की इजाजत दे रखी है। अब अगर विदेशी रंगका इस्तेमाल जारी रहा, तो खादीकी कीमत बढानी पड़ेगी। मूल्य-वृद्धिको रोकने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि खादी-भण्डार विदेशी रंगका इस्तेमाल करना बन्द कर दें और देशी रगोके इस्तेमाल तक ही अपनेको सीमित रखकर उनसे जैसा रग हो सकता हो उसीसे सन्तोष करें। लेकिन ऐसा तभी हो सकता है जब आम लोग अपनी रुचिको सादा बनाकर चरखा सघको इस प्रयोगमें प्रोत्साहन दें। अगर आम लोग ऐसा करे, तो यह बहुत सम्भव है कि आवश्यकता एक बार फिर और अनेक आविष्कारोकी जननी बनेगी और देशी रगोसे सुन्दर रंग तैयार किये जा सकेंगे।

मेरी बात प्रमाण नहीं

अ० भा० चरखा सघके मन्त्रीने मेरा ध्यान २६ अगस्तके 'हरिजन' में प्रकाशित 'कत्तैयोकी मजदूरी'[1] शीर्षक मेरे लेखकी ओर आकर्षित किया है, जिसमें निर्धारित दरसे कम दरपर काते गये सूतसे तैयार की जानेवाली खादी खरीदने के बारेमें चर्चा की गई है। उनके कहने का सार यह है .

> बहुत-से लोग आपके शब्दोको प्रमाण मानते है, विशेषकर खादीके सम्बन्धमें, क्योंकि आप चरखा सघके अध्यक्ष है। इसलिए क्या आप स्पष्ट रूपसे यह नही कहेंगे कि 'हरिजन' में आपने जो राय व्यक्त की है उससे चरखा सघके प्रस्ताव नही बदलते या और कोई असर उनपर नही पडता, और जो आपसे सलाह ले उन्हें उसके अनुसार तभी व्यवहार करना चाहिए जब

१. देखिए पृ० ११२-१४।

सूतकी कीमतके बारेमें चरखा संघ द्वारा स्वीकृत हालके प्रस्तावके अनुसार वे पहले संघके मन्त्रीकी स्वीकृति प्राप्त कर लें?

मुझे यह कहने की जरूरत नहीं कि मन्त्रीने जो-कुछ लिखा है उसके हरएक शब्दका मैं समर्थन करता हूँ। 'हरिजन' में मैं जो-कुछ लिखता हूँ, उसका उतना ही महत्त्व है जो किसी भी सम्पादकीय लेखका होता है, उससे अधिक नहीं। उसे मेरी व्यक्तिगत राय ही मानना चाहिए और उसका महत्त्व सम्बन्धित विषयकी प्रामाणिक संस्था द्वारा पास किये गये प्रस्तावोंके समक्ष गौण है।

यहूदी धर्ममें शराब

जब मैंने देखा कि यहूदियोंने शराब पीने के सम्बन्धमें छूट दिये जाने के लिए दावा किया है और बम्बईके स्वास्थ्य-मन्त्री डॉ० गिल्डरने[1] यहूदियोंके मद्य-सेवनके दावेको स्वीकार कर लिया है, उस समय मुझे बड़ी विकलता हुई। क्योंकि जोहानिसबर्गमें, जहाँ बहुत-से यहूदी मेरे मित्र थे, यहूदियोंका मेरा अपना जो अनुभव है वह बम्बईके यहूदियों द्वारा किये गये दावेसे बिलकुल भिन्न है। अत. मैंने जोहानिसबर्गके अपने एक मित्र श्री एच० कैलेनबैकको यहूदियोंके जोहानिसबर्ग-स्थित मुख्य धर्मगुरुसे इस सम्बन्धमें प्रामाणिक सम्मति लेकर भेजने को लिखा। डॉ० लेडौकी सम्मति यह है:

> मैं नम्रतापूर्वक यह बता देना चाहता हूँ कि सनातनी यहूदी 'सेबथ' (रविवार) को पवित्र करने के लिए, अथवा छुट्टीके दिन सिनेगॉग (यहूदी गिरजे) में प्रार्थनाके बाद या घरपर भोजन के पहले, तथा 'पासअवर' उत्सवके पहले दो बार खास तौरपर बनाई गई मदिरा (कशेर) ले सकता है।
>
> परन्तु वह शराब (फल आदिको) सड़ाकर बनाई गई हो, यह जरूरी नहीं है।
>
> मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि यहूदियोंमें शराब पीनेका विधान नहीं किया गया है, बल्कि वह तो एक परम्परा चली आई है, जिसे यहूदी बनाये रखना चाहते हैं; क्योंकि उसका 'तालमुद' तथा यहूदी कानूनमें उल्लेख किया गया है।

अगर बम्बईके यहूदी इस बातको प्रामाणिक मान लें, तो उन्हें अपना दावा वापस ले लेना चाहिए और अंगूरोंके रसपर ही सन्तोष करना चाहिए, क्योंकि मेरे विचारसे 'वाइन' शब्दका मौलिक अर्थ यही है। यहाँ यह बात भी स्मरणीय है कि इस मद्य-सेवनका भी यहूदी धर्मग्रन्थोंमें विधान नहीं है, बल्कि वह तो केवल एक परम्परा-मात्र है।

सेगाँव, १० सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-९-१९३९

१. देखिए पृ० २८।

१९८. पत्र : हरिवंशसिंहको

सेगाँव, वर्धा
१० सितम्बर, १९३९

महोदय,

आपका पत्र मिला है। जो पत्रिकायें आपने भेजी है उसमें तो कुछ भयकरता प्रतीत नही होती है। किसानोके तरफसे कुछ भी अत्याचार न होने पाये, इसलिये मै यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूं। लेकिन पूर्ण न्याय होनेकी तैयारी जमीदारोंके तरफसे होनी चाहिये। इस बारेमें मै 'हरिजन' में लिखने की कोशिश करूगा।

आपका,
मो० क० गांधी

श्री हरिवशसिंह
तिर्वा

पत्रकी नकलसे. प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य. प्यारेलाल

१९९. मेरी सहानुभूतिका आधार

वाइसरायसे मुलाकातके बाद मैंने जो वक्तव्य दिया,[1] उसपर तरह-तरहके विचार व्यक्त किये गये हैं। एक आलोचकने उसे भावुकतापूर्ण बकवास कहा है तो दूसरेने उसे राजनीतिज्ञतापूर्ण घोषणा बतलाया है। इन दोनोंके बीच ऊँचा-नीचा स्वर निकालनेवाले अन्य लोग भी हैं। मै समझता हूँ कि अपने-अपने दृष्टिकोणसे सभी आलोचकोका कहना ठीक है, लेकिन जो परिशुद्ध दृष्टिकोण हो सकता है उससे— अर्थात् लेखकके दृष्टिकोणसे — वे सभी गलतीपर है। उसने [अर्थात् मैंने] तो सिर्फ अपने सतोषके लिए ही यह लिखा था। उसमें मैंने जो-कुछ कहा है उसके हरएक शब्दपर मै कायम हूँ। हरएक मानवतापूर्ण सम्मतिका जो राजनीतिक महत्त्व होता है, उसके अलावा उसका और कोई राजनीतिक महत्त्व नही है। विचारोंके पारस्परिक सम्बन्धको नही रोका जा सकता।

एक सज्जनने तो उसके खिलाफ बडा तीखा पत्र मुझे भेजा है। उसका उत्तर देना जरूरी है। मै यहाँ उस पत्रको उद्धृत नही कर रहा हूँ, क्योकि उसके

१. देखिए पृ० १७८-८०।

कुछ अंश खुद मेरी ही समझमें नहीं आये हैं। लेकिन उसका भाव समझने में मुश्किल नहीं है। उसकी मुख्य दलील यह है:

> अगर इंग्लैंडके संसद भवन और वेस्टमिन्स्टर ऐबिके सर्वनाशकी सम्भावना पर आप आँसू बहाते हैं, तो जर्मनीके प्राचीन स्मारकोंके सम्भावित नाशकी कल्पनापर आपके आँसू क्यों नहीं निकलते? और आप इंग्लैंड एवं फ्रांससे ही क्यों सहानुभूति रखते हैं, जर्मनीसे आपको सहानुभूति क्यों नहीं है? पिछले युद्धके बाद मित्र-राष्ट्रोंने जर्मनीमें जो तबाही मचाई थी, क्या हिटलर उसका जवाब नहीं है? अगर आप जर्मन होते और हिटलरकी-सी उपाय-कुशलता आपके पास होती, तथा सारी दुनियाकी तरह आप भी बदला लेने के सिद्धान्तमें विश्वास करते होते, तो जो हिटलर कर रहा है वही आप भी करते। नाजीवाद बुरा हो सकता है। दरअसल वह क्या है, यह हम नहीं जानते। हमें जो साहित्य मिलता है वह इकतरफा होता है। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि चेम्बरलेन और हिटलरमें कोई फर्क नहीं है। हिटलरकी जगह यदि चेम्बरलेन होते, तो भी इससे अन्यथा न करते। हिटलरकी चेम्बरलेनसे तुलना कर हिटलरको बुरा बताकर आपने उनके साथ अन्याय किया है। इंग्लैंडने हिन्दुस्तानमें जो-कुछ किया, वह क्या किसी तरह भी उससे अच्छा है, जो ऐसी परिस्थितियोंमें दुनियाके दूसरे हिस्सेमें हिटलरने किया है? हिटलर तो पुराने साम्राज्यवादी इंग्लैंड और फ्रांसका एक बालशिष्य-मात्र है। मैं समझता हूँ कि वाइसराय-भवनमें भावुकताने आपकी बुद्धिको अभिभूत कर लिया था।

इंग्लैंडके कुकृत्योंका, नचाईका खयाल रखते हुए, मैंने जितने जोरोंसे वर्णन किया है उतने जोरोंसे शायद किसी और ने नहीं किया है। इसी तरह जितने प्रभावकारी रूपमें मैंने इंग्लैंडका प्रतिरोध किया है उतने प्रभावकारी रूपमें शायद और किसीने नहीं किया है। और प्रतिरोध करने की इच्छा तथा शक्ति भी मुझमें ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। लेकिन जिस तरह बोलने और कार्य करने का अवसर होता है उसी तरह मौन और निष्क्रिय बनने का भी अवसर होता है।

सत्याग्रहके कोशमें शत्रु शब्द नहीं है। लेकिन चूँकि सत्याग्रहियोंके लिए नया कोश तैयार करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है, इसलिए मैं पुराने शब्दोंका ही नये अर्थमें प्रयोग करता हूँ। सत्याग्रही अपने तथाकथित शत्रुके साथ भी अपने मित्र-जैसा ही प्रेम करता है, क्योंकि उसका कोई शत्रु नहीं होता। सत्याग्रही यानी अहिंसाका उपासक होने के नाते, मुझे इंग्लैंडके भलेकी ही इच्छा करनी चाहिए। इस घड़ी जर्मनी-सम्बन्धी मेरी इच्छाओंकी न तो कोई प्रासंगिकता थी और न है। लेकिन अपने वक्तव्यमें कुछ शब्दोंमें मैंने यह बात कही है कि विध्वस्त जर्मनीकी राखपर मैं अपने देशकी आजादीका महल खड़ा नहीं करना चाहता। जर्मनीके पुराने स्मारकोंके सर्वनाशकी सम्भावनाका विचार करके भी शायद मैं उतना ही विचलित हो जाऊँ। लेकिन हर हिटलरको मेरी सहानुभूतिकी कोई जरूरत नहीं है। वर्तमान गुण-दोषोंको देखने के लिए इंग्लैंडके पिछले कुकृत्यों और जर्मनीके पिछले सुकृत्योंका उल्लेख

अप्रासंगिक है। इस बातका कोई खयाल न करते हुए कि इससे पहले ऐसी ही हालतमें अन्य राष्ट्रोंने क्या किया, मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ — चाहे यह सही हो या गलत — कि इस युद्धकी जिम्मेदारी हर हिटलर पर ही है। उनके दावेके बारेमें मैं अपना कोई निर्णय नही देता। यह बहुत मुमकिन है कि अगर डानजिग-निवासी जर्मन अपने स्वतन्त्र दर्जेको छोडना चाहें, तो डानजिगको जर्मनीमें मिलाने का उनका अधिकार असन्दिग्ध हो। यह भी हो सकता है कि पोलैंडसे होकर जानेवाले रास्तेंको अपने कब्जेमें करने का उनका दावा ठीक हो। मेरी शिकायत तो यह है कि वह एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरणके द्वारा इस दावेकी जाँच क्यों नही होने देते? अपने दावेका पचोंसे फैसला कराने की बातको अस्वीकार कर देने का यह कोई जवाब नही है कि यह बात ऐसे हलकोंसे उठाई गई है जिनका इसमें स्वार्थ है। ठीक रास्तेपर आने की प्रार्थना तो कोई चोर भी अपने साथी चोरसे कर सकता है। मैं समझता हूँ कि मैं यह कहने में कोई गलती नहीं करता कि हर हिटलर अपनी माँगकी एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा जाँच होने दें, इसके लिए सारा संसार उत्सुक था। उन्होंने जो तरीका अपनाया है यदि वे उसमें सफल हो जाते हैं तो वह उनके दावेके न्यायोचित होनेका प्रमाण नही होगा। वह तो इसी बातका प्रमाण होगा कि मानव-जातिके व्यवहारमें अब भी जगलका कानून, अर्थात् जिसकी लाठी उसकी भैंसका न्याय ही प्रचलित है। वह इस बातका एक और सबूत होगा कि हम मनुष्योंने यद्यपि अपना रूप बदल दिया है पर पाशविक तरीकोंको नही बदला है।

मैं आशा करता हूँ कि मेरे आलोचकोको अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि इग्लैंड और फ्रासके प्रति मेरी सहानुभूति मेरे क्षणिक आवेश या उन्मादका परिणाम नही है। इसका उद्गम तो अहिंसाके उस अजस्र स्रोतसे हुआ है जिसका मैं पिछले पचास वर्षोंसे अपने हृदयमें पोषण करता आया हूँ। मैं यह दावा नही करता कि मेरे निर्णयमें कोई गलती नही हो सकती। मैं तो सिर्फ यही दावा करता हूँ कि इंग्लैंड और फ्रासके प्रति मेरी जो सहानुभूति है, वह युक्तियुक्त है। जिस आधारपर मेरी इंग्लैंड और फ्रांससे सहानुभूति है, उसे जो लोग स्वीकार करते हैं उन्हें मैं अपना साथ देने के लिए आमन्त्रित करता हूँ। यह दूसरी बात है कि उसका रूप क्या होना चाहिए। मैं अकेला तो केवल प्रार्थना ही कर सकता हूँ। और इसलिए मैंने वाइसराय महोदयसे भी यही कहा है कि युद्धमें प्रत्यक्ष रूपसे प्रवृत्त लोगोको जिस सर्वनाशका मुकाबला करना पड़ रहा है, उसके सामने मेरी सहानुभूतिका कोई ठोस मूल्य नही है।

सेगाँव, ११ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-९-१९३९

२००. काठियावाड़की रियासतें

कुछ दिन हुए मैंने 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित एक लेखमालाकी चर्चा की थी।[1] इस लेखमालामें राज्योंका और खास तौरसे काठियावाडकी रियासतोंका परिसंघ बनाये जानेकी योजनाका सुझाव दिया गया है। मैंने आर० एल० एच०[2] के लेखोंकी कतरनोंको इस विचारसे सँभालकर रखा था कि 'हरिजन' के स्तम्भोंमें जगह मिलने पर मैं ५ और ७ जुलाईको 'ट्रिब्यून' में छपे लेखोंके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंशोंको 'हरिजन' में उद्धृत करूँगा। ये उद्धरण इस अंकमें अन्यत्र[3] प्रकाशित किये गये हैं और ये राजाओं तथा काठियावाड़की जनता, दोनोंके लिए दिलचस्प होने चाहिए। लेखक स्पष्ट ही रियासतोंका मित्र है। वह उनका नाश नहीं, अपितु उनमें सुधार चाहता है। लेखककी इस योजनापर उन सब लोगोंको गम्भीरताके साथ विचार करना चाहिए, जो रियासतोंके शासन-प्रबन्धके मामलेमें दिलचस्पी रखते हैं।

सेगाँव, ११ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-९-१९३९

२०१. पत्र : जी० एन० कानिटकरको

सेगाँव, वर्धा
११ सितम्बर, १९३९

प्रिय बालुकाका,[4]

आपने मुझे जो लम्बा पत्र लिखा है उसके लिए मैं आपको क्षमा करता हूँ, और मैं आपका अनुकरण नहीं कर सकता इसके लिए आप मुझे क्षमा करें। आप जनताको कुछ ठोस परिणाम दिखायें तो आप सफल होंगे। एक जमाना था जब आप

१. देखिए पृ० ९८-९९।
२. आर० एल० हांडा; देखिए पृ० ९३।
३. देखिए परिशिष्ट ४।
४. ये सेवानन्दके नामसे भी जाने जाते हैं।

कुछ किया करते थे हालाँकि वह . . .[1] था। और आज आप योजनाएँ बनाते हैं और भाषण देते हैं।

कैसी पतनावस्था है!

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री बालुकाका कानिटकर
हिन्द माता मन्दिर
३४१, सदाशिव, पूना-२

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६८) से, सौजन्य : जी० एन० कानिटकर

२०२. पत्र : नारणदास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
११ सितम्बर, १९३९

चि० नारणदास,

तुम्हारी वर्षगाँठके बारेमें मालूम हुआ।

साथके पत्र जिन-जिन व्यक्तियोंको लिखे गये हैं उन-उन व्यक्तियोंको दे देना।

तुम्हारा वनवास[2] तो अब जल्दी ही खत्म होनेवाला है। समय बीतता ही जाता है। तुम्हारे पल-पलका हिसाब रहता है, पल-पलका सदुपयोग होता है। वहाँ समय कैसे बीतता है, इसका प्रश्न उठ ही नहीं सकता। तुम्हें अभी बहुत काम करने हैं। इसके लिए ईश्वर तुम्हें लम्बी उम्र देगा।

'प्रवेशिका'[3] के बारेमें तुमने मेरे मुद्देको समझ लिया है, इतना ही पर्याप्त है। मुझे कोई जल्दी नहीं है।

कनैयाकी[4] तबीयत तो अच्छी ही है। वह किसी-न-किसी काममें जुटा रहता है। प्यारेलाल भी उसे पर्याप्त काम सौंप रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५६१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. साधन-सूत्रमें यहाँ एक शब्द पढ़ा नहीं जाता।

२. गांधीजी से अलग रहने तथा निष्ठापूर्वक अपना काम करने के कारण

३. यहाँ संकेत सम्भवतः खादी-शास्त्रसे सम्बन्धित उस पुस्तिकाकी ओर है जिसे गांधीजी ने नारणदाससे लिखने को कहा था; देखिए खण्ड ६६, पृ० ३५-३६।

४. नारणदास गांधी के पुत्र, कनु।

२०३. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
११ सितम्बर, १९३९

चि० विजया,

तेरा पत्र मिला। अब तो हमारी यही इच्छा होनी चाहिए कि पिता दुःखसे मुक्त हो जायें। मेरी सलाह है कि उन्हें किसी तरहकी खुराक न दी जाये। पानी जितना पी सकें उतना पीयें। मुसम्बीका रस लेना हो तो ले ले, लेकिन दूध नहीं। ऐसा करनेसे कमसे-कम कष्ट होगा। उन्हें ऐसी जगह सुलाया जाये जहाँ हवा और प्रकाश हो। उन्हें रामनाम लेनेके लिए प्रोत्साहित किया जाये। तू उनके पास बैठकर भजन गाना। माँको समझाना। यदि तू हिम्मत नहीं हारेगी तो अन्य सब लोगोंमें भी हिम्मत आ जायेगी। तू अन्ततक प्रसन्न-मुख बनी रहना। जिन्हें ईश्वरमें विश्वास है वे लोग रोते नहीं हैं। मैं और बा ठीक हैं। मैं तो तेरी राह देख रहा था। फिलहाल तो यह उम्मीद छोड़ रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

श्री विजयाबहन सेगाँववाली
मारफत नारणभाई वल्लभभाई पटेल
वराड

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११६) से। सी० डब्ल्यू० ४६०८ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

२०४. टिप्पणी : 'एक महाराजाकी धमकी' पर[1]

चूँकि इस बारेमें शंका व्यक्त की गई थी कि मैंने महाराजाधिराजको जो पत्र लिखा था वह उन्हें मिला अथवा नहीं, अतः सही स्थिति जानने के लिए मैंने एक तार दिया था। जवाबमें[2] मुझे सूचित किया गया कि उन्हें पत्र नहीं मिला। मैंने उपर्युक्त लेखको, जो पहले ही 'हरिजन' के व्यवस्थापकको भेजा जा चुका था, वापस मँगवा लिया। मेरे साथी कार्यकर्त्ताओंपर कामका बहुत ज्यादा बोझ होने के कारण 'हरिजनसेवक' (हिन्दुस्तानी) के लिए भेजा गया लेख वापस नहीं मँगवाया जा सका।

१. देखिए पृ० १३६-३८।
२. देखिए परिशिष्ट ९।

इसलिए मैंने सोचा कि मेरे लेख और पत्रके उत्तरमें महाराजाधिराजने जो पत्र भेजा है, दोनोको प्रकाशित करने से सचाई ठीकसे सामने आ जायेगी। उत्तर अपने-आपमें स्पष्ट है। मेरे पत्र-लेखकने १९३२ की हिदायतके बारेमें जो-कुछ कहा है, इससे उसकी काफी हदतक पुष्टि हो जाती है। यह आशा की जाती है कि इस हिदायतको जल्द ही रद्द कर दिया जायेगा। यह दावा किया जाता है कि आज जो युद्ध हो रहा है, वह लोकतन्त्रकी प्राप्तिके लिए किया जा रहा है, ऐसे समयमें बिना किसी उचित कारणके जनताकी स्वतन्त्रतापर अंकुश लगाना किसी राजाको शोभा नहीं देता।

सेगाँव, १२ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १६-९-१९३९

२०५. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
१३ सितम्बर, १९३९

चि० विजया,

तू कैसी पगली है! मेरा पत्र[1] तुझे मिला होगा और तूने अपने आँसुओंको रोक लिया होगा। यदि तू इस तरह कमजोर पड़ेगी तो घरमें सब लोग रोते ही रहेंगे और भारी अशान्ति पैदा हो जायेगी। इसलिए केवल तुझपर ही शान्ति आधारित है। तू तो ईश्वरमें विश्वास करती है। उसके लिए तो मरना, जीना, पैदा होना सब-कुछ एक ही है। ये तीनों चीजें क्षणिक हैं। यदि तू इतना समझ ले तो तू हर समय आनन्द से नाचा करे। अब पिताके लिए तो मैंने तार भेजा है। उम्मीद है, वह मिल गया होगा। पिताजी से कहना कि वे हिम्मत न हारें। उनका जो नाम है उसको सार्थक बनायें। नारायणका — रामका — नाम लेते हुए स्वधाम चले जायें। वे जहाँ जायेंगे वहाँ शान्ति-ही-शान्ति है। अपने पीछे छूट जानेवाले लोगोंकी तनिक भी चिन्ता न करें। पानी ही उनकी खुराक और राम-नाम ही सबसे अच्छी औषध है। आजकल मुझे रोज पत्र लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११७)से। सी० डब्ल्यू० ४६०९ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

1. देखिए पृ० १९२।

२०६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव,
१५ सितम्बर, १९३९

विश्व-संकट के बारेमें कांग्रेस कार्य-समितिने जो वक्तव्य जारी किया है उसपर लगातार चार दिनोतक[2] विचार किया गया और तब उसकी आखिरी रूपरेखा निर्धारितकी गई। कार्य-समितिकी ओरसे निमन्त्रित किये जाने पर उस वक्तव्यका मसौदा पं० जवाहरलाल नेहरूने तैयार किया और उसपर कार्य-समितिके सभी सदस्योंने खुले तौरसे अपने-अपने विचार व्यक्त किये। मुझे दु:खके साथ कहना पड़ता है कि वहाँपर केवल मैं ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसका यह विचार था कि ब्रिटेनको जो भी सहायता दी जाये वह बिना शर्तके दी जानी चाहिए। यह केवल शुद्ध अहिंसाके आधारपर ही किया जा सकता था। लेकिन कार्य-समितिको बहुत बड़ी जिम्मेदारी निभानी थी। वह विशुद्ध अहिंसात्मक दृष्टिकोण नही अपना सकती थी। कार्य-समितिने यह महसूस किया कि देशने अहिंसाकी भावना उस हदतक ग्रहण नही की है जिससे उसमें इतनी शक्ति आ गई हो कि वह विरोधीकी कठिनाइयोसे लाभ उठाने के विचारको हेय समझे। लेकिन कार्य-समितिने अपने निर्णयके कारण बताते समय ब्रिटेनके प्रति अधिकतम सहानुभूति दिखाने की इच्छा व्यक्त की।

वक्तव्य तैयार करनेवाला व्यक्ति एक कलाकार है। हालाँकि साम्राज्यवादका — चाहे उसका कोई भी रूप अथवा आकार क्यों न हो — विरोध करने में उसका कोई सानी नही है, फिर भी वह अंग्रेजोंका मित्र है। सचमुच, वह अपने विचारों

१. यह "गांधीजीज कमेन्ट ऑन द मैनिफेस्टो" (घोषणा-पत्रपर गांधीजी के विचार) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। १६-९-१९३९ के हिन्दूमें कहा गया था: "जब हिन्दूका प्रतिनिधि और अन्य पत्र-प्रतिनिधि गांधीजी के पास गये और उनसे कार्य-समितिके घोषणा-पत्रपर अपने विचार व्यक्त करने के लिए कहा तो गांधीजी ने इस सम्बन्धमें एक वक्तव्य देना स्वीकार कर लिया और इसके लिए उन्होंने पत्र-प्रतिनिधियोंको सेगाँव आने के लिए आमन्त्रित किया। शामको प्रार्थनाके तुरन्त बाद गांधीजी अपना वक्तव्य तैयार करने के लिए बैठ गये। . . . एक घंटे बाद वक्तव्य तैयार हो गया और जब श्री महादेव देसाई उसे पढ़कर सुनाने लगे, तब कुछ लोग लालटेनके इर्दगिर्द इकट्ठे हो गये। गांधीजी भी आ गये और जैसे-जैसे महादेव देसाई वक्तव्य पढ़ते गये गांधीजी उसे ठीक करते गये, और जहाँ-तहाँ भाषामें सुधार भी करते गये। . . . जब श्री देसाई वक्तव्य पढ़ चुके तब एक पत्र-प्रतिनिधिने पूछा, 'बस इतना ही है?' तब गांधीजी मुस्कराये और कहा, 'क्या इतना काफी नहीं है?' और वे वहाँसे उठकर चले गये।" घोषणा-पत्रके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट १०।

२. १० से १४ सितम्बरतक

और रंग-ढंगमें भारतीयसे अधिक अंग्रेज है। उसे अपने देशवासियोंकी अपेक्षा अंग्रेजोंके साथ होने में अक्सर अधिक आराम महसूस होता है। और वह मानवतावादी है, इस अर्थमें कि उसमें हरएक बुराईको देखकर, चाहे वह कहीं भी क्यों न हो, प्रतिक्रिया होती है। इसलिए यद्यपि वह कट्टर राष्ट्रवादी है, तथापि उसकी राष्ट्रीयताकी भावना अन्तर्राष्ट्रीयताकी भावनासे अनुस्यूत है। इसलिए उसका वक्तव्य एक ऐसा घोषणा-पत्र है जो केवल अपने देशवासियो या ब्रिटिश सरकार और ब्रिटेनकी जनताको ही सम्बोधित करते हुए नही बल्कि दुनियाके सभी देशोंको — भारतकी तरह शोषित देशोको भी — सम्बोधित करके लिखा गया है। उसने कार्य-समितिके जरिये हिन्दुस्तानको न केवल अपनी आजादीके सवालपर, बल्कि दुनियाके दूसरे शोषित देशोंकी आजादीके सवालपर भी विचार करने के लिए बाध्य किया है।

कार्य-समितिने अपना वक्तव्य देने के साथ ही एक बोर्डकी[1] स्थापना की, जिसके अध्यक्ष प० जवाहरलाल ही है, जो अपनी इच्छाके अनुसार उसके सदस्य चुनेंगे और वह बोर्ड समय-समयपर आगे पैदा होनेवाली परिस्थितियोसे निबटेगा।

मुझे आशा है कि इस वक्तव्यको कांग्रेसके सभी पक्षोंका सर्वसम्मत समर्थन प्राप्त होगा। कांग्रेस-जनोमें उग्रतम लोगोको भी उसमें ओजकी कोई कमी दिखाई नही देगी। देशके इतिहासमें ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसरपर कांग्रेसियोको यह विश्वास करना चाहिए कि अगर कार्रवाई करने की जरूरत पड़ी, तो इस कार्रवाईमें दृढ़ताकी कमी नहीं होगी। अगर कांग्रेस-जन अपनेको छोटी-छोटी बातोंमें उलझाये रखेंगे अथवा दलगत झगड़ोमें पड़े रहेंगे तो यह एक दुःखद बात होगी। यदि हम कार्य-समितिकी इस कार्रवाईसे कोई महत्त्वपूर्ण अथवा बडा परिणाम निकलने की उम्मीद करते हैं तो उसके लिए एकान्त और पूर्ण निष्ठाकी भावनाका होना बहुत जरूरी है। मैं यह भी आशा करता हूँ कि दूसरे राजनीतिक दल तथा अन्य सब समुदायोंके लोग कार्य-समितिकी इस माँगको, जिसके जरिये उसने ब्रिटिश सरकारसे अपनी नीतिको स्पष्ट कर देने के लिए और वर्त्तमान युद्धकी परिस्थितियोमें उसपर जहाँतक अमल किया जा सके वहाँतक अमल करने के लिए कहा है, समर्थन देंगे।

मेरे विचारसे ब्रिटिश सरकार द्वारा लोकतन्त्रकी दुहाई दिये जाने का स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि हिन्दुस्तानका और ब्रिटेन द्वारा शासित अन्य सभी देशोंका स्वतन्त्रता और स्वाधीनताका दर्जा स्वीकार कर लिया जाये। अगर इस युद्धसे इतना भी नही होता, तो शासित देशो द्वारा दिया जानेवाला सहयोग वास्तवमें स्वेच्छाप्रेरित नही हो सकता। हाँ, यदि सहयोग विशुद्ध अहिंसाके आधारपर दिया जाये तो बात और है।

इस सम्बन्धमें जिस बातकी जरूरत है वह सिर्फ यही है कि ब्रिटिश राजनेताओंके दृष्टिकोणमें आमूल परिवर्तन होना चाहिए, या और भी स्पष्ट शब्दोमें कहें तो इस समय जो सबसे बड़ी जरूरत है वह यह कि युद्धके मौकेपर लोकतन्त्रके

१. अबुल कलाम आजाद और वल्लभभाई पटेल इस बोर्डके सदस्य नियुक्त किये गये थे।

सम्बन्धमें जो घोषणाकी गई है, और जो अब भी ब्रिटिश मंचोंसे दुहराई जा रही है, उसे ईमानदारीके साथ अमलमें लाया जाये। क्या ब्रिटेन हिन्दुस्तान की अनिच्छाके बावजूद उसे युद्धमें घसीटेगा, या वह सच्ची जनसत्ताकी रक्षाके लिए हिन्दुस्तानसे स्वेच्छासे सहयोगको उत्सुक मित्र-राष्ट्रके रूपमें सहायता प्राप्त करना चाहेगा? कांग्रेसका समर्थन ब्रिटेन और फ्रांसके लिए नैतिक दृष्टिसे सबसे महत्त्वपूर्ण होगा। क्योंकि कांग्रेसके पास सैनिक तो हैं नहीं जिन्हें वह दे सके। कांग्रेस हिंसात्मक तरीकेसे नहीं बल्कि अहिंसात्मक तरीकेसे लड़ती है, भले ही उसकी वह अहिंसा कितनी ही अपूर्ण या अमार्जित क्यों न हो।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-९-१९३९

२०७. पत्र : दूधाभाई दाफड़ाको

सेगाँव, वर्धा
१६ सितम्बर, १९३९

भाई दूधाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे विवाहित स्त्रीसे विवाह कर लेनेकी बात सुनकर दुःख हुआ। वहाँ बैठे-बैठे जो प्रयत्न कर सको, सो करना। मैं तो लाचार हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२४६) से।

२०८. जयपुर-सत्याग्रह

जैसा कि सेठ जमनालालजी ने अपने सार्वजनिक वक्तव्यमें घोषित किया है, जयपुरका सत्याग्रह सफलताके साथ समाप्त हो गया। महाराजा साहबसे उनकी कई मुलाकातें हुईं। उसका परिणाम यह हुआ कि सभाओं और जलूसोंसे सम्बन्धित विनियम वापस ले लिया गया। इसी प्रकार अखबारोंपर लगा प्रतिबन्ध भी उठा लिया गया है, और कई अन्य मामलोंमें सुधार करने का भी आश्वासन दिया गया है।[1] इस सुखद परिणामके लिए महाराजा साहब और सेठ जमनालालजी, दोनों धन्यवादके पात्र हैं — महाराजा साहब तो अपनी न्यायबुद्धिके लिए और सेठ जमनालालजी

१. द इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २२९-३० के अनुसार समझौतेकी मुख्य शर्तें इस प्रकार थीं: (१) राजनीतिक बन्दी रिहा कर दिये जायेंगे, (२) सभी समाचारपत्रोंपर से प्रतिबन्ध हटा लिया जायेगा, और (३) सार्वजनिक संस्था अधिनियममें सन्तोषजनक सुधार किया जायेगा, जिससे किसी संस्थाको अपने-आपको रजिस्टर्ड करवानेकी जरूरत न रह जाये।

जयपुर प्रजामण्डलकी ओरसे बातचीत करने में प्रदर्शित अपनी बुद्धिमत्ता और नरमीके लिए। यह एक ऐसे आन्दोलनका सुखद अन्त है जो बड़े सयम और शान्तिके साथ चलाया गया था। यह अहिंसाकी विजय है। इसमें बिलकुल शुरूसे ही अपनी माँगें इतनी कम रखी गई थी जितनी राजनीतिक शिक्षा और अपने विचारोको प्रकट करने के लिए आवश्यक हैं। उत्तरदायी शासनका ध्येय तो हमेशा रहा है, लेकिन उसे ऐसे उग्र या आक्रमणात्मक रूपमें कभी नही पेश किया गया, मानो फौरन ही पूर्ण उत्तरदायित्व दिये जाने पर आग्रह हो। प्रजामण्डलने अपनी मर्यादा और जनताकी पिछड़ी हुई हालतका बुद्धिमानीके साथ ध्यान रखा है। राजपूतानेकी अनेक रियासतोमें अभीतक लगभग कोई राजनीतिक शिक्षा नहीं देने दी गई है। अत. यदि जयपुरकी प्रजाको सच्चे अर्थमें नागरिक स्वाधीनता मिल गई हो तो यह एक ठोस लाभ होगा। उक्त लाभ सचमुच प्राप्त हो, यह जितना जयपुरके अधिकारियोंके सयमपर निर्भर है उतना ही इस बातपर भी निर्भर है कि प्रजा कितनी बुद्धिमानीके साथ उसका उपयोग करती है।

इस सम्बन्धमें सेठ जमनालालजी ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल उठाया है। उनका आग्रह है कि किसी अग्रेजको दीवान न बनाया जाये। मुझे इस राज्यके एक अंग्रेज दीवानके[1] शासन-प्रबन्धकी आलोचनाका दु खदायी फर्ज अदा करना पडा है। मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि किसी भी देशी रियासतमें अग्रेज दीवान कदापि उपयुक्त नही हो सकता। उसे भारतीय राजाके मातहत काम करना पड़ता है। लेकिन अवकाश-प्राप्त अग्रेज अधिकारी, जिनमें से दीवान चुने जाते हैं, भारतीय नरेशोंसे हुक्म लेने के आदी नही होते। वे भारतीय नरेशोंके मिजाजको नहीं समझ सकते और उनके अनुसार अपनेको नही ढाल सकते। स्वय राजा लोग भी अग्रेज दीवानोंके साथ कभी हिलमिल नही पाते। इसके अलावा, वे कितने ही ईमानदार क्यो न हों, अग्रेज लोग रियासतोकी प्रजाको कभी नही समझ सकते, न उनके साथ धीरजसे पेश आ सकते हैं। उसी तरह प्रजा भी उनके साथ वैसे खुले दिलसे पेश नही आ सकती, जैसे कि अपनेमें से ही किसीको दीवान बनाये जाने पर उसके साथ पेश आ सकती है। इस प्रकार किसी देशी रियासतमें अग्रेज दीवान दुहरी अड़चन पैदा करते हैं और आन्तरिक उन्नतिकी जो थोड़ी-बहुत गुजाइश होती है वह भी नही रह जाती। साथ ही, शासनकी योग्यता रखनेवाले भारतीयोके लिए अपनी काबिलीयत दिखलाने का जो बहुत सकीर्ण क्षेत्र बचा है, रियासतोमें अग्रेज दीवानोंकी नियुक्ति उसपर भी निर्मम कुठाराघात करती है। फर्ज कीजिए यदि दीवानके पद अवकाश-प्राप्त अंग्रेज अधिकारियोंके लिए ही सुरक्षित रहें, तब तो सर टी० माधवराव या सर सालारजग-जैसे व्यक्तियोकी सेवासे हम सदा वचित ही रहेंगे और थ दो तो बहुत-से ऐसे ही प्रसिद्ध भारतीय दीवानोंके उदाहरण-मात्र हैं।

इसलिए, आशा की जाती है कि अगर महाराजा साहबको अपना दीवान चुनने की सचमुच छूट हो, तो वे किसी ऐसे भारतीयको ही 'चुनेंगे जो अपनी ईमानदारी,

१. सर डब्ल्यू० बीकम सेंट जॉन; देखिए खण्ड ६८।

योग्यता और प्रजाकी आकांक्षाओंके प्रति सहानुभूतिके लिए प्रसिद्ध हो। साथ ही, यह भी आशाकी जाती है कि अगर ब्रिटिश सरकार ही चुनाव करे, तो वह किसी यूरोपीय दीवानको महाराजा साहबके ऊपर न थोपेगी।

सेगाँव, १७ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-९-१९३९

२०९. पत्र : पुरुषोत्तम के० जेराजाणीको

सेगाँव, वर्धा
१७ सितम्बर, १९३९

भाई काकुभाई,

भाई लक्ष्मीदास नये गांधीके[1] साथ तुम्हारा जो पत्र-व्यवहार हुआ है उसे मैं पढ़ गया हूँ। लगता है, तुमने उन्हें जवाब नहीं दिया है। दे सको तो दे देना। जिस व्यक्तिने नकल की है उसने एक ही तरफ क्यों की? इसमें कागजका अपव्यय होता है और डाक-खर्च भी ज्यादा होता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८५७) से; सौजन्य: पुरुषोत्तम के० जेराजाणी

२१०. टिप्पणियाँ

सिरोही

सिरोही राजपूतानेकी एक रियासत है, जिसकी आबादी १,८६,६३९ और आमदनी, ९,७०,००० रुपये है। अखबारोंमें इसकी चर्चा लाठियाँ चलाये जानेकी घटनाको लेकर हुई है। कहा जाता है कि बिना किसी उत्तेजनाके लाठियाँ चलाई गई थीं। श्री गोकुलभाई भट्टसे, जो सिरोहीके ही रहनेवाले हैं, मुझे इस घटनाकी प्रामाणिक जानकारी मिली है। श्री गोकुलभाई भट्ट सुयोग्य अध्यापक तथा वफादार कांग्रेस-कार्यकर्ताके रूपमें जाने जाते हैं। वे अहिंसाकी भावनासे ओतप्रोत हैं। वे हाल में सिरोहीमें रहकर प्रजाके लिए प्राथमिक अधिकार प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। लाठियाँ चलाये जानेके बारेमें श्री किशोरलाल मशरूवालाको उन्होंने लिखा है:

१. बापुना पत्रो—७ : श्री छगनलाल जोशीने, पृ० ३९९ पर छगनलाल जोशीने पाद-टिप्पणीमें लक्ष्मीदास गांधीका परिचय देते हुए लिखा है: "बम्बईके एक सत्याग्रही जो 'नये-गांधी' के नामसे जाने जाते हैं।"

सिरोहीमें ८ तारीखको जो घटनाएँ हुईं उन्होने सिरोहीकी प्रजाके लिए इस दिनको स्मरणीय बना दिया है। पुलिस एक सभापर एकाएक चढ़ आई, उसने प्रजामण्डलके झण्डेको गिराना शुरू किया और लाठियाँ भी चलाईं। यह राष्ट्रीय झण्डा नही था। गत फरवरीमें जब रेजीडेंट श्री लोथियन सिरोही आये थे, उन्होंने कहा था कि हम अपने कार्यालयमें, अपने जलूसों और अपनी सभाओंमें प्रजामण्डलके झण्डेका उपयोग कर सकते हैं। और हम इसीके अनुसार झण्डेका इस्तेमाल कर रहे थे। ३ तारीखको दीवान साहबने जलूसोमें उसके इस्तेमाल की मनाही कर दी। हमने उनके आदेशके उल्लघनसे बचने के लिए जलूसका विचार छोड़ दिया। लेकिन सभाओमें उसका इस्तेमाल किये जाने के बारेमें कोई मनाही नहीं थी, इसलिए हमने अपनी सभामें उसे रखा। अचानक बडे रोब-दाबके साथ पुलिस वहाँ आ धमकी और बिना किसी चेतावनी या आदेशके उसने झण्डेको नीचे गिराना शुरू कर दिया। कुछ कार्यकर्त्ता उससे लिपट गये। मगर पुलिसकी बडी ताकतके सामने वे उसे ज्यादा देरतक थामे नही रख सके। उनके हाथसे झण्डा छूट गया। मैं किसी तरह उसे पकड़े रहा। इसलिए उन्होने मुझे झण्डे समेत घसीटा। मेरी गर्दन पकडकर उन्होने मुझे मारा। इसके बाद पुलिसने लोगोपर अन्धाधुन्ध लाठियाँ चलानी शुरू कर दी। कहा जाता है कि कुछ प्रसिद्ध व्यक्ति पुलिसवालो को इस बातके लिए उकसाते रहे कि ऐसे आदमियोको मत छोड़ना जो कहे कि 'तुम चाहे जितना मारो, पर हम सभासे नही जायेंगे।' स्त्रियाँ भी इस लड़ाईमें वीरतापूर्वक शामिल थी। पुलिसने लगभग सात मिनटतक लाठियाँ चलाई होगी। सभा अन्ततक जारी रही। इस घटनासे लोगोका उत्साह भंग नही हुआ है, बल्कि और बढ गया है।

गोकुलभाईको मैं जानता हूँ। उन्होने जो विवरण दिया है, और जो गुजरातीमें है, उसपर विश्वास न करने का कोई कारण नही है। सिरोहीके अधिकारियोंके लिए यह कोई श्रेयकी बात नही है। मेरे पास प्रजाकी शिकायतोकी एक लम्बी फेहरिस्त मौजूद है। अपनी शिकायतें दूर करवाने के लिए वे पूर्णत वैधानिक ढगसे प्रयत्न कर रहे हैं। मगर अधिकारी लोग उन्हें दूर करने के बजाय स्पष्टत जनताके हौसलेको कुचलने का प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन अगर लोगोने अहिंसात्मक प्रतिरोधकी भावना को भली-भाँति हृदयगम कर लिया है, तो पुलिस द्वारा लाठी चलाये जाने के बावजूद अन्तमें सफलता निश्चित है।

एक पोलिश बहनकी[1] अन्तर्व्यथा

चाहे जो हो, लेकिन मैं पोलैंड पहुँचने का प्रयत्न अवश्य करूँगी। आज रातको जहाजसे बसरा (ईराक)के लिए रवाना हो रही हूँ — वहाँसे तुर्की होकर रूमानिया और रूमानियासे पोलैंड। अन्तरात्माकी पुकारको मैं दरगुजर नहीं कर

१. वांडा डिनोव्स्का, जो उमाके नामसे भी जानी जाती थीं

सकती। साधारण मनुष्यकी दृष्टिमें यह निरा पागलपन प्रतीत हो सकता है। अब मैं अपनी माताकी खातिर या अपने प्रियजनोंकी खातिर — जो आज पोलैंडके रणक्षेत्रमें किसी भी क्षण प्राण उत्सर्ग करने के लिए तत्पर हैं — पोलैंड नहीं जा रही हूँ। मैं तो स्वयं पोलैंडके लिए ही जा रही हूँ। मेरा यह विश्वास है कि राष्ट्रोंकी भी आत्मा होती है। यह आत्मा काल्पनिक वस्तु नहीं, बल्कि एक सजीव सत्य वस्तु है। और अगर कभी मैं पोलैंडकी भूमिपर सचमुच ही पहुँच सकूं, तो इतनेसे भी मुझे सन्तोष मिल जायेगा, भले ही वहाँ मुझे मेरे प्रिय बन्धु-बान्धव न मिलें। आज राष्ट्रकी आत्मा (तथा शरीर) खुद ही सर्वोपरि बलिदानकी वेदीपर अपनेको होम रही है। मुझे ऐसा लगता है कि पोलैंड सिर्फ अपने अधिकारोंके लिए नहीं, बल्कि सत्यके लिए, न्यायके लिए, और भारत-समेत समस्त राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताके लिए अपना रक्त बहा रहा है, और संघर्ष कर रहा है। मैं हृदयसे अपनेको हिन्दू मानती हूँ। मैं जितने अंशमें पोलैंडवासिनी हूँ, उतने ही अंशमें मैं अपनेको भारतीय भी मानती हूँ। दोनों ही मातृभूमियाँ मेरे जीवनकी अन्तिम अवधितक मेरी अन्तरात्मामें विराजमान रहेंगी। आज मातृभूमि पोलैंड लहू-लुहान हालतमें वेदनासे तड़प रही है; उसके चरणों तक पहुँचने के लिए यदि मैं यथाशक्ति प्रयास नहीं करती तो मेरे लिए जीना दूभर हो जायेगा। मैं रास्तेसे आपको पत्र लिखूंगी, लेकिन युद्धग्रस्त क्षेत्रमें पहुँचने के बाद नहीं। मैं आपको अक्सर याद किया करूंगी, और जितना बन सकेगा मानसिक सन्देश भेजती रहूँगी। बापूजी, आप अपने महान् प्रेमसे उमड़ते हुए अन्तःकरणसे पोलैंडके उन हजारों निरपराध लोगोंके लिए, जो कष्ट और पीड़ा भोग रहे हैं, उत्कट प्रार्थना करते रहिएगा। उन लोगोंको सहानुभूति, आशीर्वाद और प्रेमपूर्ण विचारोंकी बड़ी आवश्यकता है।

यह पत्र एक पोलिश बहनने बम्बई बन्दरगाहसे भेजा है। मैं उसे कुछ वर्षोंसे जानता हूँ। वह जितनी पोलिश है उतनी ही भारतीय बन गई है। उसने मगनवाड़ीके मगन संग्रहालयमें[1] काम करने का निश्चय किया था। लेकिन लड़ाईकी खबरोंने उसे व्याकुल कर दिया। पोलैंडमें उसकी बूढ़ी माँ हैं, जिसे वह पारपत्रकी कठिनाईके कारण वहाँसे ला नहीं सकी। जब लड़ाई सचमुच शुरू हो गई, तब वह अपनी माताकी तरफसे विचार करके शान्त हो गई। पर अपने अति सम्वेदनशील स्वभावके कारण ऐसी स्थितिमें जब उसके प्रियजनोंका जीवन बिना किसी अपराधके आज जोखिममें आ पड़ा है, उसके मनको चैन नहीं मिला। यह बहन स्वयं पूर्णतः अहिंसामें विश्वास करती है, लेकिन उसकी इस अहिंसाने ही उसे बेचैन कर डाला। उसकी सम्पूर्ण आत्मा,

१. गांधीजी ने खादी तथा अन्य ग्रामीण दस्तकारियोंसे सम्बन्धित मगन संग्रहालयका उद्घाटन ३० दिसम्बर, १९३८को किया था। यह संग्रहालय मगनलाल गांधीकी स्मृतिमें खोला गया था। इसमें खादीके अलावा गुड़, कागज, साबुन बनाने, तेल निकालने और चमड़ा कमाने के विभाग भी थे।

जो चीज उसके लेखे उसकी मातृभूमिके प्रति घोर अन्याय है, उसके विरुद्ध विद्रोह कर उठी। इसलिए वह अपनी कल्पनाके पोलैंडको, जो केवल अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए ही नहीं, बल्कि उन तमाम राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताके लिए भी लड़ रहा है जिन्होंने अपनी स्वतन्त्रता खो दी है, अन्तिम क्षणतक लड़ते देखने के लिए रवाना हो गई। और स्वभावत. ऐसे देशोंमें उसका दूसरा स्वदेश भारतवर्ष भी शामिल है। भगवान् करे, उसका यह स्वप्न साकार हो। यदि पोलैंडमें उच्च कोटिकी वीरता और स्वार्थ-हीनता होगी, तो इतिहास इस बातको भूल जायेगा कि उसने हिंसा-बलसे अपनी रक्षा की थी। उसकी हिंसा लगभग अहिंसा ही मानी जायेगी।

सेगाँव, १८ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-९-१९३९

२११. मन्दिर-प्रवेश

मदुराके एक सनातनी सज्जनने, वहाँका सुप्रसिद्ध मीनाक्षी मन्दिर जिस तरहसे हरिजनोंके लिए खोला गया है उसके बारेमें मुझे शिकायत लिख भेजी है। मैंने वह शिकायत श्री वैद्यनाथ अय्यरके पास भेज दी थी, और एक अन्य मित्रको भी उसके बारेमें लिखा था। इन दूसरे सज्जनने मेरे पास उक्त शिकायतका स्पष्ट प्रतिवाद भेजा और अपने पत्रमें[1] उन्होंने यह भी लिखा कि सनातनियोंने श्री वैद्यनाथ अय्यरको इतना ज्यादा परेशान किया है कि वे मानसिक रूपसे उद्वेलित हो गये हैं। इसपर मैंने उन्हें एक लम्बा तार भेजा कि उन्हें सतानेवाले उनके बारेमे चाहे जो कहे या करे, उन्हें उसपर ध्यान नही देना चाहिए। उसमें मैंने यह भी कहा कि एक धार्मिक सुधारकके रूपमें उन्हें पूर्णतः अनासक्त भावसे सब तरहके दुःखोंके बीच शान्त और स्थिरचित्त रहकर काम करना चाहिए। मेरे तारका उन्होंने यह आश्वासनप्रद उत्तर दिया :

> भगवती मीनाक्षीकी कृपा और आपके आशीर्वादसे मैंने स्वाभाविक शान्ति प्राप्त कर ली है। काम जारी है। आशा है कि दूसरे बड़े-बड़े मन्दिर भी जल्दी ही खुल जायेंगे। आपका स्नेह और आशीर्वाद मेरा सबसे बड़ा सम्बल है।

यह उत्तर इस महान् सुधारकके अनुरूप ही है। श्री वैद्यनाथ अय्यर अस्पृश्यता-निवारण प्रवृत्तिके अत्यन्त विनम्र और मूक कार्यकर्त्ताओंमें से हैं। वे एक ईश्वरभीरु मनुष्य हैं। दिल्लीके श्री व्रजकृष्ण चाँदीवालाने, जो दक्षिणकी तीर्थयात्रा करने गये थे, अपने मदुराके अनुभव बताते हुए लिखा है :

> सात दिन मैं पांडिचेरीमें ठहरा और पाँच दिन रमण-आश्रममें। इसके बाद ठेठ रामेश्वरम् तक गया। दक्षिणके मन्दिरोंको देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी। लेकिन

१. देखिए पृ० १५८।

मैं उन मन्दिरोंमें नहीं जाता था, जिनके द्वार हरिजनोंके लिए बन्द थे। तथापि मैं मदुरा और तंजौरके मन्दिरोंमें गया। अन्य मन्दिरोंको मैंने बाहरसे ही देखा। उनमें से बहुतोंके सामने कुछ समयतक खड़ा-खड़ा सोचता रहा — और मुझे पहली बार यह अनुभव हुआ कि उन लाखों हरिजनोंके लिए यह निंदनीय प्रतिबन्ध क्या अर्थ रखता होगा, जो देव-दर्शनकी लालसा रखते हुए भी इन बड़े-बड़े मन्दिरोंके अहातेमें पैर भी नहीं रख सकते। हम लोग, जिन्हें मन्दिरोंमें जाने का अधिकार है, उनमें प्रवेश करने का कभी विचार तक नहीं करते। लेकिन इस बार मैं अभिभूत हो उठा। उन्हें देखने के लिए मैं उत्कंठित हो उठा, और अपने हृदयकी गहराइयोंसे प्रार्थना करने लगा कि प्रभु इन सनातनियोंका हृदय-परिवर्तन कर दे, और अन्य मन्दिर भी वह हरिजनोंके लिए खोल दे, जिससे मैं भी उनमें देव-दर्शनार्थ जा सकूँ। श्री वैद्यनाथ अय्यरके घरपर मैंने यह भी अनुभव किया कि उन-जैसे सुधारकोंको हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेश करने देनेके कारण कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं। मैंने अगर खुद अपनी आँखों न देखा होता कि श्री वैद्यनाथ अय्यरपर कैसी बीत रही है, तो मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता था कि मनुष्य-स्वभाव इतना नीचे उतर सकता है, जैसा कि मैंने मदुरामें देखा। उनके प्रति सनातनियोंका बरताव अत्यन्त अशोभन रहा है। विरोधियोंने जो तरीके अपनाये हैं उनमें से एक तरीका यह भी है कि श्री वैद्यनाथ अय्यरके बारेमें झूठी बातोंका प्रचार किया जाये। किन्तु वे तथा उनकी पत्नी, दोनों इन सब अत्याचारोंको वीरतापूर्वक सहन कर रहे हैं।

अभी चार दिन पहले कुंभकोणम्की कुछ महिलाओंका एक पत्र मुझे मिला, जिसमें उन्होंने सुधारकोंकी ओरसे किये जानेवाले व्यवहारको लेकर शिकायत की थी। वे मुझसे मिलना चाहती थी। काफी कामके बावजूद मैंने उन्हें शीघ्र मिलने का समय दे दिया, पर अस्पृश्यताके सम्बन्धमें मेरे जो विचार हैं उनसे भी मैंने उन्हें आगाह कर दिया। उन्होंने अपने तारपर अफसोस जाहिर किया, और लिखा कि चूँकि मैंने उनकी शिकायतपर कोई ध्यान नही दिया, इसलिए उन्होंने अब आने का इरादा छोड़ दिया है। इसके बाद, मैंने 'हिन्दू' में श्रीरंगम्की घटनाओंकी रिपोर्ट पढ़ी है। डॉक्टर राजनने वहाँके तथाकथित सनातनियोंके लज्जाजनक व्यवहारका स्पष्ट विवरण दिया है। डॉ० राजनके इस विवरणपर शका करने का कोई कारण नही है। यह शर्मकी बात है कि एक अन्यायका समर्थन कराने के लिए भोली स्त्रियोंका अनुचित उपयोग किया जा रहा है। हरिजन-कार्यके सिलसिलेमें मेरे दौरे के समय क्या-क्या हुआ करता था वह सब मुझे स्पष्ट याद है। मेरे या मेरे प्रवासके बारेमें बुरेसे-बुरा असत्य फैलाया जाता था। जहाँतक मैं देख सकता था, विरोध केवल मुट्ठी-भर लोगोंतक सीमित था। मैंने तबतक कभी कोई मन्दिर नही खोला, जबतक मुझे इस बातका सन्तोष नही हुआ कि मन्दिरमें जानेवालो की तरफसे कोई उल्लेखनीय विरोध नही है। लेकिन विरोध करनेवाले तो मेरे प्रचार-

कार्यपर ही रोष प्रकट करते थे। निस्सन्देह उनका वह विरोध निष्फल सिद्ध हुआ। लेकिन मेरा कहना यह है कि उनका विरोध सिद्धान्तहीन और हिंसात्मक था। उस एक वर्षके दौरेमें जो मैं बच गया, उसमें उनका कोई दोष नही था; वह तो ईश्वर की कृपा थी। मेरे विरुद्ध चौंसठ आरोप लगाये गये थे। उनमें से एक भी सच नहीं था। इसलिए आज दक्षिण भारतके आन्दोलनके सम्बन्धमें जो आरोप लगाये गये है उनपर मैं विश्वास करने के लिए तैयार नही हूँ। उनमें से किसीमें भी मुझे कोई तत्त्वकी बात नही दिखाई दी है। अस्पृश्यता स्वतः एक असत्य है। असत्यका समर्थन कभी सत्यसे होते नही देखा गया, जैसे कि सत्यका समर्थन असत्यसे नही हो सकता। अगर ऐसा हो तो वह स्वय असत्य हो जाता है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नही कि हर जगहसे इस बातके प्रमाण मिल रहे है कि विरोध थोड़े-से सनातनियों तक ही सीमित है, और ये थोड़े-से लोग किसी भी तरीकेसे काम लेने में नही हिचकते, चाहे वह कितना ही सिद्धान्तहीन क्यो न हो।

फिर भी, विरोधियोकी कमजोरीसे अस्पृश्यता-निवारणकी प्रवृत्तिको समर्थन नही मिलना चाहिए। उसका समर्थन तो सुधारकोंके शुद्ध चरित्र, अध्यवसाय और कड़ीसे-कड़ी ईमानदारी और बलिदान करने की अपार क्षमतासे होगा। यदि विरोधियो की रोषाग्निमें बहुत-से सुधारकोंको अपने प्राणोकी भारी आहुति देनी पड़े तो इसमें मुझे कोई आश्चर्य नही होगा। कोई भी बलिदान, चाहे वह कितना ही महान् हो, हिन्दू-धर्मको अस्पृश्यताके कलकसे मुक्त करने के ईश्वर-निर्धारित कार्यसे सुधारकोंको रोक नही सकता। मैं एक बार नही हजार बार कहूँगा कि अगर अस्पृश्यता जीवित रही, तो हिन्दू-धर्मका अन्त हो जायेगा — और हो जाना चाहिए। सुधारकोको इतना-भर याद रखना चाहिए कि यदि उन्होने अधीरतासे काम लिया, तो सफलता कभी प्राप्त नही होगी। उन्हे ऐसा एक भी मन्दिर नही खोलना चाहिए जहाँ मन्दिरमें जानेवालों का स्पष्ट बहुमत उस मन्दिरके खोलने के विरुद्ध हो। अस्पृश्यता कानूनके बलसे भी दूर नही होगी। वह तो सिर्फ तभी दूर हो सकती है, जब हिन्दुओंका बहुमत इस बातको अनुभव कर ले कि अस्पृश्यता ईश्वर और मनुष्यके विरुद्ध एक अपराध है और उसके लिए वे लज्जित हो। दूसरे शब्दोमें, वह हृदय-परिवर्तनकी अर्थात् हिन्दुओंकी हृदय-शुद्धिकी एक प्रक्रिया है। कानूनकी सहायता तो तब लेनी चाहिए जब वह सुधारकी प्रगतिमें बाधा पहुँचाये या दखल दे — जैसे, जब मन्दिरके ट्रस्टियों तथा मन्दिरमें जानेवाली जनताकी इच्छाके बावजूद, कानून अमुक मन्दिरको खोलने में रुकावट डालता हो।

सेगाँव, १८ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-९-१९३९

२१२. तार: अबुल कलाम आजादको

सेगाँव, वर्धा
१८ सितम्बर, १९३९

मौलाना अबुल कलाम आजाद
मारफत मन्त्री हाफिज इब्राहीम
लखनऊ

आशा है ईश्वरकी कृपा और आपके प्रयत्नसे शिया-सुन्नी झगड़ा दोस्ताना ढंगसे सुलझ जायेगा।[1]

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

२१३. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
१८ सितम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

मैं इसके साथ च्याग काई-शेकको लिखा अपना पत्र भेज रहा हूँ। यह पत्र जितना मैं चाहता था, उससे कुछ ज्यादा लम्बा हो गया है। शायद मूल पत्रके साथ एक टाइपकी हुई प्रति भेजना ज्यादा ठीक होगा।

महादेव कल मद्रास चला गया।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृ० ३८०से भी

१. देखिए "पत्र: तंजीम-उल-मोमिनीनके अध्यक्षको", पृ० ६५-६६।

२१४. पत्र : रामकृष्ण धूतको

सेगाँव, वर्धा
१८ सितम्बर, १९३९

प्रिय रामकृष्ण,

विश्लेषण वैसा नही है जैसा कि मैं चाहता था। उसमें तर्क-वितर्क है। मैं चाहता हूँ कि बिना किसी रंग-मुलम्मेके साफ-साफ एक पन्नेमें स्पष्ट रूपसे जो बुराई है वह बताई गई हो। तुमने जो विश्लेषण भेजा है उससे मुझे भारी-भरकम मूल दस्तावेजोंको पढने से छुटकारा नही मिलता। लेकिन क्या इस समय कुछ करने की आवश्यकता है? क्या युद्धके दौरान हर चीज लटकी नहीं रहेगी?

तुम्हारा,
बापू

श्री रामकृष्ण धूत
हैदराबाद राज्य-कांग्रेस
सुलतान बाजार
हैदराबाद दक्षिण

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०१५५) से।

२१५. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

१८ सितम्बर, १९३९

चि० अमृतलाल,

मैंने कल श्रीमन्के[1] साथ विजयाका और उत्तमचन्दके पत्र भेजे थे, वे तुम्हें मिल गये होंगे।

सुशीलाके आने का समय तो हो गया है लेकिन वह कब आयेगी सो नही कहा जा सकता। उसकी ओरसे कोई समाचार नहीं है।

बिसेनको[2] कटि-स्नान और सूर्य-स्नान भी लेना चाहिए। इससे अवश्य लाभ होगा। यदि वह कभी यहाँ आये तो मैं उसे अवश्य देखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९५) से।

१. श्रीमन्नारायण
२. शिवबालक बिसेन, जो बादमें कुछ समयके लिए गांधीजी के सचिव हो गये थे।

२१६. पत्र: ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

सेगाँव, वर्धा
१८ सितम्बर, १९३९

चि० ब्रजकिसन,

खत मिला। उमीद तो है कि मैं आजकल यहीं हूं। कब कहां जाना होगा कुछ पता नहीं है।

भाईका[1] समजा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४७३) से।

२१७. पत्र: डॉ० वाई० एम० दादूको

सेगाँव
१९ सितम्बर, १९३९

प्रिय दादू,

तुम्हारा उत्तर पाकर मुझे खुशी हुई। चूंकि यूरोपमें युद्ध शुरू हो गया है इसलिए अनाक्रामक प्रतिरोध आन्दोलन बन्द कर दिया जाये, ऐसा मानने का कोई निर्णायक कारण नहीं है। लेकिन बुद्धिमानीका यह तकाजा हो सकता है। इसका निर्णय तो तुम लोग ही अच्छी तरह कर सकते हो। मैं आपत्तिजनक कानूनके अमलको स्थगित करवाने के लिए भरसक कोशिश कर रहा हूँ। चूंकि पत्र देर से पहुँचते हैं, इसलिए आवश्यकता पड़ने पर तार देना।[2]

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०३) से। सी० डब्ल्यू० १३१६ से भी; सौजन्य: सुशीलाबहन गांधी

१. ब्रजकृष्ण चाँदीवालाके भाई, जो बीमार थे
२. देखिए पृ० ४९ भी।

२१८. पत्र : नारणदास गांधीको

सेगांव
१९ सितम्बर, १९३९

चि० नारणदास,

तुम्हारे जन्म-दिवसपर मेरा आशीर्वाद। तुम खासी प्रगति कर रहे हो। लड़कियाँ ठीक काम कर रही जान पड़ती हैं। लड़कियोंको साथ ले जानेसे यदि लोग पैसे देते हों तो इस बातपर तुम्हें विचार करना होगा कि लड़कियोंको इस तरह बाहर भेजना कहाँतक उचित है? लड़कियोंसे पूछने पर इस बारेमें ज्यादा मालूम हो सकता है। यह तो केवल तुम्हारे लिए है। सतीश बाबू तो आयेंगे लेकिन बा नहीं। मीराबहनके बारेमें विचार करूँगा। राजकुमारी को कोई उत्साह नहीं है। पैसेका उपयोग किस तरह किया जाये, इसपर मैं विचार करूँगा।[1]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

शम्भुशंकर क्या अब भी जेलमें हैं? उन्होंने क्या किया था? पालीतानाका क्या हाल है? कदाचित् ढेबरभाई बता सकेंगे।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५६२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

२१९. पत्र : रामसिंहको

सेगाँव, वर्धा
१९ सितम्बर, १९३९

भाई रामसिंहजी,

आपके २८ अगस्तके पत्रको मैं आज ही पढ़ पाया हूँ। पत्र सुन्दर है। आपने जिसका विवरण दिया है यदि गरासिया भाई उस कार्यकी ओर प्रवृत्त होते हैं तो उनका और काठियावाड़का सचमुच उद्धार हो जायेगा।

मो० क० गांधीके वंदेमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५२२८) से।

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४५८-५९।

२२०. पत्र : सुरेन्द्र बा० मेढ़को

सेगाँव,
१९ सितम्बर, १९३९

चि० मेढ,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई दादूके पत्रसे[1] देखोगे कि मैं तुम्हारे कथनको समझ गया हूँ। मुझसे जो-कुछ हो सकता है वह सब मैं कर रहा हूँ। मणिलालको ये पत्र मिलते होंगे इसलिए मैं उसे लिखने में शिथिलता बरतनेवाला हूँ। बाक्सबर्गमें किसीके मारे जाने की यह क्या बात है? 'रेड डेली मेल' में इस आशयकी कोई खबर प्रकाशित हुई जान पड़ती है। वहाँ भी कोई आतंकवादी दल उठ खड़ा हुआ जान पड़ता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०४) से।

२२१. प्रान्तीय विधान-मण्डलके प्रस्तावका मसौदा[2]

[२० सितम्बर, १९३९][3]

यह विधान-सभा इस बातपर खेद व्यक्त करती है कि ब्रिटिश सरकारने भारतीय जनता और इस सभाकी सम्मति लिये बिना ही ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनीके बीच छिड़े महायुद्धमें भारतके शामिल होने की घोषणा कर दी है। ब्रिटिश सरकारने भारतीय जनमतके विरोधकी सर्वथा उपेक्षा करते हुए यह जो युद्ध-घोषणा की है तथा प्रान्तीय सरकारोंके कार्यों और सत्तापर प्रतिबन्ध लगाने के लिए इंग्लैंड और भारत सरकारने जो कदम उठाये और जो कानून बनाये हैं, उन्हें यह सभा प्रान्तीय स्वायत्तताकी भावनाका उल्लंघन समझती है।

१. देखिए पृ० २०५।

२ और ३. साधन-सूत्रमें क० मा० मुंशी लिखते हैं: "युद्धकी घोषणाके साथ ही केन्द्रका प्रान्तीय स्वशासनमें हस्तक्षेप करना लाजिमी था। इसलिए सरदार पटेलने सभी कांग्रेसी मुख्य मन्त्रियोंको एक परिपत्र भेजा जिसमें उन्होंने इस बातकी सलाह दी कि अ० भा० कां० क० अथवा कार्य-समिति द्वारा इस मामलेमें किसी निर्णयपर पहुँचने तक उन्हें क्या रुख अपनाना चाहिए। कार्य-समितिकी ९ सितम्बरकी बैठक हुई, जो १५ सितम्बरतक चली।... गांधीजी पहले तो अंग्रेजोंको बिना किसी शर्तके सहायता देने के पक्षमें थे लेकिन अन्तमें वे जवाहरलाल नेहरूकी बात मान गये।... कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल ज्यादा समयतक राज्योंमें बने नहीं रह सकते थे क्योंकि इस बीच उन्हें केन्द्र सरकारसे

ब्रिटिश सरकारने घोषणा की है कि यह युद्ध लोकतन्त्रकी रक्षाके लिए है, लेकिन भारतके प्रति उसकी जो नीति है वह उसकी इस घोषणाका प्रतिवाद करती है। हालाँकि लोकतन्त्र और स्वाधीनताके उद्देश्यको ध्यानमें रखकर लड़े जा रहे युद्धके साथ इस सभाकी पूरी-पूरी हमदर्दी है और यह नाजी सरकार द्वारा पोलैंड पर किये गये आक्रमणकी भर्त्सना करती है, तथापि जबतक प्रजातन्त्रके सिद्धान्तोको भारतपर लागू नही किया जाता और भारतीय जनताको स्वय अपनी नीति निर्धारित नही करने दी जाती, तबतक यह सभा युद्धमें अपना सहयोग नही दे सकती। यह

निर्देश लेकर काम करना पड़ता और केन्द्र सरकारसे उनका कोई विचार-साम्य न था। . . . इस दौरान . . . गवर्नर सर रॉजर लम्लीके साथ मेरे सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हो गये थे। . . . मैंने उन्हें इस बातके लिए राजी करनेकी कोशिश की कि वे लॉर्ड लिनलिथगोसे यह कहें कि कांग्रेसकी माँगोंको स्वीकार करने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। माँगे ये थीं, (१) युद्धके उद्देश्यका स्पष्टीकरण किया जाये, (२) भारतके भविष्यके बारेमें आश्वासन दिया जाये, और (३) केन्द्रमें कांग्रेसका भी सक्रिय भाग हो, इस दिशामें तुरन्त कदम उठाये जायें। . . . लेकिन जब १८ सितम्बरको अन्य मुख्य मन्त्रियोंके समान खेरको सरदार पटेलका पत्र मिला तो इसकी सम्भावना खत्म हो गई। पत्रमें कहा गया था कि कार्य-समितिके वक्तव्यको [देखिए परिशिष्ट १०] फिलहाल पृष्ठभूमिके रूपमें लिया जाये, यह कि मन्त्रिमण्डलोंको इसके विपरीत कुछ नहीं करना चाहिए और खास तौरसे प्रान्तीय सरकारोंके रूपमें उन्हें अपनी जिम्मेदारीके निर्वाहमें किसीको आड़े नहीं आने देना चाहिए। . . . पत्रका ज्यादा महत्त्वपूर्ण भाग तो एक निर्देश था—यह कि प्रान्तीय विधानमण्डल, और विधानमण्डलोंके ऐसा न करने पर प्रान्तीय सरकारें जल्दसे-जल्द एक प्रस्ताव, जिसका मसौदा साथमें संलग्न है, पास करें। . . . सर रोजरने प्रस्तावसे उत्पन्न होनेवाले गम्भीर परिणामोंको महसूस किया और मुझसे कहा कि इस आशयका प्रस्ताव पास करनेका यह अर्थ लगाया जायेगा कि कांग्रेसने युद्धमें सरकारको सहयोग देनेका विचार छोड़ दिया है। इसलिए उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि सरदार पटेलने अपने पत्रमें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंको जो सलाह दी है उसके परिणामोंसे मैं उन्हें अवगत कराऊँ। मैंने सरदार पटेलको सर रॉजरका सन्देश दिया। तथापि सरदार पटेलने मुझे बताया कि उक्त प्रस्ताव कांग्रेसकी युद्ध उप-समितिने तैयार किया था और वे समितिके अन्य सदस्योंकी, यथा जवाहरलाल नेहरू और मौलाना आजादकी, सहमतिके बिना इसे रद्द नहीं कर सकते।' अतएव उन्होंने मुझे गांधीजी और राजेन्द्रप्रसादके पास तुरन्त वर्धा जानेकी सलाह दी। मैं उसी शाम वर्धाके लिए रवाना हो गया और २१ सितम्बरको वापस लौटा। गांधीजीने बहुत ध्यान-पूर्वक मेरी बातें सुनीं; बातचीतके दौरान वे सारा समय चरखा चलाते रहे। मुझे याद पड़ता है कि मैंने इस मामलेपर उनके साथ विस्तारसे चर्चा की थी। जब मैंने अपनी बात खत्म कर ली तब उन्होंने मुझसे कहा: 'मुंशी, तुमने अपनी बात मेरे सामने अच्छी तरहसे रखी है, लेकिन तुम जो मार्ग अपनानेके लिए कहते हो उसे देश स्वीकार नहीं करेगा।' तथापि प्रस्तावसे जो आदेशात्मक ध्वनि निकलती थी उसमें परिवर्तन करनेके लिए वे तैयार थे। उन्होंने परिस्थितिपर अपने विचार प्रकट करते हुए मुझे एक वक्तव्य दिया। . . . गांधीजीने विधानमण्डलों द्वारा पास किये जानेवाले एक प्रस्तावका मसौदा भी दिया। यह प्रस्ताव कार्य-समिति द्वारा सुझाये गये तरीकेसे कोई सन्तोषजनक समाधान ब्रिटिश सरकारको मान्य न होने पर पास किया जानेवाला था। . . . २० सितम्बरको गांधीजीके साथ हुई मेरी बातचीतके फलस्वरूप . . . मन्त्रिमण्डलोंको यह आदेश दिया गया कि वे उक्त प्रस्तावपर एक सप्ताहके लिए कोई कार्रवाई न करें।"

सभा ब्रिटिश सरकारसे अनुरोध करती है कि वह इस बातकी स्पष्ट घोषणा कर दे कि उसने भारतको स्वाधीन राष्ट्रके रूपमें स्वीकार करने का निश्चय कर लिया है और उसे अपना संविधान बनाने का अधिकार है, साथ ही यह भी माँग करती है कि जहाँतक सम्भव हो, युद्धके इन हालातमें भी, इस घोषणापर उचित अमल किया जाये। विधान-सभाकी यह भी राय है कि इस प्रान्तमें युद्ध-सम्बन्धी कोई भी उपाय या अन्य कार्रवाई प्रान्तीय सरकारकी सम्मतिसे और उसीके जरिये की जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
पिलग्रिमेज टु फ्रीडम (१९०२-१९५०), पृ० ५८

२२२. एक वक्तव्य[1]

[२० सितम्बर, १९३९ को या उसके पूर्व][2]

१. मैं जानता हूँ कि बिना किसी शर्तके सहयोग-सम्बन्धी मेरे विचारोंमें देश मेरे साथ नहीं है। कार्य-समितिके प्रस्तावसे[3] कांग्रेसके मतका ठीक-ठीक पता चलता है।

२. चूँकि भूतकालके अपने अनुभवके आधारपर कांग्रेस बिना किसी शर्तके सहयोग देने में असमर्थ है अतएव वह तभी सहयोग कर सकती है जब वह देशको यह विश्वास दिला सके कि उसने सार-रूपमें अपने उद्देश्यको प्राप्त कर लिया है और इस कारण उसमें और ब्रिटिश सरकारमें पूर्ण सहमति है।

३. यदि ब्रिटिश सरकार और कांग्रेसमें सचमुच पूर्ण सहमति है तो युद्धके दौरान भी सरकारका व्यवहार तदनुरूप होना चाहिए। मसलन मन्त्रिमण्डल केन्द्रसे जारी किये गये निर्देशोंका पालन करनेवाली एजेन्सियाँ-भर ही नहीं होने चाहिए। अतएव केन्द्रमें ऐसा तरीका अपनाया जाना चाहिए जिससे सदनमें कांग्रेस प्रतिनिधियोंको पर्याप्त बहुमत मिल सके।

४. मन्त्रिमण्डलोंके लिए अपनी स्थिति स्पष्ट करने का एक ही रास्ता है — वह यह कि वे अपने-अपने विधान-मण्डलोंसे इस प्रस्तावको[4] स्वीकार करवाकर इस मामलेमें कार्रवाई करने के लिए आवश्यक सत्ता प्राप्त करें। हाँ, अगर इस बीच वे अपने-अपने विधान-मण्डलोंको दूसरे और तीसरे मुद्दोंके सम्बन्धमें यह विश्वास दिला दें कि इनके तहत अपेक्षित स्थिति अब पैदा हो चुकी है और इसलिए इस प्रस्तावकी अब कोई आवश्यकता नहीं है, तो बात और है।

५ यदि ब्रिटिश सरकार अपने इस कथनके बारेमें गम्भीर है कि वह लोकतन्त्रकी रक्षाके लिए लड़ रही है तो वह तबतक विश्व-जनमतको अपने पक्षमें नहीं

१ और २. देखिए पिछले शीर्षककी पाद-टिप्पणी २।
३. देखिए परिशिष्ट ८।
४. देखिए पिछला शीर्षक।

कर सकती जबतक वह यह घोषणा नही करती कि युद्धके समाप्त होने पर भारत एक स्वतन्त्र और लोकतान्त्रिक देश होगा तथा इस बीच उसने जो आश्वासन दिये हैं, युद्ध-सम्बन्धी हालातको देखते हुए जहाँतक सम्भव है उन आश्वासनोंको पूरा करने की दिशामें उसने कदम उठाये हैं।

६ यदि किसी कारण ब्रिटिश सरकार इससे भिन्न रुख अपनाती है तो कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलोंके लिए कार्य करना असम्भव हो जायेगा।

७. यदि युद्ध-उपसमितिके सदस्य इसपर सहमत हो तो प्रस्तावपर एक सप्ताह तक कोई कार्रवाई न की जाये। लेकिन यह अच्छी तरहसे समझ लिया जाना चाहिए कि अ० भा० कां० क० की बैठक होने से पहले कार्य-समितिके पास, जिसकी बैठक ४ अक्तूबरको होनेवाली है, इस विषयपर निश्चित सामग्री होनी चाहिए जिससे वह अ० भा० का० क० तथा देशको नेतृत्व दे सके।

[अंग्रेजीसे]

पिल्ग्रिमेज टु फ्रीडम (१९०२-१९५०), पृ०, ५७।

२२३. पत्र : सी० पी० रामस्वामी अय्यरको

वर्धा
२० सितम्बर, १९३९

प्रिय मित्र,

एक मित्र, जो राजनीतिसे सम्बन्ध नही रखते, लिखते हैं कि समुद्र और समुद्र-तटवर्ती छोटी-छोटी खाडियोंके पास रहनेवाले मजदूरी-पेशा लोगोको रोजीकी कमीसे बहुत तकलीफें उठानी पड रही हैं। पत्र-लेखकका विचार है कि यदि मैं इस मामलेपर आपका ध्यान आकर्षित करूँ तो इन लोगोंको शायद राहत दी जाये।

हृदयसे आपका,

सर सी० पी०
त्रिवेन्द्रम

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य . प्यारेलाल

२२४. पत्र : अकबर हैदरीको

वर्धा
२० सितम्बर, १९३९

प्रिय सर अकबर,

रियासत कांग्रेसके कृष्ण शर्मापर रोक लगी हुई है। क्या वह रोक अब हटा नहीं लेनी चाहिए? उन्हें उससे कष्ट हो रहा है।

हृदयसे आपका,

सर अकबर हैदरी
हैदराबाद

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

२२५. पत्र : पत्तम ताणु पिल्लैको

सेगाँव, वर्धा
२० सितम्बर, १९३९

प्रिय ताणु,

मैं जरा संक्षेपके लिए 'पिल्लै' छोड़ रहा हूँ। मैं तुम्हारे सारे कागज-पत्र देख गया हूँ। मेरा मन प्रशंसासे भर उठा है और मैं आश्चर्यचकित रह गया हूँ। बहुत ज्यादा उत्तेजित किये जाने के बावजूद तुम शान्त हो। यह बहुत अच्छा है। यह ध्येय-प्राप्तिकी दिशामें अत्यधिक ठोस प्रगतिका सूचक है। इसलिए तुम जो कर रहे हो वैसा ही करते रहो। लेकिन देखना, कहीं तुम्हारे सोनेमें खोट न हो। इस कार्यमें यदि थोड़े-से लोग ही हों, तो भी कोई बात नहीं। केवल गुणपर भरोसा रखो। इस तरह तुम तरक्कीकी रफ्तारको तेज करोगे। मुझे जानकारी देते रहना।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०२०२) से, सौजन्य : केरल सरकार। पत्तम ताणु पिल्लै पेपर्ससे भी, सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२२६. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगांव, वर्धा
२१ सितम्बर, १९३९

चि० विजया,

तेरे पत्र आते रहते है। उम्मीद है, तू दिन-ब-दिन अधिक स्वस्थ होती जा रही होगी। जन्म-मरण एक ही चीज है, इसपर विचारकर इसे अच्छी तरह समझ लेना। प्रमाण यह है, जन्मके बाद मरण, मरणके बाद जन्म। इस तरह जहाँ दोनोका क्रम चलता रहता है वहाँ एकको लेकर हर्ष और दूसरेको लेकर शोक कैसा? रातका आना दिवसका मरण है, लेकिन रातके बाद दिन आनेवाला ही है इसलिए हमें उसमें कोई नयी बात नही दिखाई देती। इसलिए हमारा शोक मात्र वियोगका है। लेकिन वियोग तो जोडीका एक भाग है। सयोग-वियोग, वियोग-सयोग साथ-साथ चलनेवाली चीजें है। यह तो मैंने केवल बुद्धिकी बात ही तुझे लिखी है। लेकिन यह समझने लायक है। इससे तेरी श्रद्धाको बल मिलेगा। मै तो यह चाहता हूँ कि तेरे वहाँ उपस्थित होने के परिणामस्वरूप कोई दु खी न हो और पिता भी हँसते-हँसते अपने प्राण त्याग करे। यदि वे सिर्फ पानी ही ले रहे है तो अच्छी बात है। मनुभाईको[1] आने न दे तो अच्छा हो। नानाभाई[2] उसे क्षण-भरके लिए भी नही छोड़ सकते। वह आकर करेगा भी क्या?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११८) से। सी० डब्ल्यू० ४६१० से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पचोली

१. विजयाबहन पंचोलीके पति, मनुभाई पंचोली जो स्वयं बीमार थे
२. नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट

२२७. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

वर्धा
२२ सितम्बर, १९३९

भाई वल्लभभाई,

राजकोट-सम्बन्धी तार पढ़ जाना। इसे भेज देना। मुझे लगता है कि तुम्हें यहीं रहना चाहिए, जिससे तुम्हारा बोझ हलका होगा और हम रोज मिल सकेंगे और विचार कर सकेंगे।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
बिड़ला भवन
५, अल्बुकर्क रोड, नई दिल्ली

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २३५

२२८. पत्र : रामकृष्ण बजाजको

सेगाँव
२२ सितम्बर, १९३९

चि० रामकृष्ण,

दीर्घायु होना और पिताजीका[1] नाम रखना।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०६३) से।

१. जमनालाल बजाज

२२९. बातचीत: ऑक्सफोर्ड ग्रुपके सदस्योंसे[1]

सेगाँव, वर्धा
२३/२४ सितम्बर, १९३९

कितना अच्छा होता यदि मुझमें भी आप-जैसा जोश होता। बेशक मुझे अन्तर्यामीकी आवाज सुनने[2] की कोशिश का ही नही बल्कि उसे सुनने का भी अनुभव प्राप्त है। जितना मै उस आवाजको सुनता हूँ उतना ही मुझे आभास होता जाता है कि मै ईश्वरसे अब भी दूर हूँ। और हालाँकि अन्तर्यामीकी आवाजको सुनने के लिए जिन नियमोका पालन करना आवश्यक है, वे नियम तो मै अवश्य बतला सकता हूँ, फिर भी मै वास्तविकतातक नही पहुँच पाता। जब हम यह कहते है कि हम अन्तर्यामीकी आवाजको सुन रहे है और उत्तर प्राप्त कर रहे है, तब भले ही हम ऐसा सच्चे दिलसे कह सकते हो, फिर भी उसमें आत्म-वंचनाकी पूरी सम्भावना रहती है। मै स्वय भी आत्म-वचनासे शायद पूर्णत मुक्त नही हूँ। कभी-कभी लोग मुझसे पूछते है कि क्या मै गलतीपर नही हूँ, और मै उनसे कहता हूँ कि 'हाँ, बहुत सम्भव है कि मै जो कहता हूँ वह मेरे मनका अहंकार ही हो।'

१. यह लेख "ए वर्ड टु द ऑक्सफोर्ड ग्रुपर्स" (ऑक्सफोर्ड ग्रुपके सदस्योंसे दो शब्द) से लिया गया है, देखिए पृ० १७६ की पाद-टिप्पणी १ और २। इसमें महादेव देसाई लिखते हैं: "...पिछले महीनेकी २३ तारीखको छह सज्जन वर्धा आये। उनमें एक बैरिस्टर और उनकी पत्नी, एक अमेरिकी पत्रकार, एक यूरोपीय जो रेलवे अधिकारी थे, और एक प्रतिभाशाली महिला थीं, जिनके पिता किसी समय सेनामें अधिकारी रहे थे।..."

२. ऑक्सफोर्ड ग्रुपके सदस्योंकी भाषामें 'लिसनिंग इन' (ईश्वरकी आवाजको सुनना) शब्दका विशेष अर्थ हैं। महादेव देसाई लिखते हैं: "उनका उद्देश्य सामान्य भाषामें कहें तो बोलकर विचार करना अथवा चिन्तन-मनन करना और ग्रुपकी भाषामें 'आध्यात्मिक आदान-प्रदान' करना है। उनमें से एक सदस्यने कहा, 'सबमें कहीं-न-कहीं कुछ अच्छाई है और उस अच्छाईको ढूँढ़ निकालने के भिन्न-भिन्न तरीके हैं। हमारे लिए यह आदान-प्रदान है।...' एक अन्य सदस्यने कहा: 'आप सदासे ईश्वरकी आवाज सुनते आये हैं। हम यह महसूस करते हैं कि यदि भारतके करोड़ों लोग ईश्वरकी आवाजको सुनने लगें तो आप जिन समस्याओंके लिए कार्य करते रहे है उनका समाधान अवश्य मिल जायेगा। हम समझते हैं कि हमारा इस योजनामें एक स्थान है और इसीलिए हम उल्लासके साथ यहाँ आये हैं।' कुछ सदस्योंने इस सुनने के परिणामस्वरूप स्त्रियों और पुरुषोंके जीवनमें जो परिवर्तन आये उनके अनुभव सुनाये।... 'पुराने' लोग 'प्रार्थना' शब्दका प्रयोग किया करते थे; 'सुनना' आधुनिक शब्द है।...इस विषयपर ग्रुपके सदस्यों और गाधीजी में बातचीत हुई और गाधीजी ने अपने विचार व्यक्त किये।"

और फिर देखिए कि किस तरह एक व्यक्ति अमुक कार्य करने में ईश्वरीय प्रेरणासे प्रेरित होनेका दावा करता है और दूसरा उससे ठीक विपरीत ढंगसे काम करते हुए वैसी ही ईश्वरीय प्रेरणाका दावा कर सकता है। इसका मैं आपको एक सुन्दर उदाहरण दूँगा। मैं समझता हूँ कि ईश्वर-भक्ति और ईश-परायणतामें राजाजीसे, जिन्हें आप जानते हैं अथवा कमसे-कम जिनका नाम आपने जरूर सुना होगा, बढ़कर और कोई नहीं है। अब सुनिए कि १९३३[1] में यरवडा जेलमें जब मैंने आत्मशुद्धिके निमित्त २१ दिनका उपवास किया और घोषणा की कि यह ईश्वरके आदेशपर किया गया है, तो मुझे ऐसा करनेसे रोकनेके लिए वे खास तौरसे मद्राससे वहाँ आये। उन्हें इस बातका निश्चय था कि मैं भ्रान्तिमें हूँ और शायद मर जाऊँगा, या अगर मरा नहीं तो विक्षिप्त अवश्य हो जाऊँगा। लेकिन आप देखते हैं कि मैं अब भी जीवित हूँ और मेरा मस्तिष्क अब भी पूर्णतया ठीक है। इसके बावजूद शायद अब भी राजाजी यही सोचते हैं कि मुझे भारी भ्रान्ति हुई थी और यह संयोगकी बात है कि मैं बच गया, जबकि मैं अब भी यही समझता हूँ कि मैंने अपनी अन्तरात्माकी उस क्षीण आवाजपर ही उपवास किया था।

यह मैं आपको इस बातसे सावधान करनेके लिए कहता हूँ कि आप सदा ईश्वरकी ही वाणी सुन रहे हैं ऐसा समझना बहुत नासमझी हो सकती है। मैं इस दिशामें प्रयत्न करनेके कतई विरुद्ध नहीं हूँ लेकिन मैं आपको यह चेतावनी देता हूँ कि आप इसे 'खुल जा सिमसिम' जैसा तरीका हरगिज न समझें कि लाखों व्यक्तियोंको सिर्फ बतलाने-भरसे काम चल जायेगा। मेरी इस बातका कोई खण्डन नहीं करेगा कि हिन्दुस्तानको ईश्वरके रास्तेपर लानेकी मैंने भरसक कोशिश की है। मुझे इसमें कुछ सफलता भी मिली है, लेकिन मैं अब भी लक्ष्यसे बहुत दूर हूँ। आपके मुँहसे निकले प्रशंसाके शब्दोंको सुननेके बाद मैं सावधान हो गया हूँ, इतना ही नहीं, मेरा मन संशयसे भर उठा है। दक्षिण आफ्रिकामें एक ऐसा प्रचारक आया था, जो अपने उपदेशके बाद लोगोंसे एक पुस्तकमें प्रकाशित ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर करवाता था जिससे वे शराब न पीनेके लिए वचनबद्ध हो जायें। ऐसे अनेक वादोंको टूटते हुए मैंने देखा है। लेकिन उसमें उन लोगोंका कोई दोष नहीं था। उन्होंने तो उस प्रचारकके जोशीले भाषणके अस्थायी प्रभावमें आकर ही प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर किये थे।

यह मैं जानता हूँ कि चमकनेवाली हरएक चीज सोना नहीं होती। साथ ही मुझे यह भी मालूम है कि यदि किसी व्यक्तिने सचमुच ईश्वरकी वाणी सुनी है तो वह उस रास्तेसे पीछे नहीं मुड़ेगा; जिस तरह एक बार तैरना सीख लेनेवाला व्यक्ति तैरना नहीं भूलता, उसी तरह वह भी उसे नहीं भूल सकता। उस अन्तर्नादके श्रवणसे लोगोंका जीवन उत्तरोत्तर अधिकाधिक उज्ज्वल होता जाना चाहिए।

मैं आपके उत्साहको मन्द नहीं करना चाहता, लेकिन अगर उसका आधार ठोस रखना हो तो यह अच्छा होगा कि अन्तर्नादके श्रवणका आधार भी ठोस रहे।

१. देखिए खण्ड ५५।

अन्तर्नादके श्रवणके लिए उस व्यक्तिमें सुनने की पात्रता होनी चाहिए, और ऐसी पात्रता धीरजके साथ ईश्वरकी सतत आराधना करने के बाद ही प्राप्त होती है। शंकराचार्यने इस प्रयत्नकी तुलना तृणकी नोकसे समुद्रको उलीचने के प्रयत्नसे की है। इस प्रकार यह क्रम अनन्त है और जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त चलता रहता है।

इतने पर भी यह प्रयत्न साँस लेने अथवा पलक झपकने के समान स्वाभाविक होना चाहिए। ये दोनो प्रक्रियाएँ हमारे अनजाने ही होती रहती हैं। ऐसा प्रयत्न जीवन-क्रमसे मेल खाता है। यही शाश्वत प्रयत्न करने को मैं आपसे कहता हूँ, क्योंकि केवल इसीसे हम ईश्वरका साक्षात्कार कर सकते हैं।[1]

इस अवसरपर एक राष्ट्रके रूपमें भारतवर्षको क्या करना है? आप उससे क्या करवाना चाहेंगे? वह किस तरह प्रायश्चित्त करे? भारत यह कह सकता है कि उसने अनेक पाप किये है, जिनका फल वह भोग रहा है और वह ईश्वरसे प्रार्थना करेगा कि उसे वह उन्हें मिटा डालने की शक्ति दे। अथवा क्या आपके मनमें कोई और बात है?[2]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-१०-१९३९

२३०. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
२४ सितम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

सलग्न तारके बारेमें जो उचित हो, करना। इस काममें तुम माहिर हो।

मैं फिर शिमला जा रहा हूँ।[3] मैं केवल मध्यस्थके रूपमें ही वहाँ जा रहा हूँ। यदि तुम्हें कुछ हिदायतें देनी हो, तो भेज देना। मुझे पूरी आशा है कि तुम्हें यदि निमन्त्रण मिला तो तुम आने के लिए तैयार रहोगे।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]
गाधी-नेहरू पेपर्स १९३९; सौजन्य . नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. महादेव देसाईके अनुसार ऑक्सफोर्ड ग्रुपके सदस्य अगले दिन फिर आये और "उन्होंने एक और शब्द भी पेश किया जो वैसी ही कठोर परिभाषा और आध्यात्मिक प्रयत्नकी अपेक्षा रखता था जैसी कि 'लिस्निंग इन' (ईश्वरकी आवाजको सुनना)। यह शब्द था 'रिपेन्टेन्स' (पश्चाताप)।"

२. महादेव देसाई आगे लिखते हैं: "इसका उन्होंने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। उन्होंने केवल यही कहा, 'हमें मिलकर ईश्वरकी आवाजको सुनना शुरू कर देना चाहिए'। . . ."

३. वाइसरायने गाधीजीको बातचीतके दूसरे दौरके लिए निमन्त्रित किया था।

२३१. पत्र : पुरुषोत्तम के० जेराजाणीको

सेगाँव, वर्धा
२४ सितम्बर, १९३९

भाई काकुभाई,

जितने ज्यादा खादी-भण्डार खुलेंगे और खादीकी जितनी ज्यादा खपत होगी उसमें मेरा आशीर्वाद तो अवश्य होगा। और फिर तुम्हारा भण्डार तो सरदार खोलने जा रहे हैं। इसलिए वह अवश्य सफल होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८४२)से, सौजन्य : पुरुषोत्तम के० जेराजाणी

२३२. अनुप्रस्थ बनाम अनुलम्ब पद्धति

प्रोफेसर जे० सी० कुमारप्पाने 'ग्राम उद्योग पत्रिका' के सितम्बरके अंकमें एक विचारोत्तेजक लेख लिखा है, जिसमें से कुछ उद्धरण[1] साधारण परिवर्तनोंके साथ यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

> जिस अर्थ-व्यवस्थाकी कल्पनाके आधारपर ग्रामोद्योग संघकी स्थापना की गई है, उसके अनुसार ग्रामवासी वह केन्द्रबिन्दु है जिसके चारों ओर संसार-चक्र घूमता है। जिस चीजसे उसका हित-साधन होता है वही प्रमुख है, और शेष सब गौण। किसी भी योजनामें चाहे कोई भी खूबी क्यों न हो, लेकिन अगर वह लोगोंको रोजगार सुलभ कराकर उत्पादित सम्पदाका एक यथेष्ट भाग ग्रामवासियोंको दिलानेमें सहायक नहीं होती तो वह बेकार मानी जायेगी। आर्थिक प्रवृत्तिका परिणाम अथवा उद्देश्य उत्पादकोंके उपयोगके लिए सम्पदाका उत्पादन है। सम्पदाका उत्पादन आम तौरपर उत्पादनके साधनोंका बुद्धिपूर्वक उपयोग करके और मानव-शक्ति या प्रतिभाके प्रयोग अथवा नियोजन द्वारा किया जाता है। प्रथम तो आयोजनाका मतलब इन तीनों साधनोंके बीच बुद्धिपूर्वक ठीक ताल-मेल बैठाना है। गणितकी भाषामें हम इसे यों व्यक्त कर सकते हैं : सं० = श्र० + सा०।

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

यहाँ 'सं०' का तात्पर्य सम्पदासे है, 'श्र०' का श्रम-शक्तिसे तथा 'सा०' का अर्थ है साधन — जैसे औजार, उपकरण या पूंजी। इस समीकरणमें मान लें कि सं० अपरिवर्तित रहे, तो वैसी स्थितिमें यदि सा० ज्यादा होगा तो श्र० का प्रमाण छोटा होगा और यदि श्र० ज्यादा है तो सा० छोटा होगा, अर्थात् श्र० और सा० में प्रतिलोमतः घट-बढ़ होती रहती है। अतएव योजना बनाते समय हमारा पहला कदम यह होगा कि श्र० और सा० की सुलभताको सुनिश्चित कर लिया जाये। . . .

अपने देशमें हम देखें तो पता चलता है कि श्र० की तो बहुलता है और सा० की कमी। अतः हमारी योजना तभी प्रभावकारी हो सकती है जब हम उसकी आधार-शिला पूंजी नहीं बल्कि श्रमपर रखें। . . .

अधिकतर लोग यही समझते प्रतीत होते हैं कि यदि मानकीकृत सामान भारी मात्रामें तैयार किया जाये तो इतनेसे ही सब-कुछ ठीक-ठीक चलता रहेगा। वे यह नहीं समझ पाते कि बड़े पैमानेकी उत्पादन-पद्धतिका प्रयोग कुटीर और ग्रामोद्योगोंके अनुचरके रूपमें ही किया जा सकता है, जिसमें वह ग्रामोद्योगकी मौलिक आवश्यकताकी पूर्ति सेवा-भावसे करता रहे। . . .

ठीक-ठीक देखा जाये तो राज्य नागरिकका सेवक है। नागरिक अपने लाभके लिए काम कर सकता है, किन्तु राज्य नहीं। इसी प्रकार विकेन्द्रीकृत इकाइयोंका उद्देश्य लाभार्जन हो सकता है। किन्तु केन्द्रीकृत इकाइयोंके लिए यह उचित नहीं। . . .

अनुलम्ब पद्धतिपर योजना बनाने से बात नहीं बनती। उस पद्धतिमें कार्योंपर जोर देते हुए विभिन्न कार्योंको पृथक् उद्योगोंका रूप प्रदान किया जाता है, यथा बैंकिंग, बीमा आदि। यह पूंजीवादी ढंगकी आयोजना हुई। दूसरा रास्ता यह है कि विभिन्न उद्योगोंको अनुप्रस्थपर रखकर उनकी विभिन्न क्रियाओंका अध्ययन किया जाये और उपयुक्त जगहपर कार्यमूलक सहायता का उपयोग किया जाये। अनुप्रस्थ आयोजना पद्धतिका एक अच्छा उदाहरण है अखिल भारतीय चरखा संघकी कार्य-योजना, और अनुलम्ब आयोजनाका उदाहरण कताईकी मिल है। इन दो पद्धतियोंके बीच कोई समझौता नहीं हो सकता। . . .

शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें, २४ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-११-१९३९

२३३. एक रोचक निरीक्षण

श्री चंकरलाल बैंकरने मुझे निम्नलिखित आँकड़े भेजे हैं:

दैनिक उत्पादन ३८,४०० वर्ग गज, लगभग ११,००० पौंड

मिल		खादी	
८.५ आने प्रति पौंड (३$\frac{३}{५}$ वर्ग गज)	रु० ५८३४	३० आने प्रति पौंड (३$\frac{३}{५}$ वर्ग गज)	रु० २०,६२५[1]
कपास १६% रद्दी-समेत	४ आने	कपास	४ आने
कताईकी कुल लागत	२ आने	धुनाई और कताईकी मजदूरी	१५ आने
बुनाईकी कुल लागत	२.५ आने	बुनाईकी मजदूरी	८ आने
		धुलाई आदि	१ आना
		कार्यालयपर होनेवाला खर्च	२ आने
कुल	८.५ आने	कुल	३० आने

लागतका ब्योरा

मिल		खादी	
		कपास	रु० २,७५०
कपास १६% रद्दी-समेत	रु० २,७५०	धुनाई-कताईकी मजदूरी	रु० १०,३१३
कताईकी कुल लागत	रु० १,३७५	बुनाईकी मजदूरी	रु० ५,५००
बुनाईकी कुल लागत	रु० १,७१८	धुलाईकी मजदूरी आदि	रु० ६८७
		कार्यालयपर होनेवाला खर्च	रु० १,३७५
	रु० ५,८४३		रु० २०,६२५[2]
मजदूरी २ आने प्रति पौंडकी दरसे	रु० १,३७५	मजदूरी	रु० १६,५००
रु० २३.१ लाख पर ३% की दरसे एक दिनका ब्याज	रु० १९०	रु० १३.५ लाखपर ब्याज	रु० १११

$$\text{मजदूरीका अनुपात} = \frac{\text{खा० १६,५००}}{\text{मि० १,३७५}} = \text{१२ खा० : १ मि०}$$

$$\text{ब्याजका अनुपात} = \frac{\text{मि० १९०}}{\text{खा० १११}} = \text{१ खा० : १.७ मि०}$$

१ और २. तथापि साधन-सूत्रमें “२०,५७५” है।

इस विश्लेषणसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्योका उद्घाटन होता है। १ पौंड कपासका कपड़ा मिलमें बनाने की लागत है ८५ आने, जबकि उसी कपाससे खादी बनाने की लागत है ३० आने। एकमें कतैये और बुनकर, दोनोंकी कुल मजदूरी ४५ आने और दूसरे अर्थात् खादीमें २४ आने मिलते हैं। अब आप ही सोच ले कि कौन-सा कपडा खरीदना श्रेयस्कर है — खादी, जो महँगी प्रतीत होती है या मिलका कपडा, जो देखने में सस्ता लगता है?

- शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें, २४ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-१२-१९३९

२३४. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

नागपुर
२४ सितम्बर, १९३९

भाई वल्लभभाई,

लीलावती[1] अथवा हंसाबहनसे[2] अभी राजकोटके[3] बारेमें कुछ मत कहना। मैंने पेरीनबहनको[4] लिखा तो है कि वह चली जाये। मुझे लगा कि उसे लिखना तो जरूर चाहिए। वाडियाने अभीतक इन्कार तो नही किया है। मैंने पेरीनको लिखा है कि यदि वाडिया इन्कार कर दे और वह चली जाये तो ठीक रहेगा। उसका जवाब आने पर लिखूंगा। मैंने तार शिमला भेजने के लिए कहा है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो — २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २३५

१. लीलावती मुंशी
२. हंसाबहन मेहता
३. 'रेंटिया बारस' के दौरान राजकोट राष्ट्रीय शालामें जाने के लिए
४. पेरीनबहन कैप्टेन

२३५. क्या हिन्दुस्तान सैनिक देश है ?

भारतकी प्रतिरक्षा सेनाओंके प्रधान अध्यक्षने ५ तारीखको रेडियोसे जो रोचक भाषण प्रसारित किया था, उसमें निम्नलिखित अनुच्छेद भी है:

> हिन्दुस्तान सैनिक देश है और मैं एक सिपाही हूँ। इसलिए अगर मैं यह बतलाऊँ कि हिन्दुस्तानके भावी सैनिकोंपर आधुनिकीकरणका क्या प्रभाव होगा, तो शायद अनुचित न होगा। मैं जो-कुछ कह रहा हूँ वह अटकलबाजी-भर नहीं है, बल्कि जो-कुछ हो चुका है उसपर आधारित है। नये वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों और आधुनिक वाहनोंके साथ, लाजिमी तौरपर, नये विचारोंकी सृष्टि होगी और एक नये दृष्टिकोणका विकास होगा। भारतीय सेनामें पहलेसे ही विद्यमान उच्च ढंगकी शिक्षाको आधुनिकीकरणसे और प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना है; और सेनासे निवृत्त होकर जब हरएक सैनिक मोटरगाड़ियों एवं मशीनोंकी जानकारीके साथ घर लौटेगा, तो खेती तथा रहन-सहनके सदियों पुराने तरीकोंपर भी उसका स्पष्टतः असर पड़ेगा। इसलिए सेनामें आधुनिकीकरणका भारतके जीवनपर अप्रत्यक्ष रूपसे काफी प्रभाव पड़ सकता है। जो लोग मेरा भाषण सुन रहे हैं उनमें से बहुतोंको सेनामें घोड़ोंके न रहने पर दुःख होगा। इसके लिए मुझसे अधिक दुःख किसीको नहीं होगा। लेकिन एक ऐसे सिपाहीकी हैसियतसे, जिसे यह मालूम है कि आधुनिक युद्ध-कलामें घोड़ेका भविष्य क्या है, मुझे उसके लिए इस बातकी खुशी है कि मनुष्यका एक सबसे बड़ा और सर्वोत्तम मित्र भविष्यमें युद्धकी विभीषिकाओंसे बच जायेगा।

मैं उनके इस विचारसे सम्मानपूर्वक किन्तु पूरी तरह अपनी असहमति प्रकट करता हूँ कि हिन्दुस्तान सैनिक देश है। और इसके लिए मैं ईश्वरको धन्यवाद देता हूँ कि वह ऐसा नही है। हो सकता है कि सेनाध्यक्ष सैनिक शब्दका कोई खास अर्थ करते हों, जिससे मैं परिचित नही हूँ। या कि उनके हिन्दुस्तानमें सिर्फ वे प्रति-रक्षा-सेनाएँ ही आती है जो उनके अधीन हैं? मेरे लिए तो राष्ट्रीय सरचनामें रक्षा-सेनाओका महत्त्व सबसे कम है। मुझे यह याद दिलाने की कोई जरूरत नहीं कि अगर सेनाएँ हटा ली जायें तो जिन्दगी हमेशा खतरेमें ही रहेगी। क्योंकि सेनाओंके बावजूद, जिन्दगी खतरेसे खाली नही है। दंगे-फसाद होते है, हत्याएँ होती है, डाके पड़ते है और हमले भी होते हैं। इन खतरोमें प्रतिरक्षा-सेनाएँ कोई काम नही आतीं। आम तौरपर अनिष्ट हो जाने के बाद ही वे काम करती हैं। लेकिन बहादुर सेनापति तो सब बातोंको एक सैनिककी दृष्टिसे ही देखते हैं। मैं और अन्य लाखो व्यक्ति सैनिक-भावनासे बिलकुल अछूते हैं। बहुत प्राचीन कालसे

हिन्दुस्तानमें एक सैनिक जाति मौजूद है, जिसकी सख्या सर्वथा नगण्य है। जन-साधारणसे उस जातिका वहुत कम सरोकार रहा है। तथापि इस वातकी जाँच करने का यह अवसर नही है कि उसका भारतके निर्माणमें क्या योगदान है। मैं अपनी पूरी शक्तिके साथ केवल यही कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानको सैनिक देश कहना गलत है। दुनियाके सव देशोमें हिन्दुस्तान सवसे कम सैनिक देश है। आज मनुष्यजातिको सर्वनाशसे वचाने का सर्वोत्तम उपाय अहिंसा ही है। और हालाँकि ऐसी अहिंसाके प्रति अपनी अविचल श्रद्धा व्यक्त करने के लिए मै कार्य-समितिको राजी करने में नाकामयाव रहा हूँ, फिर भी मैंने यह आशा नही छोडी है कि आम लोग 'युद्धासुर' के आगे झुकने से इन्कार कर देंगे और देशके सम्मानकी रक्षाके लिए अपने कष्ट-सहनकी क्षमतापर निर्भर रहेंगे। पोलैंडकी असन्दिग्ध सैनिक वीरता उससे उत्कृष्ट जर्मनी और रूसकी सेनाओके सामने क्या काम आई? अगर पोलैंडकी जनता इन सयुक्त सेनाओकी चुनौतीका सामना विना किसी प्रतिशोधकी भावनाके मृत्युके मुखमें जाने के दृढ निश्चयके साथ करती, तो आज उसकी जो हालत है क्या उससे बुरी हालत होती? क्या आक्रमणकारी सेनाएँ उस पोलैंडका, जो तव इसकी अपेक्षा निश्चय ही अधिक शूरवीर होता, अधिक तबाह करती? वहुत सम्भव है कि निर्दोष व्यक्तियोंकी हत्या होते देख आक्रमणकारी सेनाएँ अपनी मूल प्रकृतिके वशीभूत हो जाती और वे उनका कत्लेआम करने से विरत हो जाती।

ससारको सच्चे जीवनका अच्छा, वल्कि एकमात्र, मार्ग दिखलाने के लिए ससारकी सव सस्थाओमें काग्रेस ही सवसे उपयुक्त है। आजकी भयभीत मन स्थितिसे जागने के वाद यदि भारत ससारको रक्तपात और हिंसासे मुक्तिका मार्ग नही वतलाता, तो काग्रेसका अहिंसात्मक प्रयोग व्यर्थ होगा। यदि हिन्दुस्तान यह दिखलाकर कि मनुष्यका गौरव सर्वनाशके साधनोको वढाने की क्षमतामें नही वल्कि प्रतिशोध लेने से इन्कार करने में है, अपनी स्वाभाविक भूमिका अदा न करता, तो आज जान-मालका जो अक्षम्य सर्वनाश हो रहा है, वह कभी खत्म नही होगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि अगर हिंसामें, जो पाशविक नियम है, लाखोको प्रशिक्षित करना सम्भव है तो अहिंसामें, जो नव सस्कार-सम्पन्न मनुष्यका नियम है, उन्हें दक्ष वनाना और भी अधिक सम्भव है। वहरहाल यदि सेनाध्यक्ष प्रतिरक्षा-सेनाओसे वाहर अपनी दृष्टि डालेंगे तो उन्हें पता चलेगा कि सच्चा हिन्दुस्तान सैनिक नही वल्कि शान्तिप्रिय है।

इस विचार-मात्रसे मुझे कोई कम परेशानी नही होती कि युद्ध-कलाके आधुनिक तरीकोंकी शिक्षा प्राप्त कर भारतीय सैनिक अपने घरोको मोटरकी भावना लेकर लौटेंगे। गति ही जीवनका अन्तिम ध्येय नही है। मनुष्य यदि अपने कामपर पैदल चलकर जाये, तो उसे चीजोको देखने-समझने का ज्यादा अच्छा अवसर मिलता है, और वह अधिक सच्चा जीवन व्यतीत करता है।

शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें, २५ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३०-९-१९३९

२३६. पहेलियाँ

एक प्रसिद्ध काग्रेसी सज्जन पूछते हैं .

१. इस युद्धके बारेमें अहिंसासे मेल खानेवाला आपका व्यक्तिगत दृष्टिकोण क्या है?

२. पिछले महायुद्धके समय आपका जो दृष्टिकोण था, वही है या उससे भिन्न है?

३. अपनी अहिंसाके साथ आप कांग्रेससे, जिसकी नीति इस संकटमें हिंसापर आधारित है, कैसे सक्रिय सम्पर्क रख सकेंगे और उसकी कैसे मदद कर सकेंगे?

४. इस युद्धका विरोध करने या उसे रोकने के लिए अहिंसापर आधारित आपकी ठोस योजना क्या है?

मुझे मित्रभावसे लिखा जो शिकायती पत्र मिला है, उसके उपसंहारमें मेरी प्रकट विसगति और मेरे मनकी दुर्बोधताको लेकर उपर्युक्त प्रश्न किये गये है। ये दोनों पुरानी शिकायतें है, जो शिकायत करनेवालों की दृष्टिसे तो उचित हैं, लेकिन मेरी अपनी दृष्टिसे बिलकुल अनुचित हैं। इसलिए शिकायत करनेवालो और मुझमें मतभेद तो होगा ही। मैं तो सिर्फ यही कहूँगा कि जब मैं कुछ लिखता हूँ तो यह कभी नही सोचता कि पहले मैंने क्या कहा था। किसी विषयपर मैं पहले जो-कुछ कह चुका हूँ उससे सगत होना मेरा उद्देश्य नही होता, बल्कि प्रस्तुत अवसरपर मुझे जो सत्य मालूम पड़े उसके अनुसार आचरण करना मेरा उद्देश्य होता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मुझे एकके-बाद-एक सत्यका दर्शन होता गया है, अपनी याददाश्तको मैंने व्यर्थके बोझसे बचा लिया है, और इससे भी बढकर बात यह है कि जब-कभी मुझे अपने नवीनतम लेखोकी पचास वर्ष पहलेके लेखोंके साथ तुलना करनी पड़ी है, तो उन दोनोमें मुझे कोई विसंगति नहीं दिखाई दी है। फिर भी जिन मित्रोको मेरे लेखोमें विसगति दिखाई देती है उन्हें चाहिए कि जबतक पुरानेसे ही उन्हे कोई खास प्रेम न हो, वे उसी अर्थको ग्रहण करें जो मेरे सबसे ताजा लेखोसे निकलता हो। लेकिन चुनाव करने से पहले उन्हें यह देखने की कोशिश करनी चाहिए कि ऊपरसे दिखलाई देनेवाली विसंगतियोंके पीछे क्या स्थायी सगति नही है?

जहाँतक मेरी दुर्बोधताका सवाल है, मित्रोको यह विश्वास रखना चाहिए कि विचारोके प्रासंगिक होने पर मैं उन्हें दबाने का कभी प्रयत्न नही करता। दुर्बोधता कभी-कभी तो संक्षेपमें कहने की मेरी इच्छाके कारण होती है, और कभी-कभी जिस

विषयपर मुझसे राय देनेके लिए कहा जाये उसके सम्बन्धमें मेरे अपने अज्ञानके कारण भी होती है।

नमूनेके तौरपर एक उदाहरण दूं। मेरे एक मित्र[1] हैं। उनके और मेरे बीच कभी कोई दुराव नहीं रहा। वे परितापकी बजाय क्षोभसे लिखते हैं:[2]

> **यदि भारत युद्धक्षेत्र बन जाता है—और ऐसा होना कोई असम्भव बात नहीं है—तो क्या गांधीजी अपने देशवासियोंको यह सलाह देनेके लिए तैयार हैं कि शत्रुकी तलवारके सामने वे अपने सीने खोल दें? यदि किसीने मुझसे कुछ समय पहले यह प्रश्न किया होता तो मैं उसका उत्तर 'हाँ' में देता, लेकिन अब मैं निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता।**

मैं तो उन्हें यही विश्वास दिला सकता हूँ कि मेरे हालके लेखोंके बावजूद, वे भरोसा रख सकते हैं कि अब भी मैं वही सलाह दूँगा जैसी उनके विचारमें मैंने पहले दी होती या जैसी मैंने चेक[3] या एबीसीनियाके[4] लोगोंको दी है। मेरी अहिंसा ठोस धातुकी बनी हुई है। वैज्ञानिकोंको सबसे मजबूत जिस धातुका पता होगा, यह उससे भी ज्यादा मजबूत है। इतनेपर भी मुझे इस बातका दुःखद भान है कि इसे अभी इसकी असली ताकत प्राप्त नहीं हुई है। अगर वह प्राप्त हो गई होती, तो मैं नित्य हिंसाकी जिन अनेक स्थानीय घटनाओंको असहाय होकर देखा करता हूँ, उनसे निपटने का रास्ता भगवान् मुझे सुझा देता। यह मैं धृष्टतापूर्वक नहीं बल्कि पूर्ण अहिंसाकी शक्तिका कुछ ज्ञान होनेके कारण कह रहा हूँ। मेरी जो सीमाएँ अथवा कमजोरियाँ हैं उनको छिपानेके लिए मैं किसीको अहिंसाकी शक्तिको हलका आँकने का अवसर नहीं दूँगा।

अब पूर्वोक्त प्रश्नोंके जवाबमें कुछ पंक्तियाँ लिखता हूँ:

(१) व्यक्तिगत रूपसे मुझपर इस युद्धकी जैसी त्रासपूर्ण प्रतिक्रिया हुई है वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। युद्धको लेकर आज मेरा मन जितना परेशान है उतना पहले कभी नहीं हुआ था। लेकिन इस तीव्रतर त्रासके कारण ही आज मैं भरती करनेवाला स्वयंनियुक्त सार्जेंट नहीं बनूंगा, जैसा पिछले महायुद्धके वक्त मैं बन गया था। तथापि, यह विचित्र भले ही लगे, मेरी सहानुभूति मित्र-राष्ट्रोंके साथ है। जैसे भी हो, यह युद्ध पश्चिममें विकसित प्रजातन्त्र और हर हिटलर जिसके प्रतीक हैं, उस सर्वसत्तावादके बीच होनेवाले युद्धका रूप धारण कर रहा है। हालाँकि रूस इसमें जो भूमिका अदा कर रहा है वह दुःखद है, फिर भी हमें उम्मीद करनी चाहिए कि इस अस्वाभाविक मेलसे, कोई ऐसा अनपेक्षित किन्तु सुखद समेकन प्रतिफलित होगा जिसके स्वरूपके बारेमें अभी कुछ नहीं कहा जा

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री

२. २२ सितम्बरको महादेव देसाईके नाम लिखे एक पत्रमें

३. देखिए खण्ड ६७, पृ० ४४९-५२।

४. देखिए खण्ड ६१, पृ० ३२५ और ३२६।

सकता। अगर मित्र-राष्ट्रोंका उत्साह भंग न हो — और उनका उत्साह भंग होने का कोई आसार दिखाई नहीं देता — तो इस युद्धसे सब युद्धोंका — कमसे-कम ऐसे विभीषिकापूर्ण युद्धोंका — अन्त हो सकता है। मुझे उम्मीद है कि भारत यद्यपि अपने आन्तरिक भेदभावोंसे आक्रान्त है तथापि वह इस इच्छित उद्देश्यकी पूर्ति तथा अबतक की अपेक्षा शुद्ध प्रजातन्त्रके प्रसारमें प्रभावकारी भूमिका निभायेगा। निःसन्देह, यह इस बातपर निर्भर है कि संसारके रंगमंचपर जो सच्चा दुःखद नाटक खेला जा रहा है उसमें कार्य-समिति अन्ततोगत्वा कैसा भाग अदा करेगी। इस नाटकमें हम अभिनेता और दर्शक दोनों हैं। मेरा मार्ग तो निश्चित है। चाहे मैं कार्य-समितिके विनम्र मार्ग-दर्शकका अथवा यदि मैं बिना किसी आपत्तिके कह सकूँ तो कहूँगा कि सरकारके मार्ग-दर्शकका काम करूँ, मेरा मार्ग-दर्शन उनमें से एक या दोनोंको अहिंसाके मार्गपर ले जाने के लिए होगा, फिर चाहे उस मार्गपर उनकी प्रगति अगोचर ही क्यों न रहे। यह स्पष्ट है कि मैं किसी रास्तेपर रफ्तार बढ़ा नहीं सकता। मैं तो सिर्फ उसी शक्तिका उपयोग कर सकता हूँ, जो इस अवसरके लिए ईश्वर मेरे हृदय एवं मस्तिष्कमें देने की कृपा करे।

(२) मै समझता हूँ कि इसका उत्तर पहले प्रश्नके उत्तरमें आ गया है।

(३) अहिंसाकी भाँति ही हिंसाके भी दर्जे होते हैं। कार्य-समिति इच्छापूर्वक अहिंसाकी नीतिसे नही हटी है। वह ईमानदारीके साथ अहिंसाके वास्तविक फलितार्थों को स्वीकार नही कर सकती थी। उसे लगा कि कांग्रेसियोंका विशाल समुदाय इस बातको स्पष्ट रूपसे कदापि नहीं समझ पाया कि बाहरसे आक्रमण होने पर वे अहिंसात्मक साधनोंसे देशकी रक्षा करेंगे। सच्चे अर्थोंमें तो उन्होंने सिर्फ यही समझा है कि ब्रिटिश सरकारके खिलाफ कुल मिलाकर अहिंसाके जरिये वे सफल लड़ाई लड़ सकते हैं। अन्य क्षेत्रोंमें कांग्रेस-जनोंको अहिंसाके उपयोगकी ऐसी शिक्षा मिली भी नही है। उदाहरणके तौरपर, साम्प्रदायिक दंगों या गुण्डागर्दीका अहिंसात्मक रूपसे सफल मुकाबला करने का निश्चित तरीका भी वे अभी ढूँढ़ नहीं पाये हैं। यह दलील अन्तिम है, क्योंकि यह वास्तविक अनुभवपर आधारित है।

ऐसी स्थितिमें यदि मैं अपने सबसे अच्छे साथियोंको इस कारण छोड़ देता हूँ कि अहिंसाके व्यापकतर प्रयोगमें वे मेरा साथ नहीं दे सकते तो इसका अर्थ यह होगा कि मैं अहिंसाके पक्षका हित-साधन नही कर रहा हूँ। इसलिए मैं इस विश्वास के साथ उनके साथ हूँ कि अहिंसात्मक साधनसे उनका हटना सर्वथा संकुचित क्षेत्र-तक ही सीमित रहेगा और वह अस्थायी ही होगा।

(४) मेरे पास कोई ठोस योजना तैयार नही है। मेरे लिए भी यह नया क्षेत्र है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि मुझे साधनोंका चुनाव नही करना है, चाहे मैं कार्य-समितिके सदस्योंसे मन्त्रणा करूँ या वाइसरायके साथ, मेरा साधन तो सदा शुद्ध अहिंसात्मक ही होगा। इसलिए मैं जो कर रहा हूँ, वह खुद ही ठोस योजनाका एक अंग है। और बातें मुझे दिन-ब-दिन सूझती जायेंगी, जैसे कि मेरी सब योजनाओंके बारेमें हमेशा हुआ है। असहयोगका प्रसिद्ध प्रस्ताव भी मेरे दिमागमें कांग्रेस महा-

समितिकी उस बैठकसे, जो १९२० में[1] कलकत्तामें हुई थी और जिसमें वह प्रस्ताव पास हुआ था, कोई २४ घंटेसे भी कम पहले आया था, और यही लगभग प्रथम दाँडी कूचके[2] बारेमें भी हुआ। सत्याग्रह की, जिसे उस वक्त निष्क्रिय प्रतिरोधका नाम दिया गया, नींव भी प्रसंगवश भारतीयोंकी उस सभामें पड़ी जो उन दिनोंके एशियाई-विरोधी कानूनका मुकाबला करने के उपाय खोजने के उद्देश्यसे १९०६ में जोहानिसबर्गमें हुई थी?[3] मैं जब सभामें गया था उस समय मेरे मनमें प्रस्तावकी कोई कल्पना नहीं थी। वह प्रस्ताव मुझे उस सभामें ही सूझा। उस समय सर्जित वस्तुका अब भी विकास हो रहा है। लेकिन कल्पना कीजिए कि ईश्वर मुझे पूरी शक्ति प्रदान कर दे (जो कि वह कभी नही करता) तो मैं फौरन अंग्रेजोंसे कहूँ कि वे शस्त्र रख दें, अपने सब अधीन देशोंको आजाद कर दें, "छोटे इंग्लैंडवासी" कहलाने में ही गर्वका अनुभव करें और संसारके सब सर्वसत्तावादियोको वे जो करना चाहें, करने की चुनौती दें। तब अंग्रेज कोई प्रतिरोध किये बिना मरकर भी इतिहासमें अहिंसात्मक वीरोंके रूपमें अमर हो जायेंगे। इसके अलावा, भारतीयोंको भी मैं इस दैवी बलिदानमें सहयोग करने के लिए निमन्त्रित करूँ। यह कभी न टूटनेवाली ऐसी साझेदारी होगी जो तथाकथित शत्रुओंके खूनसे नही बल्कि उनके अपने शरीरके खूनसे लिखे अक्षरोंमें अंकित हो जायेगी। लेकिन मेरे पास ऐसी कोई सामान्य सत्ता नही है। अहिंसा तो धीमी गतिसे बढ़नेवाला पौधा है। वह अदृश्य किन्तु निश्चित रूपमें बढ़ता है। और लोग मुझे गलत समझेंगे, इस बातका खतरा उठाकर भी मुझे अन्तरात्माकी क्षीण आवाजके अनुसार ही काम करना चाहिए।

शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें, २५ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-९-१९३९

२३७. पुराने क्रान्तिकारी

'*हरिजन*' के पाठक जानते हैं कि सरदार पृथ्वीसिंह पच्चीस सालके बाद आजाद हुए हैं। इन पच्चीस सालोंमें कुछ वर्ष तो उन्होंने जेलमें बिताये हैं और सोलह साल फरार रहकर इधर-उधर छिपते हुए। उन सोलह सालोंकी जिन्दगीको वह आजादी की जिन्दगी नही कह सकते। उनका वह समय खुफिया पुलिसको झाँसा देते, और जब जैसा मौका हो उसके मुताबिक नये-नये नाम रखते और नये-नये वेश धारण करते बीता। पाठकोंको याद होगा कि पिछले साल जब मैं जुहूमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहा था, तब पृथ्वीसिंहने मुझसे मिलकर अपने पिछले पापोंको स्वीकार करने और

१. देखिए खण्ड १८, पृ० २४७-४८।
२. १२ मार्च, १९३० को; देखिए खण्ड ४३।
३. देखिए खण्ड ५, पृ० ४३०-३४।

भविष्यमें मेरे आदेशानुसार अपना जीवन बनाने का निश्चय किया। मैंने उन्हे सलाह दी कि पुलिसको आत्मसमर्पण कर दीजिए और अपने पिछले पापोसे मुक्त होने के लिए स्वेच्छापूर्वक जेलके नियमोंका पालन करनेवाले कैदी बन जाइए। मैंने उनसे कहा था कि मैं आपको रिहा कराने की कोशिश तो करूँगा, लेकिन आपको यह न समझना चाहिए कि मैं उसमें कामयाब ही हो जाऊँगा, बल्कि जरूरत हुई तो आपको अपना शेष जीवन जेलमें काटने में ही सन्तोष मानना चाहिए। बड़ी प्रसन्नता और हलके मनसे वे आजन्म कारावास भुगतने के लिए तैयार हो गये। उन्होने सच्चे दिलसे यह स्वीकार किया कि स्वेच्छापूर्ण कैद भोगने से भी देशकी शायद उतनी ही सेवा होगी, जितनी कि जेलसे बाहर रहकर की जा सकती है।

मुझे यह कहते हुए बडी खुशी हो रही है कि वे अपनी बातके पक्के रहे हैं। पाठक जानते हैं कि महादेव देसाईने रावलपिण्डी जेलमें उनसे मिलने के बाद उस मुलाकातका वर्णन करते हुए उन्हें शत-प्रतिशत एक आदर्श कैदी बताया था। वे अपने जेलरोंके प्रिय बन गये और जेलरोने उनमें जो विश्वास किया, उसके लिए उन्हें कभी पछताना नही पडा। वहाँ उन्होने ऊन और सूतकी कताई सीखी और ऊन-कताईका काम ऐसी मेहनतसे किया कि उनका हट्टा-कट्टा शरीर भी अविश्रान्त श्रमसे थक जाता था और उन्हें विश्रामकी जरूरत पड़ती थी। सरदार पृथ्वीसिंहके आदर्श जेल-जीवनके बारेमें पहले प्यारेलालने और फिर महादेव देसाईने जो-कुछ कहा उससे मैंने अपने कर्त्तव्यका निश्चय कर लिया। महादेव देसाईको इस बातका पूरा विश्वास हो गया कि उनके मामलेकी वे सफलताके साथ सर सिकन्दर हयात खाँसे पैरवी कर सकते हैं। मैंने उन्हें सर सिकन्दर हयात खाँके पास जाने दिया। सर सिकन्दर भी उदारतासे पेश आये। महादेवने जो-कुछ कहा उसकी सचाईसे, जिसकी पुष्टि पृथ्वीसिंह जिन जेलोमें रहे उनके अधिकारियों द्वारा प्राप्त रिपोर्टोंसे भी होती थी, वे प्रभावित हुए। महादेवने इसके लिए वाइसराय-भवनके भी द्वार खटखटाये। इसका परिणाम यह हुआ कि २२ सितम्बरको अधिकारियोंने सरदार पृथ्वीसिंहको लाकर मेरे पास छोड़ दिया।

मैंने उनका स्वागत करते हुए कहा कि आपने अपनेको एक जेलसे दूसरी जेलमें बदल लिया हैं, जो किसी कदर ज्यादा ही सख्त है। उन्होने हँसकर अपनी हार्दिक स्वीकृति प्रकट की। वे जानते हैं कि उन्हें कसौटीपर कसा जा रहा है। उनका यह दृढ़ विश्वास रहा है कि देशकी आजादीके लिए एकमात्र मार्ग हिंसा ही है। उन्होने ऐसे-ऐसे साहसपूर्ण काम किये हैं जिनकी बराबरी चाहे कोई कर सके लेकिन जिनसे बढ़कर किसी भी क्रान्तिकारीने नही किये हैं। उनका जीवन अद्भुत घटनाओसे भरा हुआ है। लेकिन धीरजके साथ आत्म-निरीक्षण करने से उन्हे मालूम हुआ कि वस्तुत. उनका जीवन असत्यपूर्ण है और असत्यसे सच्ची मुक्ति कभी नही मिल सकती। लुका-छिपीके मोहक जीवन और उनके साहसपूर्ण कार्योंसे चमत्कृत होकर उनके मित्र उनकी जो सराहना किया करते थे, उस सबके बावजूद वे लुका-छिपीके ऐसे असत्यपूर्ण जीवनसे ऊब गये थे। सैंकडो नौजवानोंको उन्होंने जो व्यायाम सिखलाया, उससे उन्हें कोई सन्तोष नही मिला। सौभाग्यवश, उन्हें दक्षिणा-

मूर्तिके नानाभाई-जैसे साथी मिल गये, जिन्होंने उनके कदम मेरी तरफ मोड़े। मैंने सरदार पृथ्वीसिंहसे कहा है कि सक्रिय अहिंसाके जीवन्त दृष्टान्तके रूपमें जबतक वे मुझसे आगे नही बढ़ जाते तबतक मुझे सन्तोष नही होगा। मुझमें तो कायरकी हिंसाके अलावा पुरजोर सक्रिय हिंसा कभी नही रही, जबकि वे तो हिंसाकी साक्षात् प्रतिमूर्ति रहे हैं। अब यदि उन्होंने अहिंसाको हृदयंगम कर लिया है, तो उनकी अहिंसा पहलेकी उनकी हिंसाकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और अद्‌भुत होनी चाहिए। ईश्वरकी कृपासे उन्हे इस लोकोक्तिको चरितार्थ करके दिखाना चाहिए कि "जो जितना अधिक पापी होता है वह उतना ही बड़ा सन्त बनता है।" उन्होंने मुझे अपनी डायरीके वे प्रामाणिक पृष्ठ दिखलाये हैं जिनमें उन्होंने स्वैच्छिक कैदीके रूपमें बिताई अपनी पहली रातका मृत्युके रूपमें वर्णन किया है। उसमें से निम्न महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद मैं यहाँ देता हूँ:

> आज मेरे आत्म-समर्पणका दिन है, जबकि दैवी आवेशसे प्रेरित होकर मैं ऐसी हर वस्तुका समर्पण करता हूँ जिसे मैं अपनी कह सकूँ। २५ सालतक मैंने सब खतरोंका सामना करते हुए ऐसा प्रकाश पाने के लिए कठोर परिश्रम किया है जो मुझे सेवाका मार्ग बतला सके। एक अनुभवी क्रान्तिकारी होने के नाते मैं अपनी सफलताओंपर गर्व करता था। १९ मईका दिन मेरे जीवनका एक महत्त्वपूर्ण दिन है — यह वह दिन है जब मैंने यह महसूस किया कि मैं आजतक जिस मार्गपर चलता रहा हूँ उसी मार्गपर चलकर मै न तो अपने राष्ट्रको समृद्ध कर सकूँगा, और न मानवताके उद्धारमें ही अपना कोई योगदान दे सकूँगा। १९ मईका यह दिन मेरे जीवनमें सबसे बड़े साहसका दिन है। वर्त्तमान जीवनमें मेरे लिए न कोई आकर्षण है और न उसका कोई अर्थ ही है। मुझे नये जीवनमें प्रवेश करना ही चाहिए। मृत्युका आलिंगन किये बिना भला मैं उसे कैसे पा सकता हूँ? लेकिन मृत्युका आलिंगन करना कोई उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य तो नया जीवन ही है। किन्तु मृत्यु के सिवा और कैसे मैं उसे पा सकता हूँ? तर्ककी इसमें विशेष गुंजाइश नहीं है। यह तो श्रद्धा थी जिसने मुझे यह रास्ता दिखलाया।

प्रभुसे यही प्रार्थना है कि सरदार आज जिस आजादीका उपभोग कर रहे हैं, वह इस बातको सिद्ध कर दे कि उन्होंने ये टिप्पणियाँ भावावेशमें आकर नही लिखी बल्कि ये उनकी व्याकुल आत्माकी अभिव्यक्ति हैं।

शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें, २५ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-९-१९३९

२३८. पत्र : एस० सत्यमूर्ति और लक्ष्मीको

दुबारा नहीं पढ़ा

रेलगाडीमें
२५ सितम्बर, १९३९

प्रिय सत्यमूर्ति,

पिछले महीनेकी ३१ तारीखका तुम्हारा पत्र आज ही हाथमें ले सका हूँ। तुम्हारे अधिकाश तर्कोंका जवाब देनेकी अब शायद जरूरत नही रही।

तुम जवाहरलालको लेकर नाहक परेशान हो। वह अपनी सीमाओंके बावजूद सोने-जैसा खरा है। क्या हम सबकी अपनी-अपनी सीमाएँ नही है? तुम्हे नही मालूम कि कार्य-समितिके सदस्योको उसकी कितनी जरूरत है। मैं अपने विचार किसीपर लाद नही सकता। जरूरत पड़ने पर अपनी सेवाएँ बेझिझक अर्पित कर देता हूँ।

ससदीय कार्यक्रमोंके मामलेमें मैं अधिकतर बातोमें तुमसे सहमत हूँ। लेकिन बहुत-सी कठिनाइयाँ है। देखें, क्या होता है।

आशा है स्वास्थ्यमें निरन्तर सुधार हो रहा होगा।

लक्ष्मीको[1] प्यार।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

चि० लक्ष्मी,[2]

आशा है, तू अच्छी होगी।

बापूके आशीर्वाद

मूल अंग्रेजीसे : एस० सत्यमूर्ति पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. एस० सत्यमूर्तिकी पुत्री
२. यह तथा पत्रका शेष भाग हिन्दीमें है

२३९. पत्र : पी० कोदण्डरावको

रेलगाड़ीमें
२५ सितम्बर, १९३९

प्रिय कोदण्डराव,

मुझे तुम्हारा और तुम्हारे साथी, दोनोंके शुभकामनाओंके पत्र मिले। मैं तुम्हे इतनी अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे स्नेहको कम आँक ही नही सकता। मैं तो उसे एक निधि मानता हूँ। अहिंसाके सम्बन्धमें मैं श्रद्धापूर्वक, लेकिन 'गीता' में वर्णित अनासक्त भावसे काम करता हूँ।

तुम दोनोंको मेरा प्यार।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्री कोदण्डराव
सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
पूना ४

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२८५) से।

२४०. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको

रेलगाड़ीमें
२५ सितम्बर, १९३९

चि० काका,

मैं इसे पढ गया। हमें मदद मिलनी चाहिए। मैंने मार्गरेटको[1] आश्वासन दिया है। तुम्हें तो विस्तारसे लिखना चाहिए। जब हम मिले तब फिर बात करना। शंकर तुमसे मिला होगा। चन्दनको जाग्रत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९७०) से।

१. मार्गरेट स्पीगल।

२४१. पत्र : अमतुस्सलामको

रेलगाड़ीमें
२५ सितम्बर, १९३९

बेटी अ० सलाम,

उम्मीद है, तू शान्त चित्त होगी। प्रसन्न रहकर अपनी तबीयत सँभालना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७८)।

२४२. पत्र : शारदाबहन गो० चोखावालाको

रेलगाड़ीमें
२५ सितम्बर, १९३९

चि० बबुड़ी,

तुझसे बिछुड़ना अच्छा नहीं लगा। तुरन्त वापस आने की कोशिश करना। जैसी ईश्वरेच्छा। खुश रहना। सबकी सेवा करना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००१६) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

२४३. पत्र : कंचनबहन मु० शाहको

रेलगाड़ीमें
२५ सितम्बर, १९३९

चि० कंचन,

तेरे साथ बात नहीं कर सका, यह बात मुझे कचोटती है। वापस आने पर जैसे ही मौका मिलेगा [तुझसे मिलने का] समय निकालूँगा। अमतुस्सलामसे घुल-मिल जाना। आशा है, मुन्नालाल शान्तचित्त होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२९१) से। सी० डब्ल्यू० ७०५५ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

२४४. पत्र : बलवन्तसिंहको

ट्रेन परसे
२५ सितम्बर, १९३९

चि० बलवतसिंह,

तुमारा खत मिला। अच्छा है। सरदारजी ने भी खत लिखा है। मिलेंगे तब बात करेंगे। मुसलमान भाईयोंकी कथा रोचक है। आसफपुरसे वापस आओगे उतनेमें दिल्लीका पता लग जायगा। सब खतम करके घर आओगे। मैं सीमला जा रहा हू। दो-तीन दिन ठहरना होगा। ईश्वरदासका काम अच्छा होगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९२५) से।

२४५. पत्र : डॉ० वाई० एम० दादूको

रेलगाड़ीमें [वर्धा जाते हुए]
२७ सितम्बर, १९३९

प्रिय दादू,

हाजी इस्माइल भाभाने शिक़ायत करते हुए लिखा है कि सत्याग्रही लोग हिंसक आचरण कर रहे हैं, वे जून माहमें हुई सभामें अपने साथ घातक हथियार ले गये थे तथा वे मुस्लिम औरतोंका गलत इस्तेमाल कर रहे हैं, आदि। मैंने उन्हें लिख दिया है कि तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ। मेरा सुझाव है कि तुम उनसे मिल लो। हमारा कर्त्तव्य तो यह है कि हम अपने विरोधीकी बातपर भी गौर करें और जहाँ भी सम्भव हो उसकी बात मान लें।

मुझे आशा है कि वहाँ सभी बातें ठीक और सही ढंगसे चल रही हैं।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०५) से। सी० डब्ल्यू० १३१८ से भी; सौजन्य : सुशीलाबहन गांधी

२४६. पत्र : लेडी रज़ा अलीको

[स्थायी पता :] सेगाँव
२७ सितम्बर, १९३९

प्रिय पूर्वी,

यह पत्र मैं चलती गाड़ीमें लिख रहा हूँ। मुझे सर रज़ाने[1] बताया कि तुम बीमार हो। मैंने तुमसे पत्र लिखने का वादा किया था और कहीं ऐसा न हो कि मैं वादेको भूल जाऊँ, इसलिए मैं तुम्हें अभी पत्र लिख रहा हूँ। मुझे आशा है कि यह पत्र मिलने तक तुम बिलकुल ठीक हो गई होगी।

तुम सबको प्यार।

बापू

लेडी रज़ा अली
७८, जोन्स स्ट्रीट
किम्बर्ले, दक्षिण आफ्रिका

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७४९) से।

२४७. हिन्दू-मुस्लिम एकता

शिमलाकी मेरी पिछली यात्राके दौरान कुछ कांग्रेसी अखबारोंमें मुस्लिम लीग और उसकी कार्रवाइयोंके बारेमें जो कटु आलोचना प्रकाशित होई थी, उस ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया गया है। ऐसी कोई आलोचना मेरे देखने में नहीं आई है। इसका कारण यह है कि मैं अखबार नही पढ़ता; रोज सरसरी तौरसे उन्हें चन्द मिनट देख-भर लेता हूँ। लेकिन यदि ऐसी शिकायतके लिए कोई आधार हो, तो उसे जरूर दूर किया जाना चाहिए। मुस्लिम लीग एक महान् सस्था है। उसके अध्यक्ष एक जमानेमें उत्कट कांग्रेसी थे। कांग्रेसको उनसे बहुत आशा थी। लॉर्ड विलिंग्डनके साथ उनकी जो झड़प हुई थी, उसे हम कभी नहीं भुला सकते। बम्बई-कांग्रेसका जिन्ना हॉल कांग्रेसके निमित्त किये गये अध्यक्षके महान् प्रयत्नोंका एक स्थायी स्मारक और कांग्रेसजनों द्वारा की गई उनकी सेवाओंकी कद्रका एक

1. सैयद रज़ा अली, १९३५-३८ तक दक्षिण आफ्रिकामें भारत सरकारके एजेंट थे और १९३९ से केन्द्रीय विधान-सभाके सदस्य।

चिह्न है। लीगमें ऐसे अनेक सदस्य है जो अविस्मरणीय खिलाफतके दिनोमें पूरे दिलसे कांग्रेसके साथ थे। मैं नही मानता कि ये कलके दोस्त अपने पुराने साथी कार्य-कर्त्ताओंके प्रति अपने दिलोमें इतनी कटुता रख सकते है जैसा कि उनके आजके भाषणो और लेखोंसे प्रकट होता है। इसलिए कांग्रेसजन और कांग्रेसी समाचारपत्र अगर लीग या उसके सदस्योंके प्रति कटुता व्यक्त करते हैं, तो यह उनके लिए उचित नही है। कांग्रेसकी अहिंसा-नीतिके अनुसार कांग्रेसजनोको लीग और उसके सदस्योंके साथ व्यवहार करते हुए अपनी वाणी, लेखो और कार्योमें सहज ही सयमका पालन करना चाहिए। उन्हें दृढ़तापूर्वक यह विश्वास और आशा करनी चाहिए कि देर-सवेर — और मेरे खयालसे तो जल्दी ही — साम्प्रदायिक एकता स्थापित होगी — सतही एकता नही, वल्कि सच्ची और स्थायी एकता।

स्वर्गीय शौकत अलीके[1] पुत्र जाहिदने, जो शिमलामें मुझसे मिले थे, कहा था कि "हमें हरगिज नही लड़ना चाहिए। खूनका रिश्ता सच्चा रिश्ता होता है। हम सब एक ही खूनके है। एकताके लिए आप जरूर कोशिश कीजिए।" यात्राके दौरान अन्य मुसलमान दोस्तोने भी मुझसे कहा: "आपको एकता अवश्य स्थापित करनी चाहिए। इस कामको केवल आप ही कर सकते है। अगर आपके जीते-जी एकता न हुई तो फिर भगवान् ही बचाये।" एक महान् मुसलमानने भी मुझे इसी तरहका सन्देश भेजा है।

हो सकता है कि इससे मेरे अहंकी तुष्टि होती हो। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह मुझे विनम्र बनाता है। क्या ही अच्छा होता यदि मेरे इतने सारे मुसलमान दोस्तोंने सच्चे मनसे जो आशा व्यक्त की है उसे पूरी करने की ताकत ईश्वरने मुझे दी होती। मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि ऐसा एक भी दिन नही जाता, जब मैं इस एकताके लिए चिंतन और प्रार्थना नही करता। दोनो कौमोंके बीच आज जो इतनी ज्यादा कटुता और झगड़े-फसाद मुझे लाचार बनकर देखने पड़ रहे है, इसका कारण इच्छा या प्रयत्नका अभाव नही है। मैंने यह आशा नही छोड़ी है कि न सिर्फ हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच बल्कि भारतकी तमाम कौमोंके बीच, एक सच्ची एकताकी स्थापना देखने के लिए मैं जीवित रहूँगा। अगर उसे पाने का रास्ता मुझे मालूम होता — फिर वह कितना ही कठिन और कँटीला रास्ता क्यों न हो — तो मैं यह जानता हूँ कि उसपर चलने की इच्छा और शक्ति मुझमें है। मैं यह भी जानता हूँ कि सबसे कम लम्बा और सबसे निश्चित मार्ग अहिंसाका है। कुछ मुसलमान मित्र मुझसे कहते है कि मुसलमान विशुद्ध अहिंसाको कभी स्वीकार नही करेंगे। उनका कहना है कि मुसलमानोंके लिए हिंसा उतनी ही जायज और जरूरी है जितनी कि अहिंसा। इन दोनोका इस्तेमाल परिस्थितियोंपर निर्भर करता है। दोनोंके जायज होने का औचित्य सिद्ध करने के लिए 'कुरान' का प्रमाण देने की जरूरत नही। इस सुपरिचित मार्गपर दुनिया युगोंसे चलती आ रही है। संसारमें

१. शौकत अलीकी मृत्यु २७ नवम्बर, १९३८को हुई थी।

विशुद्ध हिंसा-जैसी कोई चीज नही है। लेकिन मैंने बहुत-से मुसलमान दोस्तोंसे सुना है कि 'कुरान' अहिंसापर आचरण करने की शिक्षा देता है।

'कुरान' में बदलेकी अपेक्षा क्षमाको श्रेष्ठ माना गया है। इस्लाम शब्दका अर्थ ही शान्ति है और शान्तिका नाम अहिंसा है। बादशाह खानने[1], जो एक पक्के मुसलमान हैं और नमाज पढ़ने तथा रोजा रखने से कभी नही चूकते, अहिंसाको अपने धर्मके रूपमें पूरी तरह अपना लिया है। ऐसा कहना इसका कोई जवाब नही कि वे अपने इस धर्मका सम्पूर्ण रूपसे पालन नही करते, क्योंकि मुझे तो स्वयं ही इस बातका लज्जास्पद बोध है कि अपने धर्मका जैसा पालन मुझे करना चाहिए वैसा मैं भी नही करता। हमारे कार्योंमें अगर अन्तर है तो वह प्रकारका नहीं, मात्राका है। लेकिन अहिंसाके बारेमें 'कुरान' शरीफमें जो बात कही गई है वह क्षेपक है, मेरे दावेकी पुष्टिके लिए वह जरूरी नही है।

मेरी यह मान्यता है कि अहिंसा अपनी पूरी सम्भावना प्रकट कर सके, इसके लिए केवल एक पक्षका ही उसमें विश्वास करना जरूरी है। सच तो यह है कि अगर दोनों पक्ष सचमुच उसमें विश्वास करें और उसपर अमल करें, तब तो उसकी परख या उसके प्रदर्शनका प्रसंग ही नहीं उठेगा। एक-दूसरेके साथ हम शान्तिपूर्वक रहें, यह तो अत्यन्त स्वाभाविक चीज है। लेकिन उसमें अहिंसापर आचरण करने का श्रेय किसी पक्षको नहीं मिलता। दुर्भाग्यसे आज वे हिन्दू, जो हिंसाका प्रयोग करना नहीं जानते, यद्यपि वह उनके दिलोंमें है, अपनी इस अयोग्यतापर अफसोस करते हैं और हिंसाके इस फन को सीख लेना चाहते हैं — मैं इसे हिंसाकी कला नहीं कहूँगा — ताकि वे जिसे मुसलमानोकी हिंसा कहते हैं, उसका सामना कर सकें। और अगर दोनो पक्ष आक्रामक और रक्षात्मक, दोनों तरहकी हिंसाके प्रयोगमें बराबरीसे मुकाबला करने लायक बनकर देशमें शान्ति स्थापित करना चाहते है, तो मैं यह जानता हूँ कि ऐसी शान्ति मेरे जीवन-कालमें स्थापित नही हो सकती, और अगर हो भी तो उसे देखने के लिए जीवित रहने की मेरे मनमें कोई इच्छा नहीं है। वह तो शस्त्र-सज्जित शान्ति होगी, जो किसी भी क्षण भंग हो सकती है। यूरोपमें इसी तरहकी शान्ति रही है। ऐसी शान्तिसे हमें बेजार कर देने के लिए क्या यूरोपका वर्त्तमान युद्ध काफी नही है?

जो मुसलमान मित्र मुझसे बहुत आशा रखते हैं, वे शायद अब शान्ति स्थापित करने की दिशामें मैंने जो कष्ट सहन किये हैं और अब भी कर रहा हूँ, उन सबके बावजूद मुझे अपने प्रयत्नोंमें सफलता न मिलने के मेरे दुःखको समझ गये होंगे। उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि मेरा मुख्य कार्य कमसे-कम हिन्दुओंको अहिंसाकी कला सिखाना है। हाँ, अगर मैं मुसलमानोको उस स्थितिपर ला सकूँ जिसे अली-बन्धुओं और उनके साथियोंने खिलाफतके दिनोंमें ग्रहण किया था तो बात और है। वे कहा करते थे: "हमारे हिन्दू भाई हमारे टुकड़े-टुकड़े भी कर दें, तो भी हम उनसे प्रेम करेंगे। वे हमारे सगे भाई-बन्द हैं। स्वर्गीय मौलाना

१. खान अब्दुल गफ्फार खाँ

अब्दुल बारी कहा करते थे: "हमारे इतिहासके इस कठिन समयमें हिन्दुओंने जिस प्रसन्नताके साथ और बिना शर्त हमारी मदद की है उसे हिन्दुस्तानके मुसलमान कभी नही भूल सकते।" मुझे विश्वास है कि इन दिनोंके हिन्दू और मुसलमान, दोनो आज भी वही हैं जो वे तब थे। लेकिन आज समय बदल गया है और उसके साथ-साथ हमारे रंग-ढंग भी बदल गये हैं। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही कि एक-न-एक दिन हमारे दिलका मिलन अवश्य होगा। आज हमारे लिए जो नामुमकिन मालूम पड़ता है, उसे कल ईश्वर मुमकिन बना देगा। उसी दिनके लिए मैं काम करता हूँ, जीता हूँ और प्रार्थना करता हूँ।

वर्धा जाते हुए रेलगाड़ीमें, २८ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-१०-१९३९

२४८. टिप्पणियाँ

एक आकर्षक विचार

एक पठान दोस्त जो मुझे प्रवासके दौरान मिले थे, हिंसक कार्योंके बारेमें बातचीत करते हुए बोले: "आप जानते है कि हमारी सरकार इतनी शक्तिशाली है कि हमारी किसी भी हिंसक कार्रवाईको, चाहे वह कितनी ही संगठित क्यों न हो, बड़ी आसानीसे दबा सकती है, मगर आपकी अहिंसा तो अद्भुत है। आपने हमारे देशको एक आश्चर्यजनक शस्त्र दिया है। अहिंसाको संसारकी कोई भी ताकत दबा नही सकती।" मेरे इन मुलाकातीने अहिंसाके बारेमें जो आकर्षक विचार मेरे सामने रखा, उसके लिए मैंने उनकी प्रशंसा की। एक ही वाक्यमें उन्होंने अहिंसाके अनुपम सौन्दर्यका दर्शन करा दिया। उस पठान मित्रने अहिंसाका अत्यन्त स्वाभाविकता और सहज भावसे जो वर्णन किया, यदि हिन्दुस्तान उसके फलितार्थोंको अच्छी तरह समझ ले तो वह आक्रमणकारियोंके बड़ेसे-बड़े संगठनके मुकाबले भी अजेय हो सकता है। अहिंसाकी ऐसी शिक्षा पाये हुए लोगोंपर बहुत करके तो कोई हमला हो नही सकता। सच तो यह है कि कमजोरसे-कमजोर राज्य भी अगर अहिंसाकी कला सीख जाये तो वह अपनेको आक्रमणसे सहज ही सुरक्षित कर सकता है। लेकिन एक छोटा-सा राज्य, चाहे वह शस्त्रोंसे कितना-ही सुसज्जित क्यो न हो, अच्छे अस्त्र-शस्त्रधारी राष्ट्रोंके गुटके बीच अपना अस्तित्व कायम नही रख सकता। उसे अपनेको या तो मिटा देना पड़ेगा, अन्यथा ऐसे गुटमें से किसी एक राष्ट्रके संरक्षणमें रहना पड़ेगा। जैसा कि प्यारेलालने मेरे सीमा-प्रान्तके प्रवासके दौरान लिखा, बादशाह खानने सच ही कहा है:

> अगर हमें अहिंसाकी शिक्षा न मिली होती तो हमारी बड़ी दुर्गति होती। हमने तो उसे सर्वथा अपने स्वार्थवश अपनाया है। हम तो जन्मसे ही

लड़ाके हैं और आपसमें ही लड़कर इस परम्पराको बनाये हुए हैं। एक बार यदि परिवार अथवा कबीलेमें किसीकी हत्या कर दी जाती है तो उसका बदला लेना सम्मानकी बात समझी जाती है। आम तौरपर हम लोगोंमें क्षमा-जैसी कोई चीज नहीं मिलती। इस तरह यह दुश्चक्र कभी खत्म ही नहीं होता। निश्चित रूपसे अहिंसा मुक्ति-दूतके रूपमें हमारे पास आई है।

जो बात सीमा-प्रान्तपर लागू होती है वह हम सबपर भी लागू होती है। अनजाने ही हम हिंसाके दुश्चक्रमें घूमते रहते हैं। यदि हम इसपर थोड़ा-सा विचार करें और सोच-समझकर तदनुसार काम करें तो हम इस दुश्चक्रसे निकल सकते हैं।

नरसिंहगढ़

पाठकोंको यह मालूम होगा कि नरसिंहगढ़के दीवानके आमन्त्रणपर और मध्य भारत प्रजा परिषद्के मन्त्रीकी सहमतिसे मैंने राजकुमारी अमृतकौरको राज्यके विरुद्ध लगाये गये आरोपोंकी जाँच करने के लिए वहाँ भेजा था। राजकुमारीको, वे जो-कुछ जाँच-पड़ताल करना चाहे, उसके लिए राज्यकी ओरसे हर प्रकारकी सुविधा दी गई थी। इस जाँचके समय श्री कन्हैयालाल वैद्य भी मौजूद थे। राजकुमारीको हर तरहकी सुविधा देकर राज्यने उनका काम काफी आसान कर दिया था। शिकायतका तात्कालिक कारण बहुत जल्दी दूर कर दिया गया और उससे सम्बन्धित सब लोगोंको सन्तोष हो गया। महाराजा साहबने जरूरी एहतियात बरतते हुए नागरिक स्वतन्त्रताका आश्वासन दिया है। इन राज्योंके लोग अबतक नागरिक स्वाधीनता और उसके साधनोंसे बिलकुल अपरिचित रहे हैं। मैं उम्मीद रखता हूँ कि महाराजा साहब और उनके सलाहकार इस बातको ध्यानमें रखेंगे कि नागरिक स्वतन्त्रताका अर्थ, अहिंसाकी मर्यादाके भीतर, बोलने, लिखने और लोग जो-कुछ करना चाहें वह सब करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है — भले ही प्रजाके इन कार्योंका अर्थ राज्यकी तीखी आलोचना ही क्यों न हो। तथापि उन्होंने श्री वैद्यजी को खादी-कार्य, हरिजन-कार्य या इसी तरहके रचनात्मक कार्य करने की पूर्ण अनुमति प्रदान की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने राजकुमारीसे अनुरोध किया है कि वे श्री शंकरलाल बैंकर या चरखा संघके किसी प्रतिनिधिको रियासतमें भेजें और वे वहाँ, जहाँ कपास प्रचुर मात्रामें पैदा होती है, खादी-कार्यकी सम्भावनाओंकी शोध करें। उन्होंने अन्य ग्रामोद्योगों और बुनियादी तालीममें भी दिलचस्पी दिखाई है। मैं आशा करता हूँ कि इतनी अच्छी तरह जिसका प्रारम्भ हुआ है, वह काम अखण्ड रूपसे जारी रहेगा, और नरसिंहगढ़की जनता दिन-दिन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक प्रगति करती जायेगी। दीवानके साथ मेरा जो पत्र-व्यवहार हुआ उसके आधारपर ज्यादासे-ज्यादा अच्छे परिणाम निकलने की उम्मीद की जा सकती है। मगर बहुत-कुछ इस बातपर निर्भर करेगा कि जनताकी समग्र प्रगतिके प्रति महाराजा और उनके परामर्शदाताओंके मनमें कितनी सहानुभूति है और राज्यने कार्यकर्त्ताओंको जो स्वतन्त्रता प्रदान की है, उसका उपयोग वे किस संयमके साथ करते हैं। महाराजा साहब और

दीवानने अपनी घरेलू समस्याको हल करने में कांग्रेससे मदद लेने में (क्योंकि मेरी मदद असलमें कांग्रेसकी ही मदद है) जिस बुद्धिमत्ता और साहसका परिचय दिया है, उसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। यह शायद अपने किस्मका दूसरा उदाहरण है।

वर्धा जाते हुए रेलगाडीमें, २८ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-१०-१९३९

२४९. प्रश्नका उत्तर[1]

२८ सितम्बर, १९३९

मैं एक आशावादी व्यक्ति हूँ और मेरी अपनी आस्था आशापर आधारित है। संसार आशाके सहारे चलता है, उसी प्रकार मैं भी।

मुझे यकीन है कि कुछ-न-कुछ सफलता तो जरूर मिलेगी।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २९-९-१९३९

२५०. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[2]

सेगाँव
२८ सितम्बर, १९३९

लॉर्ड-सभामें भारतीय मामलोंपर जो बहस हुई है उसकी रायटर द्वारा तैयार की गई संक्षिप्त रिपोर्टकी अग्रिम प्रति मुझे दिखलाई गई है। कदाचित् इस समय मेरे चुप रहने से भारत और इंग्लैंड, दोनोंको बहुत हानि होगी। बहसमें वही पुरानी जानी-पहचानी गंध है, जिसके लिए मैं तैयार नहीं था। उसमें कांग्रेसको हीन दिखलानेवाली तुलनाएँ की गई हैं। मेरी मान्यता है कि कांग्रेस एक ऐसी संस्था है जिसमें सभी लोग शामिल हो सकते हैं। किसीका दिल दुःखाये बिना यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है, जिसने आधी शताब्दीसे अधिक समयसे बिना वर्ग या धर्मका भेद किये भारतीय जनताके विशाल भागका प्रतिनिधित्व किया है। कांग्रेसका एक भी ऐसा हित नहीं है जो मुसलमानों या देशी रियासतोंकी

१. साधन-सूत्रके अनुसार "गांधीजी वर्धा जाते हुए शामको जब नागपुर पहुँचे" तो रेलवे स्टेशनपर एकत्र कुछ लोगोंने "वाइसरायके साथ हुई उनकी भेंटके बारेमें" उनसे सवाल पूछे थे।

२. यह "ओपन ए न्यू चैप्टर" (नया अध्याय खोलिए) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था। यह वक्तव्य २९ सितम्बरके हिन्दू और बॉम्बे क्रॉनिकलमें भी प्रकाशित हुआ था।

जनताके हितके विरुद्ध हो। पिछले कुछ वर्षोंके दौरान यह पूरी तरहसे सिद्ध हो गया है कि कांग्रेस निश्चित रूपसे देशी राज्योंकी जनताके हितोंका प्रतिनिधित्व करती है। यही एक संस्था है जिसने ब्रिटेनसे माँग की है कि वह अपने इरादे स्पष्ट करे।[1] अगर अंग्रेज सभी देशोंकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं, तो उनके प्रतिनिधियोंको बिलकुल स्पष्ट शब्दोंमें कह देना चाहिए कि जिस उद्देश्यके लिए लड़ाई लड़ी जा रही है, उसमें भारतकी स्वतन्त्रता भी अनिवार्यतः शामिल है। इस स्वतन्त्रतामें क्या-क्या होगा, इसका निर्णय भारतीय लोग और केवल वे ही कर सकते हैं। निःसन्देह, लॉर्ड जेटलैंडका यह शिकायत करना अनुचित है, हालाँकि उन्होंने बहुत शिष्ट शब्दोंमें यह शिकायत की है, कि कांग्रेसने ब्रिटिश इरादोंकी स्पष्ट घोषणा करने की बात ऐसे समयपर उठाई है जब कि ब्रिटेन जिन्दगी और मौतकी लड़ाईमें लगा हुआ है। मेरा खयाल है कि कांग्रेसने इस तरहकी घोषणा करने की बात कहकर कोई आश्चर्यजनक या अशोभनीय काम नहीं किया है। केवल स्वतन्त्र भारतकी ही सहायता मूल्यवान होगी, और कांग्रेसको यह तसल्ली करने का पूरा हक है कि वह जनताके पास जाकर उससे कह सकती है कि यह निश्चित है कि लड़ाई खत्म होने पर भारत उसी तरह एक स्वतन्त्र देश होगा जैसा इंग्लैण्ड है। इसलिए अंग्रेज लोगोंके मित्रकी हैसियतसे मैं राजनयिकोंसे अपील करता हूँ कि वे पुराने साम्राज्यवादियोंकी भाषा भूल जायें और जो लोग साम्राज्यके बन्धनमें रहते आये हैं, उन सबके लिए एक नया अध्याय आरम्भ करें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ७-१०-१९३९

२५१. पत्र : नारणदास गांधीको

सेगाँव

२९ सितम्बर, १९३९

चि० नारणदास,

तुम्हें तार देने के बाद तुम्हारा पत्र मिला। फिर भी तारके अनुसार मेरा इरादा राजकुमारीको रवाना करने का है। वह हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगी। वह श्री गिब्सन और वीरावाला साहबसे मिलेगी और मैंने मानवतावादी दृष्टिकोणसे जो कार्य सुझाया है, उसे तथा वैसे ही अन्य कार्य करेगी। कहीं जाना होगा तो जायेगी। उसके रहने आदिका बन्दोबस्त करना। वह बहुत भाग-दौड़ नहीं करना चाहेगी, इसलिए उससे ऐसा मत करवाना। उसे १० अथवा ११ तारीखको रवाना कर देना।

बापूके आशीर्वाद

1. देखिए परिशिष्ट ८, १० और ११।

[पुनश्च :]

छगनलालका पत्र मिल गया है। पैसेकी व्यवस्था तो तुम्हारे साथ सलाह-मशविरा करके ही करूँगा। मैंने जितना सूत काता होगा उतना तो मैं राजकुमारीके हाथ भेज दूँगा। बाकीका उस तरफ जानेवाले व्यक्तिके साथ भेजूँगा।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५६३ से भी, सौजन्य : नारणदास गांधी

२५२. पत्र : कुँवरजी खेतसी पारेखको

सेगाँव
२९ सितम्बर, १९३९

चि० कुँवरजी,[1]

तुम कैसे हो? धरमपुरके सम्बन्धमें मैंने तहकीकात की थी। उसकी सलाह कोई नही देता। धरमपुरकी आबोहवा तो अच्छी है, लेकिन धरमपुरका सैनिटोरियम अच्छा नही माना जाता है। अल्मोड़ामें जगह मिलनी मुश्किल है। वह केवल संयुक्त प्रान्तके रोगियोंके लिए है। यदि तुम्हें वहाँ सुविधा न हो तो नागपुरमें बन्दोबस्त हो सकता है। जुगतरामको[2] यह पढवाना और मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७२८) से।

१. हरिलाल गांधीकी पुत्री, रामीके पति
२. जुगतराम वैद्य

२५३. पत्र: मनुबहन और सुरेन्द्र मशरूवालाको

सेगाँव, वर्धा
२९ सितम्बर, १९३९

चि० मनुड़ी, सुरेन्द्र,

सुरेन्द्रकी बीमारी का समाचार मुझे बा ने दिया है। वह अब कैसा है? तेरा पत्र मिला तो था, लेकिन मैं उसका उत्तर नहीं दे पाया। इसके साथ कुँवरजीका[1] पत्र नत्थी कर रहा हूँ। उसे पहुँचा देगी न? मैं फिर वापस दिल्ली जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५७५) से; सौजन्य: मनुबहन सु० मशरूवाला

२५४. पत्र: अमृतलाल ठा० नानावटीको

२९ सितम्बर, १९३९

चि० अमृतलाल,

शिमलासे आज कुछ [समाचार] आ ही नहीं सकता। इसलिए क्या स्थिति है, सो मैं नहीं जानता। विजयाका पत्र नहीं आया। शंकरके आनेकी बात थी, वह क्यों नहीं आया? वह कल यहीं भोजन करे, ११ बजे मैं उससे बात करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९६) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२५५. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

३० सितम्बर, १९३९

चि० मुन्नालाल,

स्पर्शमें पाप नही है, और है भी। लेकिन प्रतिज्ञा भंग करना तो महापाप है। इसलिए यदि अब प्रतिज्ञा भग हो तो तुम दोनोको चुपचाप आश्रम छोड़ देना चाहिए। इस प्रतिज्ञाका पालन करने के लिए तुम दोनोको एक-दूसरेसे नही बोलना चाहिए, एक साथ काम नही करना चाहिए और न एक-दूसरेकी सेवा करनी और करवानी चाहिए। मेरी सलाह यह है कि तुम थोड़े दिन रमण महर्षिके आश्रममें रह आओ। यदि उपर्युक्त सयमका पालन करना तुम्हारे वशके बाहर हो तो तुम्हें उसका लोभ छोड़ देना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५६०)से। सी० डब्ल्यू० ७०५४ से भी, सौजन्य : मुन्नालाल ग० शाह

२५६. तार : गोविन्द वी० गुरजलेको[1]

[सितम्बर, १९३९][2]

तार, पत्र मिले। आपके सकल्पमें[3] दखल देने का कोई हक नही। ईश्वर आपका पथ-प्रदर्शन करे और आपका हृदय क्रोधसे मुक्त रखे।

अंग्रेजीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. भिक्षु निर्मलानन्दके नामसे भी जाने जाते थे

२. साधन-सूत्रमें यह तार सितम्बर १९३९ के शीर्षकके साथ रखा गया है, देखिए "पत्र : जी० वी० गुरजलेको", १८-१०-१९३९ भी।

३. प्यारेलालके अनुसार गुरजलेने संकल्प किया था कि यदि कृपापुरीश्वरर मन्दिरके न्यासी जनताकी इच्छानुसार मन्दिरमें हरिजनोंके प्रवेशकी अनुमति नहीं देते तो वे अनिश्चित कालके लिए उपवास करेंगे।

२५७. टिप्पणियाँ

आभार

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णनने मेरे ७१वें जन्मदिनको खास महत्त्व दे डाला है। उन्होंने मुझे अपनी पुस्तक[1] भेजी है, जिसमें अनेक परिचित और अपरिचित मित्रों द्वारा की गई मेरी प्रशस्तियाँ हैं। इस पुस्तकके साथ उन्होंने जो पत्र भेजा है उसमें भी कुछ और प्रशंसा की है। मैं नहीं जानता कि उस ग्रंथमें संकलित सब प्रशंसात्मक लेखोंको पढ़ने का समय मैं कब निकाल पाऊँगा। मैं तो यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि ईश्वर मुझे शक्ति दे कि उन लेखकोंके मनमें मेरी जो तसवीर है, मैं वैसा बन सकूँ। सर सर्वपल्ली और उन सबको, जिनके आशीर्वाद और शुभकामनाएँ मुझे प्राप्त हुई हैं, मैं धन्यवाद देता हूँ। प्रत्येकको अलगसे आभार प्रकट करते हुए पत्र लिख पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

लेकिन अपने प्रशसकोंको मैं एक चेतावनी जरूर देना चाहूँगा। कुछ लोग सार्वजनिक स्थानोंपर मेरी मूर्ति खड़ी करना चाहते हैं, कुछ तसवीरें लटकाना चाहते हैं और कई हैं जो मेरे जन्मदिनको आम छुट्टीका दिन बना देना चाहते हैं। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी मुझे अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए उन्होंने विवेकपूर्वक मेरे जन्मदिनको आम छुट्टीका दिन बनाने के सुझावको रद्द कर दिया है। आजकल मतभेद और कलह-क्लेशके दिन हैं। ऐसे समयमें यदि मेरा नाम मतभेद और कलह-क्लेशको बढ़ाने में किसी भी तरह कारण-रूप बनता है तो यह मेरे लिए शर्मकी बात होगी। ऐसे अवसर न आने देना देशकी और मेरी सच्ची सेवा होगी। मूर्तियों, चित्रों या अन्य ऐसी चीजोंके लिए आज कोई अवकाश नहीं है। मेरी सच्ची प्रशंसा इसी बातमें है और मैं ऐसी प्रशंसाको ही मूल्यवान समझूँगा कि जिन प्रवृत्तियोंके लिए मैंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है उन प्रवृत्तियोंको आगे बढ़ाया जाये। ऐसा प्रत्येक स्त्री-पुरुष, जो साम्प्रदायिक मेल पैदा करने या अस्पृश्यताके कलंकको मिटाने या गाँवका हित-साधन करने में से कोई एक भी काम करता है, मुझे सच्चा सुख और शान्ति पहुँचाता है। विभिन्न खादी-भण्डारोंमें जो खादी इकट्ठी हो गई है, कार्यकर्त्ता इन दिनों उसे खपाने की कोशिश कर रहे हैं। इस खादीको यदि लोग खादी-सप्ताह अथवा पखवाड़ेमें, जिसे गलतीसे गांधी-जयन्ती सप्ताहके नामसे विभूषित किया गया है, खरीद लें तो उससे बढ़कर आशीर्वाद और खुशीकी बात मेरे लिए और कोई नहीं हो सकती। अपनी प्रवृत्तियोंके बिना या उनसे अलग मेरा कोई अस्तित्व नहीं है।

१. महात्मा गांधी — एसेज़ एंड रिफलेक्शन्स।

और अधिक झूठ

दुर्भाग्यवश मुझे कुछ दिन पहले झूठपर आधारित सनातनी प्रचारके विरुद्ध टिप्पणी करनी पड़ी थी।[1] मुझे मदुरै और कुम्भकोणम्से क्रमश ये तार मिले हैं:

> आज श्रीरंगम् मन्दिरमें जबरदस्ती प्रवेश किया जा रहा है। मदुरै मन्दिरके सशस्त्र चपरासी विरोध करनेवाले सनातनी भक्तोंको तितर-बितर कर रहे हैं। यह तो विश्व-युद्धके बीच एक और युद्ध करने-जैसी बात हुई। कृपया ऐसा अत्याचार बन्द करने के लिए तुरन्त निर्देश जारी करें। आखिर तो हमें मिल-जुलकर रहना है। —के० आर० वेंकटराम अय्यर
>
> मन्त्री राजन श्रीरंगम्के मन्दिरमें पुलिसको लेकर हरिजनोंको प्रवेश करवाने की धमकी दे रहे हैं। खून-खराबीको रोकने के लिए कृपया हस्तक्षेप करें। राजाजी को सूचित करें। —कुप्पुस्वामी

जब मुझे ये तार मिले उस समय राजाजी वर्धामें ही थे। उन्होंने निम्नलिखित उत्तर भेजा:

> श्रीरंगम्के मन्दिरमें हरिजन-प्रवेशके लिए कोशिश नहीं की जा रही। सरकारकी सम्मतिके बिना ऐसा करना असम्भव है और सरकारने अभी ऐसी कोई सम्मति नहीं दी है।

इस स्पष्ट इन्कारके बाद मैं इन तारोंको कोरी कल्पना ही मान सकता हूँ। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि स्वयं श्रीरंगम्से ऐसी कोई शिकायत नहीं आई है। मदुरै और कुम्भकोणम् श्रीरंगम्से इतने दूर हैं कि वहाँकी घटनाओंकी प्रत्यक्ष जानकारी नहीं मिल सकती। त्रिची ही एक ऐसा नगर है जो श्रीरंगम्के इतना निकट है कि यदि वहाँके लोग उस तीर्थ-नगरमें होनेवाली घटनाओंमें दिलचस्पी लें तो उन्हें प्रत्यक्ष जानकारी मिल सकती है। जिस विरोधको अपने पक्षके समर्थनके लिए सफेद झूठका सहारा लेना पड़े वह तो, समझना चाहिए, अपनी आखिरी घड़ियाँ गिन रहा है। मैंने इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार देखा है, जिससे पता चलता है कि थोड़े-से सनातनी ब्राह्मणोंको छोड़कर मीनाक्षी मन्दिरका किसीने बहिष्कार नहीं किया है। मन्दिर जानेवाले विशाल जन-समुदायको वह आज भी उतना ही प्रिय है जितना कि पहले था।

दिल्ली जाते हुए रेलगाड़ीमें, १ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-१०-१९३९

१. देखिए पृ० २०१-३।

२५८. विनोद-वृत्तिकी कमी

नीचे लिखे बहुत स्पष्ट और सदुद्देश्यसे प्रेरित पत्रको, जो सम्पादकके नाम लिखा गया है, प्रकाशित करने का लोभ मैं संवरण नही कर सकता :

आपसे मेरी प्रार्थना है कि कृपाकर मेरी कुछ शंकाओंका निवारण करने के लिए आप मुझे अपना थोड़ा-सा समय दें। मैं यह पत्र आलोचकके रूपमें नहीं लिख रहा हूँ। मैं एक उत्कट सत्यशोधक हूँ और बापूजी के अनेक 'एकलव्यों' में से हूँ।

मुझे इस हफ्तेके 'हरिजन' में "सिर्फ मद्य-निषेध ही क्यों?"[1] शीर्षक बापूजी की लिखी टिप्पणीमें निम्नलिखित पंक्तियाँ पढ़कर बहुत दुःख हुआ है: "जो रवैया मैंने शराबखोरीके प्रति अपनाया है यदि वही इन सब बुराइयों के प्रति भी अपनाऊँ और उनके खिलाफ धरनेका आयोजन करूँ, तो मुझे बिरादरीसे अलग कर दिया जायेगा, मेरा महात्मापन मुझसे छिन जायेगा और अपनी जान भी, जिसकी निस्सन्देह मेरे जीवनकी इस अवस्थामें बहुत कम कीमत है, गँवा दूँगा। लेकिन चूँकि मैं यह तिहरी हानि बरदाश्त नहीं करना चाहता, अतः मैं इन पत्र-प्रेषक तथा इन-जैसे दूसरे लोगोंको यह समझने दूँगा कि मैं एक स्पष्ट कर्तव्यसे जी चुरा रहा हूँ।"

उक्त टिप्पणीके लिए, खासकर उपर्युक्त पंक्तियोंके लिए, मैं सचमुच तैयार नहीं था। जब मैं बापूजी के पहलेके लेखोंपर तथा उनके जीवनपर, जैसा मैंने उसे जाना-समझा है, विचार करता हूँ, तो सचमुच मैं इन पंक्तियोंको समझ नहीं पाता। कारण कि मेरी तो राय थी और अब भी है कि बापूजी 'सत्य' के उपासक हैं। और इस सत्य, अर्थात् ईश्वरकी खातिर वे दानकी कितनी ही बड़ी राशि क्यों न हो, उस राशिको, अपने महात्मा-पदको, अपनी बिरादरीको, और जरूरत पड़े तो अपने मस्तकको भी गँवा देने के लिए तैयार हो जायेंगे।

अब जरा उनके कुछ लेखोंपर दृष्टिपात करें। 'आत्मकथा' (भाग ५, अध्याय १०) में वे लिखते हैं कि अन्त्यज दूधाभाई और उसके कुटुम्बको जब मैंने अपनाया, तब "पैसेकी मदद बन्द हो गई।. . .पैसेकी मदद बन्द होने

१. देखिए पृ० ११८-१९।

के साथ बहिष्कारकी अफवाहें मेरे कानोंतक आने लगीं। इस सबके लिए हम तैयार थे।"[1]

यह लेख साफ बताता है कि बापूजी अपने सिद्धान्त, अर्थात् सत्यका बलिदान करके दान स्वीकार करने या अपनी बिरादरी बनाये रखने के लिए तैयार नहीं थे।

(२५-२-१९२६के 'यंग इंडिया'में प्रकाशित) "सत्य बनाम ब्रह्मचर्य" शीर्षक एक लेखमें वे कहते हैं, "मेरा महात्मापन मिथ्या है। वह तो मुझे मेरी बाह्य प्रवृत्तिके — मेरे राजनैतिक कार्यके — कारण प्राप्त हुआ है। वह क्षणिक है। मेरा सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यादिका आग्रह ही मेरा अविभाज्य और सबसे अधिक मूल्यवान अंग है।"[2] एक अन्य लेखमें उन्होंने "महात्मा होने का नुकसान"[3] बतानेकी कोशिश की है ('यंग इंडिया' ८-११-१९२८)।

महात्मा-पदकी उन्हें जरा भी परवाह नहीं, यह दिखाने के लिए इससे अधिक और क्या चाहिए?

इसके अतिरिक्त २९ अगस्त, १९३६के 'हरिजन' में प्रकाशित[4] एक वार्तालापमें उन्होंने कहा था: "यहाँ तो मैं सिवाय अपने और किसीकी सेवा करने नहीं आया हूँ।... मैं आत्म-साक्षात्कार करना चाहता हूँ। मनुष्यका अन्तिम उद्देश्य है ईश्वरका साक्षात्कार — उसकी अनुभूति प्राप्त करना। उसके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी कार्य इस अन्तिम उद्देश्य — ईश्वरानुभूति — को ध्यानमें रखकर ही सम्पादित होने चाहिए।"[4] अन्यत्र ('यंग इंडिया', ११-१०-१९३८) वे कहते हैं: "मैं यह भी जानता हूँ कि यदि मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर बुराईके विरुद्ध संघर्ष नहीं करूँगा तो मैं ईश्वरको कभी भी नहीं जान सकूँगा।"[5]

मैं आशा करता हूँ कि उपर्युक्त पंक्तियाँ यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि गांधीजी केवल सत्यके उपासक हैं। सम्भव है कि जुआ, घुड़दौड़, सिनेमा आदि अनिष्टोंको वे अनिष्ट न मानते हों या शराब अथवा अस्पृश्यताकी तरह उन्हें उतना भयंकर न समझते हों कि उनके खिलाफ आन्दोलन छेड़ें, "अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर" उनके "विरुद्ध संघर्ष" करें।

१. देखिए खण्ड ३९, पृ० ३०२। लेकिन उद्धरणमें दिया गया अन्तिम वाक्य आत्मकथाके मूल गुजराती संस्करणमें न होनेके कारण हिन्दी अनुवादमें भी नहीं दिया गया है।

२. देखिए खण्ड ३०, पृ० १८।

३. देखिए खण्ड ३८, पृ० ३४-३६।

४. देखिए खण्ड ६३, पृ० २९१।

५. देखिए खण्ड ३७, पृ० ३६५।

चाहे जो हो, मुझे विश्वास है कि मेरे-जैसे 'हरिजन'के अनेक पाठक बापूजी की लेखनीसे निकला हुआ ऐसा लेख पढ़ने के लिए तैयार नहीं होंगे। अब आपसे ही यह पूछता हूँ कि वे किसके उपासक हैं? सत्यको बलि देकर दानकी रकमें, जात-पाँत, महात्मा-पद इत्यादिके, अथवा इन सबको लात मारकर सत्यके? क्या आप कृपाकर यह पत्र बापूजी को दिखाकर उक्त टिप्पणीसे पैदा हुई गलतफहमीको दूर करेंगे?

उक्त पत्र-लेखकने, जो स्पष्टतः मेरे लेखोंका सूक्ष्म अध्ययन करते आये हैं, और जो खुद एक पाठशालाके अध्यापक हैं, यदि जुआ इत्यादिके विषयमें मेरी लिखी हुई टिप्पणीका ऐसा गम्भीर अर्थ लगाया है, तो और भी बहुत-से ऐसे पाठक होंगे जिनके मनमें इसी तरहकी शंकाओंने घर कर लिया होगा। पत्र-लेखकने मेरे लेखोंसे जो इतने तमाम अवतरण उद्धृत किये हैं उनसे वे बड़ी आसानीसे इतना समझ सकते थे कि वह टिप्पणी मैंने विनोद-भावसे लिखी थी, पर दुर्भाग्यसे, हम लोगोंमें से बहुतोंमें आज विनोद-वृत्ति नहीं है। इसलिए विनोदकी कद्र कराने की इच्छा रखनेवाले को स्पष्ट रूपसे यह संकेत कर देना पड़ता है कि यह विनोद-लेख है। पाठकोंको यह समझ लेना चाहिए था कि उक्त टिप्पणी लिखकर मैंने तो सिनेमा, घुड़दौड़, सट्टा, जुआ आदिके बारेमें अपनी नापसन्दगी ही जाहिर की थी। मैंने उसमें यह बताने का भी प्रयत्न किया था कि ये दुर्गुण चूँकि फैशनमें आ गये हैं, इसलिए शराबबन्दीकी तरह इनका मुकाबला नहीं किया जा सकता। मैं व्यावहारिक सुधारक होने का दावा करता हूँ। मैं लगभग सहज ही जान लेता हूँ कि कौन-सी सामाजिक बुराइयाँ ऐसी हैं जिनसे सार्वजनिक रूपसे निपटने का समय आ गया है। हाँ, यह हो सकता है कि अन्य बुराइयोंको नष्ट करने का कार्यक्रम हाथमें लेने का साहस मुझमें न हो, और अपनी कायरताको छिपाने के लिए मैंने उपयुक्त अवसर न होने का बहाना खोज लिया हो। कोई भी व्यक्ति एक निश्चित सीमासे आगे अपनी मर्यादाओंका उल्लंघन नहीं कर सकता।

पर मेरे पत्र-लेखकने मेरे लेखोंको उद्धृत करके यह बताया है कि उन दिनों मुझमें सब-कुछ त्यागने और लोगोंके विरोधका सामना करने का साहस था। मेरी निर्दोष टिप्पणी पढ़कर जिन्हें ऐसा भ्रम हुआ हो, उन सबको मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सार्वजनिक कार्यको आगे बढ़ाने के काममें कठिनाइयों और कष्टोंका सामना करने का जोश मुझमें आज भी उतना ही है जितना पहले था। समयने उसे क्षीण नहीं किया है बल्कि शायद पुष्ट ही किया है। पर अपनी महत्त्वाकांक्षाको मर्यादित रखने की नम्रता मुझमें है और ईश्वरने देश तथा मानवताकी सेवाके लिए जो थोड़ी-बहुत शक्ति मुझे दी है, उसके लिए मैं उसका आभार मानता हूँ।

दिल्ली जाते हुए रेलगाड़ीमें, १ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-१०-१९३९

२५९. पत्र : गोविन्ददास कंसलको

रेलगाड़ीमें
१ अक्तूबर, १९३९

प्रिय मित्र,

मैंने अभी आपकी कृतिको ५ मिनट सरसरी नजरसे देखा। उसके मुखपृष्ठ एवं विषय-वस्तुके विरुद्ध मुझे कुछ नही कहना है। जो भी तरीका आपको अच्छा लगे, उस तरीकेसे आपको अपने विचार व्यक्त करने का पूरा अधिकार है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
महात्मा गांधी – द ग्रेट रोग ऑफ इंडिया, पृ० ४-५ के बीच प्रकाशित प्रतिकृतिसे

२६०. त्रावणकोरकी अभागी प्रजा

त्रावणकोरकी प्रजाका प्रतिनिधित्व जिस हदतक राज्य कांग्रेस करती है उस हदतक, ऐसा मालूम होता है कि दुर्दैव उसके पीछे पड गया है। रियासत कांग्रेसमें त्रावणकोरके कुछ सबसे बहादुर और सबसे त्यागी लोग शामिल है। लेकिन दुर्भाग्यवश उनमे और वहाँके सुयोग्य दीवानमें कभी मधुर सम्बन्ध नही रहे है। उत्तरदायी शासनके आन्दोलनके प्रारंभिक दिनोमें कांग्रेसने दीवानके विरुद्ध जो आरोप लगाये थे उनके फलस्वरूप ये सम्बन्ध किसी तरह बिगड गये। आरोप लगानेवाले लोगोंके साथ बातचीत करने से मुझे यह मालूम हुआ कि दीवानपर लगाये गये आरोपोकी सत्यतामें वे ईमानदारीके साथ विश्वास करते थे। लेकिन मैंने उन्हे यह दलील दी कि यदि उनका उद्देश्य उत्तरदायी शासनकी स्थापना है, दीवानको हटाना नही — जिसमें बाकी हिन्दुस्तानको कोई दिलचस्पी नही हो सकती — तो उन्हें दीवानपर लगाये गये सब आरोप वापस ले लेने चाहिए। उन्हें मेरी सलाह विवेकपूर्ण जान पड़ी और उन्होने उसपर तुरन्त अमल किया। इससे उनका रास्ता बिलकुल साफ हो गया और कांग्रेसका पक्ष दुर्भेद्य हो गया। लेकिन मुझे लगता है कि दीवान और कांग्रेसी नेताओमें आरोपोंके कारण जो मनोमालिन्य हो गया था, वह आज भी कायम है। ऐसा न होता तो बेहतर होता। हालाँकि सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द कर दिया गया है और दीवान एवं नेताओंमें निजी तौरपर बातचीत भी हो गई है, तो भी उनमें अबतक परस्पर सद्भावनाका अभाव है। इसके विपरीत, उनकी बातचीतमें

अविश्वासका भाव है। दीवान नेताओंसे एक खास दूरी बनाये रहे हैं। सामान्यतया संघर्षके बाद समझौता-वार्त्ता शुरू होने से पहले कैदियोंको रिहा कर दिया जाता है, मुकदमें वापस ले लिये जाते हैं और अन्य प्रतिबन्ध हटा लिये जाते हैं। त्रावणकोरमें ऐसी कोई भी बात नही हुई। वकीलोंकी सनदें अब भी रद्द हैं और विधान-सभाके निर्वाचित सदस्य भी अबतक बरखास्त हैं। सच तो यह है कि राज्यने नेताओंकी ओर मैत्रीका हाथ बढ़ाया हो, ऐसा कोई संकेत नही मिलता। और अब राजनीतिक सुधारोंकी बातचीतको भी स्थगित करके सरकारने एक नया बम गिराया है। ये हैं त्रावणकोरकी सरकारी विज्ञप्तिके[1] शब्द :

> कुछ ऐसे कारणोंसे, जो स्पष्ट हैं और जिनके कारण, उदाहरणार्थ—भारत सरकारको संघ-विधान-सम्बन्धी बातचीत स्थगित करनी पड़ी है,[2] तबतक किसी भी प्रकारके संवैधानिक सुधारोंके सम्बन्धमें बातचीत नहीं की जा सकती जबतक फिरसे आम हालात कायम नहीं हो जाते और स्थितिमें स्थिरता नहीं आ जाती।

इसके बाद नीचे लिखी धमकी भी दी गई है :

> त्रावणकोर राज्य कांग्रेसके अध्यक्षने समाचारपत्रोंमें जो वक्तव्य प्रकाशित किया है और दीवानको जो पत्र लिखा है उसके सिलसिलेमें सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि यद्यपि वह राजनीतिक संगठनोंकी सामान्य प्रवृत्तियों पर कोई पाबन्दी लगाना या उन्हें कुचलना नहीं चाहती और हालातमें सुधार होते ही, राजनीतिक संस्थाओंसे सलाह-मशविरा करने का उसका इरादा भी अभी नहीं बदला है, तो भी वह इस नाजुक समयमें किसी राजनीतिक संस्थाको कोई संगठित आन्दोलन करने देने की अनुमति नहीं दे सकती। क्योंकि इस समय परिस्थिति विषम है और खासकर युद्धकी स्थितिके कारण बेकारीके बहुत बढ़ने की सम्भावना है, तथा खाद्य पदार्थों एवं अन्य वस्तुओंकी महँगाईके कारण आम लोगोंमें और भी असन्तोष बढ़ सकता है। ऐसे आन्दोलनके बहुत गम्भीर प्रभाव और परिणाम होंगे और सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह रियासतकी कानून-पालक प्रजाकी रक्षा करे इसलिए वह कोई ऐसा खतरा मोल नहीं ले सकती, और न वह इस समय राज्यमें संविधान-सम्बन्धी माँगोंसे उठनेवाले सवालोंपर ही कोई ध्यान दे सकती है। सरकार त्रावणकोर राज्य कांग्रेस और अन्य वैसे ही कार्यक्रमवाली राजनीतिक संस्थाओंको यह चेतावनी दे देना चाहती है कि वह रियासतमें शान्तिपूर्ण वातावरण और साधारण स्थिति कायम

१. २३ सितम्बर, १९३९ की

२. ११ सितम्बरको केन्द्रीय विधान-मण्डलके दोनों सदनोंके संयुक्त अधिवेशनमें भाषण देते हुए वाइसरायने घोषणा की थी कि युद्धको देखते हुए संघकी स्थापनाके सिलसिलेमें जो तैयारियाँ की जा रही थीं, उन्हें स्थगित कर दिया गया है।

रखने के लिए साधारण कानून और त्रावणकोर रक्षा अधिघोषणाके नियमोंके मातहत कोई सख्त कदम उठाने पर मजबूर हो जायेगी।

जिस सुधारकी चर्चा चल रही थी, उसे स्थगित कर देने का उपर्युक्त कारण बिलकुल थोथा है। जहाँतक मैं जानता हूँ, किसी भी दूसरी रियासतमें सुधारोंको इस तरह स्थगित करने की आवश्यकता नही समझी गई। मैं तो यह कहूँगा कि रियासतोंने ब्रिटिश सरकारको अपनी जो सेवाएँ अर्पित की है, उसमें मित्र-राष्ट्रोंके युद्ध-उद्देश्यका अर्थात् ससारके लिए प्रजातन्त्रकी रक्षाकी भावनाका बिलकुल अभाव है। रियासतोंने जो सेवाएँ अर्पित की है, वे युगकी भावनासे तभी मेल खा सकती है जब वे इसमें जनताकी इच्छा और सहयोगको भी साथ लेकर चल सकें। यह तबतक बिलकुल असम्भव है, जबतक कि रियासतोकी जनता यह अनुभव नही करती कि वह रियासतके प्रबन्धमें राजाओंकी भागीदार है। इस दृष्टिसे विचार करे तो रियासती जनताको उस हदतक अधिकसे-अधिक उत्तरदायी शासन देना, जिस हदतक वह स्वय राजाओंकी सुरक्षासे असगत न बैठता हो, रियासतो की ओर से युद्ध की सफलता की दृष्टिसे उठाया जानेवाला पहला और प्रथम कोटिका कदम है। यह कौन कह सकता है कि त्रावणकोरमें, जहाँ आम लोगोंमें शिक्षाका बहुत अधिक प्रचार है, लोग अपने शासन-प्रबन्धका भार उठाने लायक नही है? बड़े देशी राज्योके शासन-प्रबन्धकी जिम्मेदारी प्रान्तोके निगमके प्रबन्धकी जिम्मेदारीसे ज्यादा बडी नही होती। युद्धके कारण त्रावणकोरमें राजनीतिक प्रगतिको रोकने की यह बात सुनकर मैं तो स्तब्ध और आश्चर्यचकित रह गया। राज्योंमें शासन-सुधारका सघ-विधानके स्थगित किये जाने से क्या सम्बन्ध है, यह समझना कठिन है। यदि राजा, मुस्लिम लीग और कांग्रेस सघ-विधानका विरोध न करते, तो वह कभी का लागू हो गया होता। और मैं तो यहाँतक कहना चाहता हूँ कि अगर तीनो दल चाहे, तो ब्रिटिश सरकार खुशीसे उसे आज ही लागू कर दे। रियासतोंमें तो शासन-सुधार बहुत पहले ही हो जाने चाहिए थे, और सघ-विधान लागू हो या न हो, सुधार तो होने ही चाहिए।

जब मैं यह कहता हूँ कि सामान्यतया देशी राजाओंकी हिटलरके साथ तुलना की जा सकती है तो मेरी मंशा उनका दिल दुखाने की नहीं है। दोनोंमें फर्क है तो इतना ही कि उनमें हिटलरकी-सी हिम्मत, फुर्ती, उपाय-कुशलता और योग्यता नही है। हरएक राजा निरंकुश शासकोंकी-सी सत्ताका उपभोग करता है और उन्होंने अनेक बार अपनी इस सत्ताका उपयोग किया भी है। राजा अपनी रियासतोंमें ऐसे अधिकारोंका उपभोग करते है जिनका उपभोग ब्रिटेनके राजाओंने भी सैकड़ो वर्षोसे नहीं किया है। वर्त्तमान ब्रिटिश नरेश तो सिर्फ देशका प्रथम और प्रधान नागरिक है। वह अपनी इच्छासे एक भी व्यक्तिको गिरफ्तार नही कर सकता और वह किसी भी आदमीको शारीरिक दण्ड नही दे सकता। और यदि वह ऐसा करता है तो एक सामान्य व्यक्तिकी तरह कानूनकी गिरफ्तमें आये बिना नही रह सकता। ब्रिटिश राजतन्त्रपर इस प्रकारका कठोर नियन्त्रण संसारके लिए ईर्ष्याकी वस्तु है और यह

ठीक भी है। लेकिन हरएक देशी राजा अपनी रियासतमें हिटलर है। वह कानूनकी गिरफ्तमें आये बिना अपनी प्रजाको गोलीसे उड़ा सकता है। हिटलरको भी इससे अधिक अधिकार प्राप्त नही है। अगर मैं भूलता नही हूँ तो जर्मनीके विधानमें फ्यूरर पर भी कई पाबन्दियाँ लगी हुई हैं। ग्रेट ब्रिटेन प्रजातन्त्रका संरक्षक बनता है लेकिन जबतक ५०० निरंकुश शासक उसके मित्र हैं तबतक उसका प्रजातन्त्रके संरक्षक-वाला रूप दूषित है। राजा लोग तभी ग्रेट ब्रिटेनकी सच्ची सेवा कर सकेंगे जब वे निरंकुश शासकोंके रूपमें नही बल्कि जनताके सच्चे प्रतिनिधियोंके रूपमें अपनी सेवाएँ अर्पित करेंगे। इसलिए मैं संविधान-सम्बन्धी मामलोंके प्रसिद्ध वकील सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरसे यह कहना चाहूँगा कि उन्होंने शासन-सुधार स्थगित करके और राज्य-कांग्रेस यदि इस समय राजनीतिक सुधारोंके लिए कोई आन्दोलन चलाये तो उसे भयंकर परिणाम भोगने को तैयार रहने की धमकी देकर त्रावण-कोरकी प्रजा, राजा और ब्रिटिश सरकारकी कुसेवा ही की है।

नई दिल्ली, २ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-१०-१९३९

२६१. पत्र : अमृतकौरको

बिड़ला भवन
अल्बुकर्क रोड, नई दिल्ली
२ अक्तूबर, १९३९

चि० अमृत,

यह पत्र मैं तुम्हें महज प्यार भेजने के लिए लिख रहा हूँ। हमारी यात्रामें बहुत शोर-गुल रहा — सारे रास्ते भीड़-भाड़ रही। ग्वालियरकी भीड़ तो सबसे खराब थी। मैं शान्त रहा। मुझे तो अपने मौनका ध्यान रखना था। तुम्हें अपने सिर कामका ज्यादा बोझ लेकर स्वयंको थकाना नहीं चाहिए। फाइलके अधिकांश पत्र मैंने देख लिये हैं।[1]

मजीद आ गया होगा। दूसरी फाइलोंको देखने का काम चल रहा होगा। सोमवारतक की डाक भेजी जा सकती थी अर्थात् दो दिनकी।

बापूके आशीर्वाद

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३७)से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२४६ से भी।

१. इसके बादका अंश हिन्दीमें है।

२६२. सन्देश : ब्रिटिश जनताको[१]

३ अक्तूबर, १९३९

लोकतन्त्रके बारेमें ब्रिटेन जो दावे करता है यदि उनके प्रति अपनी ईमानदारी व्यक्त करने की प्रथम परीक्षामें ही वह विफल हो जाता है तो यह इस महायुद्धका अत्यन्त दुःखद प्रसंग होगा। उन घोषणाओंमें भारतको भारतकी जनताकी इच्छाओं के अनुरूप पूर्ण स्वतन्त्रता देने की बात शामिल है या नहीं? यह एक अत्यन्त सीधा-सादा और प्राथमिक प्रश्न है जो कांग्रेस पूछती है। कांग्रेसको यह प्रश्न पूछने का अधिकार है। मुझे उम्मीद है कि इसका उत्तर कांग्रेस और उन लोगोंकी इच्छाके अनुरूप होगा जो ग्रेट ब्रिटेनके हिताकांक्षी हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ४-१०-१९३९

२६३. तार : एगथा हैरिसनको

नई दिल्ली

५ अक्तूबर, १९३९

एगथा हैरिसन

२ क्रैनवॉर्न कोर्ट, एल्बर्ट ब्रिज रोड

लंदन

तार मिला।[२] नियमित रूपसे लिखकर हवाई-डाकसे भेजता रहा हूँ। मुझे कोई आशा नहीं है।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५१२) से।

१. यह सन्देश मैंचेस्टर गार्जियनके भारत-स्थित सम्वाददाताकी मारफत भेजा गया था।

२. तात्पर्य एगथा हैरिसनके ३० सितम्बर के तार (जी० एन० १५११) से है जिसमें लिखा था: "आपके जन्म-दिवसपर मेरी यही शुभकामना है कि आप भारत और विश्वके लिए जो शान्ति-कार्य कर रहे हैं, उसके लिए परमात्मा आपको और शक्ति दे। आपसे सीधी सूचना न मिल सकनेके कारण बाधा हो रही है।"

२६४. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

वर्धा आते हुए रेलगाड़ीमें
६ अक्तूबर, १९३९

चि० मणिलाल और सुशीला,

सुशीलाका पत्र मिला। जो चीज जिस तरहसे हो उसे हमें धैर्यके साथ आनन्द-पूर्वक सहन करना चाहिए और अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए। मेढ़[का] पत्र इसके साथ है। यह समझकर कि दीपावलीका सन्देश इस पत्रके साथ नहीं पहुँच सकता, मेरा खयाल तार द्वारा दो-चार शब्द लिख भेजने का है। वहाँकी दोनों संस्थाएँ मिल गईं या नहीं? बच्चे और मणिलाल अच्छे हो गये होंगे। हम आज ही वर्धा पहुँच रहे हैं।

साथका पत्र मेढ़के लिए है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०६) से।

२६५. पत्र : वालजी गो० देसाईको

रेलगाड़ीमें
६ अक्तूबर, १९३९

चि० वालजी,

खुराकके बारेमें चित्रे जो लिखते हैं उससे मैं सहमत हूँ। वहाँ तुम्हें विशेष लाभ हुआ नहीं दिखता। तुम वर्धा आ जाओ तो कोई दूसरी तजवीज सोचें। तुम्हें अच्छा होना ही है। मेरी बात यदि तुम्हारे गले उतरे तो तुरन्त रवाना हो जाना। पैसे न हों तो वहाँ किसीसे उधार ले लेना। चित्रेका पैसोंसे सम्बन्धित प्रश्न मेरी समझमें नहीं आया।

बापूके आशीर्वाद

प्रोफेसर वी० जी० देसाई
टी० बी० सैनेटोरियम
डाकखाना वाणीविलास मुहल्ला
मैसूर

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४८८) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

२६६. पत्र : सरस्वती गांधीको

ट्रेन पर
६ अक्तूबर, १९३९

चि० सरू,

तेरा खत मिला है। एक ही आया है। मैं कितना भी नाखुश रहूं तुम लोगोंके खतकी प्रतीक्षा रहती ही है। मेरी नाखुशी भी प्रेमकी ही रहती है ना? कांतीका कुछ भी खत नहीं है, उसका स्वभावमें यह चीज है इससे मुझे उसका दुःख नहीं है। तुम दोनों सुखी रहो, तदुरस्ती रहे और शुध्ध रहो तो मुझे संतोष ही है। ईश्वर तुमको पढावे।

बापुके आशीर्वाद

श्री सरस्वती गांधी
मारफत श्री पिल्लै
नेयतिन्कारा
त्रावणकोर

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१७७) से। सी० डब्ल्यू० ३४५१ से भी; सौजन्य : कान्तिलाल गांधी

२६७. पत्र : कुन्दर दीवानको

ट्रेन पर
६ अक्तूबर, १९३९

भाई कुंदर,

तुमको मैं लिखता ही नहीं हूं क्योंकि कृष्णचन्द्र लिखता है। बालकृष्णको शक्ति भी आवेगी ही। विश्रान्ति और खुराक ही आम इलाज रहा है। नीदकी शिकायत है। उसके लिये सोच रहा हूं। ठंडीकी मोसम आने पर शायद बालकृष्णको सेगाव बुला लुंगा। दा० से मश्विरा करूंगा।

तकलीके बारेमें तुमको मैं क्या सुचना कर सकता हूं। आज शामको वर्धा पहोंचते हैं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २१५) से।

२६८. आँखें खोल देनेवाला काम

अरनाड ताल्लुकेमें खादीकी प्रगतिका जून, १९३९ तक का जो विवरण नीचे दिया जा रहा है[1] उससे उन लोगोंकी आँखें खुल जानी चाहिए जो खादीकी भारतके लाखों जरूरतमन्द लोगोंको तत्काल आजीविका प्रदान करने की शक्तिमें शंका करते हैं।

अ० भा० च० संघ द्वारा जून, १९३७ में अरनाड ताल्लुकेके पुलीकल क्षेत्रमें आजमाइशके तौरपर हाथ-कताई शुरू की गई थी। इस क्षेत्रमें हाथ-कताईकी कोई परम्परा नहीं रही है। इसलिए जिन लोगोंने कातना सीखना शुरू किया उन सब लोगोंको नये सिरेसे कातना और पींजना भी सिखाना पड़ा। . . .

पुलीकलके अपने इस सफल प्रयोगसे प्रोत्साहित होकर अ० भा० च० संघ ने १९३८-३९ के लिए खादीके लिए दिये जानेवाले सरकारी अनुदानके अन्तर्गत इस ताल्लुकेके नेडियिरुप्पु, पण्डिक्कड, रणधानी और तिरुरंगडी क्षेत्रमें चार और केन्द्र स्थापित करने की योजना बनाई। . . . जून १९३९ के अन्ततक इस ताल्लुकेमें १,२३३ लोग कताईका काम सीख चुके थे। . . .

. . . कुल मिलाकर ५,८३०-८-१० रुपये खर्च हुए हैं। . . . उपकरणों-पर ही ३,४८२-०-६ रुपये खर्च हुए; यह सारी रकम सरकारी अनुदानमें से दी गई है। . . . और ४८८-१५-९ की बाकी रकम अ० भा० च० संघके कोषसे दी गई। यह रकम पुलीकल तथा अन्य केन्द्रोंपर प्रारम्भिक दौरमें खर्च की गई।

कतैयोंके उचित प्रशिक्षणपर विशेष ध्यान देने के कारण . . . जो सूत काता गया है वह बहुत ऊँचे किस्मका है। . . .

फरवरी, १९३९ से एक ओर जहाँ हमारा आग्रह अच्छे किस्मके सूतपर रहा है वहाँ दूसरी ओर हमने सूतकी कीमतके अनुपातमें १७.१९ प्रतिशत कताईकी दरें भी बढ़ा दी हैं। . . .

कतैयोंको आदतन खादी पहनने के लिए प्रेरित करने के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं। खादी खरीदने में इन लोगोंको परेशानी न हो, इसके लिए अ० भा० च० संघ में सप्ताह-भरमें काता गया सूत जमा करवाने के समय प्रत्येक

१. यह विवरण अ० भा० च० संघ, अरनाडके मन्त्री सी० के० कार्थने तैयार किया था। यहाँ इसके कुछ अंश ही दिये गये हैं।

कर्तयेसे सूत ले लिया जाता है, और उसके बदले जितना आवश्यक हो उतने अर्ज और नमूनेकी खादी लगभग लागत मूल्यपर कर्तयेको दे दी जाती है।

तिरुरंगडीमें एक खादी बुनने का केन्द्र खोला जा रहा है। . . . अब भी विभिन्न स्थानोंसे हाथ-कताईके केन्द्र खोले जाने की माँग आ रही है। १९३९-४० के लिए सरकारी अनुदानका उपयोग करने की योजनाके अंगके रूपमें अरनाड ताल्लुकेमें खादी विकास-कार्यके प्रसारके लिए एक अलग योजना पेश की गई है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-१०-१९३९

२६९. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव
७ अक्तूबर, १९३९

प्रिय अमृत,

कल रात मुझे तुम्हारी बहुत याद आई। लेकिन मुझे यह जानकर खुशी हुई कि तुम अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए गई हो।[1] अपनी सेहतका बराबर ध्यान रखना। मुझे कागजात असाधारण रूपसे अच्छी स्थितिमें मिले। तुम वहाँसे इसी ११ तारीखको रवाना होकर १३ तारीखको सेगाँव आओगी। बेशक, स्टेशनपर एक कार तुम्हारा इन्तजार करेगी।

अधिक महादेवसे।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६०)से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६४६९ से भी

१. तात्पर्य अमृतकौरकी मोरवी यात्रासे जान पड़ता है; देखिए "मोरवी में दुर्भिक्ष-निवारण-कार्य", पृ० २९०; "पत्र : नारणदास गांधीको", पृ० २४०-४१ भी।

२७०. पत्र : नारणदास गांधीको

७ अक्तूबर, १९३९

चि० नारणदास,

मुझे उम्मीद है कि राजकुमारी अमृतकौर बहनकी अध्यक्षतामें रेंटिया बारसका कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जायेगा। तुमने सूतयज्ञको स्थायी रूप देने का जो निर्णय किया है वह मुझे बहुत अच्छा लगा है, और मैं आशा करता हूँ कि इसका बहुत-से भाई-बहन स्वागत करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५६७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

२७१. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
७ अक्तूबर, १९३९

चि० विजया,

तेरा पत्र बहुत दिनों बाद आया। इतनी ढिलाई फिर मत करना। बड़ौदा जाकर तूने ठीक ही किया। जबतक साँस है तबतक आस रखनी चाहिए। दोनों ही पक्ष सच्चे हैं। 'रामनाम' पर निर्भर रहना सबसे श्रेष्ठ है। और अपनी सामर्थ्यानुसार प्रयत्न करना भी अच्छी बात है। मैं तेरा पत्र अमृतलालको भेज रहा हूँ।

मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११९) से। सी० डब्ल्यू० ४६११ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

२७२. पत्र : जमनादास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
७ अक्तूबर, १९३९

चि० जमनादास,

तू क्या कर रहा है? शरीरको कसने लायक पुरुषार्थ क्यो नही करता? यदि अभीमे बूढा हो जायेगा तो कैसे काम चलेगा? अब वहाँ रहकर अच्छी तरह आराम लेकर, शरीरको कमने के बाद ही राजकोट छोड़ना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५६५ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

२७३. पत्र : कुँवरजी खेतसी पारेखको

सेगाँव, वर्धा
८ अक्तूबर, १९३९

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिल गया है। मैंने तो तुम्हारे लिए नागपुरकी तैयारी की थी। लेकिन चूँकि तुम मिरज चले गये इसलिए मैंने तार दिया कि वहाँसे उतावलीमें भाग मत आना। गरीबोको सामान्य असुविधा उठानी ही पडती है। इसीसे मैंने तुम्हें वहाँ रहने के लिए प्रोत्साहित किया था। अब यदि अन्य कठिनाइयाँ सामने आयें तो उन्हें धीरजके साथ दूर करना और जो लाभ उठा सको सो उठाना। यदि लाभ न हो तो तुरन्त लिखना। क्या होता है, उसके बारेमें लिखते रहना। बच्चोको वहाँ मत बुलवाना। यही उचित है कि बली[1] उन्हें बम्बई ले जाये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

और अधिक सुरेन्द्र तुम्हें बम्बईमे लिखेगा।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७२९)से।

१. कुँवरजी पारेखकी मौसिया सास बलीबहन एम० अडालजा

२७४. भारतका दृष्टिकोण

पिछले २७ अगस्तको, अर्थात् यह पागलपन-भरा युद्ध शुरू होने के ठीक पहले श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्यायने मुझे लिखा था :

> मैंने आपको 'बॉम्बे क्रॉनिकल' की मारफत एक अपील भेजी है, जिसमें मैंने आपसे अनुरोध किया है कि आप वर्त्तमान स्थितिके बारेमें भारत और पूर्वकी समस्त शोषित जनताके दृष्टिकोणको वाणी दें। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि आप हमारी इस पुरानी स्थितिको फिरसे दुहरा दें कि इस साम्राज्यवादी युद्धसे हमारा कोई सरोकार नहीं है, बल्कि मैं चाहती हूँ कि इससे कुछ अधिक किया जाये। वर्त्तमान संघर्ष मुख्यतः उपनिवेशोंकी, अथवा शिष्ट भाषामें जिन्हें अब प्रभाव-क्षेत्र कहा जाता है, उनकी हमेशासे चली आ रही छीना-झपटीके लिए है। लोग समझते हैं कि इस प्रश्नपर केवल दो ही रायें हैं, क्योंकि उन्हें केवल दो ही मत सुनने को मिलते हैं; एक तो उन लोगोंका मत है जो यथापूर्व स्थिति कायम रखने में विश्वास रखते हैं — और दूसरा उनका जो उसमें परिवर्तन तो चाहते हैं लेकिन उसी आधारपर चाहते हैं — दूसरे शब्दोंमें कहें तो वे लूट और शोषणके अधिकारका फिरसे बँटवारा चाहते हैं, जिसका मतलब निःसन्देह युद्ध ही है। और यह एक स्वाभाविक बात है कि ऐसा पुनर्वितरण सशस्त्र संघर्षके वगैर कभी नहीं हो सकता। युद्धके अन्तमें उपभोगके लिए कोई व्यक्ति बच रहेगा या नहीं और उपभोग-लायक कोई चीज भी रहेगी या नहीं — यह निःसन्देह एक दूसरा सवाल है। लेकिन संसार मुख्यतः इन्हीं दो विचारधाराओंमें बँटा हुआ है। अगर एककी बातको ठीक माना जाये, तो दूसरेकी बातको भी ठीक मानना चाहिए। क्योंकि अगर इंग्लैंड और फ्रांसको बड़े-बड़े भूभागों और राष्ट्रोंपर शासन करने का अधिकार है, तो जर्मनी और इटलीको भी निश्चय ही वैसा अधिकार है। हिटलर जिसे अपना न्यायोचित अधिकार कहता है वह नैतिक दृष्टिसे जितना कम न्यायोचित है उतना ही इंग्लैंड और फ्रांसका उससे रुकने के लिए कहना।
>
> इस संघर्षमें एक तीसरा मत भी है, जिसके बारेमें संसार कदाचित् ही कुछ सोचता मालूम पड़ता है, क्योंकि वह कभी-कभार ही सुनाई पड़ता है। लेकिन वह इतना आवश्यक है कि उसे अभिव्यक्ति मिलनी ही चाहिए; क्योंकि वह उन लोगोंकी आवाज है जो सारे खेलमें मात्र प्यादोंके मानिन्द हैं। असली सवाल न तो डानजिगका है, न पोलिश गलियारेका। सवाल तो दरअसल उस

सिद्धान्तका है जिसपर वर्तमान पश्चिमी सभ्यताका सारा दारोमदार है। और वह है, निर्बलपर शासन करने और उसका शोषण करनेका सबलका अधिकार। इसलिए यह युद्ध सब उपनिवेशोंके प्रश्नके आसपास केन्द्रित है, और हिटलर तथा मुसोलिनी संसारको इसकी याद दिलाते कभी थकते नहीं जान पड़ते। यही कारण है कि इंग्लैंडने साम्राज्यके खतरेमें होनेकी आवाज उठाई है। इसलिए इस प्रश्नसे हम सभीका गहरा सम्बन्ध है।

हम यथापूर्व स्थितिके विरुद्ध हैं। हम उसके विरुद्ध लड़ रहे हैं, क्योंकि हम उसमें परिवर्तन चाहते हैं। लेकिन युद्ध हमारा विकल्प नहीं है, क्योंकि हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि उससे समस्या वास्तविक रूपमें हल नहीं होगी। हमारे पास दूसरा विकल्प जरूर है और वही इस भयंकर गड़बड़ीका एकमात्र हल और भावी विश्व-शान्तिकी कुंजी है। मैं चाहती हूँ उसी विकल्पको संसारके सामने प्रस्तुत किया जाये। आज वह अरण्य-रोदनके समान मालूम पड़ सकता है, मगर हम जानते हैं कि वही ऐसी आवाज है जो अन्ततः सुनी जायेगी, और जो हाथ आज इन सशस्त्र हाथोंके सामने बहुत कमजोर मालूम पड़ते हैं, वही अन्तमें विध्वस्त मनुष्य-जातिका नव-निर्माण करेंगे।

उस आवाजको व्यक्त करनेके लिए आप विशेष रूपसे उपयुक्त व्यक्ति हैं। संसारके उपनिवेशोंमें, मैं समझती हूँ, भारतका आज एक विशिष्ट स्थान है। इसकी ऐसी नैतिक प्रतिष्ठा है और इसमें ऐसी संगठन-शक्ति भी है, जो शायद ही किसी उपनिवेशोंके पास हो। दूसरे उपनिवेश अनेक मामलोंमें पथ-प्रदर्शनके लिए इसकी ओर देखते हैं। उसने संसारके समक्ष संघर्षकी एक ऐसी उच्च पद्धतिका दृष्टान्त प्रस्तुत किया है जिसके नैतिक मूल्यकी किसी-न-किसी दिन दुनिया जरूर कद्र करेगी। इसलिए छिन्न-भिन्न और उन्मत्त संसारसे भारतवर्षको यह कहना है कि एक और रास्ता भी है और यदि मनुष्य-जातिको समय-समयपर आनेवाली इस तरहकी आपदाओंसे बचाना है तथा रक्तरंजित जगत्‌में शान्ति और मेलजोल स्थापित करना है तो इस मार्गको अपनाना ही होगा। जिन लोगोंको इस व्यवस्थाके खिलाफ इतना कष्ट उठाना पड़ा है और जो उसे बदलनेके लिए वीरतापूर्वक लड़ रहे हैं, वही लोग पूरे विश्वास और इसके लिए आवश्यक नैतिक आधारके साथ न केवल अपनी ओरसे बल्कि संसारकी समस्त शोषित और पीड़ित जनताकी ओरसे बोल सकते हैं।

मुझे खेद है कि 'क्रॉनिकल' में प्रकाशित श्रीमती कमलादेवीका उक्त पत्र मैंने नहीं देखा था। मैं चाहे कितनी भी कोशिश क्यों न करूँ फिर भी मैं अखबारोंको ठीकसे नहीं पढ़ पाता। अतः समयाभावके कारण पत्र मेरी फाइलमें ही पड़ा रह गया और मैं इसके सम्बन्धमें कार्रवाई नहीं कर पाया। लेकिन मैं समझता हूँ, विलम्बके कारण पत्रके उद्देश्यमें कोई अन्तर नहीं पड़ा है। बल्कि मेरे लिए शायद यही ऐसा

मनोवैज्ञानिक अवसर है जब मुझे यह बताना चाहिए कि भारतका दृष्टिकोण क्या है अथवा क्या होना चाहिए। युद्ध करनेवाले पक्षोंके उद्देश्योंका कमलादेवीने जो विश्लेषण किया है उससे मैं सहमत हूँ। दोनों अपने अस्तित्व और अपनी गृहीत नीतियोंको आगे बढ़ाने के लिए ही लड़ रहे हैं। लेकिन दोनोंमें एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि मित्र-राष्ट्रोंकी घोषणाएँ कितनी ही अपूर्ण अथवा संदिग्ध क्यों न हो, संसारने उनका अर्थ यह किया है कि वे लोकतन्त्रकी रक्षाके लिए लड़ रहे हैं। हर हिटलर जर्मन-सीमाके विस्तारके लिए लड़ रहे हैं, हालाँकि उनसे कहा गया था कि वे अपने दावेको एक निष्पक्ष अदालतके सामने जाँचके लिए पेश करें। मगर शान्ति या समझौतेके तरीकेको उन्होंने तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया और तलवारका ही रास्ता चुना। इसलिए मित्र-राष्ट्रोंके साथ मेरी सहानुभूति है। लेकिन मेरी सहानुभूतिका मतलब यह हरगिज नहीं समझना चाहिए कि मैं तलवारके सिद्धान्तका किसी भी रूपमें समर्थन करता हूँ, चाहे उसका उपयोग निश्चित रूपसे सिद्ध अधिकारके लिए ही क्यों न किया जा रहा हो। सिद्ध अधिकारकी रक्षा जंगली या खूँरेजीके साधनोंके बजाय सभ्य साधनोंसे हो सकनी चाहिए। मनुष्य जिसे अपना 'अधिकार' समझता है उसको कायम रखने के लिए वह अपना रक्त बहा सकता है और उसे बहाना चाहिए। जो विरोधी उसके 'अधिकार' पर आपत्ति करे, उसका रक्त उसे नहीं बहाना चाहिए। कांग्रेस जिस भारतका प्रतिनिधित्व करती है वह अपने 'अधिकार'को तलवारसे नहीं बल्कि अहिंसात्मक उपायसे सिद्ध करने के लिए लड़ रहा है। और उसने संसारमें अपना एक अद्वितीय स्थान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, यद्यपि अब भी वह अपने सपनोंकी स्वतन्त्रता से दूर — हमें आशा करनी चाहिए कि वह बहुत दूर नहीं — है। उसके अनोखे उपायकी ओर स्पष्टतः संसारका ध्यान आकर्षित हुआ है। अतः संसारको भारतसे यह आशा करने का अधिकार है कि वह इस युद्धमें, जिसे संसारके किसी भी देशकी प्रजाने नहीं चाहा, यह आग्रह रखकर निर्णायक भूमिका अदा करे कि इस बार शान्तिका मजाक न होने पाये और उसका यह अर्थ न होने पाये कि विजेता लोग युद्धके मालका आपसमें बँटवारा कर लें और विजितोंका अपमान करें। जवाहरलाल नेहरूने, जिन्हें कि कांग्रेसकी ओरसे बोलने का अधिकार प्राप्त है, गौरवपूर्ण भाषामें कहा भी है कि शान्तिका मतलब उन लोगोंकी स्वतन्त्रता होना चाहिए जिन्हें संसारकी साम्राज्यवादी सत्ताओंने गुलाम बना रखा है। मुझे पूरी आशा है कि कांग्रेस संसारको दिखा सकेगी कि अधिकारकी रक्षा करने की — और सो भी विवेकका बेहतर प्रदर्शन करते हुए उसकी रक्षा करने की — जैसी शक्ति अहिंसासे प्राप्त होती है उसकी तुलनामें शस्त्रास्त्रोंसे प्राप्त होनेवाली शक्ति कुछ भी नहीं है। शस्त्रबल सच्चा विवेक दिखा ही नहीं सकता, विवेकयुक्त होने का दिखावा-भर कर सकता है।

सेगाँव, ९ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-१०-१९३९

२७५. जैसे साँपनाथ तैसे नागनाथ

पिछले हफ्ते त्रावणकोरकी परिस्थितिके बारेमें लिखते[1] हुए मैंने उस विवादका जिक्र नहीं किया था जो दीवान साहब और रियासत कांग्रेसके बीच इस बातको लेकर चल रहा है कि मुझे वह जानकारी कहाँसे मिली जिसके आधारपर मैंने दीवानको यह आशा व्यक्त करते हुए तार[2] भेजा कि उनके द्वारा जारी किये गये नोटिसके कारण रियासत कांग्रेसके उस सम्मेलनपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगेगा जो त्रावणकोरमें होने जा रहा है। श्री ताणु पिल्लैने कहा कि उन्होंने अथवा रियासत कांग्रेसके किसी सदस्यने यह नहीं कहा कि सम्मेलनपर कोई प्रतिबन्ध है। इसीलिए वे नहीं कह सकते कि मैंने दीवानको जो तार भेजा, वह उनसे प्राप्त जानकारीके ही आधारपर भेजा गया था। उनका यह कहना बिलकुल सही था। मगर वस्तुत. यह सच है कि श्री वर्गीजके तारमें[3] जो सूचना दी गई थी, उसीके आधारपर मैंने वह तार भेजा था। लेकिन श्री वर्गीजने किसी तथ्यको नहीं छिपाया था। श्री ताणु पिल्लैने गत महीनेकी २३ तारीखको दीवानके नाम लिखे गये अपने पत्रमें अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए इस प्रकार कहा था:

> सरकारके पत्रसे ऐसा लगता है कि सरकार मेरी इस बातपर विश्वास नहीं करती कि रियासत कांग्रेसके किसी भी सदस्यने गांधीजी को यह खबर नहीं भेजी कि सम्मेलनपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। आपका अनुमान तो ज्यादासे-ज्यादा गांधीजी द्वारा भेजे गये तारपर आधारित होगा, जबकि जो-कुछ कहता हूँ वह निजी जानकारीके आधारपर कह रहा हूँ। स्वागत-समितिके अध्यक्षने गांधीजी को तार द्वारा सरकारी विज्ञप्तिका जो सार लिखकर भेजा था, वह इस प्रकार है: 'आज दोपहरको एक प्रेस-विज्ञप्ति निकालकर सरकारने चकित कर दिया है। सरकारी विज्ञप्तिमें कहा गया है कि युद्ध छिड़ जाने से ऐसी आपात् स्थिति पैदा हो गई है जिसके कारण सार्वजनिक शान्तिकी रक्षा के निमित्त और सार्वजनिक उत्तेजना फैलाने अथवा लोगोंके बड़ी संख्यामें जमा होनेकी सम्भावित घटनाओंको रोकने के लिए कुछ उपाय करना जरूरी हो गया है। सम्मेलनके सिलसिलेमें जलूसों और प्रदर्शनोंकी तैयारियाँ की जा रही हैं और चूँकि सम्मेलनमें भारी भीड़ होनेकी सम्भावना है, इसलिए सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे सरकार सम्मेलनके संयोजकों तथा रियासतकी समस्त

१. देखिए पृ० २४९-२५२।

२. देखिए पृ० १७६-७७।

३. देखिए खण्ड ६९, पृ० १२०-२१।

राजनीतिक या अन्य संस्थाओंसे अनुरोध करती है कि वे फिलहाल और अगली सूचना मिलने तक ऐसे समारोहोंको स्थगित या बन्द कर दें।' इस सरकारी विज्ञप्तिसे शायद गांधीजी ने यह समझ लिया होगा कि सम्मेलन और समस्त राजनीतिक या अन्य संस्थाओंको फिलहाल और अगली सूचना मिलने तक ऐसे समारोहोंको स्थगित या बन्द करने के लिए कहने का मतलब वस्तुतः सब सभाओं और जलूसोंकी मनाही ही है। लेकिन यदि सरकार अब भी इसी बातपर आग्रह करती है कि रियासत कांग्रेसने गांधीजी को गुमराह किया है तो उचित यह होगा कि इसको वह प्रमाणोंसे सिद्ध करे।

त्रावणकोरके कानूनके अनुसार सरकारी विज्ञप्तिकी भाषाका मतलब हो सकता है प्रतिबन्ध न हो। लेकिन मैं उसका और कोई अर्थ नहीं लगा सकता था। तकनीकी दृष्टिसे वह चाहे प्रतिबन्ध हो या नहीं, उसका असर यही हुआ कि कांग्रेसके पदाधिकारियोंको अपने कार्यक्रममें से जलूसों तथा प्रदर्शनकी अन्य बातोंको निकाल देना पड़ा। इसलिए सरकारी विज्ञप्तिमें दीवान द्वारा प्रयुक्त भाषा और 'प्रतिबन्ध' में यदि कोई अन्तर है तो वह वैसा ही है जैसा कि साँपनाथ और नागनाथमें होता है। यह भी कहा गया है कि विज्ञप्ति इसलिए निकालनी पड़ी कि सम्मेलन बुलाये जानेपर आपत्ति की गई थी। भला एक बड़ी संस्थाको ठीक तरहसे कार्य-संचालन करने से सिर्फ इसलिए क्यों रोका जाये कि किसीको उसके ऐसा करने में आपत्ति है? मैं तो दीवानसे यह प्रार्थना ही कर सकता हूँ कि वे रियासत कांग्रेसके नेताओंको इतना तंग न करें कि उनकी सहनशक्ति खत्म हो जाये। रचनात्मक संवैधानिक प्रवृत्तियोंके लिए भी उन्हें निकम्मा नहीं बना देना चाहिए। यह उनका विनम्र कार्यक्रम है:

यह सम्मेलन निश्चय करता है कि रियासत कांग्रेसका तात्कालिक कार्यक्रम नीचे लिखे अनुसार होगा:

(१) लोगोंको उत्तरदायी शासनके बारेमें शिक्षित करने के लिए जोरोंके साथ, व्यवस्थित और देशव्यापी प्रचार।

(२) रियासत-भरमें कांग्रेस-संगठनको मजबूत करके आत्म-निर्भर बनाना तथा स्थायी बुनियादपर खड़ा करना।

(३) एक सुनियोजित कार्यक्रमके द्वारा जनताके साथ सच्चा और प्रभावकारी सम्पर्क स्थापित करना; इसमें जन-साक्षरता अभियान और खादी, स्वदेशी और शराबबन्दीपर विशेष रूपसे जोर दिया जाये।

(४) स्थायी स्वयंसेवक और देशसेविका दलकी स्थापना करना।

(५) ऊपर दिये हुए विविध कार्यक्रमोंके लिए कार्यकर्त्ताओंको प्रशिक्षित करने के निमित्त न्यूनतम समयके लिए केन्द्रीय शिविर खोलना।

इस खयालसे कि कोई सन्देह न रहे, यह सम्मेलन यह बतला देना चाहता है कि उपर्युक्त कार्यक्रम सर्वथा संवैधानिक होगा और रियासत कांग्रेसका

इस कार्यक्रमके सिलसिलेमें सरकारसे संघर्ष करने का कोई इरादा नहीं है। इस कार्यक्रमका उद्देश्य तो जनताकी संवैधानिक माँगको अदम्य बना देना है।

वे तत्काल उत्तरदायी शासनकी माँग नही करते। किन्तु उत्तरदायी शासनकी दिशामें प्रजाको तैयार करने का उन्हे निश्चय ही पूरा हक है। त्रावणकोरके महाराजा और उनकी प्रजाके लिए तो वह बड़े गर्वका दिन होना चाहिए जब यह कहा जा सके कि शान्ति और धैर्यके साथ शिक्षा पाते हुए प्रजा अपने राज्यके शासनका उत्तरदायित्व सँभालने के योग्य बन गई है।

सेगाँव, ९ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-१०-१९३९

२७६. एक मन्त्रीका स्वप्न

अगर आप प्रान्तीय सरकारों और लोगोंको इस आशयका सन्देश या निर्देश दे सकें कि तमाम स्कूलोंमें लड़कों और लड़कियोंके लिए कताई और बुनाई अनिवार्य कर दी जानी चाहिए, तो मेरा विश्वास है कि थोड़े ही समयमें स्कूलोंके बच्चे खुद अपना बनाया हुआ कपड़ा पहनने लग जायेंगे। यह पहला कदम होगा। आपके आदर्शोंके प्रति मेरे मनमें आज भी वैसी ही श्रद्धा है, और मैं वह दिन देखने की आशा करता हूँ, जब हरएक घर अपनी जरूरतका कपड़ा खुद बना लेगा, और आपकी ग्रामोद्योग तथा शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओंके अन्तर्गत प्रत्येक गाँव केवल कपड़ेके मामलेमें ही नहीं, बल्कि हरएक जरूरी चीजके सम्बन्धमें स्वावलम्बी बन जायेगा। आपकी तरह मैं भी यह मानता हूँ कि इस देशमें सच्चा स्वराज्य तभी स्थापित हो सकता है, जब प्रान्तीय सरकार अथवा भारत सरकारके बजटके साथ-साथ — जिसे सन्तुलित करने के लिए कृत्रिम उपायों और जोड़-तोड़का सहारा लेना पड़ता है — ग्रामवासी जनताका बजट भी सन्तुलित हो जायेगा।

एक कांग्रेसी मन्त्रीने उपर्युक्त पत्र लिखा है। यदि मेरे पास निरकुश शासक-जैसी सत्ता होती, तो मैं कमसे-कम प्राथमिक स्कूलोंमें कताईको अवश्य अनिवार्य कर देता। जिस मन्त्रीमें श्रद्धा हो उसे ऐसा करना चाहिए। हमारे स्कूलोंमें कितनी ही बेकार चीजोंको अनिवार्य बना दिया जाता है। तब इस अत्यन्त उपयोगी कलाको अनिवार्य क्यों न बना दिया जाये? लेकिन लोकतन्त्रमें किसी चीजको, यदि वह व्यापक रूपसे लोकप्रिय न हो, अनिवार्य नहीं बनाया जा सकता। इस तरह लोकतन्त्रमें अनिवार्यता नाममात्रकी ही होती है। वह आलस्यको दूर करती है, और लोगोंकी इच्छापर जोर-जबरदस्ती नहीं करती। इस प्रकारकी अनिवार्यता शिक्षणकी

एक क्रिया है। मैं इससे सहज एक प्रारम्भिक रास्ता सुझाता हूँ। सबसे अच्छे कातनेवाले लड़के या लड़कीको पुरस्कार दिया जाना चाहिए। इस प्रतिस्पर्धासे सब नहीं तो अधिकांश इसमें भाग लेने के लिए प्रेरित होंगे। किसी भी योजनामें यदि स्वयं शिक्षकोंकी श्रद्धा न हो, तो वह कभी सफल नहीं होगी। प्रान्तीय सरकारें अगर बुनियादी तालीम स्वीकार कर लें, तो कताई इत्यादि पाठ्यक्रमके केवल अंग ही नहीं, बल्कि शिक्षाके वाहन बन जायेंगे। बुनियादी तालीम अगर जड़ पकड़ ले, तो हमारी इस पीड़ित भूमिमें खादी अवश्य सार्वत्रिक और अपेक्षाकृत सस्ती हो जायेगी।

सेगाँव, ९ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-१०-१९३९

२७७. कभी न पटनेवाली खाई

एक मित्रने यह पत्र भेजा है:

> ३० सितम्बर, १९३९के 'हरिजन' में पृष्ठ १ पर प्रकाशित अपने लेखके[1] अन्तमें आपने लिखा है: "गति ही जीवनका अन्तिम ध्येय नहीं है। मनुष्य यदि अपने कामपर पैदल चलकर जाये, तो उसे चीजोंको देखने-समझने का ज्यादा अच्छा अवसर मिलता है, और वह अधिक सच्चा जीवन व्यतीत करता है।"
>
> और इसके नीचे आपने लिखा है: "शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें"। मुझे आश्चर्य होता है कि आपमें इतनी अधिक विनोद-वृत्ति होते हुए भी आप यह क्यों नहीं देख सके कि 'शिमला जाते हुए रेलगाड़ीमें'—ये शब्द 'मनुष्य यदि अपने कामपर पैदल चलकर जाये, तो उसे चीजोंको देखने-समझने का ज्यादा अच्छा अवसर मिलता है, और वह अधिक सच्चा जीवन व्यतीत करता है', इस वाक्यको उपहासास्पद बना देते हैं।

एक जमाना था, जब मेरे इन मित्रको मेरी कार्य-पद्धतिपर आस्था थी, और इनका बहुमूल्य समर्थन मुझे प्राप्त था। लेकिन न जाने कैसे अब मैं उनकी नजरोंमें गिर गया हूँ। उन्होंने मेरे जिस लेखका मजाक उड़ाया है, उसके पीछे जो सुन्दर विनोद था उसे समझने में उन्हें कठिनाई नहीं होनी चाहिए थी। लेकिन मुझे उनके मजाकमें जो डंक है उसे निकालकर फेंक देना चाहिए; और इसलिए अपने मित्रको मैं यह बतला दूँ कि मैंने जब चर्चित लेख लिखा तब मेरा दिमाग ठिकाने पर था। जिस जगह यह लिखा गया था उस जगहका उल्लेख मैं आसानीसे टाल सकता था।

१. देखिए पृ० २२३।

पर मैं अपनी बातको ज्यादा वजन देना चाहता था, और मेरे तथा मेरे आदर्शके बीच जो गहरी खाई है, उसमें पाठकोंको अवगत कराना चाहता था। जिनके पैर डगमगाते हों, वे इस तथ्यको हृदयमें अंकित कर ले कि यद्यपि मेरे आदर्शका स्पष्ट विरोध प्रदर्शित करनेवाली मेरी टिप्पणीने इन मित्रको विनोदका एक कारण दिया है, तो भी मैंने ऐसी साख हासिल कर ली है कि मैं जिन आदर्शोंका दावा करता हूँ उनके अनुरूप आचरण करने का भरसक प्रयत्न भी करता हूँ। मुझे यदि अपने आदर्शके अधिकाधिक समीप पहुँचने का अनवरत प्रयत्न करना है, तो मुझे चाहिए कि संसारको अपनी निर्बलताएँ और निष्फलताएँ भी देखने दूँ, ताकि मैं दम्भसे बच जाऊँ और शर्मके मारे भी इस आदर्शको प्राप्त करने की यथाशक्ति साधना करूँ। इन मित्रने मेरे लेखमें अन्तर्विरोध होने की जो बात कही है, उससे यह भी जाहिर होता है कि आदर्श और व्यवहारके बीच हमेशा एक ऐसी खाई रहती है जो कभी पाटी नहीं जा सकती। आदर्शको प्राप्त करना यदि शक्य हो जाये, तो वह आदर्श ही नहीं रहेगा। आनन्द तो साधनामें है, सिद्धिमें नहीं। क्योंकि ज्यों-ज्यों हम अपने ध्येयकी ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों अधिकाधिक मनोरम दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं।

लेकिन अब मैं अपने पत्र-लेखक मित्रके व्यंग्यपर आता हूँ। उनसे तथा अपने पाठकोंसे मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैं जो उन पंक्तियोंको लिख सका उसका कारण यह है कि मुझे मोटरमें या रेलमें अथवा बैलगाड़ीमें भी बैठकर मुसाफिरी करने में कोई आनन्द नहीं आता। आनन्द तो हमेशा पैदल चलने में ही आता है। रेलकी एक-एक पटरी उखाड़ ली जाये, और मरीजों और अपंगोंके सिवा सबको अपने-अपने कामपर पैदल चलकर जाना पड़े, तो मुझे इसका जरा भी दुःख नहीं होगा। मैं ऐसी सभ्यताकी कल्पना कर सकता हूँ, जिसमें मोटरका मालिक होना कोई श्रेयकी बात नहीं मानी जायेगी, और जिसमें रेलके लिए कोई स्थान नहीं होगा। इतना ही नहीं, बल्कि उस सभ्यताकी स्थापनाके लिए मैं प्रयत्न भी कर रहा हूँ। संसार किसी समय जितना विशाल था, यदि वह फिरसे उतना विशाल बन जाये, तो मेरे लिए यह कोई दुःखद घटना नहीं होगी। 'हिन्द-स्वराज्य' १९०९में[1] लिखा गया था। उसके बाद उसके बहुत-से संस्करण प्रकाशित हुए हैं और संसारकी अनेक भाषाओंमें उसके अनुवाद भी हुए हैं। गत वर्ष श्रीमती सोफिया वाडियाका 'हिन्द-स्वराज्य' का जो संस्करण निकाला था उसके लिए उन्होंने मुझसे प्रस्तावना[2] लिखने के लिए कहा। इसलिए मुझे उसे एक बार फिर ध्यानसे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पाठक जान ले कि मैं उसमें व्यक्त एक भी विचारमें परिवर्तन नहीं कर सका। उसकी भाषामें भी कोई हेरफेर करने की मेरी इच्छा नहीं हुई। यह मूल गुजरातीका अच्छा अनुवाद है। इतनी सादी (कि शायद मूर्खतापूर्ण समझी जा सकती है) इस छोटी-सी पुस्तकको समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि यह

१. तथापि साधन-सूत्रमें "१९०८" है; देखिए खण्ड १०।

२. देखिए खण्ड ६७, पृ० १९१-९२।

तथाकथित अज्ञान और अन्धकारके युगमें पीछे लौटने का प्रयत्न नहीं है, बल्कि वह ऐच्छिक सादगी, गरीबी और धीमेपनमें सौन्दर्यको देखने का प्रयत्न है। इसे मैंने अपना आदर्श चित्रित किया है। मैं खुद इस आदर्शतक कभी पहुँचने का नहीं, इसलिए देशसे भी इसतक पहुँचने की मैं अपेक्षा नहीं कर सकता। लेकिन आज लोगोंमें नित नयी वस्तु प्राप्त करने की जो ललक दिखाई देती है, आकाशमें विचरण करने और अपनी आवश्यकताओंको निरन्तर बढ़ाते जाने की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है उसके प्रति मेरे मनमें कोई मोह नहीं है। ये सब बातें हमारी अन्तरात्माका हनन करती हैं। मनुष्यकी बुद्धि आज जिन चकरा देनेवाली ऊँचाइयोंको छूने का प्रयास कर रही है, उससे हम अपने सिरजनहारसे दूर होते जा रहे हैं, उस सिरजनहारसे जो हमारे उतना ही करीब है जितना कि नख उँगलीके करीब होता है।

इसलिए, जब मैं घंटेमें चालीस मीलकी रफ्तारसे सफर करता हूँ, तब भी मुझे निरन्तर यह भान रहता है कि यह एक ऐसी बुराई है जो आवश्यक हो गई है, और मेरा सर्वोत्तम काम तो ७०० आदमियोंकी बस्तीवाले छोटे-से गाँवमें और उसके आस-पासके गाँवोंमें है, जहाँ मैं वहाँसे पैदल चलकर जा सकता हूँ। लेकिन अत्यन्त व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते केवल यह बताने के लिए कि मेरे आचरणमें मूर्खताकी हदतक संगति है, मैं रेल या मोटरकी मुसाफिरीसे नहीं बच सकता। पाठक जान लें कि १९३३-३४ में ठक्कर बापा द्वारा आयोजित तूफानी हरिजन-यात्राके[1] दौरान मैंने उनसे धीरेसे कहा था कि मैं तो यह सारी यात्रा पैदल ही करना चाहूँगा, पर उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी। और उस यात्रामें कई जगह हमारे विरोधमें हिंसात्मक प्रदर्शन हुए। दो या कई बार हम गम्भीर रूपसे घायल होते-होते बचे। यहाँतक कि उनमें से किसी अवसरपर हमारी मृत्यु भी हो सकती थी। जब हम लोग पुरी[2] पहुँचे, तो वहाँ हमें खून-खराबी होने की आशंका दिखाई दी। इसपर मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया और बाकीकी यात्रा पैदल ही करने का आग्रह रखा। ठक्कर बापा तुरन्त मान गये।[3] प्रदर्शनकारी, जो रेल और मोटरकी मुसाफिरी करके प्रदर्शन करने के लिए तैयार थे, पैदल चलनेवाले यात्रियोंका पीछा न कर सके। वे पैदल यात्री रोज सुबह-शाम दो पड़ावोंमें सिर्फ आठ-दस मीलका रास्ता ही तय कर पाते थे। हमारी यात्राका यह सबसे अधिक प्रभावकारी भाग था। इसके परिणामस्वरूप जो जागृति हुई वह ठोस थी। हमें सुन्दर और विविध अनुभव प्राप्त हुए। और प्रदर्शनकारियोंके लिए उत्तेजनाका कोई कारण नहीं रहा। उनकी इच्छा मुझे योजनापूर्वक मार डालने की नहीं थी। वे तो केवल सनसनी फैलाना चाहते थे। जो अहिंसक स्त्री-पुरुष मनुष्यका कोई भय रखे बिना ईश्वरको अपना निश्चित मार्गदर्शक और रक्षक मानकर अपना काम करते पैदल

१. ७ नवम्बर, १९३३ से २ अगस्त, १९३४।

२. ७ मई, १९३४ को; देखिए खण्ड ५७।

३. गांधीजी ने अपनी पद-यात्रा ९ मई, १९३४ से शुरू की थी।

जा रहे हों, उनका विरोध करनेवालों को सनसनी फैलाने का, हो-हल्ला करने का अवसर ही कहाँसे मिलेगा?

सेगांव, १० अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १४-१०-१९३९

२७८. कसौटीपर

कार्य-समितिके सदस्योंके साथ चर्चा करते हुए मैंने देखा कि उनकी अहिंसा अहिंसा-शस्त्रसे ब्रिटिश सरकारके खिलाफ लडने से आगे कभी नही गई। अबतक मैं इस विश्वाससे चिपटा हुआ था कि संसारकी सबसे बड़ी साम्राज्यवादी सत्ताके खिलाफ लड़ने में गत बीस वर्षोंसे हमने अहिंसाका जो अमल किया है उसके तर्क-फलित परिणामको कांग्रेसजनोंने पहचान लिया है। लेकिन अहिंसा-जैसे बड़े-बडे प्रयोगोंमें कल्पित प्रश्नोंके लिए मुश्किलसे ही कोई गुंजाइश होती है। ऐसे प्रश्नोंके उत्तरमें मैं खुद कहा करता था कि जब हम वस्तुतः स्वतन्त्रता हासिल कर लेंगे तभी हम यह देख सकेंगे कि हम अपनी रक्षा अहिंसात्मक तरीकेसे कर सकते हैं या नही। लेकिन आज यह प्रश्न कल्पित नही रह गया है। ब्रिटिश सरकार हमारे हकमें कोई घोषणा करे या न करे, भारतपर आक्रमण होने पर कांग्रेस क्या मार्ग अपनायेगी, यह उसे निश्चय करना है। कारण, भले ही सरकारके साथ कोई समझौता न हो, लेकिन कांग्रेसको अपनी नीति घोषित करनी ही होगी और उसे यह बताना ही होगा कि आक्रमणकारी सेनाका मुकाबला वह हिंसात्मक साधनोंसे करेगी या अहिंसात्मक साधनोंसे।

जहाँतक मैं कार्य-समितिके विचारोको, काफी लम्बी चर्चाके बाद, समझ सका हूँ, उसके सदस्योंका खयाल है कि अहिंसात्मक साधनोंके जरिये सशस्त्र आक्रमणसे देशकी रक्षा करने के लिए वे तैयार नहीं हैं।

यह दुःखद प्रसंग है। निश्चय ही अपने घरसे शत्रुको निकाल बाहर करने के लिए जो उपाय काममें लाये जाते हैं, वे उन उपायोंसे, जो उसे घरमें न घुसने देने के लिए अपनाये जायें, मिलते-जुलते होने चाहिए। और शत्रुको घरसे निकालने की अपेक्षा उसे घरमें न घुसने देनेका काम तो आसान ही होना चाहिए। बहरहाल, हकीकत यह है कि हमारी लड़ाई बलवानकी अहिंसात्मक लड़ाई नहीं रही है। वह दुर्बलका निष्क्रिय प्रतिरोध रही है। यही वजह है कि इस महत्त्वके क्षणमें हमारे दिलोंसे अहिंसाकी शक्तिमें हमारी ज्वलन्त श्रद्धाकी कोई सहज प्रतिध्वनि नही सुनाई दी। इसलिए कार्य-समितिने समझदारीके साथ ही कहा है कि वह यह तर्क-फलित कदम उठाने के लिए तैयार नहीं है। इस स्थितिमें दुःखकी बात यह है कि कांग्रेस अगर उन लोगोंके साथ शरीक हो जाती है जो भारतकी सशस्त्र रक्षाकी आवश्यकता में विश्वास करते हैं, तो इसका यह अर्थ होगा कि गत बीस बरस यों ही चले

गये और कांग्रेसियोंने सशस्त्र युद्ध-विज्ञान सीखने के प्राथमिक कर्त्तव्यके प्रति भारी उपेक्षा दिखाई। और इतिहास मुझे ही, इस लड़ाईके सेनापतिके रूपमें, इस दुःखद बातके लिए जिम्मेवार ठहरायेगा। भविष्य का इतिहासकार कहेगा कि यह तो मुझे पहले ही देख लेना चाहिए था कि राष्ट्र बलवानकी अहिंसा नहीं, बल्कि केवल निर्बलका निष्क्रिय प्रतिरोध सीख रहा है, और इसलिए कांग्रेसजनोंके लिए मुझे सैनिक शिक्षाकी व्यवस्था करनी चाहिए थी।

भारत किसी-न-किसी तरह सच्ची अहिंसा सीख ही लेगा, इस विचारसे मैं इतना अभिभूत रहा कि मुझे यह सूझा ही नहीं कि सशस्त्र रक्षाके लिए अपने सहकर्मियोसे ऐसा शिक्षण लेनेको कहूँ। इसके विपरीत, मैं तो तलवारबाजी और मजबूत लाठियोंके प्रदर्शनको निरुत्साह ही करता रहा। और विगतके लिए मुझे आज भी पश्चात्ताप नहीं है। मेरी आज भी यही ज्वलन्त श्रद्धा है कि संसारके समस्त देशोंमें भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसाकी कला सीख सकता है, और अगर अब भी उसे इस कसौटीपर कसा जाये, तो सम्भवत: ऐसे हजारों स्त्री-पुरुष मिल जायेंगे जो अपने उत्पीड़कोंके प्रति बगैर कोई द्वेषभाव रखे खुशीसे मरनेके लिए तैयार हो जायेंगे। मैंने हजारोंकी उपस्थितिमें बार-बार जोर दे-देकर कहा है कि बहुत सम्भव है कि उन्हें बड़ीसे-बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ें, यहाँतक कि गोलियोंका भी शिकार होना पड़े। नमक-सत्याग्रहके दौरान क्या हजारों पुरुषों और स्त्रियोंने किसी भी सेनाके सैनिकोंके ही समान बहादुरीसे तरह-तरहकी मुसीबतें नहीं झेली थी? अगर भारतको आक्रमणकारियोंका सामना करना है तो वह जिस योग्यताका परिचय दे चुका है उससे भिन्न योग्यताकी आवश्यकता उस प्रयोजनके लिए नहीं है। अलबत्ता उस योग्यताका प्रयोग एक बृहत्तर पैमानेपर करना जरूरी है।

एक चीज नहीं भूलनी चाहिए। नि.शस्त्र भारतके लिए यह जरूरी नहीं कि उसे जहरीली गैसों या बमोंसे ध्वस्त होना पड़े। मैजिनो-रेखाने[1] सीगफ्रीड-रेखाको[2] जरूरी बना दिया है, और सीगफ्रीड-रेखाने मैजिनोको। मौजूदा तरीकोंमें हिन्दुस्तानकी रक्षा इसलिए जरूरी हो गई है कि वह आज ब्रिटेनका एक उपांग है। स्वतन्त्र भारतका कोई शत्रु नहीं हो सकता। और यदि भारतवासी दृढ़तापूर्वक सिर न झुकाने की कला सीख गये हों और उसपर पूरा अमल करने लगे हों, तो मैं यह कहने की जुर्रत करूँगा कि हिन्दुस्तानपर कोई आक्रमण करना नहीं चाहेगा। हमारी अर्थनीति इस प्रकारकी होगी कि शोषकोंके लिए वह कोई प्रलोभनकी वस्तु सिद्ध नहीं होगी।

लेकिन कुछ कांग्रेसजन कहेंगे: 'ब्रिटेनकी बातको दरकिनार कर दिया जाये, तब भी हिन्दुस्तानके सीमावर्ती क्षेत्रोंमें बहुत-सी सैनिक जातियाँ रहती हैं। वे मुल्ककी रक्षाके लिए, जो उनका भी उतना ही है जितना कि हमारा, युद्ध करना चाहेंगी।' यह बिलकुल सच है। इसलिए इस क्षण मैं केवल कांग्रेसजनोंकी ही बात कह रहा

१. फ्रांस और जर्मनीकी सीमापर फ्रांसीसियोंकी सुरक्षा-पंक्ति
२. फ्रांस और जर्मनीकी सीमापर जर्मनोंकी सुरक्षा-पंक्ति

हूँ। आक्रमणकी हालतमें वे क्या करेंगे? जबतक कि हम अपने सिद्धान्तोंपर मर मिटने के लिए तैयार न हो जायेंगे, हम सारे हिन्दुस्तानको अपने मतका नही बना सकेंगे।

इससे विपरीत राहके बारेमें सोचने पर मेरा मन कांप उठता है। उत्तरके मुसलमान, सिख और गोरखे तो पहलेसे ही सेनामें बहुत बड़ी सख्यामें भरे हुए हैं। अब अगर दक्षिण और मध्य भारतके जनसमुदाय भी सैनिक शिक्षा लेना चाहें तो काग्रेसको, जो उनकी प्रतिनिधि मानी जाती है, उनके साथ होड़में उतरना पड़ेगा। उस हालतमें काग्रेसको भारी सैनिक खर्चपर सहमति देनी होगी। वैसे तो काग्रेसकी सहमतिके बिना भी यह सब हो सकता है। लेकिन उसमें काग्रेसकी सहमति है या नही, इन दोनो स्थितियोंमें जमीन-आसमानका अन्तर होगा। ससार भारतसे किसी नयी और बेमिसाल वस्तुकी आशा रखता है। यदि काग्रेस उसी जर्जर कवचको धारण करती है जो बाकी दुनिया धारण किये हुए है तो वह भीड़में खो जायेगी। आज अगर कांग्रेसका नाम है, तो वह इस कारण कि वह सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक अस्त्रके रूपमें अहिंसाका प्रतिनिधित्व करती है। यदि काग्रेस मित्र-राष्ट्रोकी मदद अहिंसाकी प्रतिनिधिके रूपमें करती है तो उससे मित्र-राष्ट्रोके पक्षको ऐसी प्रतिष्ठा और नैतिक शक्ति मिलेगी जो युद्धके अन्तिम निर्णयमें एक अमूल्य योगदान साबित होगी। लेकिन कार्य-समितिके सदस्योंने बड़ी ईमानदारी और साहसके साथ यह स्पष्ट कर दिया है कि वे इस कोटिके अहिंसावादी होने का दावा नही करते।

इसलिए मैंने यहाँ जो विचार व्यक्त किया है वह मुझतक ही सीमित है। अब मुझे देखना है कि इस सूनी राहपर मेरा कोई हमराही है या नही। अगर मैं अकेला हूँ तो मुझे दूसरोको अपना साथी बनाने की कोशिश करनी है। चाहे मैं अकेला होऊँ या मेरे और साथी भी हो, मुझे तो अपनी इस श्रद्धाकी घोषणा करनी ही है कि अपनी सरहदोकी रक्षाके निमित्त भी हिंसाका त्याग ही भारतके लिए अधिक श्रेयस्कर मार्ग है। भारतका शस्त्रीकरणकी होड़में शामिल होना उसके लिए आत्महत्याके समान होगा। भारतके अहिंसाका दामन छोड देने का मतलब यह होगा कि संसारकी आशा का यह एकमात्र सूत्र भी टूट गया। गत पचास वर्षोंसे जिस सिद्धान्तकी मैं दुहाई देता आया हूँ, उसे अपने आचरणमें मुझे उतारना ही है, और मैं तो अपनी आखिरी साँसतक इस आशाको कायम रखूंगा कि एक-न-एक दिन भारत अहिंसाको धर्मके रूपमें स्वीकार करेगा, मनुष्यकी गरिमाकी रक्षा करेगा, और जिस बर्बर अवस्थासे मनुष्य अपनेको ऊपर उठा चुका माना जाता है, उसमें फिर जा गिरने से उसे रोकेगा।

सेगाँव, १० अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १४-१०-१९३९

२७९. पत्र : शिवाभाई जी० पटेलको

सेगाँव, वर्धा
१० अक्तूबर, १९३९

चि० शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। लगता है कि तुमने अच्छा काम किया है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुनी आश्रमी केलवणी, पृ० ७०

२८०. बातचीत : एक मित्रके साथ[1]

सेगाँव
[१० अक्तूबर, १९३९ या उसके पश्चात्][2]

मित्र : हम लोग कई बरसोंसे पूरे गांधीवादी रहे हैं और हम नहीं जानते कि इस संकट-कालमें हमें क्या करना चाहिए। कार्य-समितिके इस प्रस्तावने हमें परेशानीमें डाल दिया है।

गांधीजी : पर मुझे आप यह तो बतलाइए कि 'पूरे गांधीवादी' से आखिर आपका आशय क्या है?

आशय उन लोगोंसे है जो किसी भी स्थितिमें आपके सिद्धान्तोंपर चलने के लिए तैयार हैं।

अच्छा, तब तो मैं आपको बता दूं कि ऐसा गांधीवादी तो मैं खुद भी नहीं हूँ, क्योंकि सत्य और अहिंसाके जिन आदर्शोंकी मैंने कल्पना कर रखी है, उनपर मैंने खुद पूरा-पूरा अमल नहीं किया है।

१ और २. यह बातचीत महादेव देसाई द्वारा लिखित "आउट-ऐंड-आउट गांधीआइट" (पूरे गांधीवादी) शीर्षकसे उद्धृत की गई है। इसमें उन्होंने बताया था: "एक मित्र, जो एक गाँवमें कुछ वर्षोंसे ग्रामसेवा केन्द्र चलाते हैं, महासमितिकी बैठकमें भाग लेने वर्धा आये और वहाँसे गांधीजीसे मिलने सेगाँव आये थे।" अ० भा० कां० क०का अधिवेशन ९ और १० अक्तूबरको वर्धामें हुआ था।

आपके आशयको तो मैं अच्छी तरह समझता हूँ। मैं तो सिर्फ यह कहना चाहता था कि हम लोग अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार आपके बताये हुए रचनात्मक कार्य करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यदि सविनय अवज्ञा आन्दोलन छिड़ जाता है तो हमें क्या करना होगा? महासमितिके प्रस्तावके[1] पक्षमें हमने इसलिए अपना मत दिया क्योंकि वह राजेन्द्र बाबू, सरदार तथा अन्य सदस्योंका बनाया हुआ अधिकृत प्रस्ताव था। लेकिन जब हम अहिंसाकी बात सोचते हैं, तब हमारी समझमें यह नहीं आता कि उसके पक्षमें हम किस तरह मत दे सके।

उक्त प्रस्तावके पक्षमें मत देना अहिंसाके विरुद्ध नही था। आप जो-कुछ करेंगे, वह महत्त्वका है। और जैसा कि आप 'हरिजन'[2] के अगले अकसे देखेंगे, मैं आप-जैसे मित्रोंके लिए इस प्रश्नपर लिखना शुरू कर रहा हूँ। हर सप्ताह आप स्थितिको अधिकाधिक स्पष्ट होते देखेंगे। पर मै आपके लिए उसका थोडेमें सार देता हूँ। सविनय अवज्ञाका अभी कोई प्रश्न नही उठता। कारण, उसके लिए आज वातावरण नही है — खासकर १९३० और १९३२ में जिस प्रकार सविनय अवज्ञा हुई थी, उस अर्थमें सविनय अवज्ञाका प्रश्न तो कतई नही उठता। अगर हमारा तमाम रचनात्मक कार्य करना असम्भव बना दिया जाये, यानी सरकार हमें बहुत ज्यादा तग करने लगे तो सम्भव है कि हमें सविनय अवज्ञा करनी पड़े। मुझे ऐसी किसी चीज का भय नही है। कुछ भी हो मै 'गाधीवादियो' को अँधेरे में नही रखूँगा। हर हफ्ते मैं जो-कुछ लिखूँ आपको उसे ध्यानपूर्वक समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

लेकिन मेरी कठिनाई तो यह हैं। रचनात्मक कार्यके द्वारा, जो सक्रिय अहिंसा है, शक्तिका विकास करने में हमारी दृढ़ श्रद्धा है। पर क्योंकि हम कांग्रेसके अविभाज्य अंग हैं, इस कारण सम्भव है कि सरकार हमारे आश्रमोंके विरुद्ध कारवाई करे और १९३० की तरह उनपर कब्जा कर ले।

यह तो इसपर निर्भर करता है कि काग्रेस क्या करेगी। मान लीजिए जिस बातकी सम्भावना हम नही देखते वह हो जाती है और काग्रेस आक्रामक सविनय अवज्ञाका रास्ता अपनानेका निर्णय कर लेती है — जिसके लिए जैसा कि मैंने कहा है, आज अनुकूल वातावरण नही है — तो आपको अपना आश्रम काग्रेससे अलग कर लेना होगा। यानी 'कायर' कहे जाने की जोखिम उठाकर भी आप काग्रेससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेंगे।

समझा, समझा! एक चीज और है, जिसके बारेमें मैं आपसे पूछना चाहता था। आश्रममें हमारे रोजमर्राके कामोंके सिलसिलेमें अक्सर झगड़े होते रहते हैं।

इसलिए आप समझ सकते है कि आप अभी पूरे गाधीवादी नही बन सके है।

नहीं, पर बात यह है कि आपके सिद्धान्तोंमें हमारी अटूट श्रद्धा है, और सिर्फ इसी अर्थमें मैंने उस शब्दका प्रयोग किया था।

१. देखिए परिशिष्ट ११।
२. देखिए पृ० २७६-७७।

पर अगर उस श्रद्धाके होते हुए भी, वे लोग झगड़ते है, तब यह कहना चाहिए कि उन्होने अभी 'गांधीवाद' का 'क ख ग' भी नहीं समझा है। वह श्रद्धा किस कामकी जो कार्यमें परिणत न की जाये?

सत्य और अहिंसाका राग हम यो ही अलापते फिरें, और अपने दैनिक जीवनमें उससे दूर भागें, यह उचित नही है। गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तको लीजिए। खोजके इसी सिद्धान्तपर आधारित अन्य सिद्धान्तोंकी खोज हुई। इसी तरह जबतक आप अहिंसाके सिद्धान्तके नये-नये अनुप्रयोगोंकी खोज नहीं करेंगे, तबतक आप उससे लाभ नही उठा सकेंगे। आपको उसे एक विज्ञानमें परिणत करना है। आपके आश्रममें रोज झगड़े होते रहते है, जिनके कारण शान्तिसे काम करना असम्भव या कठिन हो जाता है, इसका अर्थ यह हुआ कि वहाँ अहिंसापर अमल नही हो रहा है। लेकिन आप यह खयाल लेकर मत जाइएगा कि सेगाँवमें हमारे यहाँ झगड़े वगैरह नही होते। हमारे यहाँ भी होते है, और यही कारण है कि मैंने यह कहा, मैं 'पूरा गांधीवादी' नही हूँ। लेकिन यदि मुझे सचमुच ऐसा जान पड़े कि इन झगड़ोसे सामुदायिक जीवन असम्भव हो जायेगा तो मै इस संस्थाको बन्द कर दूँगा। यह कोई असम्भव बात नही है। यदि यह विचार मेरे दिलमें घर कर ले तो मै अपने उस कर्त्तव्यसे मुँह नही मोड़ूँगा। तो मेरा मतलब यह है कि कठिनाइयाँ तो सभी जगह बहुत ज्यादा है। ईश्वर आपको, मुझे और हम सबको मार्ग दिखाये।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-१०-१९३९

२८१. पत्र : हरिभाऊ जो० फाटकको

सेगाँव,
१२ अक्तूबर, १९३९

प्रिय हरिभाऊ,

तुमने मुझे जो लिखा है सो लिखकर ठीक ही किया है। तात्याजीने[1] तुमसे जो-कुछ कहा वह तो पुरानी शिकायत है। मुझमें घमण्ड नही है। इस विषयमें मैं अपनेको दोषी नही मानता। मै तो यह भी नही समझ पाया कि उनका इशारा किस ओर है। मुझे दावतें दिये जाने का यह भला क्या किस्सा है? उनका तथा उनके मित्रोंका मन जीतने की मैंने बहुत कोशिश भी की है। सावरकरके घर मैं पैदल चलकर गया। उनका मन जीतने का मैंने विशेष रूपसे प्रयास किया, किन्तु असफल रहा।

१. सम्भवतः न० चि० केलकर। हिन्दू महासभाके अध्यक्ष विनायक दामोदर सावरकरके लिए भी इस आदरसूचक सम्बोधनका प्रयोग किया जाता था।

अब चूंकि तुमने मेरी बात सुन ली है, अब तुम्ही मुझे बताओ कि उन लोगोको जीतने का मुझे कौन-सा जतन करना चाहिए।[1]

तुम्हारी पुस्तक मिलते ही मैं उसे देख डालूंगा।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८०२)से, सौजन्य : हरिभाऊ जी० फाटक

२८२. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

१२ अक्तूबर, १९३९

प्रिय डॉ० विधान,

आपके मनमें मेरे प्रति जो स्नेह है सो मैं जानता हूँ, किन्तु इस भारको वहन करने में अपने-आपको बिलकुल असमर्थ अनुभव करता हूँ।[2] जवाहरलाल ही एक ऐसे गतिशील व्यक्ति है जो मेरा स्थान ग्रहण कर सकते है। उनके दृष्टिकोणका भेद स्वत हलका पड़ जायेगा। लेकिन वे अपने नये विचारोके प्रवाहमें आप लोगोको अपने साथ ले जाते हैं तो उस दृष्टिकोण-भेदसे क्या फर्क पड़ता है? जवाहरलालसे ज्यादा साफदिल और ईमानदार व्यक्ति, जिसमें इतनी गतिशीलता हो, हमें नही मिलेगा। इसलिए आप मेरा जो-कुछ उपयोग करना चाहें, उन्हीके माध्यमसे करे। अभीतक मैं समितिके माध्यमसे देशको प्रभावित करता रहा हूँ। अब मैं जवाहरलाल पर जितना प्रभाव डाल सकूंगा, उसीके अनुपातमें यह काम कर सकूंगा। है न?

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई

१. वि० दा० सावरकर, चिमनलाल सीतलवाड, कावसजी जहाँगीर, वी० एन० चन्दावरकर (उदारदलीय), न० चि० केलकर और डॉ० भीमराव रा० अम्बेडकरने बम्बईमें २ अक्तूबरको एक वक्तव्य निकाला था, जिसमें यह मत प्रकट किया गया था कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग भारतकी समस्त या अधिकाश जनताका भी प्रतिनिधित्व नहीं करतीं, और सरकार तथा कांग्रेस और मुस्लिम लीगके बीच होनेवाले किसी भी संवैधानिक या प्रशासनिक समझौतेको मानने के लिए भारतीय जनता बाध्य नहीं है।

२. डॉ० रायने आग्रह किया था कि गांधीजी कांग्रेसकी बागडोर स्वयं सँभाल लें।

२८३. पत्र : कुँवरजी खेतसी पारेखको

सेगाँव, वर्धा
१२ अक्तूबर, १९३९

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि तुम्हारी तबीयत वहाँ ज्यादा ठीक रहती हो तो तुम्हारा वहाँ रहना अच्छा ही है। रामीको छुट्टी देने से अपने खाने-पीनेका क्या करोगे? यदि इसके लिए कुछ बन्दोबस्त किया जा सके तो रामीको जाने दे सकते हो। नागपुरमें सैनिटोरियम नहीं है, लेकिन क्षयरोगके डॉक्टर कुशल, अनुभवी और परमार्थी हैं। बालकोबा और मैथ्यूका इलाज भी उन्होंने ही किया था। तुम्हारे रहने की व्यवस्था वर्धा अर्थात् सेगाँवमें अथवा जहाँ मैं रहूँगा वहाँ होगी। इसलिए यदि वहाँ ठीक न लगे तो यहाँ चले आना। वहाँके डॉक्टरको जाँच कर लेने देना। यदि तुम यहाँ आओ तो रामीके आने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३०)से।

२८४. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव
१३ अक्तूबर, १९३९

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने मौजूदा स्थितिपर अभी हाल में जो प्रस्ताव[2] पास किया है, वह मेरी समझमेंमें नरम और बुद्धिमत्तापूर्ण है। कांग्रेसने सरकारसे स्पष्ट घोषणा करने की जो माँग की है, उसे दुहराना उसके लिए लाजिमी था। इस प्रस्तावकी विशेषता यह है कि इसमें घोषणाके लिए समयकी कोई सीमा निश्चित नहीं की गई है। उल्लेखनीय है कि प्रस्ताव तीन-चौथाई बहुमतसे स्वीकृत हुआ था। आशा की जाती है कि इस परिस्थितिमें कांग्रेस जिस मित्र-भावसे काम ले रही है उसकी ब्रिटिश सरकार कद्र करेगी। यह भी आशा की जाती है कि भारतमें रहनेवाले

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत "ए० आई० सी० सी० रिजोल्यूशन" (अ० भा० कां० कमेटीका प्रस्ताव) उपशीर्षक से प्रकाशित हुआ था। वक्तव्य १४ अक्तूबरके बॉम्बे क्रॉनिकल और हिन्दूमें भी प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए परिशिष्ट ११।

यूरोपीय लोग इसमें कांग्रेसका साथ देंगे। लेकिन इसमें सबसे ज्यादा मदद तो स्वयं कांग्रेसी ही कर सकते हैं। यदि वे ईमानदारीसे व्यवहार नही करेंगे तो बाहरी सहानुभूति और सहायतासे भी हमें कोई लाभ नही होनेवाला है। मै देखता हूँ कि कुछ कांग्रेसी बहुत अधीर हो उठे है और युद्धके खिलाफ कुछ कर दिखाना चाहते हैं; क्योंकि उनका विचार है कि यह युद्ध साम्राज्यवादकी रक्षा करने के उद्देश्यसे लड़ा जा रहा है। मैं उनसे कह देना चाहूँगा कि यदि वे कांग्रेसके निर्णयका, जो किसी लोकतान्त्रिक संगठनके लिए निर्णय लेने के एकमात्र तरीके के अनुसार लिया गया है, विरोध करेंगे तो वे सामान्य उद्देश्यका अहित करेंगे। उन्हें जो कहना था वह वे अ० भा० का० क० के सम्मुख कह चुके। वे तबतक सीधी कार्रवाई नही कर सकते जबतक कार्यकारिणी अथवा अ० भा० कां० क० कोई और निश्चय नही करती। ऐसे किसी भी संगठनपर भरोसा नहीं किया जा सकता जो अपने सदस्योंपर प्रभावकारी नियन्त्रण नही रख सकता। एक ऐसी सेनाकी कल्पना कीजिए जिसके सैनिक सदर मुकामके आदेशोंके विरुद्ध इस झूठे विश्वासके साथ कोई और कदम उठाते है कि ऐसा करके वे सामान्य उद्देश्यको आगे बढ़ा रहे है। उनकी ऐसी कार्रवाईसे तो पराजय ही मिलेगी। इसलिए मैं कांग्रेसियोंसे विनयपूर्वक निवेदन करता हूँ कि ऐसे संकटके समय कोई भी ऐसी कार्रवाई न करें जिससे अनुशासन-हीनता अथवा अवज्ञाकी गन्ध आती हो। उन्हें निश्चय ही यह समझ सकना चाहिए कि उनकी ऐसी कार्रवाईसे कांग्रेसकी प्रतिष्ठाको आघात पहुँचेगा और उसका प्रभाव भी कम हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-१०-१९३९

२८५. खाँड़के बारेमें एक भ्रम

श्री गजानन नायकका यह लेख, जिसमें यह दिखाया गया है कि खाँड़ बनाने के लिए ईख और चुकन्दरकी अपेक्षा ताड़-खजूर कही बढकर है, चीनीके विशेषज्ञोंकी आलोचनाके लिए नीचे दिया जाता है:[1]

> खाँड़, अपने शुद्ध रूपमें, कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजनकी बनी हुई होती है (का० १२, हा० २२, आ० ११)। इसलिए वह जमीनमें से किसी चीजको सोखती नहीं। लेकिन खाँड़ बनाने के लिए आज मुख्यतः चुकन्दर और ईख, इन दो चीजोंकी खेती की जाती है, और जिस जमीनमें ये चीजें उगती हैं उसमें से अनेक तत्त्वोंको अपने विकासके लिए खींच लेती हैं। इसलिए इस

१. अ० भा० ग्रामोद्योग संघके गुड़-विभागके अध्यक्ष गजानन नायकके लेखसे केवल कुछ अंश ही यहाँ दिये जा रहे हैं।

काश्तके कारण जमीनका रस चूस लिया जाता है। इससे भी अधिक खराबी तो यह है कि आज यूरोपमें चुकन्दर और गरम देशोंमें ईखकी खेती जो जगह घेरती है, उसका उपयोग अन्न और घास-चारेके लिए हो सकता है, और होना चाहिए। . . .

लेकिन लोगोंको खाँड़ तो मिलनी ही चाहिए। ज्यादा अच्छी फसलके लायक जमीन इसमें फँसाये बगैर इसे प्राप्त करने का क्या कोई रास्ता है? हाँ, श्री डेवरी नामक एक विशेषज्ञने गिजेनकी कांग्रेसमें जो राय व्यक्त की उसके अनुसार ऐसा करना सम्भव है (वाट्स डिक्शनरी ऑफ इकनॉमिक प्रोडक्ट्स ऑफ इंडिया', खण्ड १, पृष्ठ ३०१-४)। वे कहते हैं कि ताड़के पेड़ जितनी खाँड़ जरूरी है उतनी दे सकते हैं, क्योंकि ताड़के पेड़ ऐसी जमीनमें उगाये जा सकते हैं जिसपर यदि अनाज पैदा करने का प्रयत्न किया भी जाये तो विफल रहेगा।

गुड़के उद्योगके लिए ताड़-खजूरोंका क्या स्थान है, इसपर यह मत बहुत रोशनी डालता है। शराबबन्दीके कारण बेकार हो जानेवाले ताड़-छेदकोंको परोपकार-वृत्तिसे केवल रोजगार दिलाने के उपाय ढूँढ़ने की दृष्टिसे देखना गलत होगा। . . . राष्ट्रीय कृषिके सन्दर्भमें इसके विकासकी अपार सम्भावनाएँ हैं। . . .

एक ही खेतमें हर साल ईखकी खेती करनेमें कोई लाभ नहीं। उसमें एक साल ईख, तो दूसरे साल कोई अनाज उगाना पड़ता है। . . . ईखकी खेती हर साल करनी पड़ती है, जबकि ताड़-खजूर केवल एक बार उगाने से २० से लेकर ५० बरसतक खाँड़ देता है। ईखके लिए बहुत खाद और नियमित पानीकी जरूरत पड़ती है, जबकि ताड़-खजूरोंके लिए न खाद की जरूरत है, न पानीकी। . . . ताड़-खजूरोंके पेड़ोंपर आँधी, बाढ़ या सूखेका कोई असर नहीं होता। और एक महत्त्वकी बात यह है कि ईखका गुड़ बनाने में मशीनोंके बने हुए औजारों — जैसे कोल्हू — की जरूरत पड़ती है, जबकि ताड़-गुड़ बनाने के सारे साधन गाँवोंमें प्राप्त हो सकते हैं, और ईखका गुड़ बनाने के साधनोंकी तुलनामें इनकी कीमत नगण्य होती है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-१०-१९३९

२८६. पत्र : अबुल कलाम आजादको

सेगाँव, वर्धा
१४ अक्तूबर, १९३९

प्रिय मौलाना साहब,

हमें इस मामलेमें[1] अपनी नीतिकी घोषणा कर देनी चाहिए या कुछ-न-कुछ करना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे. गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९, सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. यहाँ उल्लेख बिहार विधान-सभामें मुस्लिम स्वतंत्र पार्टीके नेता मुहम्मद यूनुसके ९ अक्तूबरके पत्रसे है, जिसमें उन्होंने लिखा था: "हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके विषयपर आपके साथ हुए पत्र-व्यवहारके सिलसिलेमें मैं आपका ध्यान पुनः उनकी विषय-वस्तुकी ओर खींचता हूँ और यदि आप निम्नलिखित प्रश्नोंका निपटारा कर दें तो मेरे विचारमें अब समय आ गया है कि हम फौरन कुछ समझौता कर लें: (१.) प्रत्येक व्यक्तिको बिना किसी रोक-टोक और हस्तक्षेपके अपने अधिकारोंका उपयोग करनेका हक प्राप्त होना चाहिए, बशर्ते कि वह इस ढंगसे हो जिससे कि उसके पड़ोसीकी भावनाओंको आघात न पहुँचता हो। (इसके अन्तर्गत प्रत्येक जातिको सड़कोंपर जलूस निकालने, बलि या किसी अन्य प्रयोजनसे किसी भी पशुकी हत्या करने तथा मनपसन्द ढंगसे प्रार्थना करनेके अधिकार प्राप्त होंगे)। (२.) अब चूँकि मुसलमानोंकी जनसंख्या बढ़कर समस्त भारतकी जनसंख्याकी लगभग एक-तिहाई हो गई है, इसलिए सारे केन्द्रीय विधान-मण्डलोंमें मुसलमानोंको भी एक-तिहाई प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए और सरकारी नौकरियोंमें भी उन्हें एक-तिहाई स्थान दिये जाने चाहिए। मेरे दिये हुए सुझावोंमें से ये कुछ-एक हैं और मेरा आपसे अनुरोध है कि इस प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार करें, ताकि इसका तत्काल ही कोई समाधान ढूँढ़ा जा सके। लगभग पिछले दो सालसे मैं आपको लिख रहा हूँ और अब अगर मैं साग्रह निवेदन करूँ कि इस सिलसिलेमें जल्दी कार्रवाई करवायें — विशेषकर मौजूदा हालातको देखते हुए — तो आशा है आप इसे मेरी अधीरता नहीं मानेंगे।" देखिए अगला शीर्षक भी।

२८७. पत्र : मुहम्मद यूनुसको

[१४ अक्तूबर, १९३९][1]

प्रिय मित्र,

आपसे मैं तंग आ जाऊँ, ऐसा कभी नही हो सकता। यह जरूर है कि मुझे तानाशाह-जैसे अधिकार प्राप्त नही है, लोग भले कुछ भी कहे। यह काम किसी एक व्यक्तिके करने का नही है। आपका पत्र मैं मौलाना अ० क० आजादको भेज रहा हूँ।

अंग्रेजीकी नकलसे : गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२८८. पत्र : एन० एस० हर्डीकरको

सेगाँव, वर्धा (सी० पी०)
१४ अक्तूबर, १९३९

प्रिय डॉ० हर्डीकर,

मैं मैसूरवाले मित्रोंसे मिल चुका हूँ। दीवानके साथ पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। यदि कुछ नतीजा निकला तो तुम्हें सूचित करूँगा।[2]

दिवाकरसे कहना कि फिलहाल मैसूर न जाये। आशा है, तुम बेहतर होगे।[3]

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजीसे : एन० एस० हर्डीकर पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. पत्रमें मुहम्मद यूनुसका पत्र अ० क० आजादको भेजने की जो बात कही गई है, उसके आधारपर तारीख तय की गई है; देखिए पिछला शीर्षक।

२. द इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २७७ के अनुसार राज्य सरकार दीवान सर मिर्जा इस्माइल, वल्लभभाई पटेल तथा जे० बी० कृपलानीके बीच हुए १९३८ के समझौतेमें किये गये वादोंको पूरा करने में असफल रही थी। रियासत कांग्रेस चुप रहने को तैयार नहीं थी। तथापि संघर्षसे बचने के लिए हर सम्भव उपाय ढूँढ़ आजमा लेने के विचारसे रियासत कांग्रेसने दीवानसे भेंट करने का प्रयत्न किया, जिसका कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। सरकारके उत्तरकी प्रतीक्षामें ही सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी अन्तिम अवधि अर्थात् १ सितम्बर, १९३९ के बीत जाने पर आन्दोलन जारी कर दिया गया। देखिए पृ० ३१६-१७ भी।

३. देखिए "पत्र: एन० एस० हर्डीकरको", पृ० ३१६-१७ भी, और "मैसूरके लोगोंको लिखे पत्रका अंश", २४-११-१९३९।

२८९. पत्र : ए० ईश्वरनको[1]

सेगाँव, वर्धा
१४ अक्तूबर, १९३९

प्रिय मित्र,

मेरे विचारमें सबसे उत्तम उपयोग बुनियादी शिक्षाके लिए ही हो सकता है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७८) से।

२९०. पत्र : ताताचारको

सेगाँव, वर्धा
१४ अक्तूबर, १९३९

प्रिय ताताचार,

सी० आर० कहते हैं कि "ताताचार मुझसे क्यों नहीं मिलते?" आप उनसे जरूर मिलें। लेकिन उनका ज्यादा समय न लें। जो काम वे नहीं कर सकते वह कोई और नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि कमसे-कम हरिजनोंके मामलेमें[2] मैं तो नहीं कर सकता। कुछ चीजें ऐसी हैं जिनको हमें सहना ही होगा। मैं 'हरिजन' में अगला कदम उठाने की बात तब करूँगा जब अंतरात्मा मुझे प्रेरित करेगी। यह आपके ९ तारीखके पत्रके जवाबमें है।

स्नेह।

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य. प्यारेलाल

१. चित्तूर-स्थित कोचीन अध्यापक संघके कोषाध्यक्ष
२. देखिए "मामलेकी जाँच की जाये", पृ० १७४।

२९१. पत्र : सैयद फैजुल हसनको

सेगांव
१४ अक्तूबर, १९३९

प्रिय सैयद साहब,

आपने मुझे लिखा, यह अच्छा ही किया। लेकिन मैं सुझाव दूंगा कि आप उस विभागके मन्त्रीको लिखिए। मैं मामलेको उनके पास भेजे बिना कुछ नहीं कर सकता।[1] और यह मैं संसदीय बोर्डके जरिये ही कर सकता हूँ। इसका अर्थ होगा समयकी बरबादी। क्या आप मेरा सुझाव स्वीकार करेंगे?

हृदयसे आपका,

सैयद फैजुल हसन साहब
अध्यक्ष, जिला मुस्लिम लीग
बालाघाट, म० प्र०

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

२९२. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेगांव, वर्धा
१४ अक्तूबर, १९३९

भाई वल्लभभाई,

यह पत्र पढ़कर[2] और इसके बारेमें जाँच करनेके बाद पत्र-लेखकको उत्तर देना। मैंने उसे संक्षेपमें उत्तर दिया है कि वह मन्त्रीको लिखे। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। हमें ऐसे मामलोंकी बहुत सूक्ष्मतासे जाँच करनी चाहिए।

कल किशोरलालने मुझे बताया कि तुमने कहा है कि बापूने हमें जवाहरलालको सौंप दिया है, अब वे जो कहेंगे सो हमें करना होगा? इसे तो मैं मजाक समझूं न? मैंने तुम्हें किसीको नहीं सौंपा है। कल और परसों यहाँ रहनेवाले

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. सैयद फैजुल हसनका।

लोगोंके साथ खूब चर्चा हुई। यदि तुम सब अपनी स्वतन्त्रताका प्रयोग नही करोगे और इसकी जिम्मेदारी मुझपर डालोगे तो इससे काम नहीं चलेगा।

राजेन्द्रबाबू कल चले गये?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २३६

२९३. पत्र : रहमान जीवाभाईको

सेगाँव, वर्धा
१४ अक्तूबर, १९३९

भाई रहमानजी,

आपका पत्र मिला। आप जो लिखते हैं उससे मुझे दुःख होता है, आश्चर्य नही। आजकल लोगोंके दिलोमें परस्पर एक-दूसरेके प्रति इतना अविश्वास पैदा हो गया है कि हिन्दू अपरिचित मुसलमानको रखनेमें डरता है। यह भय अवश्य दूर होगा। आप हिम्मत मत हारिए।

मृदुलाबहनसे मिलना। यह पत्र उन्हें दिखाना।

मो० क० गांधीकी दुआ

ड्राइवर रहमान जीवाभाई
खिलौना मार्केट
पानकोर नाका
अहमदाबाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६५४)से, सौजन्य मुलुभाई नौतमलाल

२९४. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१४ अक्तूबर, १९३९

चि० कृ० चं०,

तुम्हारा लिखना शायद नही समझा हू। तुम्हारी जगह तो है ही। और क्या?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३२८) से।

२९५. पत्र : इन्दिरा नेहरूको

सेगाँव
१५ अक्तूबर, १९३९

प्रिय इन्दु,

मैंने तो समझा था तू मुझे बिलकुल ही भूल गई। लेकिन भगवान्‌का शुक्र है कि मेरा यह भय निराधार निकला। आशा है तू अच्छी होगी। तू वहाँ[1] जो अनुभव प्राप्त कर रही है, उसके लिए मुझे तुझसे ईर्ष्या होती है।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९८०२) से; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहलय तथा पुस्तकालय

२९६. पत्र : इन्दिरा नेहरूको

[१५ अक्तूबर, १९३९ के पश्चात्][2]

चि० इंदु,

शायद अब हिंदीमें लिखने का माहविरा छूट ही गया होगा। लेकिन मैं तो राष्ट्रभाषामें ही लिखूंगा।

तू पढ़ने के लिये गई है कि बीमार होने के लिये। प्लुरसी कैसे हुई? प्लुरसीके दु:खका मुझे अनुभव है। ईश्वर जल्दी अच्छा करे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९८०५) से; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. यूरोपमें

२. *विद् नो रिग्रेट्स* नामक पुस्तकमें कृष्णा हठीसिंहने लिखा है कि १९३९ की शरद ऋतुमें इन्दिरा नेहरू पैदल यात्रापर निकली थीं, लेकिन भीग जानेके कारण उन्हें ठंड लग गई, जिसके कारण उन्हें प्लुरिसी हो गई। ६ नवम्बर, १९३९ के पत्रमें जवाहरलालने इन्दिराको लिखा कि उन्हें [जवाहरलालको] "एगथा और भण्डारीका संयुक्त तार मिला है कि तुम [इन्दिरा नेहरू] यूरोप जा रही हो।" इन्दिरा नेहरू मिडिलसेक्स अस्पतालमें कुछ समय रहनेके बाद लेसैं (स्विट्ज़रलैंड) चली गई थीं। देखिए पिछला शीर्षक और "पत्र: जवाहरलाल नेहरूको", २५-१०-१९३९ भी।

२९७. टिप्पणियाँ

एक प्रश्न

एक अंग्रेज सज्जनने दीनबन्धु एन्ड्रयूजको एक पत्र लिखकर युद्ध-सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे एक उत्कट शान्तिवादी हैं। दीनबन्धुने उक्त पत्र मेरे पास भेज दिया है। उसके कुछ अंश निम्नलिखित हैं:

> मेरा खयाल है कि हिन्दुस्तानके लिए भी यह बहुत नाजुक समय है। जो खतरा मैं देखता हूँ वह यह है कि ब्रिटेन भारतको पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य या इससे मिलती-जुलती चीज देने का वादा कर देगा और उसके परिणामस्वरूप भारत भी एक सेना संगठित करेगा और सामरिक मनोवृत्तिका एक और राष्ट्र बढ़ जायेगा। उस हालतमें भारत आज अहिंसा और आत्मशक्तिके मार्गकी स्पृहणीयताकी जो साक्षी दे रहा है उसमें दुनियाका विश्वास कम हो जायेगा।
>
> अहिंसामें विश्वास रखनेवाले गांधीजी युद्धमें ब्रिटेनको भारतका सहयोग देनेके लिए युद्धके उद्देश्योंके स्पष्टीकरणकी किस तरह माँग कर सकते हैं? जो एक काम वे कर सकते हैं और जो काम हम सबको करना चाहिए, वह यह है कि हमें स्त्रियों और पुरुषोंकी एक ऐसी सेनाका संगठन करना चाहिए जो प्रेम और क्षमाका व्रत ले लें और यह निश्चय कर लें कि हम सब हिंसा को सह लेंगे, किन्तु स्वयं कभी हिंसाका सहारा नहीं लेंगे। हमें इस व्रत पर अमल करके देखना चाहिए कि इसका हमारे दैनिक जीवनपर क्या प्रभाव पड़ता है और दूसरे समुदायों एवं राष्ट्रोंके प्रति हमारी मनोवृत्ति कैसे बदलती है। इसमें हमें अनुशासनपूर्वक और एक होकर संगठित रूपसे काम करने का गुण भी सीखना पड़ेगा। मैं इसमें बहुत जबरदस्त सम्भावनाएँ देखता हूँ।
>
> भारत युद्धमें ब्रिटेनकी मदद करे या न करे, लोकतन्त्र अपने-आपमें एक ऐसा उच्च सिद्धान्त है कि हम ब्रिटेनको इस बातपर राजी करनेके लिए बेशक अपना पूरा प्रभाव डाल सकते हैं कि वह इसे स्वीकार करके भारतमें पूर्ण लोकतन्त्र लागू करे।

लेखकको जिस बातका भय है वह वास्तविक है। मैंने पिछले सप्ताह इसकी चर्चा भी की थी।[1] लेखकने मित्र-राष्ट्रोंके प्रति मेरी सहानुभूतिपर भी एतराज किया है। मैंने अहिंसापर पूर्ण श्रद्धा रखनेवाले व्यक्तिके नाते, बल्कि अपनी इस श्रद्धाके कारण

१. देखिए पृ० २६९-७१।

भी उनके साथ सहानुभूति प्रकट की है। हिंसा तो सभी प्रकारकी बुरी है और उसकी तीव्र निन्दा करनी चाहिए, यह मानते हुए भी अहिंसामें विश्वास रखनेवाले को इसकी इजाजत है उसका यह कर्त्तव्य है कि वह आक्रमणकारी और आत्म-रक्षकके बीचके भेदको समझे। जब वह इस भेदको समझ लेगा, तो वह आत्म-रक्षकके साथ अहिंसात्मक रहते हुए पूर्ण सहयोग करेगा *अर्थात्* वह आत्म-रक्षककी जान बचाने के लिए अपने प्राणतक दे देगा। उसका हस्तक्षेप आपसके द्वन्द्वको शायद शीघ्र समाप्त कर देगा और बहुत सम्भव है कि इस तरह वह दोनोंमें जल्दी ही सुलह करा देगा। इसी दलीलको हम वर्त्तमान युद्धपर इस तरह लागू कर सकते हैं। यदि कांग्रेस अहिंसात्मक तरीकोंसे मित्र-राष्ट्रोंको पूरा सहयोग देती है, तो निःसन्देह कांग्रेसकी सहायतासे मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यको ऊँचा नैतिक बल प्राप्त हो जायेगा। उस हालतमें कांग्रेसका प्रभाव शान्तिके लिए बहुत कारगर होगा। इससे भी बड़ी बात यह है कि यह देखना कांग्रेसका खास फर्ज होगा कि अगर युद्ध अंततक लड़ा जाता है तो कोई पराजित पक्षका किसी तरह मानभंग अथवा अपमान न करे। मैंने कांग्रेसके लिए इसी भूमिकाकी कल्पना की है। स्वतन्त्रताकी घोषणा अब आवश्यक हो गई है। जब यह सवाल उठा ही दिया गया है, तब अगर ब्रिटेन गुप्त रूपसे अपने साम्राज्यवादकी रक्षाके लिए युद्ध कर रहा है और दुनियाको धोखा देने के लिए वह प्रजातन्त्रकी रक्षाके उद्देश्यकी घोषणा कर रहा है, तो कांग्रेस उसकी किसी भी प्रकार सहायता नहीं कर सकती। यदि ब्रिटेन अपनेको सही दिखाना चाहता है, तो उसके लिए कांग्रेसकी क्या नीति है, इसकी परवाह किये बिना, अपने युद्धके उद्देश्यको स्पष्ट करना बहुत जरूरी है।

सेगाँव, १६ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २१-१०-१९३९

२९८. बहुसंख्यक वर्गका कृत्रिम हौआ

यह देखकर सचमुच दुःख होता है कि कांग्रेसने जिस घोषणाकी माँग की है[1] —और मैं कहूँगा कि सबके हितमें की है—उस घोषणाको रोकने के लिए ब्रिटिश अखबार और ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अल्पसंख्यकोंके हितोंकी दुहाई दे रहे हैं। कांग्रेसने जो माँग रखी है, उसके वजनको अगर अच्छी तरह महसूस न किया गया तो वह घोषणा नहीं होगी। यदि ऐसी कोई घोषणा नहीं होती, तो कांग्रेसियोंको इससे निराश नहीं होना चाहिए। जब हम स्वतन्त्रताके पात्र बन जायेंगे, वह मिल जायेगी। लेकिन ब्रिटिश सरकार और अन्य मित्र-राष्ट्रोंने जिस ध्येयमें अपनी निष्ठा जाहिर की है, उसकी दृष्टिसे यह अच्छा होगा कि वे सहज विश्वासी दुनियाको अल्पसंख्यकोंके हितोंकी दलील देकर भुलावेमें न डालें। यह ईमानदारीकी बात होगी कि

१. देखिए परिशिष्ट १० और ११।

अंग्रेज कह दें, हम अभी और कुछ समयतक भारतपर अधिकार रखना चाहते हैं। उनकी यह इच्छा स्वाभाविक ही होगी। भारतको उन्होने जीता है। अपने विजित देशको कोई तवतक नहीं छोडता, जबतक कि विजित लोग सफल विद्रोह नही करते या विवेक जाग्रत होने पर विजेता अपनी जीतपर स्वय पछताने नही लगता अथवा विजित प्रदेशसे विजेताको किसी किस्मका भी लाभ होना बन्द नही हो जाता। मैंने उम्मीद की थी और अब भी कर रहा हूँ कि अंग्रेज—जो लड़ाईसे बहुत थके हुए है और वर्त्तमान युद्धमें होनेवाले उन्मादपूर्ण हत्याकाण्डसे ऊब गये है—हर बातमें और इसलिए भारतके सम्बन्धमें भी सम्पूर्ण ईमानदारीका परिचय देकर इस युद्धको जल्दीसे-जल्दी खत्म करना चाहेंगे। लेकिन वे अपनी ईमानदारी तबतक प्रमाणित नही कर सकते जबतक वे भारतको अपनी गुलामीमें जकड़े हुए हैं।

मैं जानता हूँ कि कुछ लोग मुझसे इस कारण रुष्ट हैं कि मैंने यह दावा किया है कि काग्रेस ही एकमात्र ऐसी सस्था है जो सम्पूर्ण भारतवासियोका प्रतिनिधित्व कर सकती है। यह कोई दुरभिमानसे प्रेरित झूठा दावा नही है। काग्रेस-विधानकी पहली धारामें ही यह स्पष्ट है। काग्रेस समस्त भारतकी स्वतन्त्रता चाहती है और उसके लिए काम करती है। वह न अकेले बहुसख्यकोकी प्रतिनिधि है, और न सिर्फ अल्पसंख्यकोकी। वह तो बिना किसी भेदभावके सबका प्रतिनिधित्व करने की कोशिश करती है। इसलिए यदि स्वतन्त्रताका दावा स्वीकार कर लिया जाता है तो जो लोग इसका विरोध करते हैं, उनके विरोध का खयाल करने की जरूरत नही। जो लोग इस दावेका समर्थन करते हैं, वे काग्रेसके इस दावेकी ताकत ही बढ़ाते हैं।

ब्रिटेन अबतक भारतपर गुलामी थोपे रखने के लिए दुनियाके सामने ऐसे हिन्दुस्तानियोंकी दुहाई देता रहा है जो भारतमें ब्रिटेनको शासक और विभिन्न दावेदारोंके बीच पच बनाये रखना चाहते हैं। ऐसे लोग हमेशा रहेंगे। सवाल तो यह है कि क्या ब्रिटेनके लिए यह उचित है कि वह भारतपर अपने कब्जेको वाजिब बताने के लिए हमारे आपसी झगड़ोकी दुहाई देता फिरे, अथवा उसके लिए यह उचित है कि वह अपनी भूलको महसूस करे और भारतपर खुद अपना शासन-विधान बनाने की जिम्मेवारी डालकर निश्चित हो जाये?

और फिर ये अल्पसंख्यक वर्ग कौन हैं? उनमें से कुछ धार्मिक आधारपर, कुछ राजनीतिक और कुछ सामाजिक आधारपर अल्पसख्यक गिने जाते हैं: जैसे मुसलमान (धार्मिक), दलित वर्ग (सामाजिक), उदारवादी (राजनीतिक); देशी राजा (सामाजिक), ब्राह्मण (सामाजिक); अब्राह्मण (सामाजिक); लिंगायत (सामाजिक); सिख (सामाजिक ?); ईसाई—प्रोटेस्टेंट और कैथलिक (धार्मिक); जैन (सामाजिक ?); जमीदार (राजनीतिक ?)। अखिल भारतीय शिया सम्मेलनके मन्त्रीका एक पत्र मेरे पास आया है, जिसमें शिया मुसलमानोको एक अलग ही फिर्का मानने की माँग की गई है। इस अजीब गडबड़में बहुसंख्यक होने का दावा कौन कर सकता है? इस अभागे देशके दुर्भाग्यसे मुसलमान भी कई हिस्सोमें बँटे हुए हैं और ईसाइयोका

भी यही हाल है। और ऐसे प्रत्येक समूहको महत्त्व देना ब्रिटिश सरकारकी नीति रही है जो पर्याप्त मुखर और दूसरोंके लिए कुछ तकलीफदेह बन जाये। मैंने अल्पसंख्यकोंकी यह कोई मनगढ़न्त तस्वीर नही खींची है। यह बिलकुल असली चित्र है। खुद कांग्रेसका इन सब समूहोंसे, जिनका मैंने जिक्र किया है, वास्ता पड़ा है। बल्कि मेरी सूची अभी पूरी नही है। यह तो केवल उदाहरण-मात्र है। इसे चाहे जितना लम्बा खीचा जा सकता है।

मैं जानता हूँ कि हिन्दुओंको बहुसंख्यक कहनेका फैशन-सा चल पड़ा है। लेकिन हिन्दुत्व एक बहुत लचीला शब्द है, जिसकी निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती, और मुसलमानों या ईसाइयोंकी तरह हिन्दुओंका कोई ऐसा समाज नहीं हैं जो सर्वथा समजातीय हो। और यदि कोई व्यक्ति प्रान्तीय विधान-मण्डलोंमें बहुसंख्यकोंका विश्लेषण करे, तो वह देख सकता है कि बहुसंख्यक वर्ग तथाकथित अल्पसंख्यकोंका समूह ही है। दूसरे शब्दोंमें, और सचमुच भी, जहाँतक भारतका ताल्लुक है, यहाँ केवल राजनीतिक दल ही हो सकते हैं, अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक समुदाय नही। बहुसंख्यकोंके अत्याचारोंका शोर सर्वथा कृत्रिम शोर है।

राजेन्द्र बाबूने जनाब जिन्ना साहबको कांग्रेस सरकारके खिलाफ मुस्लिम लीगकी शिकायतोंको एक पंच-अधिकरणके सुपुर्द करनेकी बात लिखी थी![1] मुझे मालूम हुआ है कि जिन्ना साहबने इसके जवाबमें[2] लिखा है कि उन्होंने

> यह सारा मामला वाइसराय और गवर्नर-जनरलके सामने पेश कर दिया है और उनसे इस मामलेको जल्दी हाथमें लेनेकी प्रार्थना की है, क्योंकि वाइसराय और प्रान्तोंके गवर्नरोंको विधानके मातहत यह अधिकार और जिम्मेवारी सौंपी गई है कि अल्पसंख्यकोंके अधिकारों एवं हितोंकी रक्षा करें।
>
> अब यह सारा मामला वाइसराय महोदयके विचाराधीन है और वही एक ऐसे अधिकारी हैं जो हमारी जरूरतें पूरी करनेके लिए उचित कदम उठा सकते हैं और उपाय कर सकते हैं, और उन प्रान्तोंके मुसलमानोंको पूर्ण सन्तोष और आश्वासन दे सकते हैं जिन प्रान्तोंका शासन-सूत्र आज कांग्रेसी मन्त्रियोंके हाथोंमें है।

यह दुर्भाग्यकी बात है कि जिन्ना साहबने राजेन्द्र बाबूके इस युक्ति-युक्त प्रस्तावको ठुकरा दिया। क्या यह मित्रताके बढ़ाये हुए हाथको ठुकराना नहीं है? कुछ भी हो, कांग्रेसी मंत्रियोंके विरुद्ध लगाये गये आरोपोंकी जाँच वाइसराय करें और उन पर अपना निर्णय दें, इसके खिलाफ कोई कुछ नहीं कह सकता। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि वे शीघ्र ही जाँच करेंगे। मुसलमान अल्पसंख्यक माने जाते हों या बहुसंख्यक, उनके तथा अन्य समुदायोंके धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राज-

१. ५ अक्तूबर, १९३९ का

२. ६ अक्तूबर, १९३९ का

नीतिक अधिकारों और विशेषाधिकारोकी पवित्र धरोहरकी भाँति इज्जत एव रक्षा करनी चाहिए। और भारतकी स्वतन्त्रतासे इन अधिकारोंकी रक्षामें कोई अन्तर नही आयेगा। सच तो यह है कि उस समय इन अधिकारोंकी रक्षा और भी अच्छी तरह होगी, वह इसलिए भी कि जिस समय राष्ट्रके प्रतिनिधि स्वतत्रताका घोषणापत्र बनायेंगे उस समय मुसलमानो और दूसरे अल्पसख्यको — वे वास्तविक हो या तथाकथित — की आवाज भी अवश्य सुनी जायेगी।

एक क्षणके लिए मान लीजिए अगर अग्रेज अचानक ही यहाँसे चले जायें और यहाँ शासन करने के लिए कोई भी विदेशी आक्रान्ता न रहे, तो क्या होगा। यह कहा जा सकता है कि उस हालतमें पंजाबी, वे सिख हों, मुसलमान हों या कोई और सारे हिन्दुस्तानपर जबरन कब्जा कर लेगे। यह भी बहुत सम्भव है कि गोरखे पजाबियोंसे मिल जायें। यह भी कल्पना कर लीजिए कि गैर-पजाबी मुसलमान पंजाबियोंके साथ भारतपर अधिकार करनेके लिए मिल जाते है। तब काग्रेसियोंकी, जो ज्यादातर हिन्दू है, स्थिति क्या होगी? यदि वे तब भी सच्चे अहिंसक रहें, तो उन्हें ये लड़ाके तग नही कर सकेगे। काग्रेसी इनके साथ मिलकर सत्ता में हिस्सेदारी नही चाहेंगे, बल्कि इसके विपरीत यह कोशिश करेंगे कि अपने नि शस्त्र देशवासियोका ये लड़ाके शोषण न करे। इसलिए यदि किसीको किसी अधिक शक्तिशाली वर्गसे अपने बचावके लिए ब्रिटिश संरक्षणकी आवश्यकता हो सकती है तो उन काग्रेसियों और हिन्दुओ या उन अन्य लोगोको ही हो सकती है जिनका प्रतिनिधित्व काग्रेस करती है। इसलिए सवाल यह नही रह जाता कि तादाद में कौन ज्यादा है, बल्कि यह हो जाता है कि कौन अधिक शक्तिशाली है। इसका एक ही जवाब हो सकता है। जो लोग यह आवाज उठाते है कि अल्पसख्यक खतरेमें है उन्हें तथाकथित बहुसख्यकोंसे डरने की कतई जरूरत नही है। इनकी बहुसख्या केवल कागजी बहुसख्या है; फिर, यह कुछ ज्यादा कर भी नही सकती, क्योंकि वह सैनिक दृष्टिसे बहुत कमजोर है। यद्यपि यह बात ऊपर से असत्य मालूम पड़ सकती है, किन्तु अक्षरश: सच है कि तथाकथित अल्पसख्यकोको जो थोडा-बहुत डर है भी, उसके लिए सिर्फ तबतक ही कुछ आधार है जबतक कि दुर्बल बहुसख्याके पास प्रजातन्त्रका खेल खेलने के लिए ब्रिटिश शस्त्र-बलका सहारा है। लेकिन ब्रिटिश सत्ता जबतक चाहेगी, तबतक कभी एक पक्षका, और कभी दूसरे पक्षका — इन पक्षोंका नाम वह जो चाहे रखे — साथ देकर उन्हें कामयाबीके साथ आपसमें लड़ाती रहेगी। और यह जरूरी नहीं है कि इसमें ब्रिटिश बेईमानी ही करे। ईमानदारीके साथ वे यह विश्वास कर सकते है कि जबतक भारतमें इस तरह विभिन्न पक्ष एक-दूसरेके खिलाफ अपने दावे पेश करते रहते है, तबतक उनके बीच न्यायका सन्तुलन रखनेकी ईश्वरीय प्रेरणाके अनुसार उन्हें भारतमें रहना ही चाहिए। लेकिन यह मार्ग प्रजातन्त्रका नही है। यह तो फासिस्टवाद, नाजीवाद, बोल्शेविकवाद या साम्राज्यवाद — जिनमें से सबके-सब 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धान्तके भिन्न रूप है — का मार्ग है। मै तो हर हालतमें यह

आशा करूँगा कि यह युद्ध मूल्योंको बदल देगा। पर ऐसा तभी हो सकता है जब भारतको स्वतन्त्र मान लिया जाये, और वह स्वतन्त्र भारत राजनीतिक क्षेत्रमें विशुद्ध अहिंसाका परिचय दे।

सेगाँव, १६ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-१०-१९३९

२९९. मोरवीमें दुर्भिक्ष-निवारण-कार्य

रेंटिया जयन्ती समारोहके दौरान राजकुमारी अमृतकौरकी मोरवी-यात्राके विषयमें वहाँके दीवान लिखते हैं:[1]

> महाराजा साहब पिछले कुछ सालोंसे गांधी-जयन्तीपर हरिजनों तथा खादीकी उन्नतिके लिए १०,००० रु० दिया करते हैं। कभी-कभी यह रकम आपको सीधे भेज दी जाती है, जैसा कि पिछले साल किया गया था, और कई बार यह रकम मोरवीमें ही हरिजनों और खादीकी उन्नतिके लिए खर्च की जाती है। . . .
>
> इस साल दुर्भिक्षने हमें बहुत परेशान किया है। हमने बड़े पैमानेपर सहायता-कार्य शुरू किया है। . . . सारी रियासतमें सस्ते अनाज और चारेके भण्डार खोले गये हैं, जहाँ अनाज और चारा नकद दामपर और उधार दिया जा रहा है। . . . किसानोंको खाद्य-पदार्थ और चारा उधार दिया जा रहा है . . . और चारेकी फसल पैदा करने के लिए बीजोंकी खातिर कर्ज दिया जा रहा है। . . .
>
> जहाँसे भी पानी मिल सकता है, वहाँ छोटे-छोटे पम्पिंग संयन्त्र लगाकर सिंचाईकी सब तरहकी सुविधा दी जा रही है।
>
> आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि दुर्भिक्ष-कष्ट-निवारणके लिए खद्दर-उत्पादनके रूपमें भी काम हो रहा है। दुर्भिक्ष-कष्ट-निवारण विभाग रुई खरीदता है और पिंजाई, कताई और बुनाई आदि सब क्रियाओंके लिए लोगोंको उचित दरोंपर मजदूरी देता है। खद्दरका जितना भी उत्पादन होता है, वह सब रियासत ले लेती है। हमें आशा है कि इससे बहुत-से लोगोंको, जिनमें अधिकांश हरिजन हैं, उनके घरपर ही रोजगार मिल जायेगा।
>
> इस साल मोरवी-नरेशने जरूरतमन्द लोगोंको १,००० रु० मूल्यका खद्दर बाँटने का निश्चय किया है। आजकलकी संकटापन्न स्थितिमें बहुत-से लोगोंको

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

मुफ्त वस्त्रोंकी सहायताकी जरूरत भी होगी। गांधी-जयन्तीपर मोरवी-नरेशका यह साधारण दान होगा। . . .

भंगी और मेघवार एक ही टंकीसे पानी लेना नहीं चाहते थे। अतः रियासतने तबतक के लिए टंकी बन्द कर दी, जबतक कि इनके आपसी झगड़े खत्म न हो जायें। वर्त्तमान संकटके इस समयमें उन लोगोंके आपसी झगड़े दूर हो गये हैं और अब वे एक ही टंकीसे पानी भरने को रजामन्द हो गये हैं।

इस साल रियासतने अपने निम्नश्रेणीके कर्मचारियोंके लिए, जिनमें हरिजन भी शामिल हैं, दो काम और किये हैं। पहला काम तो है बिना सूदके कर्ज देना और दूसरा है स्त्री-सेविकाओंको एक मासकी प्रसवकालीन सवेतन छुट्टी देना।

साधारणतः मुझे रियासतोंकी आलोचना ही करनी पड़ती है। इसलिए मोरवी राज्यमें किये गये दुर्भिक्ष-सहायता सम्बन्धी अच्छे कार्यका उल्लेख करते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है। इस संकटको दूर करने के लिए महाराजा साहब जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसके लिए मै उन्हें बधाई देता हूँ। खादीके बारेमें मै यह सलाह देना चाहता हूँ कि अगर खादीको दुर्भिक्ष-संकटका स्थायी इलाज बनाना है, तो महाराजा साहब और वहांकी प्रजाको अपने निजी एव घरेलू कामोंके लिए खद्दरका इस्तेमाल करना होगा। मोरवीमें उसकी जरूरतके लायक काफी रुई पैदा होती है। वहांके लोग अपनी जरूरतके मुताबिक खादी भी बना सकते हैं। खादीका अर्थ गरीब कतैयोंको पर्याप्त वेतन देना है और इस कारण जितने मूल्यपर खादी बेची जानी चाहिए, यदि उतने मूल्यपर गरीब जनता खादी नही खरीद सकती, तो उसे खुद सूत कातना शुरू कर देना चाहिए। इस बारेमें श्री नारणदास गांधीने जो वार्षिक प्रयोग किये हैं, उनसे इस दिशामें बहुत सम्भावनाएँ प्रकट हुई हैं। लेकिन खादीके ये गुप्त गुण तबतक प्रकाशमें नही आ सकते, जबतक कि मोरवीके महाराजा साहब और मोरवीके निवासी खादीको दूर-दूरसे संरक्षण देने के बजाय स्वयं खादीसे प्रेम नही करने लगते और स्वयं खादी नही पहनने लग जाते। जब लोग अपने घरोमें बिना अधिक पूंजी लगाये, बिना ज्यादा कोशिश किये खादी पैदा कर सकते है, तो मिलका सस्ता कपड़ा खरीदना एक आत्मघातपूर्ण नीति है।

सेगाँव, १६ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २१-१०-१९३९

३००. बापा-जयन्ती

ठक्कर बापा आगामी २९ नवम्बर को ७० वर्षके हो जायेंगे। बापा हरिजनोंके पिता हैं—और आदिवासियों और उन सबके भी, जो लगभग हरिजनोंकी ही कोटिके हैं, और जिनकी गणना अर्धसभ्य जातियोंमें की जाती है। दिल्लीके हरिजन-निवासके वासियोंकी तजवीज इस प्रकार उनकी ७०वीं जयन्ती मनाने की है जिससे ठक्कर बापाके हृदयको आनन्द प्राप्त हो। ये लोग ठक्कर बापाके जन्म-दिवसपर, हरिजन-कार्यके निमित्त उन्हें ७,००० की एक छोटी-सी थैली भेंट करना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने मेरा आशीर्वाद माँगा है और वे यह भी चाहते हैं कि उनके इस शुभ प्रयासको मैं प्रकाशमें ला दूँ। पर मैंने तो उन्हें झिड़का है कि उनमें श्रद्धाकी कमी है। ठक्कर बापा एक विरले लोकसेवक हैं। वे विनम्र स्वभावके हैं। वे प्रशंसाके भूखे नहीं। अपने काममें ही उन्हें परिपूर्ण सन्तोष और विश्राम प्राप्त होता है। वृद्धावस्था उनके उत्साह को मन्द नहीं कर सकी है। वे स्वयं एक संस्था हैं। एक बार जब मैंने उनसे कहा कि वे थोड़ा आराम ले लें, तो तुरन्त उनका जवाब मिला, 'जब इतना अधिक काम करने को पड़ा है, तब मैं आराम कैसे ले सकता हूँ? मेरा काम ही मेरा आराम है। अपने जीवन-कार्यमें वे जिस प्रकार अपनी शक्ति लगा रहे हैं, उसे देखकर तो उनके आसपास रहनेवाले नवयुवक भी लज्जित हो जाते हैं। इतने महान् कार्यके लिए, और उस जनसेवकके लिए, जो अपने विशाल कन्धोंपर इतना भारी भार वहन कर रहा है, ७,००० की थैली एक प्रकार का अपमान है। कार्यकर्त्ताओंका तो यह लक्ष्य होना चाहिए कि सारे हिन्दुस्तानसे वे ७०,००० रुपये से कम तो किसी हालतमें इकट्ठे नहीं करेंगे। इस महान् उद्देश्य और उस उद्देश्यके जनकको देखते हुए यह ७०,००० रुपये की रकम भी कोई चीज नहीं है। लेकिन यह रकम एक महीनेमें इकट्ठी करनी है, इस दृष्टिसे यह ठीक ही है। क्या ही अच्छा हो कि हरिजनों और भीलोंसे भी पैसा-पाई इकट्ठा किया जा सके। अपने बापाको तो ये लोग जानते ही हैं। पर धनिक और मध्यम वर्गके लोग भी बापाको जानते और उनसे प्रेम करते हैं। मुझे इसमें कोई शंका नहीं कि हरिजन-कार्य तथा उसका प्रतिनिधित्व करनेवाले महान् लोकसेवक ठक्कर बापाके प्रीत्यर्थ वे उदारतापूर्वक पैसा देंगे। पैसा (१) हरिजन-निवास, किंग्सवे, दिल्ली, (२) हरिजन आश्रम, साबरमती, या (३) सेगाँव वाया वर्धाके पतेपर भेजा जा सकता है।

सेगाँव, १६ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २१-१०-१९३९

३०१. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

सेगाँव, वर्धा
१६ अक्तूबर, १९३९

प्रिय चार्ली,

आशा है, तुम्हें मेरा तार मिल गया होगा। और गम्भीरतासे सोचने पर यह स्पष्ट हो गया कि मुझे जल्दबाजीसे काम नहीं लेना चाहिए। इसलिए महादेवको नहीं भेज रहा हूँ। ईश्वर हम सबका मार्ग-दर्शन करेगा। तुमने तत्काल कलकत्ता न जाकर ठीक ही किया। इस समय जहाँ तुम बैठे हो, स्पष्ट ही तुम्हारा उचित स्थान वही है। हर तरहकी चिन्तासे [बचना]।[1]

स्नेह।

मोहन

[पुनश्च :]

अमृत कहती है कि "वहाँ" से तात्पर्य कलकत्तासे है। इसी कारण यह जोड़ दिया है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०२०३)से, सौजन्य विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

३०२. होरेस अलेक्जैण्डरको लिखे पत्रका अंश

सेगाँव, वर्धा
१६ अक्तूबर, १९३९

प्रिय श्री अलेक्जैण्डर,

. . . चूँकि बापू काममें बहुत ज्यादा व्यस्त हैं, इसलिए उन्होंने मुझे आपको पत्र लिखने का आदेश दिया है और यह भी बताने के लिए कहा है कि उन्हें आपका ३ तारीखका पत्र यथासमय मिल गया था। आपके कॉलेजके कर्मचारियोंने उन्हें जो शुभकामनाएँ भेजी हैं तदर्थ वे उनके कृतज्ञ हैं, और आप सबको अपना प्रेम भेजते हैं। . . .

हृदयसे आपकी,
अमृतकौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४३१) से।

१. साधन-सूत्रमें मुख्य क्रिया पढने में नहीं आती।

३०३. पत्र : नारणदास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१६ अक्तूबर, १९३९

चि० नारणदास,

तुम्हारा लेख[1] 'हरिजनबन्धु' में भेजा है। 'हरिजन' में मैंने जितना लिखा जा सकता है उतना लिखा है[2] और अधिक सँवारने का समय नही मिला। जो पैसे मिले हैं उनका तुम किस तरहसे उपयोग करने की सलाह देते हो? मैं तुम्हारी दिक्कत समझता हूँ। जो अनिवार्य है उसे सहन करना ही होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से; सी० डब्ल्यू० ८५६७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३०४. मौन-दिवसकी टिप्पणी

[१६ अक्तूबर, १९३९ या उसके पश्चात्][3]

मेरा खयाल था कि तुम दैनिक हिसाब रख रहे हो। तुम्हें मेरा लेख ध्यान-पूर्वक पढ़ जाना चाहिए। उसमें तुम्हें सभी शंकाओंका समाधान मिल जायेगा। बहुसख्यक दल भी ब्रिटिश संगीनोकी सहायताके विना काम नही कर सकता। सारा आन्दोलन तथाकथित बहुमतको अधिकसे-अधिक देने पर मजबूर करने के लिए मचाई जा रही चीख-पुकार है।

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९२६३)से, सौजन्य · जयरामदास दौलतराम

१. नारणदास गाधीका "राजकोटमां रेंटिया जयंती" (राजकोटमें चरखा-जयन्ती) शीर्षक लेख २२-१०-१९३९ के हरिजनबन्धुमें प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४५८-५९।

३. गाधीजी द्वारा "लेख" के उल्लेख के आधारपर, जो सम्भवतः "बहुसंख्यक वर्गका कृत्रिम हौआ", पृ० २८९-९० है।

३०५. टिप्पणियाँ

हिन्दू-मुस्लिम दंगे

अगर इस बातके सबूत की कोई जरूरत थी कि कांग्रेसकी अहिंसा वस्तुतः स्थगित या निष्क्रिय हिंसा थी, तो इसका सबूत हिन्दू-मुस्लिम दंगोंमें प्रदर्शित प्रभावकारी, हालाँकि बिलकुल अनुशासनहीन हिंसाके रूपमें मिल जाता है। यदि खिलाफत आन्दोलनमें भाग लेनेवाले हजारों हिन्दू और मुसलमान सच्चे दिलसे अहिंसक रहे होते, तो वे आज एक-दूसरेके प्रति इतने हिंसापूर्ण न होते, जितने कि आजकल वे लगातार पाये जाते हैं। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो लोग इन दंगोंमें भाग लेते हैं वे कांग्रेसी नहीं हैं। यदि इन दंगोंमें भाग लेनेवाले लोगोंको गैर-कांग्रेसी करार दे दिया जाये, तो कांग्रेस जनसाधारणकी संस्था नहीं रह जायेगी। कारण, दंगोंमें भाग लेनेवाले लोग जनसाधारणके बीचसे ही आते हैं। इसके अलावा, हम कांग्रेसकी सभाओं में भी देखते हैं कि प्रतिस्पर्धी कांग्रेसी एक-दूसरेके विरुद्ध हिंसापर उतर आते हैं। कांग्रेसके चुनावोंमें प्रकट होनेवाली घोर अनुशासनहीनता और धोखेबाजी कांग्रेसमें विद्यमान हिंसाकी परिचायक है। इसलिए यह कहना कठिन है कि कोई कांग्रेसी अहिंसक है तो वह कौन है। यदि अहिंसक कांग्रेसी कांग्रेसमें बहुसंख्यामें होते और यदि हिन्दू-मुस्लिम दंगोंमें उन्होंने प्रभावकारी रीतिसे भाग लिया होता, तो वे इन दंगोंको बन्द कर सकते थे या कमसे-कम इन्हें बन्द करने की कोशिशमें अपनी जान दे सकते थे। यदि ज्यादातर कांग्रेसी सच्चे अहिंसक होते, तो मुसलमान भी यह मान जाते कि कांग्रेसियोंपर मुस्लिम-विरोधी होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता। कांग्रेसियोंके लिए इतना ही कहना काफी नहीं है कि उनको गलत रुख अपनाने का दोषी नहीं पाया गया है। हो सकता है, मैं कानूनी तौरपर खरा उतर पाऊँ, लेकिन अगर अहिंसाकी तराजूपर मेरे कामोंको तोला जाये, तो मैं बुरी तरह असफल भी सिद्ध हो सकता हूँ। लेकिन यह अहिंसा तो शूरवीर और दृढ़ लोगोंकी ही अहिंसा होनी चाहिए। अहिंसाकी भावना आन्तरिक विश्वाससे अनुस्यूत होनी चाहिए। इसलिए मैंने यह कहने में कभी संकोच नहीं किया कि यदि हमारे हृदयोंमें हिंसा है, तो अपनी नपुंसकताको छिपाने के लिए अहिंसाका जामा पहनने की अपेक्षा हिंसक बने रहना ही अच्छा है। नपुंसकताकी अपेक्षा हिंसा हमेशा अच्छी है। हिंसकसे कभी अहिंसक बन जाने की आशा की जा सकती है, लेकिन किसी नपुंसकसे ऐसी आशा कभी नहीं की जा सकती।

अभी बहुत देर नहीं हुई

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू, आचार्य कृपलानी, श्री शंकरराव देव, डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष और श्री जयरामदास अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकके बाद दो-तीन दिन

यहाँ रहे थे। राजेन्द्र बाबूके सिवा सभीने बड़ी नम्रतासे यह शिकायत की कि उनके कार्योंकी अहिंसाकी दृष्टिसे मैंने जो व्याख्या की उस सम्बन्धमें पूरी कार्य-समिति मेरे विरुद्ध थी और ऐसा कहकर मैंने उनके साथ अन्याय किया है। उन्होंने कहा कि वे अबतक एक टीमकी तरह मिलकर काम करते रहे हैं। वे हमेशा कार्य-समितिकी बैठकोंमें राजेन्द्र बाबू और सरदारका अनुसरण करते रहे हैं। उनके पक्षमें इतना तो कहना ही चाहिए कि उन्होंने धीरेसे मेरे कान में कहा कि अहिंसा-सम्बन्धी मेरी व्याख्यासे वे मुझसे सहमत थे। मैंने उनकी बातका प्रतिवाद करते हुए कहा कि इतना ही काफी नहीं है; इस नाजुक मौकेपर उन्हें अपने दिलकी बात साफ-साफ कहनी चाहिए। लेकिन अपनी विनम्रताके कारण वे ऐसा नहीं कर सके।

लेकिन अगर उन्होंने अपना मत मेरी व्याख्याके पक्षमें दिया होता, तो वह उनके द्वारा प्रतिनिधिकी हैसियतसे नहीं, बल्कि व्यक्तिके नाते दिया गया ही माना होता। जैसा कि मैंने हिन्दू-मुस्लिम दंगोंके सम्बन्धमें अपनी टिप्पणीमें लिखा है, आम कांग्रेसजनोंके बारेमें यह दावा करना सम्भव नहीं है कि वे अहिंसक हैं। जो कांग्रेसजन अहिंसाको धर्म-रूप मानते हैं और ऐसा सोचते हैं कि इसका उपयोग जैसे हिन्दुस्तानकी रक्षा करने में वैसे ही हिन्दू-मुस्लिम समस्याको निबटाने में किया जाना चाहिए, उन्हें अहिंसाके 'क-ख' से आरम्भ करना पड़ेगा और यह मालूम करना होगा कि कितने कांग्रेसी उनके साथ हैं। बहुत सम्भव है कि उन्हें कांग्रेससे अलग हो जाना पड़े और मेरी तरह बाहरसे कांग्रेसकी सेवा करते हुए उसके मानसको बदलना पड़े। नया रास्ता बहुत सीधा, लेकिन साथ ही कठिन भी है। यह उन इक्के-दुक्के शोधकोंकी अस्थियोंसे पटा हुआ है जो इसपर चलते हुए मिट गये। वे रास्ता ढूँढ़े बिना मृत्युको प्राप्त हुए, किन्तु उनके मनको इस बातका सन्तोष था कि वे अपनी श्रद्धाके निमित्त जीये और उसीके निमित्त मरे। जब मैंने शान्ति-सेनाके गठनके बारेमें लिखा था[1] तब उसके लिए एक कार्यक्रमकी रूप-रेखा सामने रखी थी। इन सेनाओंकी जन्मते ही मृत्यु हो गई, किन्तु वह कार्यक्रम आज भी जीवित है। वह हिन्दू-मुस्लिम दंगों आदिको रोकते हुए मृत्युका वरण करने का कार्यक्रम है। यह हिंसाको रोकने के लिए मृत्युको गले लगाने का कार्यक्रम है। लेकिन ऐसे आत्म-घातमें यदि हृदय अशुद्धि और द्वेषसे मुक्त न हो तो वह अपराध ही माना जायेगा।

सेगाँव, १७ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-१०-१९३९

१. देखिए खण्ड ६७, पृ० १४२-४४।

३०६. पत्र : नारणदास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१७ अक्तूबर, १९३९

चि० नारणदास,

इसके साथ छगनलालका पत्र है। इसे पढ़कर अपना सुझाव लिखना। जो रकम इकट्ठी की गई है उसके बारेमें मुझे छगनलालका सुझाव ठीक लगता है। लेकिन तुम अपनी राय मुझे बताना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५६८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३०७. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

वाइसरायकी घोषणा[2] बड़ी ही निराशाजनक है। बेहतर होता कि ब्रिटिश सरकारने इस समय कोई घोषणा करने से इन्कार कर दिया होता। वाइसरायके लम्बे वक्तव्यसे केवल यही प्रकट होता है कि पुरानी नीति—'फूट डालो और राज करो'—जारी रहेगी। जहाँतक मैं देख सकता हूँ कांग्रेस इस नीतिके अमलमें भागीदार नहीं बनेगी। इसी तरह हिटलरके साथ ब्रिटेनका जो युद्ध चल रहा है उसमें भी कांग्रेस की कल्पनाका भारत उसका साथ नहीं दे सकता। भारत-सम्बन्धी घोषणासे[3] यह साफ मालूम होता है कि यदि ब्रिटेनका बस चला तो भारतको लोकतन्त्र नहीं मिलनेवाला है। युद्धका अन्त होने पर एक और गोलमेज सम्मेलन बुलाने का वचन दिया गया है। पहले के गोलमेज सम्मेलनकी तरह उसका भी निष्फल होना निश्चित है। कांग्रेसने माँगी थी रोटी पर मिला जवाबमें पत्थर। मैं यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता कि भारतके भाग्यमें क्या बदा है। मैं वाइसराय या ब्रिटेनके राजनेताओंको इस दुखद परिणामके लिए दोष नहीं देता।

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत "डिसएप्वॉइंटिंग" (निराशाजनक) उप-शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। वक्तव्य १८-१०-१९३९ के हिन्दूमें भी प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए परिशिष्ट १२।

३. देखिए परिशिष्ट ८, १० और ११।

कांग्रेसको एक बार फिर सत्तासे अलग होकर साधनाका मार्ग अपनाना होगा। ऐसी साधनाके उपरान्त ही उसमें अपने लक्ष्यतक पहुँचने के लिए आवश्यक शक्ति और शुद्धि आयेगी। मुझे इसमें शक नहीं कि कांग्रेसजन कार्य-समितिके फैसलेका इन्तजार करेंगे।[१]

सेगाँव, १८ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-१०-१९३९

३०८. पत्र: लॉर्ड लिनलिथगोको

सेगाँव, वर्धा
१८ अक्तूबर, १९३९

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

अधिघोषणाकी[२] एक अग्रिम प्रति-सहित आपका कृपापूर्ण पत्र मिला, तदर्थ धन्यवाद। शायद यह लाजिमी था। मैंने अभी-अभी समाचारपत्रोंके लिए एक वक्तव्य[३] जारी किया है, जिसकी एक प्रति संलग्न कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे: लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. देखिए परिशिष्ट १३।
२. देखिए परिशिष्ट १२।
३. देखिए पिछला शीर्षक।

३०९. पत्र : एम० आर० मसानीको

सेगाँव, वर्धा
१८ अक्तूबर, १९३९

प्रिय मसानी,

मैं तो सबका सहयोग चाहता हूँ। किन्तु सवाल यह है कि हमारा समझौता केवल सतही है या ठोस। वाइसरायकी घोषणासे[1] शीघ्र ही प्रकट हो जायेगा कि हमारी स्थिति क्या है?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१३१) से। सी० डब्ल्यू० ४८८९ से भी; सौजन्य : एम० आर० मसानी

३१०. पत्र : गोविन्द वी० गुरजलेको[2]

सेगाँव, वर्धा
१८ अक्तूबर, १९३९

प्रिय भिक्षु,

मुझे तुम्हारा तार मिला था और अब पत्र भी मिला है। आशा है, वैसा ही होगा जैसी तुम उम्मीद रखते हो।[1]

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३८८) से।

१. देखिए परिशिष्ट १२।
२. देखिए पृ० २४३ भी।

३११. पत्र : हरिश्चन्द्रको

सेगाँव, वर्धा
१८ अक्तूबर, १९३९

भाई हरिश्चन्द्र,

तुम्हारी शुभकामनाओंका पत्र मिला। आभारी हूँ।

मो० क० गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६७९) से।

३१२. पत्र : प्रभावतीको

सेगाँव
१८ अक्तूबर, १९३९

चि० प्रभा,

मैं तो तुझे पत्र लिख चुका हूँ। क्यों नहीं मिला? जयप्रकाश उसके बाद आकर मुझसे मिल गया। यह तय हुआ है कि तुझे मेरे पास आना होगा। मैं तो तेरी राह देख ही रहा हूँ। सरस्वती त्रिवेन्द्रम चली गई है, और कान्ति भी जायेगा। राजकुमारी यहाँ आ गई है। विजया और शारदा यहीं हैं। शारदाको सातवाँ महीना है। राधा भी फिलहाल यहीं है, और कृष्णदास गांधी भी। बा आनन्द-पूर्वक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५२९) से।

३१३. पत्र : सुरेन्द्र और मनुबहन मशरूवालाको

सेगाँव, वर्धा
१८ अक्तूबर, १९३९

चि० सुरेन्द्र और मनुड़ी,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। कुँवरजीके साथ पत्र-व्यवहार चल रहा है। यदि उसे वहाँ लाभ हो तो तबतक रुकने के लिए मैंने लिखा है।[1] नहीं तो यहाँ चला आये। नागपुरमें रहने की सुविधा नहीं है। डॉक्टर कुशल है। यदि वह आया तो उसके रहने का बन्दोबस्त मैं सेगाँव या वर्धामें कहीं-न-कहीं करूँगा ही। उम्मीद है, मनुड़ी आनन्दपूर्वक होगी और अपनी सेहतका ध्यान रखती होगी। क्या वह पठनीय पुस्तकें पढ़ती है?

बापूके आशीर्वाद

श्री सुरेन्द्र मशरूवाला
बालकिरण, साउथ एवेन्यू, सान्ताक्रूज

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २६७२) से, सौजन्य . मनुबहन सु० मशरूवाला

३१४. पत्र : कंचनबहन एम० शाहको

सेगाँव, वर्धा
१८ अक्तूबर, १९३९

चि० कचन,

तेरा पत्र मिला। कैसी विचित्र लड़की है तू! पत्रमें तूने अपना पता सेगाँव लिखा है, लेकिन वहाँका पूरा पता तो दिया ही नहीं। मुन्नालाल से मैंने तेरा पता लिया। तू बीमार थी, यह भी मुझे मालूम नहीं था। लेकिन ईश्वरको धन्यवाद कि तू कुशलपूर्वक वहाँ पहुँच गई। अब शान्तिपूर्वक रहना। मुझे बराबर पत्र लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

श्री कंचनबहन
मारफत श्री मगनलाल कालिदास शाह
बालोड, बरास्ता मढ़ी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२९०) से। सी० डब्ल्यू० ७०६० से भी; सौजन्य . मुन्नालाल गं० शाह

१. देखिए पृ० २७६।

३१५. पत्र : नाजुकलाल एन० चोकसीको

सेगाँव, वर्धा
१८ अक्तूबर, १९३९

चि० नाजुकलाल,

बहुत दिनों बाद तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। मोतीको[1] ठीक होना चाहिए।

ईश्वर तो हिंसा-अहिंसासे ऊपर है। प्रह्लादकी अहिंसा तो अविदित रही। यदि सारा संसार अहिंसक बन जाये तो हिरण्यकशिपु वगैरह न हों। लेकिन जबतक ऐसा होता रहेगा, तबतक उस-जैसे और भी होते रहेंगे। ईश्वर हमेशा वैसोंका उपयोग भी करता रहेगा, लेकिन इसीसे वे हिंसक नहीं रह जाते, ऐसा नहीं है। यह हम कैसे जान सकते हैं कि हिटलरका जन्म किसका संहार करने के लिए हुआ होगा? लेकिन हिटलरकी हिंसा कोई अहिंसा थोड़े ही कही जायेगी?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० १२१५३)से।

३१६. पत्र : बी० पी० रस्तोगीको[2]

सेगाँव, वर्धा
१९ अक्तूबर, १९३९

प्रिय महोदय,

कृपया मुझे दीवानका नाम, उनकी तनख्वाह आदि लिखिए। आपका पेशा क्या है? क्या पहलेवाले तानाशाह जेलमें हैं? यदि हैं तो उनको कितनी सजा मिली है? ऐसे कितने लोग जेलमें हैं?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. नाजुकलाल एन० चोकसीकी पत्नी
२. बी० पी० रस्तोगी पटौदी राज्य-प्रजामण्डलके संयुक्त मन्त्री थे।

३१७. पत्र : कान्ति एन० पारेखको

सेगाँव, वर्धा
१९ अक्तूबर, १९३९

चि० कान्ति,

तूने बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ ली और कई तोड़ी। तूने जो अन्तिम प्रतिज्ञा ली है, ईश्वर तुझे उसे पूरा करने का बल दे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२७४)से।

३१८. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१९ अक्तूबर, १९३९

चि० जयसुखलाल,

महादेवको लिखा तुम्हारा पत्र मैं पढ़ गया। तुम्हारा किया हुआ काम कोई व्यर्थ थोड़े ही जायेगा? इसके लिए समाचारपत्रोंके द्वारा प्रचारकी कोई जरूरत नहीं है। अब तुम्हारा क्या करने का विचार है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/३) से।

३१९. पत्र : कनु गांधीको

सेगाँव,
१९ अक्तूबर, १९३९

चि० कनैयो,

तेरी बरसगाँठकी टिप्पणी मेरे सामने ही पड़ी है। ईश्वर करे तू दिन-प्रतिदिन तरक्की करे, शरीर और मनसे पुष्ट बने। तुझमें जहाँ जो खुरदरापन हो वह आवश्यकतानुसार घिसकर समान हो जाये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

३२०. पत्र : तारा जसाणीको

सेगाँव, वर्धा
१९ अक्तूबर, १९३९

चि० तारा,

तूने भूल नही की है। चूँकि मैं महात्मा कहलाता हूँ इसलिए मेरी दो बरसगाँठ होती है। इससे भी बड़े लोगोंकी तीन भी होती है। दो कैसे हुई और तीन अथवा अधिक कैसे हो सकती हैं, इसका कारण तुझे खोज निकालना चाहिए और मुझे लिखना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती ताराबहन जसाणी
आनन्दकुंज
राजकोट, काठियावाड़

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९८३३)से; सौजन्य : ताराबहन प्रताप

३२१. भाषण : स्थानिक संस्थाओंके प्रतिनिधियोंके सम्मेलन, वर्धामें[1]

[१९ अक्तूबर, १९३९][2]

आपने मुझसे यह सवाल पूछा, इसकी मुझे खुशी है। जवाबमें मेरा यह कहना ज्यादा अच्छा होगा कि प्रारम्भिक शिक्षाकी वर्तमान पद्धति देशकी आर्थिक उन्नतिका कोई खयाल किये बिना तैयार की गई थी। प्राथमिक शिक्षापर जो रकम खर्च की जाती है उसके बदलेमें राज्यको कुछ नही मिलता। शुक्लजी[3] जैसे कुछ इने-गिने शासन-संचालक हमें इस तथाकथित उच्च शिक्षाके फलस्वरूप मिल जाते हैं, यह

१. यह महादेव देसाईके लेख "सी० पी० लोकल बॉडीज गिव द लीड" (मध्य प्रान्तकी स्थानिक संस्थाओं द्वारा मार्ग-दर्शन)से लिया गया है। उन्होंने इसका प्रसंग समझाते हुए लिखा है: "मध्य प्रान्त और बरारकी स्थानिक संस्थाओंके प्रतिनिधियोंकी एक सभाने. . . गाधीजी को भाषण देनेके लिए आमन्त्रित किया। . . . गाधीजी ने भाषण तो दिया लेकिन उसे एक सदस्य द्वारा पूछे गये एक सामान्य प्रश्नतक ही सीमित रखा। प्रश्न यह था कि बुनियादी तालीमकी योजना देशकी आर्थिक और राजनीतिक प्रगतिमें किस तरह सहायक होगी?"

२. हिन्दू, २०-१०-१९३९ से

३. मध्य प्रान्तके मुख्य मंत्री, रविशंकर शुक्ल, जिन्होंने प्रतिनिधियोंका स्वागत किया था।

प्राथमिक शिक्षापर होनेवाली बरबादीका कोई औचित्य नही है। इससे तो इस दयनीय मिथ्या धारणाका ही दु:खद दर्शन होता है कि हम हिन्दुस्तानका कारोबार अग्रेजी डिग्रीधारी या अग्रेजीका ज्ञान रखनेवाले लोगोंके बिना नहीं चला सकते। लोक-शिक्षा विभागके निदेशकोने यह स्वीकार किया है कि प्राथमिक शिक्षाकी वर्त्तमान पद्धति एक भारी बरबादी है, विद्यार्थियोका एक बहुत छोटा-सा हिस्सा ही ऊँची कक्षाओंतक पहुँचता है, जो शिक्षा दी जाती है उसमें स्थायित्व-जैसा कुछ नही है, और यह शिक्षा जैसी भी है, विस्तृत ग्रामीण इलाकोंके एक छोटे-से हिस्सेतक ही उसकी पहुँच है। उदाहरणके लिए देखिए, मध्य प्रान्तके कितने कम गाँवोंमें ये प्राथमिक शालाएँ हैं? और गाँवोंमें जो थोडी-बहुत प्राथमिक शालाएँ हैं भी, उनमें शिक्षा पानेवालो से गाँवोको किसी भी प्रकारका लाभ नही मिलता।

इसलिए आपने मुझसे जो सवाल पूछा, दरअसल वह उठता ही नही। लेकिन नयी योजनाके लिए ऐसा दावा किया जाता है कि वह आर्थिक दृष्टिसे मजबूत पायेपर कायम है, क्योकि जो भी शिक्षा दी जायेगी वह दस्तकारियोंके द्वारा दी जायेगी। यहाँ बात शिक्षाके साथ कोई दस्तकारी सिखलाने की नही, बल्कि किसी दस्तकारीके द्वारा ही पूरी शिक्षा देने की है। इसलिए, मान लीजिए, कोई लड़का बुनाई द्वारा शिक्षा पाता है तो वह निश्चय ही उस बुनकरकी अपेक्षा अच्छा होगा जो सिर्फ कारीगर होता है और यह तो कोई कह ही नही सकता कि बुनकर आर्थिक दृष्टिसे उपयोगी नही होता। यह बुनकर बुनाईके विविध औजारों और बुनाईकी सभी प्रक्रियाओका जानकार होगा और पेशेवर बुनकरकी अपेक्षा माल भी अच्छा पैदा करेगा। पिछले कुछ महीनोमें इस पद्धतिपर जैसा अमल होता रहा है उसके आर्थिक-परिणामोका अध्ययन श्रीमती आशादेवी[1] द्वारा सगृहीत तथ्यो और आँकड़ोंसे करना बेहतर होगा। ये परिणाम हमारी आशासे बहुत अधिक हैं। स्वावलम्बी शिक्षासे मेरा मतलब यही है। जब मैंने स्वावलम्बी शब्दका प्रयोग किया तो मेरा मशा यह नही था कि उसपर लगाई जानेवाली सब रकम उसीसे निकल आयेगी, बल्कि मेरा अभिप्राय तो सिर्फ यह था कि विद्यार्थी जो चीजें तैयार करें, उनसे कमसे-कम अध्यापककी तनख्वाह तो निकल ही आयेगी। इस तरह, बुनियादी शिक्षा-पद्धतिका आर्थिक पहलू तो अपने-आपमें स्पष्ट है।

इसके बाद इसका दूसरा पहलू भी है, और वह है राष्ट्रीय जागृतिका। पता नही आपने ग्रामोद्योग-सम्बन्धी कुमारप्पा समितिकी रिपोर्ट[2] पढ़ी है या नही। प्रति व्यक्ति औसत आमदनीका परम्परागत अक ७० रुपये है, लेकिन उन्होने सिद्ध किया है कि मध्य प्रान्तके गाँवोमें प्रति व्यक्ति औसत आमदनी ज्यादासे-ज्यादा १२ से लेकर १४ रुपये प्रति वर्षतक ही है। बुनियादी तालीमके लिए कताई तथा अन्य ग्रामो-

१. आशादेवी आर्यनायकम, हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी मुख्य पत्रिका नई तालीमकी सम्पादिका। उनका लेख "कान्फ्रेंस ऑफ बेसिक एज्युकेशन" (बुनियादी तालीम सम्मेलन) हरिजनके ७-१०-१९३९ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

२. गांधीजी द्वारा लिखित रिपोर्टके साराशके लिए देखिए पृ० ३८-४५।

द्योगोंका इस प्रकार चुनाव किया गया है जिससे वे गाँववालों की आवश्यकताएँ पूरी कर सकें। इसलिए जो लड़के ग्रामोद्योगों द्वारा शिक्षा पायें उन्हें चाहिए कि वे अपनी शिक्षाका अपने घरोंमें जरूर प्रसार करें। अब आप देखेंगे कि गाँववालों की औसत आमदनी ग्रामोद्योगोंका पुनरुद्धार करके आसानीसे दूनी की जा सकती है। अगर आप जनताके सेवक बन जायें और नयी पद्धतिमें सक्रिय दिलचस्पी लेने लगें, तो जिला-बोर्डोंमें होनेवाले अनेक झगड़े-टंटे भी खत्म हो जायेंगे। जब मैं इस सभामें आ रहा था तो मुझे एक ऐसी शालाका पत्र मिला जिसमें बच्चोंने तीस दिनतक चार घंटे रोज कताई करके करीब ७५ रुपये कमाये। अगर तीस बच्चोंने एक महीनेमें ७५ रुपये कमाये, तो हिन्दुस्तानके प्राइमरी स्कूलोंके करोड़ों बच्चे कितना कमायेंगे, इसका हिसाब आप आसानीसे लगा सकते हैं।

और यह भी खयाल कीजिए कि इन बच्चोंमें जो आत्म-विश्वास और उपाय-कुशलता पैदा होगी तथा साथ ही उन्हें इस बातका जो भान होगा कि वे देशकी आयमें वृद्धि करके असमान विभाजनकी समस्याको हल कर रहे हैं, उसका कितना भारी नतीजा होगा। इससे अपने-आप राजनीतिक जागृति आयेगी। इन बच्चोंसे मैं आशा करूँगा कि इन्हें स्थानिक मामलोंके बारेमें सब बातें मालूम हों, हमारे बीच फैले भ्रष्टाचारकी जानकारी हो; और उसे कैसे दूर किया जा सकता है, यह मालूम हो। मैं चाहूँगा कि इस तरहकी राजनीतिक शिक्षा हमारे हरएक बच्चेको मिले। इससे उनके ऊँचा उठने में निस्सन्देह खूब मदद मिलेगी।

मैं समझता हूँ मैंने इस बातको अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि शिक्षाकी इस पद्धतिसे देशकी आर्थिक और राजनीतिक उन्नति जरूर होगी।

यह कहने के बाद मैं आपसे एक प्रार्थना करूँगा। अब जब आप यहाँ आये हैं तो मैं आपसे कहूँगा कि आप इस शिक्षा-पद्धतिका अध्ययन करें और शुक्लजी तथा आर्यनायकमजी[1] को बतलायें कि आप यहाँसे इसके प्रति विश्वास लेकर जा रहे हैं या नहीं। मुझे तो निश्चय है कि अगर आप इसकी अच्छी तरह आजमाइश करेंगे, तो तीन महीनेके अन्दर ही आप यह सूचित कर सकेंगे कि आपने स्कूलोंमें नवजीवन पैदा करके बच्चोंमें नयी स्फूर्ति और नया जीवन भर दिया है। बीजको बढ़कर वृक्ष बनने में बरसों लग सकते हैं, लेकिन इस शिक्षाके जिस बीजको आप बोयेंगे उसका सीमित परिणाम कुछ महीनोंमें ही आप देख लेंगे। भारतीय जनताके सामने मैंने सबसे सादी चीजें रखी हैं — ऐसी सबसे सादी चीजें जो क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती हैं — जैसे खादी, मद्यनिषेध, दस्तकारियोंका पुनरुद्धार और दस्तकारियों द्वारा शिक्षा। लेकिन जबतक आप मौजूदा शासनके नशेसे मुक्त न हो जायें तबतक सादी बातें भी आपको दिखाई नहीं पड़ेंगी।

आप कुछ भी करें, पर अपने-आपको और हमें धोखा न दें। इसलिए अगर इस पद्धतिके प्रति आप उत्साहका अनुभव न करते हों तो मेहरबानी करके साफ-साफ ऐसा कह दीजिए।

१. हिन्दुस्तानी तालीमी संघके मन्त्री, ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम

दो शब्द पूंजीगत खर्चके बारेमें भी। जो पूंजीगत खर्च आप करेंगे, वह उस तरह बट्टेखाते नहीं जायेगा जैसे इमारतोंपर किया खर्च बट्टेखाते जाता है। आपको ऐसे औजारों और सामानपर खर्च करना पड़ेगा जो बरसोंतक उत्पादनके लिए उपयोगी होगा। जिन चरखों, करघों और धुनकियोंपर आप पैसा लगायेंगे वे विद्यार्थियोंके एकके-बाद-एक आनेवाले कई समूहोंके लिए उपयोगी होंगे। औद्योगीकरणमें बहुत अधिक पूंजी लगती है और टूट-फूट और घिसाईका खर्च बहुत भारी होता है। लेकिन मौजूदा योजनामें ऐसा कुछ नहीं है, क्योंकि सुनियोजित ग्रामीण अर्थशास्त्रमें निस्सन्देह ऐसे किसी खर्चकी जरूरत भी नहीं पड़ती।

अन्तमें एक बात और। मैं चाहता हूँ कि हमारी राजनीतिक पद्धतिमें जिस रद्दोबदलकी सम्भावना है, उससे आप विचलित न हों। मन्त्रिमण्डल जैसे अस्तित्वमें आये थे वैसे ही जा भी सकते हैं। वे यह जानते-समझते हुए आये थे कि अवसर आया तो उन्हें यथासम्भव कमसे-कम समयकी पूर्व-सूचनापर जाना पड़ेगा। मन्त्री लोग यह जानते हैं कि प्रसंग आने पर उन्हें सचिवालयसे सीधे जेलको कूच करना पड़ेगा, और वे ऐसा बिना किसी पसोपेशके मुस्कराते हुए ही करेंगे। लेकिन आपके काम और कार्यक्रमका दारोमदार मन्त्रिमण्डलपर रहने की कोई जरूरत नहीं है। आपका आयोजित काम अगर ठोस बुनियादपर आधारित है तो चाहे जितने मन्त्रिमण्डल आयें-जायें, वह कायम रहेगा। लेकिन यह अपने काममें आपकी आस्थापर निर्भर है। कांग्रेस जबतक सत्य और अहिंसाके अपने सिद्धान्तके प्रति सच्ची रहेगी, तबतक वह कायम रहेगी, उसका काम कायम रहेगा। मैंने कांग्रेसकी कड़ी आलोचना की है और निर्दयताके साथ उसकी कमियोंपर प्रकाश डाला है, लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि इतने पर भी उसका जमा-बाकी काफी अच्छा है।

इस सबके अलावा, मुझे आपको यह भी बता देना चाहिए कि हरएक बातका दारोमदार आपकी आस्था और संकल्पपर है। अगर आपमें चाह होगी तो राह आप निकाल लेंगे। अगर आप यह निश्चय कर लें कि इस योजनापर अमल करना ही है तो फिर हरएक कठिनाई दूर हो जायेगी। जरूरत सिर्फ इस बातकी है कि उसमें आपकी जीवन्त आस्था हो। हजारों आदमी कहते हैं कि ईश्वरमें उनका विश्वास है, लेकिन अगर वे जरा-से अंदेसेपर भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं तो उनका विश्वास सजीव नहीं, बल्कि निर्जीव विश्वास है। सजीव विश्वास होने पर आदमी अपनी योजनाको पार लगाने के लिए आवश्यक ज्ञान और साधन पा ही लेता है। मुझे इस बातकी खुशी है कि आपमें से हरएक व्यक्ति ऐसे विश्वासका दावा करता है। अगर बात सचमुच ऐसी ही है, तो आपका प्रान्त अन्य प्रान्तोंके सम्मुख एक सुन्दर उदाहरण पेश करेगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २८-१०-१९३९

१. महादेव देसाई आगे लिखते हैं कि "इसके बाद सदस्योंने कई घंटेतक विचार-विमर्श किया" और प्रस्ताव पास किये।

३२२. पत्र : रविशंकर शुक्लको

[१९ अक्तूबर, १९३०[1] या उसके पश्चात्]

भाई शुक्लजी,

हमारे संवादका जो विवरण आपने भेजा है वह सुधारने लायक नही है। मैंने थोड़ी सुधारणा की इससे आपको पता चलेगा। बहुत कम शोर्टहैन्ड राइटर हिन्दुस्तानमें है जो संवाद अच्छी तरह उतार लेते है। मेरे विचारोंका खयाल संक्षेपमें इसके साथ रखता हूँ। उसपर से शायद ज्यादा स्पष्टता हो जायगी। उसे आप छपवाना चाहें तो छपवा सकते हैं। उसका अनुवाद अंग्रेजीमें चाहिये तो वही करवा लीजिये। अगर मेरे तरफसे ही आपको वही चीज अंग्रेजीमें चाहिये तो भेज दूंगा। हिंदी उस हालतमें वापस कीजिये।

प्रधानजी के साथ उनकी और मेरी योजना के बारेमें जो संवाद हुआ था उसका नीचोड़ निम्नलिखित है:

प्रधानजी की योजना[2] मेरी योजनाके[3] साथ जुटाने के साथ कोई आवश्यकता नही है। दोनों साथ-साथ अवश्य चल सकती हैं, लेकिन दोनोंका हेतु भिन्न-भिन्न है। प्रधानजी की योजनामें प्राथमिक शिक्षाके खर्चका बोझ प्रत्येक देहातपर डालने का है। और वह जमीनके दाम द्वारा। यह अगर हो सकता है तो अवश्य स्तुत्य है। लोगोमें अपने बच्चोंकी शिक्षामें एक प्रकारका रस पैदा होगा। इस तरह जमीनका टुकड़ा लेकर उसमें से प्रतिमास पंदरह रूपयेका लाभ उठाने की शक्यताके बारेमें मुझे शक है। तद्यपि कोई जमीनदार अपनी देहातोंमें काफी जमीन दे दे तो प्रयोग करने में कोई हानि नही हो सकती। सफलता मिलने से लाभ ही होगा। इस तरह खेतका लाभदायक उपयोग करनेवाले मनुष्य ज्यादा नहीं मिल सकेंगे। कृषि कॉलिजोंमें जो स्नातक होते है वे देहाती कामके लिये तैयार ही नही किये जाते हैं। इसलिए कृषि कॉलिजोंमें मिला हुआ ज्ञान देहातोंके लिये प्रायः निकम्मा-सा रहता है।

मेरी योजनाका हेतु शिक्षाका ही परिवर्तन करना है और उसका फल मुल्कके लिये और व्यक्तिके लिये आवश्यकताकी पूर्ति और स्वावलम्बन है। स्वावलंबन शिक्षणकी पूर्णताकी परीक्षा भी है। इसलिए प्राथमिक पाठशाला चलाने के लिये कोई

१. पत्रमें रविशंकर शुक्लके साथ "बातचीत" के उल्लेखके आधारपर तारीख तय की गई है। उक्त बातचीत सम्भवतः स्थानिक संस्थाओंके प्रतिनिधियोंके सम्मेलनके दौरान हुई थी; देखिए पिछला शीर्षक।

२. विद्यामन्दिर योजना जिसका सूत्रपात रविशंकर शुक्लने किया था। योजनासे सम्बद्ध एक विधेयक २ नवम्बर, १९३९ को मध्य प्रान्त विधान-सभामें पास किया गया था।

३. बुनियादी शिक्षा योजना।

दान भी दें तब भी मेरी योजनामें कोई फर्क नही हो सकता। और संक्षेपमें योजना यह है

प्राथमिक शिक्षा कोई एक उद्योग द्वारा ही होनी चाहिये। इसके बाहर शुद्ध शिक्षण और बच्चोका सर्वांगी विकास असभव है और ऐसा शिक्षण स्वावलबी होना ही चाहिये। इसका यह अर्थ नही है कि प्रति वर्ग स्वावलवी रहेगा। लेकिन जो लड़का या लडकी उद्योगमय पाठशालामें सात वर्षतक अभ्यास करेंगे वे सात वर्षका खर्च उद्योगकी आमदनीमें से दे पावेंगे।

पत्रकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य. प्यारेलाल

३२३. पत्र : वी० ए० सुन्दरम्को

सेगांव, वर्धा
२० अक्तूबर, १९३९

प्रिय सुन्दरम्,

अन्तरात्माने मुझसे कहा कि 'अभी नही'। अत जो पत्र भेजनेका विचार था, वह नही भेजा गया।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१८३)से।

३२४. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२० अक्तूबर, १९३९

चि० कृष्णचंद्र,

दा० लक्ष्मीपतिके पास जाओ। उनको सेवा चाहीये सो दे दो। खबर भेजो वे कैसे है।

बापु

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३२९)से।

३२५. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

सेगाँव, वर्धा
२० अक्तूबर, १९३९

चि० ब्रजकृष्ण,

सट्टा और शराबमें मैं तो मुकाबला ही नहीं पाता हूं। काफी शराबके व्यापारीओसे मैंने दान लिया है। वेश्याओंने भी दिया है। किसका पैसा छोडुं और किसका लुं? हां, गौहर जानके[1] रू० १२,००० मैंने छोड़ा क्योंकि शर्त यह थी की मैं उनका गान सुनने जाऊं। लेकिन अलीभाई गये और पैसे लाये। कहो अब क्या किया जाय? धर्मकी कहानि अजीब है।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अगर बलवंतसिंह आ गये हैं[2] तो कहो उनके दूसरे खत मिले है वहां की डेरीमें जाते होंगे। महादेवने उनको लिखा था।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४७२) से।

३२६. भेंट : 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिको[3]

सेगाँव
[२० अक्तूबर, १९३९][4]

'टाइम्स ऑफ इंडिया' के सम्पादकीयमें गांधीजी से जो अपील की गई थी उसका उत्तर देने के लिए अनुरोध करने पर श्री गांधीने एक विशेष भेंटमें मुझे बताया कि वाइसरायके वक्तव्यका[5] चाहे जितना स्पष्टीकरण किया जाये अथवा कैफियत दी जाये, वह तबतक मंजूर नहीं होगा जबतक कांग्रेसकी वास्तविक माँगको

१. एक प्रसिद्ध मुस्लिम गायिका और उर्दू की कवयित्री
२. दिल्ली में
३. "एन इम्पॉर्टेंट इंटरव्यू" (एक महत्त्वपूर्ण मुलाकात) शीर्षकसे प्रकाशित यह भेंटवार्ता हरिजनने २१-१०-१९३९ के टाइम्स ऑफ इंडिया से उद्धृत की गई थी।
४. गांधी — १९१५-१९४८ : ए डिटेल्ड क्रॉनोलॉजीसे
५. १७ अक्तूबर का; देखिए परिशिष्ट १२।

स्वीकार नहीं किया जायेगा। ग्रेट ब्रिटेन भारतको सत्ता सौंपना चाहता है अथवा उसके लिए तैयार है, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' में गांधीजी से की गई अपीलका सम्बन्ध, युद्धके अन्तमें भारतके प्रतिनिधियोंका जो सम्मेलन बुलाया जानेवाला है, उसकी विषय-वस्तु, प्राधिकार और कार्योंसे था।

पत्रमें वाइसरायके वक्तव्यके निम्नलिखित शब्दोंकी ओर ध्यान आकर्षित किया गया था :

> महामहिमकी सरकार यह स्वीकार करती है कि भारतकी भावी संघीय सरकार-सम्बन्धी योजनापर और भूतपूर्व भारत-मन्त्री[1] द्वारा सदनमें दिये गये उन आश्वासनोंको, जिनका मैंने अभी-अभी जिक्र किया है, कार्यान्वित करनेकी योजनापर जब फिर विचार आरम्भ किया जायेगा तब इस बात पर दुबारा गौर करना जरूरी होगा कि १९३५ के अधिनियममें जो योजना थी, बदली हुई परिस्थितियोंमें उसकी कौन-सी चीजें उपयुक्त रह गई हैं।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने इन शब्दोंका यह अर्थ लगाया था कि युद्धके अन्तमें जो सम्मेलन बुलाये जानेकी योजना है उसमें भारतको औपनिवेशिक दर्जा प्रदान करनेके प्रश्नपर विचार किया जा सकेगा। पत्रने श्री गांधी और कांग्रेससे अनुरोध किया कि वे ऐसे सम्मेलनके महत्त्वको पहचानें और यदि उनके मनमें कोई सन्देह है तो वे उस सम्मेलनकी विषय-वस्तुके बारेमें अधिकृत स्पष्टीकरणकी माँग करें।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने जो शब्द उद्धृत किये थे उनके विषयमें श्री गांधीका विचार था : "ये इतने अस्पष्ट हैं कि उनका कोई स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। इनमें हर चीजको बड़ी खूबसूरतीके साथ अनिश्चित छोड़ दिया गया है।" उन्होंने आगे कहा :

कांग्रेस जो चाहती है वह यह कि हिन्दुस्तानके साथ एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें व्यवहार करना है, इस बातको स्पष्टतम शब्दोंमें स्वीकार किया जाये। कारण, भारत उत्साहके साथ इस युद्धमें भाग ले, इसके लिए जरूरी है कि उसके साथ ऐसे स्पष्ट शब्दोंमें बातकी जाये, जिनका कोई और अर्थ न निकलता हो।

कांग्रेस जो चाहती है उसे देना निश्चय ही बहुत आसान है; बशर्ते कि देनेकी इच्छा हो। वाइसरायकी घोषणामें मुझे उस इच्छाका अभाव दिखाई देता है।

और सम्मेलनमें कौन-कौन लोग भाग लेंगे? क्या वे लोग जिन्हें वाइसराय अथवा भारत-मन्त्री बुलायेंगे? उन्हे सच्चे अर्थोंमें प्रतिनिधि कैसे कहा जा सकता है?

सन्देहकी गुंजाइश न रहने देनेके खयालसे कांग्रेसने यथासम्भव व्यापकतम मताधिकारके आधारपर चुने गये स्त्री-पुरुषोंकी प्रातिनिधिक सभाका सुझाव दिया था। इस सभाको कांग्रेसने स्वीकृत शब्दावलीमें संविधान-सभाकी संज्ञा दी। भारतकी

१. सर सैम्युअल होर

स्वतन्त्रताकी इच्छा रखनेवाला कोई भी पक्ष इसका विरोध कैसे कर सकता है? क्या लोगोंको बुलाकर उनसे यह पूछना उचित है कि वे लोग स्वाधीनता चाहते है अथवा नही? क्या किसी गुलामसे उसकी आजादीकी वाछनीयताके सम्बन्धमें राय ली जानी चाहिए? हाँ, उसे किस तरह स्वतन्त्र किया जाना चाहिए, इस बारेमें उससे पूछा जा सकता है और यह काम संविधान-सभा कर सकती है। इस बातका निर्णय संविधान-सभा ही करेगी कि औपनिवेशिक दर्जा दिया जाय अथवा कुछ और। यह कम अथवा ज्यादा भी हो सकता है। जनताके प्रतिनिधियोंको स्वतन्त्रताके स्वरूप और विषय-वस्तुका निर्णय करने का पूरा-पूरा अधिकार होना चाहिए।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि अल्पसंख्यकोंको कांग्रेसके विरुद्ध कैसे पेश किया जा रहा है। निश्चय ही काग्रेसका उनमें से किसीसे कोई झगड़ा नहीं है। कांग्रेस हर अल्पसंख्यक समुदायके अधिकारोंकी तबतक रक्षा करेगी जबतक कि वह ऐसी माँग न करेगा जो भारतकी स्वाधीनतासे मेल न खाती हो। मुसलमानों, अनुसूचित जातियों और प्रत्येक वर्गके पूरे प्रतिनिधि विधान-सभामें रहेंगे और उन्हे अपने विशेष अधिकारोंके बारेमें स्वयं निर्णय करना होगा। देशी नरेशो और जमीदारोको भी डरने की जरूरत नही होगी, यदि वे लोग जनताके प्रतिनिधि बनकर संविधान-सभामें आयें। स्वाधीन भारत जनताके सच्चे हितोंके विरुद्ध पड़नेवाले किसी भी हितको सहन नही करेगा, चाहे वह हित मुसलमानों, अनुसूचित जातियो, ईसाइयों, पारसियों, यहूदियों, सिखों, ब्राह्मणों, ब्राह्मणेतर लोगों या किन्हीं और से सम्बद्ध हो।

लेकिन मैं न तो वाइसरायको दोष देता हूँ और न ब्रिटिश युद्ध-मन्त्रिमण्डल को। स्वतन्त्रता अग्रेजों अथवा किसी और की दयापर निर्भर नही करेगी। वह तो तभी मिलेगी जब लोग उसके लिए तैयार हो जायेंगे। स्पष्टत ब्रिटिश राजनीतिज्ञ यह सोचते है कि भारतके लोग अभी इसके लिए तैयार नही हैं। काग्रेस अथवा किसी भी संगठनको, जो लाखों लोगोंका प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न करता है, इसके लिए शक्ति और साधनका सचय करना होगा।

श्री गांधीने कहा कि मुझे आशा थी कि यूरोपीय संघर्षके अपने कटु अनुभव से ब्रिटिश राजनीतिज्ञ बदल गये होंगे; लेकिन फिलहाल मेरी यह आशा चकनाचूर हो गई है।

श्री गांधीने आगे कहा कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' को अपनी अपील सीधे अंग्रेजोंसे करनी चाहिए और यह कहना चाहिए कि ब्रिटेनने जिन युद्ध-उद्देश्योंकी घोषणा की है उनके अनुरूप वे भारतके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करें। श्री गांधीने इस बातपर दुःख व्यक्त किया कि जो समाचारपत्र अबतक अधिकारियोंसे यह कहता आया है कि वे उदारतासे काम लें, उसका आज एकाएक रवैया ही बदल गया है। पत्र भूतकालमें जो माँगें करता रहा है, उनको ध्यानमें रखकर अगर देखा जाये तो वाइसरायके वक्तव्यमें कुछ भी मंजूर नहीं किया गया है। तथापि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने उसकी प्रशंसा ही की।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' के सम्पादकीयमें श्री गांधीकी जो व्यक्तिगत रूपसे चर्चा की गई है, उसका उत्तर देते हुए उन्होंने वक्तव्यको समाप्त किया। उन्होंने इस बातसे इन्कार किया कि उनके आचरणमें कोई असंगति रही है अथवा वे अपने पहलेके उन वक्तव्योंसे[1] अलग हट गये हैं जिनमें उन्होंने इंग्लैंड और फ्रांसके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की थी। उन्होंने कहा कि अब भी मेरे वही विचार हैं। लेकिन अब चूँकि यह प्रश्न उठा दिया गया है, इसलिए मुझे उम्मीद थी कि इंग्लैंड उसपर विचार करेगा और सन्तोषजनक उत्तर देगा।

मैंने कांग्रेसको जो सलाह दी है उसका मतलब यह नहीं है कि भारत अपनी स्वाधीनताकी अवहेलना करके मित्र-राष्ट्रोंका समर्थन करे। भारतको ब्रिटेनके रथ-चक्रमें बाँधे जाने की कार्रवाईमें मैं शरीक नहीं होऊँगा। मेरी भगवान्से अब भी यही प्रार्थना है कि इस युद्धमें न केवल ब्रिटेन और फ्रान्स ही विजयी हों, बल्कि जर्मनीका भी नाश न हो।

जिस तरह मैं यह नहीं चाहता कि यूरोपीय राष्ट्र अपनी आजादीका महल भारतकी आजादीके भग्नावशेषोंपर खड़ा करें उसी तरह मेरे मनमें ऐसी कोई इच्छा नहीं है कि भारतकी आजादीकी इमारतका निर्माण इन युद्धरत राष्ट्रोंमें से किसी की भी राखपर किया जाये।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-१०-१९३९

३२७. क्या मैं ईश्वरका दूत हूँ?

एक मुसलमान मित्रने मुझे एक लम्बा पत्र लिखा है। वह कुछ काट-छाँटकर नीचे दिया जा रहा है

> आपके सही ढंगसे सोचने के रास्तेकी मुख्य कठिनाई यह है कि आपने अपने जो सिद्धान्त खुद गढ़ लिये हैं, उन्हींके प्रकाशमें आप सदा हरएक चीजको देखते हैं और उन्हींके अनुसार उनकी व्याख्या करते हैं और इस तरह आपका हृदय इतना कठोर हो गया है कि आप किसी चीजको खुले दिमागसे देख ही नहीं सकते, चाहे वह कितनी ही महत्त्वकी क्यों न हो।
>
> अगर ईश्वरने आपको अपना दूत नियुक्त नहीं किया है, तो यह दावा नहीं किया जा सकता कि आप जो-कुछ कहते हैं या जो शिक्षा देते हैं, वह ईश्वरका वचन है। पैगम्बरोंकी सीख और ऊँचे आध्यात्मिक महत्त्वके सिद्धान्तोंके रूपमें सत्य और अहिंसाकी सचाईका कोई प्रतिवाद नहीं कर सकता। लेकिन

१. देखिए पृ० १७८-८० और १८७-८९।

उनकी सच्ची समझ और सही अमल तो सिर्फ उसीके बसकी बात है जिसका परमात्मासे सीधा सम्बन्ध हो। महज अपने शरीरकी कामनाओं और भूखका दमन करके अपनी आत्माको थोड़ा निखार लेनेवाला कोई व्यक्ति पैगम्बर नहीं हो जाया करता।

आप अपनेको जगत्‌का गुरु मानते हैं; आप यह दावा करते हैं कि आपने उस बीमारीको जान लिया है, जिससे संसार पीड़ित है; आप यह भी एलान करते हैं कि आपका पसन्द किया हुआ और आपके द्वारा आचरित सत्य, तथा आपके द्वारा प्रतीत और प्रयुक्त अहिंसा ही पीड़ित संसारके सच्चे उपचार हैं। आपकी इन बातोंसे सत्यके प्रति आपकी उपेक्षा और भ्रम प्रकट होता है। आप यह स्वीकार करते हैं कि आप गलतियाँ करते हैं। आपकी अहिंसा दरअसल छिपी हुई हिंसा है, क्योंकि उसका आधार सच्चा आध्यात्मिक जीवन नहीं है और न वह सच्ची ईश्वरीय प्रेरणाका नमूना है।

एक सच्चे मोमिनके नाते और इस्लामकी इस शिक्षाके अनुसार कि हरएक मुसलमानको प्रत्येक मनुष्यतक सत्यका सन्देश पहुँचाना चाहिए, मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप अपने मनको सब तरहकी ग्रंथियोंसे मुक्त कर लीजिए, अपनेको एक ऐसे साधारण मनुष्यकी स्थितिमें समझिए जो सिखाना नहीं, सीखना चाहता है, और इस तरह आप सत्यके असली शोधक बन जाइए।

आप अगर सचमुच सत्यकी तलाश करना चाहते हैं, तो मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप 'कुरान' पढ़ें और शिबली नोमानी और मौलाना सुलेमान नदवीकी लिखी हजरत मुहम्मद (स्वलल्ला हो अल्लैही वस्सलम) की जीवनी बिलकुल खुले हृदयसे पढ़ें।

हिन्दुस्तानमें रहनेवाले विभिन्न सम्प्रदायोंकी एकताके सवालपर मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि एक राष्ट्रके रूपमें ये सब सम्प्रदाय कभी संगठित नहीं हो सकते। एक-दूसरेके धर्म और आचार-विचारके प्रति उदारतापूर्ण सहिष्णुता और ऐसे समझौतेसे ही हिन्दुस्तानमें शान्ति-सुलह कायम हो सकती है जिसमें मुसलमानोंको एक राष्ट्रके रूपमें स्वीकार किया जाये, उनका मार्गदर्शन करनेवाली उनकी अपनी सम्पूर्ण जीवन संहिता और उनकी संस्कृतिको अक्षुण्ण स्थिति प्रदान की जाये और राजनीतिक जीवनमें उन्हें समान दर्जा दिया जाये।

पत्र-लेखककी एक भी दलील मैंने नहीं छोड़ी है।

मैंने अपने दिलको कठोर नहीं बनाया है। मैंने सिवा उस अर्थमें, जिसमें सभी मानवप्राणी ईश्वरके दूत हैं, कभी यह दावा नहीं किया कि मैं वैसा हूँ। मैं एक मर्त्य मनुष्य हूँ और किसी भी दूसरे आदमीकी तरह गलती कर सकता हूँ। मैंने कभी गुरु होने का दावा भी नहीं किया है। लेकिन मैं प्रशंसकोंको ठीक उसी तरह मुझे गुरु या महात्मा कहने से नहीं रोक सकता, जिस तरह मैं अपने निन्दकोंको

सब तरहकी गालियाँ देने और मुझे ऐसी-ऐसी बुराइयोंका दोषी बतानेसे नहीं रोक सकता जो मुझमें कतई नहीं हैं। मैं तो स्तुति और निन्दा, दोनोंको सर्वशक्तिमान् परमात्माके चरणोंमें अर्पित कर अपने मार्गपर बढ़ा चला जाता हूँ।

मैं अपने पत्र-लेखकको, जो एक हाई स्कूलमें मास्टर हैं, बता दूँ कि मैंने उनके द्वारा उल्लिखित तथा इस्लाम-सम्बन्धी अन्य कई पुस्तकें श्रद्धापूर्वक पढ़ी हैं। मैंने 'कुरान'को कई बार पढ़ा है। मेरा धर्म मुझे इस योग्य बनाता है, बल्कि मेरा यह कर्त्तव्य बना देता है कि संसारके सभी महान् धर्मोंमें जो भी अच्छाई है, उसे मैं ग्रहण करूँ। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इस्लामके पैगम्बर या अन्य किसी पैगम्बरके सन्देशका उक्त पत्र-लेखक जो अर्थ लगायें, उसीको मैं स्वीकार कर लूँ। जो सीमित बुद्धि परमात्माने मुझे दी है, उसका प्रयोग मुझे संसारके पैगम्बरों द्वारा मानव-जातिको दी गई शिक्षाका अर्थ समझने के लिए अवश्य करना चाहिए। मुझे यह देखकर खुशी हुई है कि पत्र-लेखक इस बातसे सहमत हैं कि पाक 'कुरान' भी सत्य और अहिंसाकी शिक्षा देता है। इसमें कोई शक नहीं कि परमात्माने जो बुद्धि हमें दी है, उसके अनुसार इन सिद्धान्तोंको अमलमें लाना उक्त पत्र-लेखकका और हममें से प्रत्येकका काम है।

पत्रके आखिरी अनुच्छेदमें एक बहुत खतरनाक सिद्धान्त पेश किया गया है। हिन्दुस्तान एक राष्ट्र क्यों नहीं है? क्या यह — उदाहरणके लिए — मुगल-कालमें एक राष्ट्र नहीं था? क्या भारत दो राष्ट्रोंको मिलाकर बना है? यदि ऐसा ही है, तो केवल दो से ही मिलकर क्यों? क्या ईसाई तीसरा, पारसी चौथा, और इसी तरह हर सम्प्रदायके लोगोंका अलग राष्ट्र नहीं है? क्या चीनके मुसलमान अन्य चीनियोंसे पृथक् राष्ट्रीयता रखते हैं? क्या इंग्लैंडके मुसलमान दूसरे अंग्रेजोंसे पृथक् हैं? पंजाबके मुसलमान हिन्दुओं और सिखोंसे किस प्रकार भिन्न हैं? क्या वे सब एक ही पानी पीनेवाले, एक हवामें साँस लेनेवाले और एक ही जमीनसे पोषण पानेवाले पंजाबी नहीं हैं? वहाँ उन्हें अपने-अपने धार्मिक आचरणसे रोकनेवाली कौन-सी बात है? क्या संसार-भरके मुसलमान एक पृथक् राष्ट्र हैं? या अन्यों से भिन्न सिर्फ हिन्दुस्तानके ही मुसलमान एक पृथक् राष्ट्र हैं? क्या भारत को दो टुकड़ोंमें — मुसलमानों और गैर-मुस्लिमोंमें — बाँटना है? यदि ऐसा ही हो तो हिन्दू-प्रधान गाँवोंमें रहनेवाले मुट्ठी-भर मुसलमानों या इसके विपरीत सीमा-प्रान्त और सिन्ध-जैसे क्षेत्रोंके मुस्लिम-प्रधान गाँवोंमें रहनेवाले मुट्ठी-भर हिन्दुओंका क्या होगा? पत्र-लेखकने जो मार्ग सुझाया है, वह लड़ाईका मार्ग है। जीयो और जीने दो या पारस्परिक क्षमा और सहिष्णुता जीवनका नियम है। यही शिक्षा है जो मैंने 'कुरान' से पाई है, 'बाइबल' से पाई है, 'जेन्द अवेस्ता' और 'गीता' से पाई है।

सेगाँव, २१ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-१०-१९३९

३२८. तार: पत्तम ताणु पिल्लैको[1]

२१ अक्तूबर, १९३९

दीवानसे पूछे बिना प्रकाशित नही करना चाहिए। तुम उनसे पूछो अन्यथा मैं [उन्हें] लिख सकता हूँ।

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

३२९. पत्र: एन० एस० हर्डीकरको

सेगाँव
२१ अक्तूबर, १९३९

प्रिय डॉ० हर्डीकर,

मैसूरसे कई सज्जन यहाँ आ चुके है। मैंने उनसे कह दिया है कि आप लोगोंमें से जिन्होंने अबतक मैसूरके कार्यकर्त्ताओंका मार्ग-दर्शन किया है, उनकी सहमति लिये बिना मैं कुछ नही करूँगा।

रामदुर्गमें जो हो रहा है वह बहुत खेदजनक है। मैं तो कष्टको चुपचाप सहन करने की ही राय दे सकता हूँ।[2] यदि किसी भी प्रकारकी बदलेकी कार्रवाई नहीं की जाती है — यहाँ तक कि अखबारोंके जरिये भी कोई जवाब नही दिया जाता, तो वह फर्जी आन्दोलन अपने-आप समाप्त हो जायेगा। इसमें यह बात तो आ ही जाती है कि जो हिंसा हो, हमेशा झूठी बुराई करनेवालो की ओरसे ही हो। आपको अपने अनुयायियोंको अहिंसाकी कला सिखानी है। इसके निमित्त सबसे पहले

१. यह तार पत्तम ताणु पिल्लैके २१ अक्तूबरके उस तारके उत्तरमें था, जिसमें उन्होंने दीवानके साथ हुई गांधीजीकी बातचीतसे सम्बन्धित पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करनेके कार्य-समितिके निर्णयके बारेमें गांधीजीको सूचित किया था और उसके प्रकाशनकी अनुमति माँगी थी।

२. अपने १८ अक्तूबरके पत्रमें हर्डीकरने लिखा था: "जिन लोगोंने न्यायमूर्ति डावरके खिलाफ गवाही दी थी, उनके खिलाफ लोगोंमें विषाक्त प्रचार किया गया है। उसका लक्ष्य श्री शंकरराव देव, गंगाधरराव देशपाण्डे, र० रा० दिवाकर, एच० एस० कौजलगीको और मुझे बनाया गया है।... यदि इस स्थितिपर काबू नहीं किया गया, तो हिंसा अवश्य भड़क उठेगी।"

आपके दिलमें सभी परिस्थितियोमें अहिंसाकी कार्य-साधक शक्तिमें जीवन्त आस्था होना आवश्यक है।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजीसे: एन० एस० हर्डीकर पेपर्स, सौजन्य. नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३३०. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

सेगाँव, वर्धा
२१ अक्तूबर, १९३९

चि० ब्रजकृष्ण,

हरिजनोके बारे में बापा, हरिजी[2] वि० के साथमें बैठकर जो किया जा सकता है, करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४७१)से।

३३१. मौनके लाभ

डॉ० राजनने[3] महादेव देसाईको निम्न पत्र भेजा है:

> उस दिन जब मैं महात्माजी से मिलने सेगाँव गया, तब वे मौन लिये हुए थे। आपको मालूम है कि कागजकी एक पर्चीपर अपने मौनके बारेमें उन्होंने इस आशयका कुछ लिखा था: "मेरे लिए स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह

१. इसके उत्तरमें लिखे अपने २६ अक्तूबरके पत्रमें हर्डीकरने कहा था: "...आपकी सलाहके अनुसार हम चुपचाप सब कष्ट सहेंगे।... अब जहाँतक वर्तमान आन्दोलनका सवाल है, यह मैसूरके कार्यकर्ताओं द्वारा अपनी ही पहलपर शुरू किया गया था।... तथापि हम लोग राज्यमें हो रही घटनाओंके बारेमें लोगोंको बताते रहे हैं...और इस सम्बन्धमें आवश्यक सुझाव भी देते रहे हैं।... इसके अतिरिक्त हम और कुछ नहीं करते।...हमें श्री भीमप्पा नायकसे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप इस मामलेमें हस्तक्षेप करने के लिए तैयार हैं, बशर्ते कि रियासत ऐसा करने की स्वीकृति दे। हमें इस बातका पूरा यकीन है कि मैसूर रियासत कार्य-समिति अथवा मैसूरके जिम्मेदार कार्यकर्ता आपके हस्तक्षेप का स्वागत करेंगे...।" देखिए पृ० २८० भी और "मैसूरके लोगोंको लिखे पत्रका अंश", २४-११-१९३९।

२. नई दिल्ली स्थित हरिजन-निवासके वियोगी हरि

३. मद्रासके स्वास्थ्य-मन्त्री, डॉक्टर टी० एस० राजन

आवश्यक हो गया है।" इन थोड़े-से शब्दोंने मुझे इस विचारमें डाल दिया है कि क्या शारीरिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे मौनका विचार उपयोगी है। वैज्ञानिक जानकारीके लिहाजसे, इस सम्बन्धमें उनके निजी अनुभव लिपिबद्ध किया जाना उपयोगी होगा।

उनके मौनके फलस्वरूप मैं यह जानना चाहूँगा कि:

(१) क्या रक्तचापके चढ़ाव-उतारमें कोई स्पष्ट कमी होती है?

(२) क्या कुछ समयके मौनके बाद उन्हें अपना शरीर पहलेसे स्वस्थ मालूम पड़ता है और वे ज्यादा शक्ति और लगनसे अपने काममें लग पाते हैं, और

(३) क्या मौनके दौरान वे शारीरिकके साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्यमें भी सुधारका अनुभव करते हैं?

इसमें शक नहीं कि मौन रखना स्वेच्छासे लगाया गया एक कठिन प्रतिबन्ध है। लेकिन शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी खातिर इसे लगाना उपयोगी है। . . .[1] आप जानते हैं कि गांधीजी-जैसे व्यस्त व्यक्तिको मैं कभी पत्र नहीं लिखता, न उनके साथ ऐसी किसी सैद्धान्तिक चर्चामें ही पड़ता हूँ। इसलिए आप इस बातको समझेंगे कि मैं आपको क्यों लिख रहा हूँ। मैं जो जानकारी चाहता हूँ वह अगर आपके विचारमें उपयोगी हो, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि आप उसे 'हरिजन' में प्रकाशित कर दें।

इन प्रश्नोके जवाब देने से पहले मुझे यह बतला देना चाहिए कि मेरे लिए मौन भार-रूप नही है और न मुझे उसके लिए प्रयास करना पड़ता है। दलीलो और बातचीतसे मैं सचमुच इतना थक गया हूँ कि जब मुझे आवश्यक प्रतीत होता है, तभी मैं बोलता हूँ। इसलिए आम तौरसे आजकल मैं मौन ही रहता हूँ। जो पहलेसे समय लेकर, जिन प्रवृत्तियोसे मेरा सम्बन्ध है, उनपर चर्चा करने आते हैं उन्ही से मैं बातचीत करता हूँ। सेगाँव आश्रममें भी बीमारो तथा ऐसे ही अन्य व्यक्तियोंको छोड़कर औरोंसे मैं बातचीत नही करता। मैं यह भी देखता हूँ कि आश्रमवासी अगर मेरी अपेक्षाके विरुद्ध कोई काम करें, तो मैं आसानीसे खीज उठता हूँ। मैं देखता हूँ मौनसे मैं ऐसी खीजसे बच सकता हूँ।

अब प्रश्नोको लीजिए।

(१) जब मैं मौन रहता हूँ, तो रक्तके दबावमें स्पष्टतया कमी होती है। इसलिए मेरे चिकित्सक मित्रोंने मुझे सलाह दी है कि मैं जितना भी मौन रख सकूँ, रखूँ।

(२) इसमें कोई सन्देह नही कि हर बार मौनके बाद मैं अधिक स्वस्थता महसूस करता हूँ और काम करने के लिए अपनेमें पहलेसे अधिक शक्ति पाता हूँ।

१. साधन-सूत्रके अनुसार

मौन न रखने की हालतमें मैं जितना काम करता हूँ उससे कहीं अधिक काम मौनके दौरान करता हूँ।

(३) मौनके दौरान मनको जो शान्ति मिलती है वह अन्यथा नहीं मिलती। मतलब यह कि मौन रखने के निश्चयसे ही मुझपर बड़ा शान्तिप्रद असर होता है। इससे मेरे मनपरसे एक बोझ उतर जाता है। मेरा अनुभव मुझे बताता है कि मौनसे स्नायुओंको ऐसी शान्ति मिलती है जैसी किसी दवासे नही मिल सकती। मुझे तो इससे नींद आने में भी मदद मिलती है।

चेतावनी · जेलोंमें मैंने देखा कि अगर कैदियोंको अकेला रख दिया गया है और इस कारण उन्हें मजबूरीमें मौन रखना पड़ता है तो उन्हें खोये-खोये-से रहने की आदत पड़ जाती है। मौनका मैंने जो असर बतलाया है वह तभी हो सकता है जब मौन रखनेवाले व्यक्तिको मौन पसन्द हो। इसलिए अनुकरणके कारण या सिर्फ इस विचारसे कि मुझपर उसके उपर्युक्त सुप्रभाव पड़ते हैं, किसीको मौन रखने की जरूरत नहीं है। सबसे अच्छा तो यह होगा कि चिकित्सककी सलाहसे मौन लिया जाये। कहने की जरूरत नही कि यहाँ मैं मौनकी आध्यात्मिक आवश्यकता और प्रभावोंका उल्लेख नहीं कर रहा हूँ।

सेगाँव, २२ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २८-१०-१९३९

३३२. ब्रह्मचर्यके बारेमें

यह कहा जा सकता है कि मैंने बहुत समयसे 'हरिजनबन्धु' के लिए लिखना बन्द कर दिया है। लिखने की इच्छा तो कम नहीं है, समयके अभावने मुझे विवश कर दिया है। यह लेख लिखने की इच्छा तो बहुत समयसे थी। आज कुछ लिख रहा हूँ।

एक साथीने मुझे बताया कि मैंने किसी पुराने लेखमें ब्रह्मचर्यपर अपने विचार प्रकट करने का वादा किया था। मुझे ठीक-ठीक वह वाक्य तो याद नही है लेकिन उनसे मैंने कहा था कि मैं इस विषयपर कुछ लिखने का प्रयत्न करूँगा।

ब्रह्मचर्यकी मैंने जो व्याख्या की है, वह अब भी कायम है। उसके अनुसार जो मनुष्य मनसे भी विकारग्रस्त हो जाये, समझना चाहिए कि उसका ब्रह्मचर्य स्खलित हो गया है। जो मनुष्य विचारमें [भी] निर्विकार नही, वह पूर्ण ब्रह्मचारी कभी नही माना जा सकता। चूँकि अपनी उक्त व्याख्यातक मैं नही पहुँच सका हूँ इसलिए मैं अपनेको आदर्श ब्रह्मचारी नहीं मानता। लेकिन अपने इस आदर्शसे बहुत दूर होने पर भी मैं यह मानता हूँ कि जब मैंने यह व्रत लिया था उससे मैं बहुत आगे बढ़ गया हूँ। विचारकी निर्विकारता तबतक नही आती, जबतक कि 'पर' का दर्शन नही होता।[1] जब विचारपर पूरा अधिकार हो जाता है तब

१. भगवद्गीता, २/५९

पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको अपनेमें समाहित कर लेती है। इस प्रकारके ब्रह्मचारीके अस्तित्वको मैं स्वीकार करता हूँ, हालाँकि ऐसा कोई ब्रह्मचारी मेरे देखने में नही आया। ऐसा ब्रह्मचारी बनने के लिए मैं महा प्रयत्न कर रहा हूँ। जबतक ब्रह्मचर्यकी उक्त स्थिति प्राप्त नही होती, तबतक मनुष्य अहिंसाकी उस स्थितितक नही पहुँच सकता जहाँतक पहुँचना उसके लिए सम्भव है।

ब्रह्मचर्यके लिए आवश्यक माने जानेवाले प्रतिबन्धोंको मैंने हमेशाके लिए आवश्यक नही माना है। जिसे किसी बाह्य रक्षाकी जरूरत है वह पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं है। इसके विपरीत, जो प्रतिबन्धोंको तोडने के लिए अवसरकी तलाशमें रहता है, वह ब्रह्मचारी नही, किन्तु मिथ्याचारी है।

ऐसे निर्भय ब्रह्मचर्यका पालन कैसे हो? मेरे पास इसका कोई अचूक उपाय नही है, क्योकि मैं पूर्णताकी स्थितितक नही पहुँचा हूँ। लेकिन मैंने अपने लिए जिस वस्तुको आवश्यक माना है वह यह है:

मनको खाली न रहने देने की खातिर उसे निरन्तर शुभ चिन्तनमें लगाये रहना चाहिए। रामनामका इकतारा तो चौबीसों घंटे, सोते हुए भीं, श्वासकी तरह स्वाभाविक रीतिसे चलता रहना चाहिए। वाचन हो तो सदा शुभ, और विचार किया जाये तो अपने कार्यका ही। कार्य पारमार्थिक होना चाहिए। विवाहितोंको एक-दूसरेके साथ एकान्त सेवन नही करना चाहिए, एक कोठरीमें एक चारपाईपर नही सोना चाहिए। यदि एक-दूसरेको देखने से विकार पैदा होता हो, तो अलग-अलग रहना चाहिए। यदि साथ-साथ बातें करने से विकार पैदा हो, तो बातें नही करनी चाहिए। स्त्री-मात्रको देखकर जिसके मनमें विकार पैदा होता हो, उसे ब्रह्मचर्य-पालनका विचार छोड़कर अपनी स्त्रीके साथ मर्यादापूर्वक व्यवहार करना चाहिए, और जो विवाहित न हो, उसे विवाहका विचार करना चाहिए। किसीको सामर्थ्यके बाहर जाने का आग्रह नहीं रखना चाहिए। सामर्थ्यसे बाहर प्रयत्न करके गिरनेवालो के अनेक उदाहरण मेरी नजरके सामने तैरते रहते हैं।

जो मनुष्य कानसे बीभत्स या अश्लील बातें सुनने में रस लेते हैं, आँखसे स्त्रीकी तरफ देखने में रस लेते हैं, जो अश्लील चीजें पढते है, अश्लील बातें करने में रस लेते हैं, वे सब ब्रह्मचर्यका उल्लंघन करते हैं। अनेक विद्यार्थी और शिक्षक ब्रह्मचर्य-पालनमें हताश हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे श्रवण, दर्शन, वाचन, भाषण आदिकी मर्यादा नही जानते, और मुझसे पूछते हैं, 'हम किस तरह ब्रह्मचर्यका पालन करें?' प्रयत्न वे जरा भी नही करते। हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जो पुरुष स्त्रीके चाहे जिस अगका सविकार स्पर्श करता है वह ब्रह्मचर्यका उल्लघन करता है, जो उपर्युक्त मर्यादाका ठीक-ठीक पालन करता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुलभ हो जाता है।

आलसी मनुष्य कभी ब्रह्मचर्यका पालन नही कर सकता। वीर्य-सग्रह करनेवालेमें अमोघ शक्ति पैदा हो जाती है। उसे अपने शरीर और मनको निरन्तर कार्यरत रखना ही चाहिए। अतः हरएक साधकको कोई ऐसा सेवा-कार्य खोज लेना चाहिए कि जिससे उसे विषय-सेवन करने के लिए समय ही न मिले।

साधकको अपने आहारपर पूरा नियंत्रण रखना पड़ता है। वह जो-कुछ खाये सो केवल औषधि-रूपमें, शरीर-रक्षाके लिए ही खाये, स्वादके लिए कदापि नही। इसलिए उसे मादक पदार्थ, मसाले आदि कदापि नही खाने चाहिए। ब्रह्मचारीको मिताहारी नही, किन्तु अल्पाहारी होना चाहिए। सबको अपनी मर्यादा बाँध लेनी चाहिए।

उपवासादिके लिए ब्रह्मचर्य-पालनमें अवश्य स्थान है। लेकिन जो उपवास करके उसे आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देकर स्वयको कृतकृत्य हुआ मानता है वह भारी गलती करता है। उपवासके दौरान निराहारीके विषय क्षीण भले ही हो जायें, लेकिन उनका रस तो विलुप्त होता ही नही।[1] शरीरको नीरोगी रखने में उपवास बहुत सहायक है। अल्पाहारी भी भूल कर सकता है, इसलिए प्रसगोपात्त उपवास करने में लाभ ही है।

'क्षणिक सुखके लिए मै अपना तेज क्यो खोऊँ? जिस वीर्यमें प्रजोत्पत्तिकी शक्ति भरी हुई है, उसका पतन क्यो होने दूं, और ईश्वरकी दी हुई देनका दुरुपयोग करके मैं ईश्वरको छलूं क्यों? जिस वीर्यका सग्रह कर मै वीर्यवान बन सकता हूँ, उसका पतन करके वीर्यहीन क्यों बनूं?' इस विचारका मनन यदि साधक नित्य करे, और रोज ईश्वर-कृपाकी याचना करे, तो सम्भवत. वह इस जन्ममें ही वीर्यपर नियन्त्रण प्राप्त कर ब्रह्मचारी बन सकता है। मै इसी आशाको लेकर जी रहा हूँ।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २२-१०-१९३९

३३३. पुर्जा : पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा डिप्टी कमिश्नरको[2]

२२ अक्तूबर, १९३९

मै आपके सुझावपर खूब सोच-विचार करता रहा हूँ। जहाँतक मेरा सवाल है, मेरा तो यही विचार है कि मेरी सुरक्षा-व्यवस्था करने की कोई आवश्यकता नही है। यदि मैं इसमें कोई सहयोग देता हूँ तो यह, मुझपर आक्रमण होने के समय मेरे मनमें जो प्रतिक्रिया होगी, उसके विपरीत बैठेगा। इसलिए यदि अधिकारी लोग कुछ सावधानी बरतना ही चाहते है तो आश्रमकी हदके बाहर ही कुछ प्रबन्ध किया जाना चाहिए। लेकिन यदि अधिकारी लोग इस सम्बन्धमें मेरी रायका खयाल रखना चाहते हो तो मैं यही कहूँगा कि उन्हे मेरी सुरक्षाके लिए कोई कदम नही

१. भगवद्गीता, २/५९

२. इन अधिकारियोंने गांधीजीसे भेंट करके उनकी सुरक्षाका प्रबन्ध करनेका प्रस्ताव रखा था, क्योंकि इन लोगोंको सूचना मिली थी कि गांधीजी पर आक्रमण होनेवाला है।

उठाना चाहिए। मेरे इस पुर्जेका उपयोग वे मेरे प्रति हर प्रकारकी जिम्मेदारीसे मुक्त होने के लिए कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य: नारायण देसाई

३३४. पत्र : मुन्नालाल गं० शाहको

सेगाँव
२२ अक्तूबर, १९३९

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा मन कैसा अव्यवस्थित है? अपनी टिप्पणी फिर पढ जाना। एक पलमें लिखते हो चूँकि मैं कहता हूँ इसलिए तुम रमण महर्षिके पास जाओगे, और दूसरे पल लिखते हो कि कहाँ जाना चाहिए सो मालूम नहीं। मेरी माँग तो सिर्फ एक ही है। यहाँसे तुम सीधे रमण महर्षिके आश्रम चले जाओ। वहाँ सात दिन रहो और उतने से यदि तुम्हें तनिक भी सतोष न मिले तो पाण्डिचेरी जाओ अथवा सीधे यहाँ चले आओ।

कल मैंने शंकरनके बारेमें जो कहा था वह तुम्हारी समझमें आया या नहीं? यदि समझमें न आया हो तो गहराईमें उतरकर समझने की कोशिश करना। यह भूल कोई साधारण भूल नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५५७)से। सी० डब्ल्यू० ७०५९ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल गं० शाह

३३५. तार: विश्वके समाचारपत्रोंको[1]

२३ अक्तूबर, १९३९

(आपके) प्रश्नके उत्तरमें (मैं कह सकता हूँ कि) कांग्रेसने युद्ध-कालमें शासन-विधानमें परिवर्तन करने की माँग नही की है। कांग्रेसकी माँग केवल इतनी है कि ब्रिटेन यह घोषित कर दे कि उसके युद्धके उद्देश्योंमें लड़ाईके बाद भारतके निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा तैयार किये गये अधिकार-पत्रके अनुसार भारतकी स्वतन्त्रता भी अनिवार्यत: निहित है। लडाईके दौरान इस घोषणापर यथासम्भव अधिकसे-अधिक अमल होना चाहिए। अल्पसख्यकोका प्रश्न तो एक हौआ है। यह बात नही कि इसका अस्तित्व नही है, लेकिन इसका उचित हल प्रस्तावित सविधान-सभा द्वारा ही हो सकता है। इस गुत्थीको सुलझाने का भार ब्रिटेनपर नही, बल्कि सविधान-सभा पर है। भारतीयोकी रायमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न ब्रिटिश शासनकी प्रत्यक्ष उपज है। कांग्रेस कमसे-कम जो-कुछ इस समय कर सकती थी, वह यह कि वह प्रान्तीय हुकूमतोसे कांग्रेसी मन्त्रियोको हटा ले। ब्रिटेन इस सकटका किस तरह मुकाबला करता है, कांग्रेसकी अगली कार्रवाई सर्वथा इसीपर निर्भर है। कांग्रेसने दरवाजा खुला रख छोड़ा है कि ब्रिटेन अपनी भूल सुधार ले।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २८-१०-१९३९

१. यूरोपके प्रमुख समाचारपत्रोंके एक प्रतिनिधिके विशेष अनुरोधपर गांधीजी ने उक्त सन्देश २२ अक्तूबर को दिया, जो "डोर स्टिल ओपन" (दरवाजा अब भी खुला हुआ है) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। २६-१०-१९३९ के हिन्दूमें प्रकाशित एक रिपोर्टके अनुसार जिन समाचारपत्रों और समाचार-एजेंसियोंने यह अनुरोध किया था वे थीं: न्यूयॉर्क टाइम्स (अमेरिका), डेली हेरल्ड (ब्रिटेन), पारी स्वार (फ्रान्स), पोपोलो द इतालिया (रोम), नेशनल टाइडेन्ड (कोपेनहेग), आफ्टेन पोस्टेन ऐंड टेलिग्राफ (एम्सटर्डम), तास समाचार-एजेंसी (मास्को), अर्थिजी (मैड्रिड), दागेन सिंथर (स्टाकहोम), स्विस समाचार एजेंसी (जिनेवा), ला नास्यों (ब्यूनस आयर्स), योरमियूरी शिम्बुन (टोकियो), डन्सि सुयोमि (हेलसिंगफोर्स) और नास्यों बेल्श (ऐन्टवर्प)।

३३६. एक पत्र[1]

सेगाँव
२३ अक्तूबर, १९३९

मुझे इस बारेमें तनिक भी सन्देह नही कि जो-कुछ हुआ है,[2] वह हमारे लक्ष्यको ध्यानमें रखते हुए, ठीक ही हुआ है। यह एक कड़वा घूंट है, सो मै जानता हूँ, लेकिन यह जरूरी था। इससे कांग्रेस संस्थामें जो स्वार्थी लोग आ गये हैं वे निकल जायेंगे। अब हम उन गलत कामोसे बच जायेंगे जो हमें मजबूरन करने पड़ते। अब हम और भी शक्ति-सम्पन्न होकर सत्तामें लौटेंगे। यदि मेरे शरीरमें ताकत रही तो मै अब भी शान्तिके लिए प्रयत्न करता रहूँगा।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०७७)से।

३३७. किन कारणोंसे ?

किसी उद्देश्यमें असफल होने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि अपने विरोधी को खूब गालियाँ दी जायें, और उसकी कमजोरियोसे फायदा उठाने की कोशिश की जाये। लड़ाईके दूसरे प्रकारोंके बारेमें सत्य चाहे जो हो, पर सत्याग्रहमें तो यह माना गया है कि असफलताके कारणोको खुद अपने ही अन्दर ढूंढना चाहिए। ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसकी इस आशा पर पानी फेर दिया कि सरकार अपेक्षित घोषणा करेगी। किन्तु उसका एकमात्र कारण वे कमजोरियाँ ही है जो कांग्रेस-संगठन और कांग्रेसजनोमें आ गई हैं।

सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि अहिंसा और उसके अनेक फलितार्थोंको हमने पूरी तरह नही समझा है। यही एक गम्भीर दोष हमारी अन्य सब कमजोरियोंका मूल है। हमने कायिक अहिंसाका तो खासा अच्छा पालन किया है, पर अपने दिलोंमें हमने हिंसाको प्रश्रय दे रखा है। इसलिए सरकारके मुकाबलेमें हमारी अहिंसा हिंसासे प्रभावकारी ढगसे काम लेने की हमारी असमर्थताका परिणाम है। यही कारण है कि हम अपने आपसके बरतावमें हिंसाकी तरफ बहक गये है। कमेटियोंमें हम एक-दूसरेके साथ लड़ते-झगड़ते रहे हैं और कभी-कभी तो हाथापाईतक पर उतर आये हैं।

१. यह पत्र च० राजगोपालाचारीके नाम लिखे पत्रोंके संग्रहमें पाया गया है। तारीख अमृत-कौरके हाथकी लिखी हुई है।

२. तात्पर्य कांग्रेस कार्य-समितिके २२ अक्तूबरके प्रस्तावसे है; देखिए परिशिष्ट १३।

हमने काग्रेसकी कार्य-समितिके आदेशोंको अमलमें लाने से इन्कार कर दिया है। हमने अलग-अलग प्रतिस्पर्धी दल बना लिये हैं, जो सत्ताको हथियानेकी कोशिशमें हैं। हिन्दू और मुसलमान जरा-जरा-सी बातपर लड़ते रहे हैं। साम्प्रदायिक मतभेद जो दूर नही हो सके हैं, उसके लिए काग्रेसजन आशिक रूपसे जरूर जिम्मेवार हैं। अपनी फूट के लिए ब्रिटिश सरकारको दोषी ठहराना आसान है। पर इस तरह हम अपनी वेदना की अवधिको बढ़ाते ही हैं। यह हमें मालूम था कि फूट डालकर राज करने की नीति १९२० में भी थी, और तब भी हमने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको अपने रचनात्मक कार्यक्रममें रखा था। हमने ऐसा इस आशासे किया था कि हमारे रास्तेमें सरकार द्वारा रोडे अटकाये जाने के बावजूद हम कौमी एकता हासिल कर लेंगे। और खासियत यह कि उस वक्त प्रतीत भी ऐसा होता था कि उस एकता को हमने हासिल कर लिया है।

हमारी कमजोरियोंके ये उदाहरण भयकर हैं। इनके कारण काग्रेसका पूर्ण विकास रुद्ध हुआ है और हमारे अहिंसाके सारे दावे उपहासकी वस्तु बनकर रह गये हैं। हमारी असफलताओके कारणोका यदि मेरा यह विश्लेषण सही है, तो यह एक तसल्लीदेह बात है कि इसका इलाज किसी बाहरी परिस्थितिपर नही, किन्तु खुद हमपर निर्भर करता है। हमें अपने सगठनको सुव्यवस्थित कर लेना चाहिए और उसे इतना शुद्ध तथा शक्तिशाली बना देना चाहिए कि लोग उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगें। किन्तु उसे सम्मानका पात्र हमारे मार्गमें बाधा डालनेवालो के मनमें भय पैदा करके नही, बल्कि उन्हें अपनी अहिंसात्मक वाणी और क्रियाका असन्दिग्ध प्रमाण देकर बनाना है।

कार्य-समितिका प्रस्ताव जिस तरह इस बातका सबूत है कि कांग्रेस हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सचाईके साथ प्रयत्न करने को तत्पर है, वहाँ वह काग्रेसजनोंके अनुशासन और उनकी अहिंसाकी भी कसौटी है। हालाँकि प्रस्तावमें कोई ऐसी बात नही कही गई है, मगर समितिकी इच्छानुसार सविनय अवज्ञाके नियन्त्रण तथा आयोजनका काम मुझपर छोड दिया गया है। कहने की जरूरत नही कि रजिस्टरमें दर्ज और गैरदर्ज काग्रेसजनोके विशाल समूह द्वारा कार्य-समितिके माध्यमसे या जब 'यग इडिया' और 'नवजीवन' निकलते थे तब उनके और अब 'हरिजन' के माध्यमसे जारी की हुई हिदायतोंका समझ-बूझकर और स्वेच्छापूर्वक किये गये पालनके अलावा मेरे पास और कोई बल न कभी था और न आज है। इसीलिए जब मै देखूंगा कि मेरी हिदायतोपर कोई अमल नही होता, तो काग्रेसजन पायेंगे कि मै चुपचाप मैदानसे हट गया हूँ। लेकिन अगर लड़ाईका आम नियन्त्रण मेरे हाथ में रहनेवाला हो, तो मै चाहूँगा कि अनुशासनका पूरी कड़ाईसे पालन हो। जहाँतक मै देख सकता हूँ, जबतक काग्रेसजन पूर्ण अनुशासन और अहिंसा तथा सत्यके प्रति पहलेकी अपेक्षा अधिक अच्छे बोधका परिचय नही देंगे, तबतक किसी बडे पैमानेपर सत्याग्रहकी कोई सम्भावना नही है, और जबतक अधिकारियो द्वारा हम इसके लिए बाध्य न किये जायें, उसकी कोई जरूरत भी नही है।

हम जीवन-मरणके संघर्षमें लगे हुए हैं। हिंसाका वातावरण हमारे आसपास छाया हुआ है। देशके लिए यह भारी कसौटीकी घड़ी है। पाखण्डका परदा डालने से काम नहीं चलेगा। अगर कांग्रेसजनोंको ऐसा लगे कि उनमें अहिंसा नहीं है, अगर वे अंग्रेज अधिकारियोंके प्रति या कांग्रेसका विरोध करनेवाले अपने देशवासियोंके प्रति अपनी कटुताको दूर न कर सकें तो उन्हें खुले आम यह कह देना चाहिए, और अहिंसाका परित्याग कर मौजूदा कार्य-समितिको बदल देना चाहिए। इससे कोई नुकसान न होगा। लेकिन समितिको उसमें और उसकी हिदायतोंमें पूरा विश्वास न रखते हुए कायम रखने से बहुत हानि होगी। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, सत्य और अहिंसा का कड़ाईके साथ पालन किये बिना हिन्दुस्तानको स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। अगर मेरी सेना ऐसी हो कि जिन शस्त्रोंसे मैं उसे सुसज्जित करूँ, उनकी क्षमतामें उसे सन्देह हो, तो मेरे सेनापतित्वसे कोई लाभ न होगा। अपने देशके शोषणका मैं उतना ही पक्का दुश्मन हूँ जितना कोई हो सकता है। विदेशी जुएसे अपने देशको पूर्णतः मुक्त करने के लिए मैं भी उतना ही अधीर हूँ जितना कि कोई उग्रतम कांग्रेसी हो सकता है। लेकिन एक भी अंग्रेज, बल्कि भूमण्डलके किसी भी मानव-प्राणीसे मुझे कोई घृणा नहीं है। मित्र-राष्ट्रोंकी अगर मैं मदद नहीं कर सकता, तो उनका विनाश भी मैं नहीं चाहता। हालाँकि ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसकी आशा पर, मेरी आशापर बुरी तरह पानी फेर दिया है फिर भी मैं उसकी परेशानीसे कोई फायदा नहीं उठाना चाहता।

मेरा प्रयत्न और मेरी प्रार्थना तो यही है और होगी कि यथासाध्य कमसे-कम समयके अन्दर आपसमें लड़नेवाले राष्ट्रोंके बीच सम्मानपूर्ण सुलह हो जाये। मैंने यह आशा बाँध रखी थी कि ब्रिटेन और हिन्दुस्तानके बीच सम्मानपूर्ण सुलह और साझेदारी हो जायेगी, और जो संहार-लीला मानवताको कलंकित कर खुद जीवनको ही भार-रूप बना रही है, उससे बचने का रास्ता निकालने में शायद मैं अपनी विनम्र भूमिका अदा कर सकूँगा। लेकिन ईश्वरकी इच्छा कुछ और ही है।

सेगाँव, २४ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २८-१०-१९३९

३३८. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेगाँव, वर्धा
२४ अक्तूबर, १९३९

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

श्री टॉमसन[1] यहाँ आये थे। उन्होंने मुझे बताया कि आपकी अधिघोषणा[2] पर मैंने जो वक्तव्य[3] जारी किया था उसे आपने मेरी अभद्रता समझा है। श्री टॉमसनकी बात मेरी समझमें नही आई, लेकिन मैंने उनसे कहा कि यदि सचमुच ऐसा है तो मैं आपको पत्र लिखकर आपसे क्षमा माँग लूँगा। क्या आप कृपा करके इस मामलेपर कुछ प्रकाश डालेंगे? मुझे इस बारेमें तनिक भी सन्देह नही कि हमारे बीच जो मित्रता कायम हो गई है वह हमारे आपसी मतभेदोके कारण पड़नेवाले बोझको झेल लेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स; सौजन्य राष्ट्रीय अभिलेखागार

३३९. पत्र : अमतुस्सलामको

२४ अक्तूबर, १९३९

बेटी,

मैं क्या करू। मैंने तो बड़ी मेहनत की। इसमें कुछ भी शक नही कि बा के दिलमें तेरे पर काफी नाराजी है। दूसरोका मुझे पता नही है। तेरा धर्म तो इस घरको छोडने का है। यहा का वायु अच्छा हो जाय तो आ सकती है। बा की नाराजी का मुझे कुछ पता नहीं था। आज देखकर मैं हेरान हो गया। ऐसी हालतमें हनीफको[4] यहा कैसे बुलाउ?

बापुकी दुआ

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३२)से।

१. ब्रिटिश कवि और लेखक, एडवर्ड टॉमसन; देखिए "मेरा जीवन", पृ० ३४८-५२ भी।

२. देखिए परिशिष्ट १२।

३. देखिए पृ० २९७-९८।

४. पंजाबके एक खादी-कार्यकर्ता

३४०. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
२५ अक्तूबर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

वह अमरीकी चीज मैं पढ़ गया हूँ। बहुत महँगी है। अन्य दृष्टियोंसे भी मुझे आकर्षक नहीं लगी।

आशा है इन्दुके बारेमें तुम्हारे पास अच्छी खबर आई होगी।[1]

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३४१. पत्र : बलवन्तसिंहको

सेगाँव, वर्धा
२५ अक्तूबर, १९३९

चि० बलवंतसिंह,

हां, हरिद्वार जाना। दयालबाग भी देख लोगे। कसोटीकी बात आने पर।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९२६) से।

१. देखिए पृ० २८४, पाद-टिप्पणी २।

३४२. चर्चा: गांधी सेवा संघकी कार्यकारिणीके सदस्योंके साथ–१[1]

वर्धा,
२५ अक्तूबर, १९३९

यह समस्या मेरे मनमें घूमती रहती है। यह मुझे चैन नही लेने देती। कार्य-समितिके कनिष्ठ सदस्यो की स्थितिके बारेमें मैंने 'हरिजन' में लिखा[2] है। उनकी स्थिति बडी कठिन थी। उनके लिए एक ओर तो सिद्धान्तका प्रश्न था और दूसरी ओर अपने सहयोगियो के प्रति निष्ठाका। लेकिन अपनी स्थिति मेरे सामने स्पष्ट करने की उनकी इच्छा परम स्वागत योग्य थी। इससे पता चलता है कि हम सब सत्यके अनुयायी है और हमारे मानसिक सघर्ष और द्वन्द्व भी हमारी इस चिन्तासे ही उत्पन्न होते है कि सत्यके प्रति हम किस प्रकार सच्चे रहें। कल कार्य-समितिमें हमारी बहुत अच्छी चर्चा हुई और हमने व्यक्तियोंके रूपमें और काग्रेस तथा जनताके प्रतिनिधियोकी हैसियतसे सदस्योकी स्थितिपर खूब बारीकीसे चर्चा की। आपके साथ बात दूसरी है। क्योकि आप यहाँ अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे आये है और काग्रेस या काग्रेसजन कुछ भी सोचें, आपको अपना आचरण स्वय निश्चित करना है। इसलिए आपकी समस्या अपेक्षाकृत बहुत सरल है। क्या आप उस व्यक्तिके प्रति भाईचारेका रुख अपनायेंगे जिसने आपके प्रियजनोको गम्भीर चोट पहुँचाई हो? मान लीजिए, राजेन्द्र बाबूपर आक्रमण किया गया। क्या आप उसका जवाब आक्रमणसे ही देंगे या राजेन्द्र बाबू और आक्रमणकारीके बीच खड़े होकर राजेन्द्र बाबूपर होनेवाले प्रहार अपने ऊपर झेल लेंगे? यदि आपने मृत्युके समस्त भयको छोड़ दिया हो, और शरीरको चोट पहुँचने का डर भी आपको न रहा हो, और न उन पारिवारिक बन्धनोका ही कोई विचार रहा हो जो लोगोको बाँधे रहते हैं, तो आप दूसरा रास्ता चुनेंगे। लेकिन जबतक उन लोगोंके प्रति, जो आपके साथ विद्वेषपूर्ण व्यवहार करते हैं, आप भाईचारेका ही व्यवहार न करेंगे, तबतक आपके इस संकल्पका कोई अर्थ नही होगा कि कठिनसे-कठिन घड़ीमें भी आप अहिंसाके सिद्धान्तपर दृढ रहेंगे। कोरे प्रस्ताव रखने की अपेक्षा तो यह कहीं अच्छा होगा कि सघको बन्द कर दिया जाये।

१. यह चर्चा महादेव देसाईके लिखे "द आवर ऑफ ट्रायल" (परीक्षाकी घड़ी) शीर्षक लेखसे ली गई है। देसाईने चर्चाकी पृष्ठभूमि बताते हुए लिखा है: "गाधीजी २५ तारीखको रातके एक बजे उठ बैठे और सोचने लगे कि जब तीसरे पहर सेवा संघकी कार्यकारिणीके सदस्योंसे मुलाकात होगी तो उस समय उन्हें क्या कहना चाहिए।" दिनमें चर्चा आरम्भ होने पर गाधीजीने ये उद्गार व्यक्त किये।

२. देखिए पृ० २९५-९६।

अहिंसा ऐसा सद्‌गुण नहीं है जो ऋषियों अथवा गुफाओंमें रहनेवालों के ही लिए हो। अहिंसा तो ऐसी वस्तु है जिसपर लाखों लोग आचरण कर सकते हैं —इसलिए नहीं कि उसके फलितार्थोंका उन्हें पूर्ण ज्ञान है, बल्कि इसलिए कि वह हमारी मनुष्य-जातिके जीवनका नियम है। यह आदमीको पशुसे अलग करनेवाली चीज है। लेकिन मानवने अपने भीतरकी पशुताको छोड़ा नहीं है। वैसा करने की उसे कोशिश करनी है। यह कोशिश अहिंसाको व्यवहारमें लाने की होनी चाहिए, उसमें महज विश्वास रखने की नहीं। किसी सिद्धान्तपर विश्वास लाने के लिए मैं कोशिश नहीं कर सकता। मैं या तो उसमें विश्वास करूँगा या नहीं करूँगा। अगर उसमें विश्वास करता हूँ तो उसपर आचरण करने के लिए मुझे बहादुरीके साथ प्रयत्न करना चाहिए। अहिंसा तो वीरोका गुण है। दुर्बलता और अहिंसा उसी प्रकार एक साथ नहीं चल सकती जैसे पानी और आग। यही अहिंसा है, जिसे अपने भीतर विकसित करने के लिए गाधी सेवा संघके प्रत्येक सदस्यको प्रयत्न करना चाहिए।

हमने प्राय. इस प्रश्नपर विचार किया है, लेकिन परीक्षाकी घड़ी तो आज आई है। और यह परीक्षा जितनी महायुद्धके सन्दर्भमें होनी है उतनी ही स्वराज्यके लिए संघर्षके सन्दर्भमें और उसी तरह हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें भी। यह भी याद रखिए कि अहिंसा तबतक कारगर ढगसे काम नहीं कर सकेगी जबतक आप चरखेमें श्रद्धा न रखेंगे। मैं चाहूँगा कि मेरी दृष्टिसे आप 'हिन्द-स्वराज्य'[1] पढ़ें और उसमें उस अध्यायको देखें जिसमें बताया गया है कि भारतको अहिंसक कैसे बनाया जा सकता है। कल-कारखानेकी सभ्यताके आधारपर आप अहिंसाका निर्माण नहीं कर सकते, लेकिन स्वावलम्बी गाँवोंके आधारपर उसका निर्माण किया जा सकता है। हिटलर चाहकर भी सात लाख अहिंसक गाँवोको खत्म नहीं कर सकता। खत्म करने की प्रक्रियामें वह स्वयं अहिंसक हो जायेगा। मेरी कल्पनाकी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थामें शोषणके लिए कतई गुंजाइश नहीं है, जबकि हिंसाका शोषण मूल है। इसलिए अहिंसक हो सकनेके पहले आपको अपना मानस ग्रामीण बनाना होगा और ग्रामीण मानस पाने के लिए आपको चरखेमें श्रद्धा रखनी होगी।[2]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-११-१९३९

१. देखिए खण्ड १०।

२. महादेव देसाईके अनुसार अगले दिन भी इन सदस्योंके साथ गांधीजीकी बातचीत हुई थी; देखिए पृ० ३३३-३५।

३४३. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
२६ अक्तूबर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

मैंने महसूस किया कि यद्यपि मेरे प्रति तुम्हारे मनमें अब भी उतना ही आदर और स्नेहभाव है, तथापि हमारे दृष्टिकोणका भेद अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है। सम्भवत यह हमारे इतिहासका सबसे नाजुक समय है। आज जिन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नोपर हमारा ध्यान लगा हुआ है उनके बारेमें मेरे बहुत दृढ विचार है और मैं जानता हूँ कि उनके बारेमें तुम्हारे विचार भी उतने ही दृढ है लेकिन मेरे विचारोसे भिन्न है। तुम्हारी अभिव्यक्तिका ढग भी मुझसे भिन्न है। जिन विचारोपर मेरा दृढ आग्रह है उनसे अन्य लोग भी सहमत है या नही, सो भी मुझे मालूम नही। मै घूम-फिर नही सकता। जनताके साथ मेरा सीधा सम्पर्क स्थापित नही हो सकता, यहाँतक कि काग्रेसी कार्यकर्त्ताओसे भी नही। मै यह महसूस करता हूँ कि यदि मैं तुम सब लोगोकी सहमति एवं समर्थन प्राप्त नही कर सकता तो मुझे नेतृत्व भी नही करना चाहिए। कार्य-समितिके सदस्योमें मतभेद नही होने चाहिए। मै सोचता हूँ कि तुम पूरी तरह बागडोर अपने हाथमें ले लो और देशका नेतृत्व करो और मुझे अपना मत प्रकट करने के लिए स्वतन्त्र छोड दो। किन्तु यदि तुम सबके विचारमें मुझे पूर्णतया मौन रहना चाहिए तो आशा है, ऐसा करने में भी मुझे कोई कठिनाई नही होगी। यदि इसमें कुछ फायदा समझो तो तुम्हे यहाँ आकर इस सम्बन्धमें मुझसे बातचीत करनी चाहिए।

स्नेह।

बापू

[अग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य . नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृ० ३९४ से भी

३४४. पत्र : बी० जी० खेरको

सेगाँव, वर्धा
२६ अक्तूबर, १९३९

भाई बालासाहब,

चूँकि आप अपना पद छोड़नेवाले हैं, इसलिए आप वर्त्तमान कार्यमें दूना रस लेना, और इस विश्वासके साथ काम करना कि आपने जिसका बीजारोपण किया है वह व्यर्थ नही जानेवाला है। आपका यह महान् त्याग कांग्रेसको दस गुना फल देगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६)से।

३४५. पत्र : कुँवरजी खेतसी पारेखको

सेगाँव, वर्धा
२६ अक्तूबर, १९३९

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें जब आना हो तब आ जाना। तुम्हारे रहने का प्रबन्ध तो मैं वर्धा या सेगाँवमें, जहाँ बालकृष्णको रखा था, करूँगा। मेरे साथ तो इतनी भीड़ है कि तुम्हारा दम घुटने लगेगा। लेकिन इसका निर्णय तो तुम्हारे आने पर हो जायेगा। विशेषज्ञको दिखलाने के लिए तुम्हे नागपुर भेजना पड़ेगा। इस तरह दो लोग[1] तो अच्छे हो गये। तीसरे तुम होगे। रामीको आनेकी जरूरत नही, लेकिन आये तो हर्ज भी नही है। तुम दोनो जैसा ठीक समझो वैसा करना। यदि वह जगह तुम्हारे अनुकूल न हो तो यहाँ आनेमें विलम्ब मत करना।

बापूके आशीर्वाद

श्री कुँवरजी खेतसी पारेख
हिन्दू धर्मशाला, मीरज

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३१) से।

१. बाल्कोबा और मैथ्यू; देखिए पृ० २७६।

३४६. पत्र : दिग्विजयसिंहको

सेगाँव, वर्धा
२६ अक्तूबर, १९३९

मेहरबान महाराजा,[1]

आपने मुझे अपना उत्तर तुरन्त भेज दिया, तदर्थ मैं आपका आभार मानता हूँ। पानीके [अभावके] बारेमें आपने जो लिखा सो समझा। तथापि मैं यह अनुरोध तो करता ही हूँ कि आप अभी इस मामलेमें और गहरे जाकर यह निश्चय अवश्य करें कि काठियावाड़को पानीकी इस तंगीसे अवश्य मुक्त करेंगे। मेरी विनम्र रायमें पेड़-पौधोंकी वृद्धिके लिए कोई सघन प्रयत्न लगभग नहीं हुआ है।

आपकी शंकाओंके बारेमें तो जब आपसे मिलनेका सुयोग होगा तब मैं अपने विचार आपके समक्ष जरूर रखूँगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपने जो रास्ता अपनाया है वह सही नहीं है। यह मैं मित्रकी तरह कह रहा हूँ।

आपका,

गुजरातीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य . प्यारेलाल

३४७. चर्चा : गांधी सेवा संघकी कार्यकारिणीके सदस्योंके साथ – २

वर्धा
२६ अक्तूबर, १९३९

प्रश्न : आपकी कल्पनाकी[2] अहिंसामें विश्वास रखनेवाला कोई व्यक्ति भला मन्त्री कैसे हो सकता है?

गांधीजी वर्त्तमान स्थितिमें तो शायद नहीं हो सकता। हम देख चुके हैं कि स्वायत्त शासनसे पहले जिस प्रकार ब्रिटिश सरकारको हिंसाका सहारा लेना पड़ता था, उसी प्रकार हमारे मन्त्रियोंको भी हिंसाका सहारा लेना पड़ा है। शायद वह अनिवार्य था। यदि कांग्रेसजन सच्चे रूपमें अहिंसक होते, तो बल-प्रयोगका सहारा न लिया जाता। लेकिन कांग्रेसके बहुमतका आधार विशुद्ध अहिंसा नहीं थी। एक मन्त्रीने उस दिन कहा कि हालाँकि उन्होंने अहिंसाको रत्ती-भर भी

१. नवानगर के
२. देखिए पृ० ३३०।

नहीं छोड़ा, फिर भी गोलीबारीका थोड़ा-सा सहारा लिये बिना वे काम नहीं चला सकते थे। उन्होंने उसका सहारा वहींतक लिया जहाँतक उसे टालना सम्भव नहीं था। उन्होंने उस बार ऐसा कहा तो कहा, लेकिन मेरा बस चले तो फिर वे ऐसा न कह पायें। यदि वे पुन मन्त्री बनते हैं तो उन्हें अपनी स्थितिको स्पष्ट करना होगा और वे एक ऐसे सदनका प्रतिनिधित्व करेंगे जो मुख्यत. अहिंसक होगा। दूसरे शब्दोंमें, वे पद तभी स्वीकार करेंगे जब उन्हें यह निश्चय होगा कि लोग उन्हें अहिंसात्मक आधारपर सरकार चलाने देंगे।

लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अहिंसामें विश्वास रखनेवाले मन्त्री तो कमसे-कम हिंसाका सहारा लेंगे, लेकिन अहिंसामें विश्वास न रखनेवाले मन्त्री ऐसा कोई संयम नहीं बरतेंगे?

ऐसा मानना तो भ्रम है। जो आज हिंसाका प्रयोग कर रहे हैं, वे सब ऐसा ही दावा करते हैं। हिटलर भी ऐसी ही बात कहेगा। ब्रिटेनकी लॉर्ड सभाने जनरल डायरको उस समयका महान् वीर बताकर उसकी प्रशसा की थी, क्योकि सभा के कथनानुसार उसका उद्देश्य भीड़की हिंसाको फैलने से रोकना था। सोवियत रूसका विश्वास है कि हिंसाविहीन व्यवस्था स्थापित करने के लिए वहाँ की जानेवाली हिंसा मात्र एक सक्रमणकालीन अवस्था है। हमारे विश्वास और व्यवहारकी जैसी अवस्था आज है उसमें शायद यह अधिक अच्छा होगा कि संघको विघटित कर दिया जाये और प्रत्येक व्यक्तिको निर्बाध विकासके लिए मुक्त कर दिया जाये।

किशोरलाल मशरूवाला: लेकिन यह सलाह दी जा रही है कि हम सदस्यता को उन्हीं लोगोंतक सीमित कर दें जो रचनात्मक काममें लगे हुए हैं।

यह सलाह अच्छी है, और हम सघको ऐसी संस्थाके रूपमें परिणत कर दें ऐसी कल्पना की जा सकती है। तब हममें से प्रत्येक अपनी वैयक्तिक हैसियतसे अपनेको शुद्ध करने की जितनी कोशिश कर सकता है, करे। कारण, अहिंसाके बिना आत्मशुद्धि सम्भव नहीं है। इसलिए हम एक आत्मशुद्धि संघके सदस्य बन जायें, लेकिन इस उद्देश्यके लिए किसी संघकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए हममें से हरएक अपने ही तरीकेसे अपने सामने आनेवाली कठिनाइयों और समस्याओंका मुकाबला करे और देखे कि हम कितना कर सकते हैं। दो वरस पहले हुबलीमें मैंने[1] आपसे चुनावो और विधान-सभाओंमें अच्छेसे-अच्छे लोगोंको भेजने में मदद देने को कहा था। तब मैंने उस समयके वातावरणके अनुसार आपको सलाह दी थी। आज वह सलाह मैं आपको नहीं दे सकता। वास्तवमें शायद समय आ गया है जब यह आवश्यक हो जाये कि आपमें से वे लोग जो वीरोंकी अहिंसामें विश्वास करते हैं, कांग्रेससे हट जायें, जैसा कि १९३४ में मैंने किया।[2]

१. अप्रैल, १९३७ में; देखिए खण्ड ६५।
२. देखिए खण्ड ५९, पृ० २८०।

आप कैसे सोचते हैं कि आम लोग अहिंसापर आचरण करेंगे, जबकि हम जानते हैं कि वे क्रोध, घृणा और दुर्भावनाके वशीभूत हो जाते हैं? उन्हें तो छोटी-छोटी चीजोंके लिए लड़ते-झगड़ते देखा जाता है।

ऐसा देखा तो जाता है, फिर भी मेरा विचार है कि वे सामान्य हितके लिए अहिंसाका आचरण कर सकते हैं। क्या आप सोचते हैं कि जिन हजारों स्त्रियोंने निषिद्ध नमक इकट्ठा किया, उनके मनमें किसीके प्रति दुर्भावना थी? वे जानती थीं कि कांग्रेस या गांधीने उनसे कुछ चीजें करनेके लिए कहा है और श्रद्धा एवं आशाके साथ उन्होंने वही चीजें कीं। मेरे विचारसे, अहिंसाका सबसे पूर्ण प्रदर्शन चम्पारनमें हुआ था। भूमि-सम्बन्धी बुराइयोंके विरुद्ध विद्रोह करनेवाली हजारों रैयत क्या सरकार या निलहे साहबोंके प्रति दुर्भावना रखती थी? जिस प्रकार बहुत-से लोगोंका यह विश्वास बुद्धिसंगत नहीं है कि पृथ्वी गोल है उसी प्रकार अहिंसामें उनकी श्रद्धाके पीछे बुद्धि की प्रेरणा नहीं थी। लेकिन अपने नेताओंमें उनकी श्रद्धा सच्ची थी, और इतना काफी था। जो नेतृत्व करते हैं उनकी बात दूसरी है। उनकी श्रद्धा सजग और बुद्धिसंगत होनी चाहिए और उन्हें उस श्रद्धाके सब फलितार्थोंपर आचरण करना चाहिए।

लेकिन क्या दुनिया-भरके आम लोग इसी प्रकारके नहीं हैं?

नहीं हैं, क्योंकि अन्य लोगोंके पीछे अहिंसाकी वह पृष्ठभूमि नहीं है।

लेकिन अगर हमारे आम लोगोंमें अहिंसा समाई हुई थी तो वे गुलामीकी दशामें कैसे पहुँचे?

यही तो वह बात है जिसके सम्बन्धमें मैं इस खुशफहमीमें हूँ कि मेरा योगदान होगा। मैं चाहता हूँ कि दुर्बलकी अहिंसा सबलकी अहिंसा बन जाये। हो सकता है कि वह एक स्वप्न हो, लेकिन उसको साकार करनेके लिए मुझे प्रयत्न करना है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-११-१९३९

३४८. पत्र : वालजी गो० देसाईको

सेगाँव, वर्धा
२७ अक्तूबर, १९३९

चि० वालजी,

तुमने यहाँ आनेका विचार करके ठीक ही किया है। हम देख लेंगे कि क्या करना चाहिए। चित्रेके लिए जो २५ रुपये भेजे हैं सो तो मिले होंगे, और ३० रुपये आज भेजने के लिए कनुसे कह दिया है। चित्रे तुम्हारे साथ रहे तो यह मुझे अच्छा लगेगा। इससे मुझे तुम्हारी कम चिन्ता करनी पड़ेगी। यदि उसकी वहाँ जरूरत थी तो यहाँ क्यों नहीं है? फिर भी तुम्हें और चित्रेके मनको जो अच्छा लगे सो करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४८९)से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

३४९. पत्र : पृथ्वीसिंहको

२७ अक्तूबर, १९३९

भाई पृथ्वीसिंह,

तुम्हारा खत मिला। हां, मुंबईमें रहना चाहीये इतने दिन रहो। शरीर-परीक्षा करवा लेना।

बापुके आशीर्वाद

सरदार पृथ्वीसिंह
मारफत 'जन्मभूमि'
मेडोज स्ट्रीट
बम्बई

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६३६)से। सी० डब्ल्यू० २९४७ से भी; सौजन्य : पृथ्वीसिंह

३५०. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव
२७ अक्तूबर, १९३९

सर सैम्युअल होरके भाषणको[2] मैंने ध्यानसे पढ़ा है जैसा योग्य था। उसमें जो समझौतेका स्वर है, उसकी मैं कद्र करता हूँ। इसलिए जिसे बेसुरा कहा जा सकता है, वैसा स्वर निकालते हुए मुझे अटपटा लग रहा है। लेकिन जिस प्रकार वे कर्त्तव्य-भावनासे बोले हैं, मैं आशा करता हूँ, मुझे भी यह श्रेय दिया जायेगा कि मैं भी उसी तरह कर्त्तव्य-भावनासे अपनी बात कह रहा हूँ। यदि औपनिवेशिक स्वराज्य स्वतन्त्रताका पर्याय नहीं है तो क्या भारतके लिए उसका कोई अर्थ है? क्या सर सैम्युअलकी कल्पनाके भारतको राष्ट्रकुलसे अलग होने का अधिकार है? मुझे यह घोषणा बहुत अच्छी लगी कि ब्रिटेनवालों ने साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाका परित्याग कर दिया है। क्या वे भारतके लोगोंको अपनी समझके अनुसार यह तय करने का अधिकार देंगे कि उस महत्त्वाकांक्षाका सचमुच त्याग कर दिया गया है या नहीं? अगर हाँ, तो फिर भारतके संवैधानिक रूपसे स्वतन्त्र घोषित किये जाने के पूर्व ही उसका प्रमाण सामने आना चाहिए।

कांग्रेस जो घोषणा चाहती है उसके खिलाफ जब अल्पसंख्यकोंके सरक्षणकी दुहाई दी जाने लगती है तब सर सैम्युअल होर द्वारा की गई महान् अभिघोषणा अवास्तविक लगने लगती है। कांग्रेसने माँग यह नहीं की है कि ब्रिटेन भारतकी राय ले; उसने तो यह माँग की है कि वह अपना इरादा घोषित करे। मैंने यह बताने की कोशिश की है[3] कि भारतमें अल्पसंख्यक वर्ग-जैसी कोई चीज नहीं है जिसके अधिकार भारतके स्वतन्त्र होने से खतरेमें पड़ सकते हों। दलित वर्गोंको छोड़ दें तो ऐसा कोई अल्पसंख्यक वर्ग नहीं है जो अपनी हिफाजत आप न कर सकता हो। देखता हूँ, सर सैम्युअल होरने यूरोपीयोंका उल्लेख भी अल्पसंख्यक समुदायके रूपमें किया है। मेरी रायमें तो यूरोपीयोंका उल्लेख ही अल्पसंख्यकोंके हितोंकी रक्षा की चीख-पुकारका थोथापन साबित कर देता है। बहरहाल, जैसे भी अल्पसंख्यक वर्ग हों, उनकी हिफाजतकी तो ब्रिटिश सरकारकी तरह कांग्रेसको भी चिन्ता है। मैं ब्रिटिश सरकारसे यह याद रखने को कहना चाहूँगा कि जिसे सर सैम्युअलने कांग्रेसी भारत कहा है,

१. यह "फाउंड वाटिंग" (खरा नहीं उतरा) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। वक्तव्य २८ अक्तूबरके बॉम्बे क्रॉनिकल और हिन्दूमें भी प्रकाशित हुआ था।

२. २६ अक्तूबरको कामन्स सभामें भारतपर हो रही बहसका उत्तर देते हुए; देखिए परिशिष्ट १४।

३. देखिए पृ० २८९-९०।

उसके सर्वथा नगण्य अल्पसंख्यामें पहुँच जाने की पूरी सम्भावना है। सर सैम्युअल द्वारा भारतका कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी इन दो हिस्सोंमें बाँटा जाना मुझे अच्छा लगा है। और अगर गैर-कांग्रेसी भारतमें केवल देशी नरेश ही नहीं, बल्कि उनकी तमाम प्रजा, सभी मुसलमान, हिन्दू महासभाके प्रतिनिधित्वको स्वीकार करनेवाले लोग और कांग्रेसी भारतका अंग बनने से इन्कार करनेवाले अन्य सभी लोग शामिल हों तो वास्तवमें खतरा बहुसंख्य गैर-कांग्रेसी भारतसे कांग्रेसी भारतको होगा। और एक ऐसे अल्पसंख्यक वर्गकी प्रतिनिधि होते हुए भी, जो कुछ हदतक तो बाहरी कारणोंसे लेकिन अधिकांशमें स्वेच्छासे पूर्णतः नि.शस्त्र है, कांग्रेसको अपनी स्थिति सुदृढ़ करनी है।

मुझे इस बातकी खुशी है कि सर सैम्युअल होरने घोषणा की है कि वर्तमान ब्रिटिश नीति मेरी सुझाई नैतिक तुलामें तोली जानी है। मैं यह कहना चाहूँगा कि अगर सर सैम्युअलका भाषण ब्रिटिश सरकारकी ओर से कहा गया अन्तिम वचन है तो ब्रिटेनकी राजनीतिक नैतिकता उस तुलापर हलकी उतरेगी। सर सैम्युअलने असहयोगको निष्फल सिद्धान्त बताकर उसकी खिल्ली उड़ाई है। मुझे पूरा विश्वास है कि वह वैसा निष्फल नहीं है जैसा वे सोचते हैं। इसने भारतके करोड़ों लोगोंकी नजरोंमें अपनी सामर्थ्य सिद्ध की है और अगर कांग्रेस पूर्णतः अहिंसक रहती है — और मुझे तो आशा है कि रहेगी — तो वह अपनी सामर्थ्य फिर सिद्ध करेगा। कांग्रेसका निर्णय[1] कर्त्तव्यके मार्गपर आरूढ़ होने का ऐसा आह्वान है जिसे अनसुना नहीं किया जा सकता। इसने कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार दोनोंको निकष पर चढ़ा दिया है। यदि दोनों खरा खेल खेलेंगे तो उससे केवल लाभ ही होगा।[2]

सेगाँव, २७ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-११-१९३९

१. यह कि मन्त्रिमण्डल त्यागपत्र दे दें; देखिए परिशिष्ट १३।

२. देखिए "अच्छा भी और बुरा भी", पृ० ३५४-५५ भी।

३५१. तार : 'न्यूज क्रॉनिकल' को[1]

[२८ अक्तूबर, १९३९ के पूर्व]

मुझे इसमें कोई सन्देह नही है कि कांग्रेसके आमन्त्रणके उत्तरमें वाइसराय महोदयने ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो वक्तव्य[2] दिया है वह जितना क्षोभकारी सिद्ध हुआ है उससे अधिक क्षोभकारी उसे नही बनाया जा सकता था। कांग्रेसने यह नही कहा था कि भारतकी स्वतन्त्रताकी माँगका उत्तर दिया जाये। उसमें तो ब्रिटेनको सिर्फ इस बातकी याद दिलाई गई थी कि लोकतन्त्रको बचाने के लिए हिटलरके खिलाफ छेडी गई उसकी लडाईमें भारतका कही कोई स्थान है या नही, इसकी घोषणा उसने आजतक नही की है। भारत स्वतन्त्रताको पचाने के लिए तैयार है या नही, इसका उस माँगसे कोई सम्बन्ध नही था। किन्तु स्पष्ट है कि कांग्रेसकी माँगका गलत अर्थ लगाया गया और वाइसरायने एक प्रकारका गोलमेज सम्मेलन आरम्भ कर दिया, जिसमें किसी सदस्यको पता नही कि दूसरे सदस्यने वाइसरायसे क्या कहा, और इन्ही वार्त्ताओंके परिणामस्वरूप उनसे एक ऐसा वक्तव्य तैयार करने के लिए कहा गया जिसका, हमारे सम्मुख आज जो अभूतपूर्व उथल-पुथल मची हुई है, उससे कतई कोई सम्बन्ध नही है। यदि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक सगठनोकी शक्तिका जायजा लेना चाहती थी तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिए था कि कांग्रेस सरकारके मापदण्डपर खरी नही उतर सकती थी। किन्तु कांग्रेसने तो अपने सम्मुख एक उच्चतर ध्येय रखा था। कांग्रेस वह नैतिक समर्थन प्रदान कर ब्रिटेनकी सहायता करना चाहती थी जो उसकी अपनी विशेषता है और जो उसके पास देने को एकमात्र चीज है। लेकिन ऐसा वह तबतक करने को तैयार नही थी जबतक यह स्पष्ट नही हो जाता कि ब्रिटेनकी राजनीतिक नैतिकता पूर्णत अक्षुण्ण है। ब्रिटिश सरकार इस बातको समझ ले कि भारत आजादीकी भीख नहीं माँग रहा है, यही मेरी कामना है। कांग्रेसने ब्रिटेनसे अनुरोध किया था कि वह यह कह दे कि वह भारतकी आजादीका विरोध नही

१. यह तार "कांग्रेस डिमांड मिसअंडरस्टुड" (कांग्रेसकी माँगका गलत अर्थ लगाया गया) शीर्षकसे इस टिप्पणीके साथ प्रकाशित हुआ था कि इसे "न्यूज क्रॉनिकल (लन्दन)के अनुरोधपर" भेजा गया था।

२. देखिए परिशिष्ट १२।

करेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या तथा अन्य कठिनाइयाँ तो है ही। प्रश्न यह है कि क्या महायुद्धके समाप्त होने पर ब्रिटेन अलग रहकर भारतको अपने ढंगसे अपनी कठिनाइयाँ सुलझाने देगा। इसीलिए कांग्रेसने संविधान-सभाका सुझाव रखा है, जिसमें सभी समुदायोंका पूर्ण प्रतिनिधित्व होगा और वे लोग मिलकर भारतका संविधान तैयार करेंगे। वक्तव्यसे जो नुकसान हुआ है वह वास्तविक है। कार्य-समितिने एक नरम-सा प्रस्ताव[1] पास किया है। वह अब भी भूल-सुधारके लिए अवसर देता है। क्या ब्रिटिश जनता अब भी महसूस करेगी कि यह एक गम्भीर भूल है अथवा क्या वह अब भी इस सम्मोहक धारणासे चिपकी रहेगी कि भारत-कार्यालय कभी गलती नही कर सकता और भारतको हमेशा उनकी दुधारू गाय बने रहना चाहिए? मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जबतक कांग्रेस अपना लक्ष्य प्राप्त नही कर लेती, तबतक न तो वह चैनसे बैठेगी और न किसी को चैनसे बैठने देगी। अपने लक्ष्यको प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहने पर ही उसका अस्तित्व निर्भर है और वह लक्ष्य है भारतके लिए पूर्ण स्वतन्त्रता।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-१०-१९३९

३५२. टिप्पणियाँ

ठक्कर बापा और भारत सेवक मण्डल

भारत सेवक मण्डलको अपने प्राणोंकी तरह प्रिय समझनेवाले एक मित्र ठक्कर बापा कोषके लिए दस रुपये का चन्दा भेजते हुए लिखते हैं:

> ठक्कर बापाकी प्रशंसामें लिखे गये आपके एक-एक शब्दका[2] मैं समर्थन करता हूँ। इस सम्बन्धमें मेरा एक ही सुझाव है, और वह यह कि बापा भारत सेवक मण्डलके एक सदस्य हैं, इस बातका जिक्र भी होना चाहिए था। बापाने जो सेवा-कार्य किया, मण्डल भले ही उसका श्रेय न ले; लेकिन यह भी सही है कि उसने बिना किसी उज्रके उनको हरिजन सेवक संघमें रहकर काम करने दिया है, और बापा द्वारा मानव-जातिकी जो महान् सेवा हुई है, उसपर उसने हमेशा ही अभिमान किया है।

१. देखिए परिशिष्ट १३।
२. देखिए पृ० २९२।

यह शिकायत बिलकुल ठीक है। बापाकी कई विशेषताओंका उल्लेख करते हुए मैं उनकी एक खास विशेषताका उल्लेख करना भूल गया हूँ, इसका मुझे वास्तवमें खयाल भी न था। बात यह है कि भारत सेवक मण्डलका सदस्य बनने के लिए बापाने बम्बई नगरनिगमके रोड इंजीनियरका पद छोड़ा था। हरिजन सेवक संघको उनकी सेवाएँ भारत सेवक मण्डलकी ओरसे बतौर कर्जके मिली। मैं मानता हूँ कि मेरी ओरसे भारत सेवक मण्डलको किसी प्रकारके विज्ञापनकी जरूरत नहीं है। और चूंकि मैं अपने-आपको इसका एक स्वत. नियुक्त और अनधिकृत सदस्य समझता हूँ, इसलिए इसकी प्रशंसामें कुछ लिखना मैं अपनी ही प्रशंसा करने के समान समझता हूँ। लेकिन जरूरत पड़ने पर मैं ऐसे नाजुक काम भी अच्छी तरह कर सकता हूँ। भारत सेवक मण्डलके नामका उल्लेख तो संयोगसे ही छूट गया था। मुझपर कामका काफी बड़ा बोझ रहता है। मेरा इरादा तो था कि मैं बापाकी चर्चाके सिलसिलेमें भारत सेवक मण्डलका भी उल्लेख करूँगा, लेकिन जैसा कि जाहिर है, मैं उस इरादेको अंजाम न दे सका। मुझे आशा है कि किंचित् विलम्बसे किये गये इस उल्लेखके फलस्वरूप बापा कोषके लिए, यानी हरिजन-कोषके लिए और भी ज्यादा धन प्राप्त होगा। मैं चाहता हूँ कि सभी भारत-सेवक भी —चाहे वे मण्डलके अधिकृत सदस्य हों या अनधिकृत—इस कोषके लिए धन-संग्रह करने के निमित्त रोज अपना थोड़ा समय दें। वे लोगोसे एक-एक पैसा उगाहें, इसमें भी मैं कोई हर्ज नहीं मानता। बल्कि स्वयं हरिजनो और उनके असंख्य गरीब प्रेमियोसे एक-एक पैसा इकट्ठा करना बापाकी सच्ची प्रशस्ति होगी। यहाँ समयकी कमीका सवाल किसीको नहीं उठाना चाहिए। चन्दा एकत्र करने के काममें जो नौसिखिये हैं, उनसे एक अनुभवी चन्दा उगाहनेवाले के नाते मैं यह कहना चाहता हूँ कि छोटे या बड़े जो भी कोष इकट्ठे किये जाते हैं, उनमें महीनों कभी नहीं लगते। अगर हेतु अच्छा हो और उगाहीका प्रबन्ध सुव्यवस्थित हो, तो कुछ ही दिनोंमें ये कोष जमा हो जाते हैं। वे यह भी जान लें कि तिलक-स्वराज्य कोषमें[1] एक करोड़ रुपया सिर्फ एक महीनेमें जमा हुआ था।

सेगाँव, २८ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-११-१९३९

१. बाल गंगाधर तिलकका निधन ३१ जुलाई, १९२० को हुआ था; देखिए खण्ड १८।

३५३. सन्देश: बुनियादी शिक्षा-सम्मेलन, पूनाको[1]

सेगाँव
२८ अक्तूबर, १९३९

मुझे आशा है, पूनामें जो शिक्षा-सम्मेलन होने जा रहा है उसमें जो-कुछ भी किया जायेगा वह नयी तालीम, जिसे अंग्रेजीमें बेसिक एज्युकेशन कहा जाता है, की नवीनताको ध्यानमें रखकर किया जायेगा। जिस तरह किसी रासायनिक प्रयोगमें द्रव्योंको घटा-बढ़ा नहीं सकते, ठीक उसी तरह वर्धा-योजनाकी मूल बातोंमें से न तो किसीको हटाया जा सकता है और न उनमें किसीको शामिल ही किया जा सकता है। इस योजनाकी नवीनता यह है कि सारा शिक्षण किसी ग्रामीण दस्तकारीके माध्यमसे ही होगा। और हमारा यह उद्देश्य चालू पाठ्यक्रममें किसी ग्रामीण दस्तकारीका समावेश कर देने-भरसे ही पूरा नहीं हो जायेगा।

मो० क० गां०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-११-१९३९

३५४. पत्र: पुरातन जे० बुचको

सेगाँव, वर्धा
२८ अक्तूबर, १९३९

चि० पुरातन,

तेरा पत्र मिला। जब तू आनेकी इच्छाको न दबा सके तब आ जाना। तेरे-जैसे लोगोंके लिए हमेशा जगह रहती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१७४) से।

१. यह सन्देश "टिप्पणियाँ" के अन्तर्गत "बुनियादी शिक्षा" उप-शीर्षकसे "हिन्दी सन्देशका अनुवाद" के रूपमें प्रकाशित हुआ था।

३५५. पत्र : मुन्नालाल गं० शाहको

सेगाँव
२८ अक्तूबर, १९३९

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। सर्वथा शान्त-चित्त होकर लौटना। पाण्डिचेरी जरूर जाना। मैं तुम्हारी राह तो देखता ही रहूँगा। तुम्हारे बिना मुझे सूना-सूना तो लगता ही है। लेकिन तुम्हारा भला तुम्हें वहाँ भेजनेमें ही था। कंचनको बुलाकर तुमने ठीक किया। यदि वह आये तो ठीक है, न आये तो भी कोई बात नहीं।

बापूके आशीर्वाद

श्री मुन्नालालजी सेगाँववाले
रमण आश्रम
तिरुवण्णामलई
दक्षिण भारत

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५५६)से। सी० डब्ल्यू० ७०६२ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

३५६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेगाँव
२८ अक्तूबर, १९३९

चि० कृष्णचंद्र,

१ मतलब यह है कि पुरुष जब निर्विकार हो जाता है तब वह स्त्रीरूप हो जाता है, अर्थात् वह स्त्रीको अपनेमें समाहित कर लेता है। और यही बात निर्विकार स्त्रीके सम्बन्धमें कही जा सकती है।[1] निर्विकारताकी कल्पना मनमें करनेसे मेरा अर्थ स्पष्ट हो जायगा। ऐसे स्त्री-पुरुष देखनेमें नहीं आते हैं यह दूसरी बात है।

२ अनेक संगीतके साथ एकतारा मिल जाता है उसकी जगह कोई दूसरा वाजित्र [वाद्ययन्त्र] नहीं लेता। एकतारा सूर-पूर्ति करता है ऐसे रामनाम। अगर

१. "जब निर्विकार हो जाता है" से लेकर "कही जा सकती है" तक का अंश गुजरातीमें है। शेष पत्र हिन्दीमें है।

हमारे हृदयमें रामनाम अंकित हो जाता है तो नीदमें जैसे श्वास चलता रहता है ऐसे ही रामनाम चलता है।

३. हम सब मिताहारके नामसे भी अल्पाहार कर लेते हैं इसलिये 'गीता' में 'लघ्वाहार' शब्द-प्रयोग है।[1] अल्पका मतलब भूख खीचना कभी नही है। कोईक मनुष्य ही सचमुच भूखों रहता है। अशक्ति कभी नही लगनी चाहीये। सबके अल्पाहारकी मात्रा भिन्न रहेगी।

पंचगनीके खतकी बात स्मरणमें रखुंगा।

जापानी भाईकी हिंदी छुटनी नही चाहीये और कुछ छोड़ सकते हो।[2]

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३०)से।

३५७. पत्र: हरिभाऊ उपाध्यायको

सेगाँव, वर्धा
२८ अक्तूबर, १९३९

चि० हरिभाऊ,

तुमारा पत्र मिला। मैं कोई निर्णय जल्दी नही करुंगा। अब तुमको तकलीफ नही दूंगा। तुमारा सर्वोपरि धर्म शांत स्थानमें बैठकर शरीर अच्छा करना है। यदि वहां उपाधि रहे तो दिल्ली क्यो नहीं? वहांकी आबोहवा आजकल तो बहूत अच्छी रहती है।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०८७)से; सौजन्य: हरिभाऊ उपाध्याय

१. भगवद्गीता, १८/५२। 'गीता' में वास्तवमें 'लघ्वाशी' शब्दका प्रयोग हुआ है।

२. पत्रके अन्तमें कृष्णचन्द्रने यह टिप्पणी लिखी है कि मैंने जापानीका अभ्यास छोड़ा है, जापानी भाईको हिन्दी पढ़ानी नहीं छोड़ी है। बापूको समझने में फेर; आ है।

३५८. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव
२९ अक्तूबर, १९३९[1]

दुबारा नहीं पढ़ा

प्रिय पगली,

कोई भी चीज कभी भी सीखी जा सकती है। सीखनेकी उम्र बीत गई, यह कभी नही कहा जा सकता। यह तो केवल तुम्हारा आलस्य है जो तुमसे यह कहलवाता है कि तुम शायद सीखनेकी उम्र पार कर चुकी हो। और गलती बताने पर जिस चीजको ठेस पहुँचती है वह तुम्हारा अहं है। तुम्हे सेगाँवसे कोई नही खदेडेगा। यह काम तो केवल तुम्ही कर सकती हो। तुम्ही सेगाँवसे अपने-आपको खदेड सकती हो। और सेगाँवमें रहनेवाले पगले नही हो सकते, ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। मेरा खयाल था कि तुममें यह देख सकने लायक अन्तर्दृष्टि है कि सेगाँव तो पागल, कमजोर तथा विचित्र और ऐसे ही अन्य लोगोंकी शरण-स्थली है।

अब तो मनको ठिकाने ले आओ।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

हवाई डाकसे आया एक पत्र पता बदलकर भेज दिया गया था। यदि महादेव अभी वही है तो उन्हें बता देना कि मुझे उनका पत्र मिल गया था।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६१)से; सौजन्य · अमृतकौर। जी० एन० ६४७० से भी

१. साधन-सूत्रमें स्थान और तारीख देवनागरीमें है।

३५९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
२९ अक्तूबर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

मैंने तुम्हें कल एक पत्र लिखा था। यह तो मेरठसे प्राप्त एक शिकायत[1] तुम्हें भेजने के लिए लिख रहा हूँ। जाँच-पड़ताल करके सीधे पत्र-लेखकको उत्तर भेज देना। मैंने उन्हें बता दिया है कि उनका पत्र तुम्हें भेज दिया है।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३६०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेगाँव, वर्धा
[३० अक्तूबर, १९३९ के पूर्व][2]

चि० प्रेमा,

तू क्यों निराश होती है?[3] तेरी श्रद्धा कितनी छिछली है? सारा जगत् विरोध करे तो भी जो टिके वही श्रद्धा है, उसीका मूल्य है। इसके बिना अहिंसा कैसे टिक सकती है? यदि तू यह कहे कि तुझमें अहिंसा है ही नहीं, तो यह एक अलग बात हुई। ऐसा हो तो उसमें तू क्या कर सकती है? और यदि ऐसा हो

१. मेरठमें ४ अक्तूबरको साम्प्रदायिक दंगे हो गये थे। उनके दमनके लिए सेना बुलाई गई थी और अनेक गिरफ्तारियाँ भी हुई थीं। सम्भवतः यहाँ तात्पर्य उसीसे है।

२. प्रेमाबहन कंटकके अनुसार पत्र अक्तूबर १९३९ में किसी समय लिखा गया था। प्रेमाबहन कंटक, जो महिला स्वयंसेवक दल तैयार करने के लिए बिहार गई थीं, ३० अक्तूबर, १९३९ को वर्धा पहुँची थीं; देखिए "पत्र : कंचनबहन मु० शाहको" और "पत्र : शारदाबहन गो० चोखावालाको", पृ० ३५८-५९।

३. **बापूना पत्रो–५ : प्रेमाबहेन कंटकने**, में पृ० २७० पर प्रेमाबहन कंटक लिखती हैं : "विश्वयुद्धको ध्यानमें रखते हुए कांग्रेस कार्य-समितिने प्रस्ताव पास किया कि पार्टीके कार्यक्रममें अहिंसाका स्थान सर्वप्रमुख नहीं हो सकता।"

भी तो इसमें निराश होने की क्या बात है ? वैसी स्थितिमें तो जो हो उसे तुझे देखते रहना चाहिए। यदि मुझमें सच्ची अहिंसा हुई तो तुम लोगोंमें से किसी-न-किसीमें ऐन वक्तपर वह अवश्य दिप उठेगी। लेकिन अगर मुझमें ही सच्ची अहिंसा न हो तो तुम सबमें कहाँसे आयेगी ? इसलिए परीक्षा तो मेरी हो रही है, इसमें तुझे तो आनन्दसे झूम उठना चाहिए।

बिहारमें तूने अच्छी शुरुआत की है। लेकिन अब क्या होगा ? किया हुआ काम तो कदापि व्यर्थ नहीं जायेगा। लौटते समय तो तू यहाँ रुकेगी ही ?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०२) से। सी० डब्ल्यू० ६८८१ से भी; सौजन्य प्रेमाबहन कंटक

३६१. बिना शर्त सहायता ?

कुछ अंग्रेज दोस्त हैरान होकर पूछते हैं, "खबर है, आपने कहा है कि आप इंग्लैंडकी बिना शर्त सहायता करेंगे। क्या आपने सचमुच ऐसा कहा है ?" इस खबरका मूल तो मेरा वह पहला वक्तव्य[1] है, जो मैंने वाइसरायके साथ अपनी मुलाकातके[2] बाद जारी किया था। उसमें "बिना शर्त सहायता" शब्द नहीं आये हैं। लेकिन उस वक्तव्यमें मैंने जो स्थिति अपनाई थी, अगर कांग्रेसने उसे समझा होता तो कांग्रेसकी सहायता इस अर्थमें बिना शर्त होती कि वह इंग्लैंडसे युद्धके उद्देश्योंका स्पष्टीकरण करने की माँग न करती। मगर कार्य-समिति ईमानदारीके साथ वह स्थिति ग्रहण नहीं कर सकती थी। इसलिए उसने अपना वह प्रस्ताव[3] पास किया। उसे उक्त प्रस्ताव पास करने का पूरा अधिकार था और उसे पास करने के कारण मौजूद थे। बादकी घटनाओंने यह सिद्ध कर दिया है कि कार्य-समितिका यह काम बुद्धिमानीका था। लेकिन अगर वह युद्धके उद्देश्योंकी घोषणा करने की माँग न करती, तो उसका सहयोग बिना शर्त होता। याद रखिए, अपने संविधानके अनुसार कांग्रेस एक अहिंसावादी संस्था है। इस कारण उसकी सहायता केवल नैतिक ही हो सकती थी। उसके पास देने के लिए न सिपाही हैं और न धन ही। लेकिन वह अपनी शुभेच्छाएँ अवश्य दे सकती थी, और मेरी रायमें उसकी शुभेच्छाएँ कई बटालियनोंके मुकाबले कहीं भारी सिद्ध होती। कांग्रेसकी सहायता इंग्लैंडके पक्षको ऐसी नैतिक नींवपर स्थित कर देती, जिसे कोई किसी तरहकी चोट नहीं पहुँचा सकता था। उससे ब्रिटेनके पक्षका औचित्य इस तरह सिद्ध होता जिसका अन्दाजा

१. देखिए पृ० १७८-८०।
२. ४ सितम्बरको शिमलामें
३. देखिए परिशिष्ट ८।

नही लगाया जा सकता। संसार-भरकी गुलाम जातियाँ स्वतन्त्रताकी एक अवर्णनीय दीप्तिका अनुभव करती। अंग्रेजोंकी नैतिक साख एक ही बारमें बहुत ऊँची हो जाती। यह होता कांग्रेसकी बिना शर्त सहायताका मतलब।

पर ईश्वरकी इच्छा कुछ और थी। अंग्रेज राजनीतिज्ञोंको कांग्रेसके अहिंसाके दावेमें पर्याप्त विश्वास नही था। मुझे यह बात मान लेनी चाहिए कि परीक्षा लेने पर कांग्रेस किसी सख्त मगर न्यायशील परीक्षकको सन्तोष देने लायक ढंगसे उत्तीर्ण भी नही हो पाती। बहरहाल, मेरे अंग्रेज मित्रोंको मेरी स्थिति समझने में कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। बेशक वे यह कह सकते हैं, कि युद्ध-विरोधी होने के नाते मैं नैतिक सहायता भी नही दे सकता था। मैं यह बात इन पृष्ठोंमें पहले ही कह चुका हूँ[1] कि मैं ऐसा कोई विचार नही रखता। युद्ध-विरोधीको यह अधिकार है कि वह लड़नेवाले दो पक्षोंके बारेमें विचार करे और जो न्यायपर हो उसके लिए सफलताकी कामना करे। मूक दर्शक बने रहने के बजाय इस तरह निर्णय करके वह उभय पक्षोंके बीच शान्ति स्थापित करने में सम्भवतः कही अधिक योग दे सकता है।

सेगाँव, ३० अक्तूबर, १९३९
[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-११-१९३९

३६२. मेरा जीवन

'*बॉम्बे क्रॉनिकल*' म उसके इलाहाबाद-स्थित संवाददाता द्वारा प्रेषित निम्न-लिखित समाचार प्रकाशित हुआ है:

> गांधीजी के बारेमें इंग्लैंडकी कामन्स सभामें जो चर्चाएँ होती रही हैं उनके सम्बन्धमें बड़ी चौंका देनेवाली खबरें प्रकाशमें आई हैं। कहा जाता है कि अंग्रेज इतिहासकार एडवर्ड टॉमसनने, जो हालमें ही इलाहाबाद आये थे, इंग्लैंडमें फैली हुई विचित्र मनोवृत्तिपर कुछ रोशनी डाली है। श्री टॉमसन यहाँ कुछ राजनीतिक नेताओंसे भी मिले थे, जिनसे उन्होंने गांधीजी के सम्बन्धमें कामन्स सभामें फैली हुई तीन अफवाहोंके सम्बन्धमें कहा बताते हैं:
>
> १. गांधीजी ब्रिटिश सरकारके साथ बिना शर्त सहयोग करना चाहते हैं।
>
> २. गांधीजी अब भी कांग्रेसपर प्रभाव डाल सकते हैं।
>
> ३. गांधीजी के वासनामय जीवनके सम्बन्धमें कई कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनके आधारपर यह खयाल बनता है कि गांधीजी अब वह सन्त पुरुष नहीं रह गये हैं।

१. देखिए पृ० २८५-८६।

श्री टॉमसनका खयाल है कि गांधीजी के 'वासनामय जीवन' के सम्बन्धमें जो धारणाएँ बनी हैं वे कुछ मराठी पत्रोंके आधारपर बनी हैं। मुझे मालूम हुआ है, उन्होंने इसकी चर्चा सर तेजबहादुर सप्रूसे की, जिन्होंने इसका खण्डन किया। बादमें उन्होंने पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री पी० एन० सप्रूसे भी इस बारेमें बातचीत की, और उन्होंने भी जोरोंसे इसका खण्डन किया।

ऐसा जान पड़ता है कि इंग्लैंडसे रवाना होने के पहले श्री टॉमसन कामन्स सभाके कई सदस्योंसे मिले थे। इलाहाबादसे रवाना होने से पहले श्री टॉमसनने पंडित नेहरूकी सलाहसे एक पत्र कामन्स सभाके सदस्य श्री ग्रीनवुडके पास भेज दिया था, जिसमें उन्होंने गांधीजी के बारेमें फैली हुई कहानियोंको बिलकुल निराधार बताया था।

श्री टॉमसनने सेगाँव आने की भी कृपा की थी। उन्होने इस रिपोर्टको तत्त्वत. ठीक बताया।

'बिना शर्त सहायता' की बातके सम्बन्धमें मैंने इसी अकमें अन्यत्र लिखा है।[1]

काग्रेसपर मेरा जो-कुछ प्रभाव है उसके सम्बन्धमें देशको जल्दी ही पता लग जायेगा।

तीसरे आरोपके बारेमें कुछ स्पष्टीकरण जरूरी है। दो दिन पहले चार-पाँच गुजराती भाइयोंने मेरे नाम एक चिट्ठी भेजी; उसके साथ एक समाचारपत्र था, जिसका एकमात्र उद्देश्य यही जान पड़ता है कि किसीके चरित्रको जितना काला चित्रित किया जा सकता है उतना काला मेरे चरित्रको चित्रित करे। इस समाचार-पत्रके शीर्षकके अनुसार इसका उद्देश्य 'हिन्दुओका संगठन' करना है। मेरे खिलाफ जो आरोप लगाये गये हैं वे अधिकतर मेरी आत्म-स्वीकृतियोपर आधारित हैं, जिन्हे सन्दर्भसे अलग करके पेश किया गया है। दूसरे कई आरोपोंके साथ वासनामय जीवनका आरोप सबसे प्रमुख है। कहा गया है कि मेरा ब्रह्मचर्य अपनी वासनाको छिपाने का एक साधन है। बेचारी डॉक्टर सुशीला नैयरको मेरी मालिश करने एव मुझे उपचार-सम्बन्धी स्नान कराने के अपराधमें जनताकी नजरके सामने घसीटकर लाया गया है। ये दो बातें ऐसी है जिनके लिए मेरे आसपासके व्यक्तियोमें वे सबसे अधिक योग्य है। उत्सुक व्यक्तियोकी जानकारीके लिए मैं यह बतला दूं कि ये काम एकान्तमें कभी नही किये जाते। ये काम डेढ़ घंटेसे भी अधिक समयतक चलते रहते हैं और इनके दौरान मैं प्राय. सो जाता हूँ, लेकिन साथ ही मैं इस दौरान कभी-कभी महादेव, प्यारेलाल या दूसरे साथियोंके साथ काम भी करता रहता हूँ।

जहाँतक मुझे पता है, इन आरोपोका आरम्भ अस्पृश्यताके विरुद्ध छेडे गये मेरे सक्रिय आन्दोलनके साथ हुआ। यह उस समयकी बात है, जब अस्पृश्यता-निवारणको कांग्रेसके कार्यक्रममें शामिल किया गया और मैंने इस विषयपर सभाओमें बोलना आरम्भ किया, और हरिजनोंके सभाओ तथा आश्रमोमें आने पर मैं जोर देने लगा।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

उसी समय कुछ सनातनी, जो पहले मेरी सहायता करते और मुझसे मित्रता रखते थे, मुझसे अलग हो गये, और उन्होंने मुझे बदनाम करने का एक आन्दोलन आरम्भ कर दिया। बादमें एक बहुत प्रभावशाली अंग्रेज इस आन्दोलनमें शामिल हो गया। उसने स्त्रियोंके साथ मेरे मुक्त व्यवहारको आधार बनाकर मेरे 'सन्तपन' को पापपूर्ण जीवन बताया। इस आन्दोलनमें एक-दो प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी भी शामिल थे। गोल-मेज सम्मेलनके अवसरपर कुछ अमेरिकी अखबारोंने मेरे बड़े निष्ठुरतापूर्ण व्यंग्य चित्र प्रकाशित किये। मीराबहन, जो उस समय मेरी देखरेख करती थी, इन हमलोंका लक्ष्य बनीं। श्री टॉमसन उन सज्जनोंसे परिचित हैं जो इन आरोपोंके पीछे हैं, और जहाँतक मैं उनकी बात समझ सका, साबरमती आश्रमकी सदस्या प्रेमाबहन कंटकके नाम लिखी गई मेरी चिट्ठियाँ भी मेरी नीचताको सिद्ध करनेके लिए काममें लाई गई हैं। प्रेमाबहन एक ग्रेजुएट महिला और योग्य कार्यकर्त्री हैं। वे ब्रह्मचर्य और इसी प्रकारके अन्य विषयोंपर प्रश्न पूछा करती थी। मैं उन्हें पूरे जवाब[1] भेजता था। उन्होंने यह सोचकर कि ये जवाब सर्वसाधारणके लिए भी उपयोगी होंगे, मेरी अनुमतिसे उन्हें प्रकाशित कर दिया। मैं उन्हें बिलकुल निर्दोष और पवित्र मानता हूँ।

अभीतक मैंने इन आरोपोंको नजरअन्दाज किया है। लेकिन श्री टॉमसनकी बातें और गुजराती पत्र-लेखकोंका आग्रह, जो कहते हैं कि उन्होंने जो आलोचना भेजी है वह तो मेरे बारेमें कही जा रही बातोंका नमूना-भर है, मुझे इन आरोपोंका खण्डन करनेके लिए बाध्य करते हैं। मेरे इस जीवनमें कोई गोपनीयता नहीं है। मैंने अपनी कमजोरियाँ स्वीकार की हैं। अगर वासनाकी ओर मेरा रुझान होता, तो मुझमें इतना साहस है कि मैं उसे कबूल कर लेता। जब मेरे अन्दर अपनी पत्नीतक के साथ विषय-सम्बन्ध रखनेके प्रति अरुचि हो गई और इस सम्बन्धमें मैंने अपनेको काफी आजमा लिया तभी, और अधिक लगनके साथ देश-सेवा करनेके लिए, मैंने १९०६ में ब्रह्मचर्यका व्रत लिया। उसी दिनसे मेरा खुला जीवन शुरू हो गया। सिर्फ उन अवसरोंको छोड़कर, जिनका मैंने 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के अपने लेखोंमें उल्लेख किया है, और कभी मैं अपनी पत्नी या अन्य स्त्रियोंके साथ दरवाजा बन्द करके सोया होऊँ या रहा होऊँ, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। और वे रातें मेरे लिए सचमुच काली रातें थी। लेकिन जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, मेरी कमजोरियोंके बावजूद ईश्वरने मुझे बचाया है। मुझमें अगर कोई गुण हो तो मैं उसका कोई श्रेय स्वयंको नहीं देता। मेरे लिए तो सब गुणोंका दाता वही है और उसीने अपनी सेवाके लिए सदा मेरी रक्षा की है।

जिस दिनसे मैंने ब्रह्मचर्य शुरू किया उसी दिनसे हमारी स्वतन्त्रताका आरम्भ हुआ। मेरी पत्नी मेरे स्वामित्वके अधिकारसे मुक्त हो गई, और मैं अपनी उस वासनाकी दासतासे मुक्त हो गया जिसकी पूर्ति उसे करनी पड़ती थी। जिस

१. देखिए खण्ड ६२, पृ० ४०१-२ और ४६१-६३; खण्ड ६४, पृ० ३७९-८१, और खण्ड ६६, पृ० ७६-७७ भी।

अर्थमें मैं अपनी पत्नीके प्रति अनुरक्त था उस अर्थमें अन्य किसी स्त्रीके प्रति मेरा आकर्षण कभी नही रहा। पतिके रूपमें अपनी पत्नीके प्रति और अपनी माताके सामने की गई अपनी प्रतिज्ञाके प्रति मैं इतना वफादार था कि किसी अन्य स्त्रीका दास बन ही नही सकता था, लेकिन जिस तरह मेरे अन्दर ब्रह्मचर्यका उदय हुआ उसके कारण मैं माताके रूपमें स्त्रियोंके प्रति दुर्निवार रूपसे आकृष्ट हुआ। स्त्रियाँ मेरे लिए इतनी पवित्र हो गई कि मैं उनके प्रति वासनामय प्रेमका खयाल ही नही कर सकता। इसलिए तत्काल हरएक स्त्री मेरे लिए बहन या बेटीकी तरह हो गई। फीनिक्समें मेरे आसपास काफी स्त्रियाँ रहती थी। उनमें से कई तो मेरी रिश्तेदार ही थी, जो मेरे कहने से दक्षिण आफ्रिका आई थी। अन्य मेरे साथी कार्यकर्त्ताओंकी पत्नियाँ या रिश्तेदार थी। इन्ही में वेस्ट-परिवार तथा अन्य अंग्रेज थे। वेस्ट-परिवारमें वेस्ट, उनकी बहन, पत्नी और सास, इतने व्यक्ति थे। उनकी सास उस छोटी-सी बस्तीकी दादी माँ बन गई थी।

जैसी कि मेरी आदत है, इस नयी और अच्छी बातको मैं अपने तक ही सीमित नही रख सका। इसलिए मैंने ब्रह्मचर्यको सभी आश्रमवासियोके सामने उनके स्वीकारार्थ रखा। सभीने उसे पसन्द किया और कुछ लोग यह व्रत लेकर इस आदर्शके प्रति सच्चे भी रहे। लेकिन ब्रह्मचर्यके पालनके लिए जो पुराने दकियानूसी नियम बने हुए थे, उनसे मेरे ब्रह्मचर्यका कोई सम्बन्ध नही था। मैंने तो जब जैसी जरूरत देखी, उसके अनुसार अपने ही नियम बनाये। लेकिन मेरा यह विश्वास कभी नही रहा कि ब्रह्मचर्यके सही पालनके लिए स्त्री-सम्पर्क-मात्र त्याज्य है। जो सयम स्त्री और पुरुषके सम्पर्क-मात्रपर — चाहे वह कितना ही निर्दोष क्यों न हो — अकुश लगाता है वह बलात् धारण किया गया सयम है, जिसका कोई महत्त्व नही है। इसलिए सेवा या काम-काजके लिए स्वाभाविक सम्पर्कपर कभी कोई प्रतिबन्ध नही रहा। और दक्षिण आफ्रिकामें मैं अनेक यूरोपीय एवं हिन्दुस्तानी बहनोके लिए ऐसा व्यक्ति बन गया जिसे वे अपनी सारी बातें पूरे विश्वासके साथ बताती थी। और जब दक्षिण आफ्रिकामें मैंने भारतीय बहनोको सत्याग्रह-आन्दोलनमें भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया, तो मुझे लगा कि मैं भी उन्हीमें से एक हूँ। मुझे इस बातका पता चल गया कि स्त्री-जातिकी सेवाके लिए मैं खास तौरसे उपयुक्त हूँ। इस कहानीको (जो मेरे लिए बड़ी रोमाचकारी है) सक्षेपमें खत्म करने के लिए मैं कहूँगा कि भारत लौटने पर यहाँ भी जल्दी ही मैं भारतीय स्त्रियोसे हिलमिल गया। मेरे लिए यह एक सुखद रहस्योद्घाटन था कि मैं उनके हृदयोतक कितनी आसानीसे पहुँच जाता हूँ। दक्षिण आफ्रिकाकी तरह यहाँ भी मुसलमान स्त्रियोने मुझसे कभी पर्दा नही किया। आश्रममें मैं स्त्रियोंसे घिरा हुआ सोता हूँ, क्योंकि मेरे साथ वे अपनेको हर तरहसे सुरक्षित महसूस करती है। मुझे यह भी याद दिला देना चाहिए कि सेगाँव आश्रममें कोई एकान्त नही है।

अगर स्त्रियोंके प्रति मेरा झुकाव वासनापूर्ण होता, तो अपने जीवनके इस कालमें भी मुझमें इतना साहस है कि मैंने कई शादियाँ कर ली होती। गुप्त या

खुले स्वच्छन्द प्रेममें मेरा विश्वास नही है। खुले स्वच्छन्द प्रेमको मैं तो कुत्तोंका प्रेम समझता हूँ। और गुप्त प्रेममें तो, इसके अलावा, कायरता भी है।

सनातनी हिन्दू मेरी अहिंसासे घृणा कर सकते हैं। मैं जानता हूँ कि उनमें से बहुतोंका यह खयाल है कि हिन्दू मेरे प्रभावमें रहे तो कायर बन जायेंगे। लेकिन मैं ऐसे किसी आदमीको नही जानता, जो मेरे प्रभावमें रहकर कायर बन गया हो। अतः मेरी अहिंसाका वे चाहे जितना विरोध कर सकते हैं। लेकिन सफेद झूठ का सहारा लेकर तो वे अपनी या हिन्दू-धर्मकी कुसेवा ही करते हैं।

सेगाँव, ३० अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-११-१९३९

३६३. अगला कदम

ब्रिटिश सरकारके साथ उत्पन्न हुए वर्त्तमान गतिरोधके प्रसंगमें जिम्मेदारीका जितना बोझ मैं आज महसूस कर रहा हूँ उतना पहले कभी नहीं किया। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंका पद-त्याग आवश्यक था। लेकिन अगला कदम क्या हो, यह मुझे स्पष्ट नही है। कांग्रेसजन किसी बड़े पगकी आशा करते दिखाई देते हैं। कुछ पत्र-लेखकोंने मुझे लिखा है कि अगर मैं एक बार आह्वान कर दूँ तो ऐसा भारतव्यापी उत्तर मिलेगा जैसा पहले कभी नही मिला है और वे मुझे यह भरोसा भी दिलाते हैं कि लोग अहिंसक बने रहेंगे। उनके इस कथनके समर्थनमें उनके आश्वासनके अतिरिक्त मुझे कोई प्रमाण दिखाई नही देता। मेरे पास तो इसके विपरीत निष्कर्ष देनेवाला प्रमाण है। उसमें से कुछकी चर्चा इन स्तम्भोंमें भी हो चुकी है। जबतक मुझे यह विश्वास नही हो जाता कि कांग्रेसजन अहिंसाके समस्त फलितार्थोके साथ उसमें श्रद्धा रखते हैं और वे समय-समयपर दिये जानेवाले निर्देशोंका बेझिझक पालन करेंगे तबतक मैं किसी सविनय अवज्ञामें हाथ नहीं डाल सकता।

आम कांग्रेसजनों द्वारा अहिंसाके पालनमें अनिश्चितताके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा कारण यह है कि मुस्लिम लीग कांग्रेसको मुसलमानोंका शत्रु मान रही है। इसके फलस्वरूप सविनय अवज्ञाके माध्यमसे सफल अहिंसक क्रान्तिका संयोजन कांग्रेसके लिए प्रायः असम्भव हो गया है। आजकी स्थितिमें वैसी किसी क्रान्तिका परिणाम निश्चित रूपसे हिन्दू-मुस्लिम दंगा होगा। इसलिए अहिंसक कार्य-शैलीका तकाजा है कि सविनय अवज्ञाको राष्ट्रीय स्वाभिमानकी रक्षाका ध्यान रखते हुए जितना अधिक मर्यादित किया जा सकता हो उतना मर्यादित कर दिया जाये। पहला वार ब्रिटिश सरकारकी ओरसे ही होना है। ऐसी नाजुक और असाधारण परिस्थितिमें व्यक्तिके रूपमें किसी भी कांग्रेसी या पृथक् रूपसे किसी कांग्रेस कमेटीको भी कानूनको अपने हाथोंमें नही लेने दिया जा सकता। सविनय अवज्ञाकी घोषणा और नियमनका अधिकार केवल कार्य-समितिको ही होना चाहिए।

मैंने कार्य-समितिका मार्गदर्शन करने का दायित्व लिया है, लेकिन मेरी सीमाएँ मुझे विचलित कर देती हैं। मेरी शारीरिक स्थिति ऐसी है कि मैं पहलेकी तरह यहाँ-वहाँ आ-जा नहीं सकता। इसलिए जन-साधारणसे मेरा बाहरी सम्पर्क टूट गया है। वर्त्तमान कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंको भी मैं व्यक्तिगत रूपसे नहीं जानता। मैं उनसे कभी मिलता नहीं। मेरा पत्र-व्यवहार भी यथासम्भव सीमित ही रहता है। इसलिए मैं आज प्रारम्भिक निष्क्रियताकी जो आवश्यकता और कर्त्तव्य सुझा रहा हूँ उसे यदि कांग्रेसजन सहज ही नहीं समझ लेते तो मेरा मार्गदर्शन निरर्थक ही नहीं, हानिप्रद भी सिद्ध हो सकता है। उससे उलझन पैदा होगी।

मेरा यह दृढ़ मत है कि यद्यपि अपनी ही कार्रवाईसे ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसके लिए उसके युद्ध-प्रयत्नोंमें सहयोग करना असम्भव बना दिया है, तथापि कांग्रेसको उसके सामने कोई परेशानी खड़ी करके इन प्रयत्नोंमें बाधा नहीं डालनी चाहिए। मैं देशमें अराजकता नहीं चाहता। अराजकतासे स्वराज्य नहीं मिल सकता। मैं ब्रिटेनकी, बल्कि सच पूछिए तो जर्मनीकी भी, पराजयकी कामना नहीं करता। यूरोपकी जनता मजबूर होकर युद्धमें पड़ गई है। लेकिन वे लोग शीघ्र ही अपनी तन्द्रासे जागेंगे। यदि सम्पूर्ण आधुनिक सभ्यताको नष्ट नहीं हो जाना है तो इस युद्धमें अन्तिम रूपसे वारा-न्यारा नहीं हो सकता। जो भी हो, अभी मेरे जो विचार हैं उनकी दृष्टिसे मुझे सविनय अवज्ञा छेड़नेकी कोई जल्दी नहीं है। फिलहाल कांग्रेसजनोंको मेरा सुझाव यह है कि वे अपने संगठनके अन्दरसे सभी दोषोंको निकालकर उसे सुदृढ़ बनायें। साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता-निवारण और चरखेके पुराने रचनात्मक कार्यक्रममें अब भी मेरा दृढ़ विश्वास है। यह तो स्पष्ट ही है कि साम्प्रदायिक एकता और अस्पृश्यता-निवारणके बिना अहिंसा असम्भव है। और अगर भारतके गाँवोंको जीवित रहना और सुखी-समृद्ध होना है तो चरखेको घर-घरमें गूँजना चाहिए। चरखे और उसके समस्त फलितार्थों अर्थात् गाँवोंकी दस्तकारियोंके पुनरुद्धारके बिना ग्रामीण सभ्यता असम्भव है। इस प्रकार चरखा सर्वोपरि तो अहिंसाका प्रतीक है और यह सभी कांग्रेसजनोंका सारा समय भी खपा सकता है। यदि यह उन्हें जँचता नहीं है तो या तो उनमें अहिंसाकी कोई वृत्ति नहीं है या फिर मैं अहिंसाका 'क ख ग' भी नहीं जानता। यदि मेरा चरखा-प्रेम मेरी कमजोरी है तो वह कमजोरी इतनी मौलिक है कि मैं [स्वराज्य-सेनाका] सेनापति बनने योग्य नहीं रह जाता। मेरी स्वराज्य-योजनासे, बल्कि मेरे जीवनसे तो चरखेका अटूट सम्बन्ध है। ये हैं मेरी स्थियाकतें, जिन्हें लड़ाई शुरू होनेसे पहले पूरे हिन्दुस्तानको जान लेना चाहिए जो शायद स्वराज्यकी अंतिम और निर्णायक लड़ाई साबित हो।

सेगाँव, ३० अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-११-१९३९

३६४. अच्छा भी और बुरा भी

सर सैम्युअल होरके कामन्स सभामें दिये गये हालके भाषणपर[1] मैं जितना ज्यादा गौर करता हूँ, उतना ही ज्यादा परेशान होता हूँ। वह अच्छा भी है और बुरा भी। लेकिन उसका बुरा भाग इतना बुरा है कि उसके कारण अच्छा भाग भी दूषित हो जाता है। उनका यह कथन कि ब्रिटिश सरकारने साम्राज्यवादको छोड़ दिया है, अल्पसंख्यकोंसे किये गये वादोंके बचावमें कही गई उनकी बातोसे मेल नही खाता। जब वे भारतके यूरोपीयों और देशी नरेशोंको भी अन्य अल्पसंख्यकोकी श्रेणीमें रखते हैं, तब तो वे अपना पूरा पक्ष ही गँवा बैठते हैं। अगर यूरोपीय लोग, जिन्होंने भारतमें अपना घर नही बनाया और जिनकी जड़ें यूरोपमें ही हैं, अल्पसंख्यक है और उन्हें संरक्षणकी आवश्यकता है तब तो ब्रिटिश सैनिको और नागरिकोंको भी, जो दयनीय रूपसे अल्पसंख्यक हैं, संरक्षणकी जरूरत है। दूसरे शब्दोंमें, विजय द्वारा प्राप्त अधिकार सुरक्षित रहने चाहिए। यूरोपीयोंके हित जबरदस्ती लादे गये हैं, जिनकी रक्षा ब्रिटिश सगीनो द्वारा होती है। स्वतन्त्र भारत हरएक यूरोपीय हितकी उसके गुण-दोषके अनुसार जाँच करनेकी माँग करेगा और ऐसा जो हित राष्ट्रीय हितके विरुद्ध दिखाई देगा, वह समाप्त कर दिया जायेगा। मैंने अंग्रेजीकी 'कनसाइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' (संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड शब्दकोष) देखी और उसमें साम्राज्यवादकी मुझे नीचे दी हुई परिभाषा मिली है "जहाँ-जहाँ व्यापारको ब्रिटिश झण्डेके संरक्षणकी आवश्यकता हो वहाँ ब्रिटिश साम्राज्यका विस्तार।" अगर यही साम्राज्यवाद है, तो क्या सर सैम्युअल होरका भाषण उसकी पूरी रक्षा नही करता? भारतकी आकांक्षा उसी साम्राज्यवादको नष्ट करनेकी है।

क्या देशी नरेशोंकी भी हालत भी बहुत-कुछ वैसी ही नही है जैसी कि यूरोपीयोकी है? उनमें से यदि अधिकाश नही तो बहुत-से नरेश तो ब्रिटिश साम्राज्यकी उपज है और ब्रिटिश हितोंके लिए ही उन्हें जीवित रखा गया है। देशी नरेश किसी प्रकार भी अपनी प्रजाका प्रतिनिधित्व नही करते। अगर मै रियासतोंके लोगोंसे हर सप्ताह प्राप्त शिकायतोंको प्रकाशित करूँ, तो मुझे 'हरिजन' के पृष्ठोंको दूना करनेकी जरूरत होगी। वे बड़ी दुःख-भरी कहानियाँ हैं। वे न तो देशी नरेशोंके लिए श्रेयस्कर है और न उनकी रक्षक ब्रिटिश सत्ताके लिए। क्या इस ब्रिटिश संरक्षणका अर्थ नग्न साम्राज्यवाद नही है? कांग्रेससे कहा गया है कि वह देशी नरेशोको अल्पसंख्यक माने। ब्रिटिश सत्ता मालिक है, जिसके बिना देशी नरेश साँस भी नहीं ले सकते। कांग्रेसजनोंसे मिलनेकी भी उन्हें आजादी नहीं है; उनके साथ समझौता करनेकी बात तो दूर रही। इस संकट-कालमें देशी नरेश जो-कुछ कर रहे हैं,

१. देखिए परिशिष्ट १४।

उनकी मैं शिकायत नहीं करता। वे इतने लाचार हैं कि उससे भिन्न कुछ कर ही नहीं सकते।

सर सैम्युअल साम्प्रदायिक पंच-निर्णयको[1] ब्रिटिश सरकारका शोभनीय कृत्य कहते हैं। मुझे दुख है कि उन्होंने इसका जिक्र किया। इस पंच-निर्णयकी योजना तो गोलमेज सम्मेलनके समय तैयार की जा रही थी, और मेरी उसके बारेमें बड़ी कटु स्मृतियाँ हैं। मैं उसे ब्रिटिश सरकारकी ऐसी उपलब्धि नहीं मान सकता जिस पर गर्व किया जा सके। मैं जानता हूँ कि स्वयं सम्बन्धित पक्ष कितनी बुरी तरहसे असफल रहे। मैं सभी सम्बन्धित पक्षोंके लिए इस निर्णयको अशोभनीय मानता हूँ। वैसे इस निर्णयके गुण-दोषोंका बारीकीसे विचार किया जाये तो भी यह खरा नहीं उतरता, लेकिन गुण-दोषोंकी बात छोड़ देने पर भी मैं इसे सभी पक्षोंके लिए अशोभनीय ही कहूँगा। लेकिन कांग्रेसने उसे निष्ठापूर्वक स्वीकार कर लिया है, क्योंकि स्वर्गीय श्री मैक्डॉनल्डसे मध्यस्थता करने की प्रार्थना करनेवालों में मैं भी शामिल था। अब भारतको कांग्रेसी भारत और गैर-कांग्रेसी भारतमें विभाजित करने की उनकी बातको लीजिए। अच्छा होता, इसके बजाय सर सैम्युअल सशस्त्र भारत और निःशस्त्र भारतकी चर्चा करते। कांग्रेस उस जन-समुदायका प्रतिनिधित्व करती है जो निःशस्त्र है, चाहे उस समुदायमें किसी भी जाति या धर्मके लोग हों। सशस्त्र भारतको उसके निःशस्त्र भागके विरुद्ध खड़ा करना क्या उचित है? ऐसा उदाहरण इतिहासमें मिलना मुश्किल होगा जिसमें निःशस्त्र लोगोंने स्वतन्त्रताकी उद्दाम इच्छाका प्रतिनिधित्व किया हो और अपनी निःशस्त्रताको ही मुक्तिका प्रधान साधन बना लिया हो। सर सैम्युअलने संसारको बताया है कि भारतकी आजादीकी लड़ाई तबतक नहीं जीती जा सकती, जबतक कि निःशस्त्र भारत सशस्त्र भारतसे, जिसमें ब्रिटिश सरकार भी शामिल है, समझौता नहीं करता। इसपर मैं कोई शिकायत नहीं करता। सर सैम्युअल ब्रिटिश परम्परा और स्वभावको अकस्मात् ही नहीं बदल सकते थे। बात सिर्फ इतनी ही है कि एक निष्पक्ष भारतीयने उनके भाषणको किस रूपमें समझा है, यह बताने का दुःखद कर्त्तव्य मुझे निभाना पड़ रहा है। इसमें मुझे सन्देह नहीं कि सर सैम्युअलने जो-कुछ कहा है, वैसा वे मानते भी हैं। हाँ, उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा जो कांग्रेसजनोंके, जो स्वतन्त्रताके प्यासे हैं, सूखे गलोंको गीला कर सके। कांग्रेसको पहलेसे भी अधिक अपने धर्मके अनुसार चलना होगा और उस अहिंसक शक्तिका विकास करना होगा जो सशस्त्र भारतको और साथ ही सशस्त्र ब्रिटेनको निरस्त कर देगी। अगर कांग्रेस ऐसा कर सकी, तो विश्व-शान्तिमें यह उसका सबसे बड़ा योगदान होगा। कारण, शान्ति युद्धसे नहीं, बल्कि निःशस्त्र राष्ट्रों द्वारा कठिनतम स्थितिमें भी न्यायके मार्गपर चलने और न्याय करने से आयेगी।[2]

सेगाँव, ३० अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-११-१९३९

१. देखिए खण्ड ५०, पृ० ३९३, पाद-टिप्पणी २।
२. देखिए पृ० ३३७-३८ भी।

३६५. टिप्पणियाँ

हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुस्लिम एकताका मतलब है साम्प्रदायिक एकता। इस समय इस सम्बन्धमें किसी समझौतेके आसार दिखाई नही देते। जनाब जिन्ना साहब मुसलमानोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए अंग्रेजोंकी ताकतपर भरोसा करते हैं। कांग्रेसका कुछ करना-धरना उन्हें सन्तुष्ट नही कर सकता। क्योंकि वे बराबर, और अपने दृष्टिकोणसे स्वाभाविक समझते हुए उससे अधिककी माँग करते जा सकते हैं जितना अंग्रेज उन्हें दे या देने का विश्वास दिला सकते हैं। इसलिए मुस्लिम लीगकी माँगोंकी कोई सीमा नही हो सकती। जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है, वह सारे हिन्दुओं या किसी भी एक सम्पूर्ण जातिकी प्रतिनिधि नहीं है। वह प्रतिनिधि है तो इसी अर्थमें कि वह सब लोगोंका प्रतिनिधित्व करती है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि देशको आजाद कराने की इच्छा सबमें है। और इस लक्ष्यकी खातिर लड़ने के लिए कांग्रेसका कोई दूसरा प्रतियोगी नही है। वास्तवमें, कांग्रेस ही देशकी एकमात्र राष्ट्रीय सेना है। और वह अहिंसक है, इस कारण इसका सेनावाला रूप कुछ कम नहीं हो जाता, बल्कि और भी बढ़ जाता है। केवल राष्ट्रीय हितोंका ही प्रतिनिधित्व करना कांग्रेसकी अटूट परम्परा रही है। निश्चय ही उसने हिन्दुओंके रूपमें हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व तो कभी नहीं किया है। वह काम करने का दावा तो जिस तरह मुसलमानोंके सन्दर्भमें मुस्लिम लीग करती है, उसी तरह हिन्दुओंके सम्बन्धमें हिन्दू महासभा करती है।

इसलिए कांग्रेसके सामने केवल यही रास्ता रह जाता है कि वह कांग्रेसजनोंके — चाहे वे किसी भी जातिके हों — मार्ग-दर्शनके लिए अपनी साम्प्रदायिक नीति स्पष्ट कर दे। ब्रिटिश सत्तासे लीग जो-कुछ भी प्राप्त कर सकती है उसे वह प्राप्त करे, इसपर कांग्रेसको कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। जो संस्था उस सत्ताके खिलाफ लड़ रही है वह मुसलमानोंसे लड़कर अपनेको कभी गलत स्थितिमें नही डालेगी।

सेगाँव, ३० अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-११-१९३९

३६६. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
३० अक्तूबर, १९३९

प्रिय पगली,

आश्चर्य है! न कोई पत्र, न कोई तार! राजेन बाबू और मैं वाइसरायसे भेंट करने के लिए कल दिल्ली जा रहे हैं। आशा है, बृहस्पतिवारको लौट आयेंगे।

स्नेह।

बापू

श्री राजकुमारी अमृतकौर
पूना होटल
पूना

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६२) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६४७१ से भी

३६७. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

सेगाँव, वर्धा
३० अक्तूबर, १९३९

प्रिय सी० आर०,

महादेवके नाम तुम्हारा २८ तारीखका पत्र मैंने समयपर पढ़ा। तुम्हारे कथनसे मैं अक्षरशः सहमत हूँ। जैसा कि तुम 'हरिजन' में देखोगे, तुम्हारे कहने से पहले ही मैं इसके बारेमें लिख चुका था।[1] स्वास्थ्य ठीक रखो। हम, अर्थात् राजेन्द्रप्रसाद और मैं, दिल्ली जा रहे हैं, और आशा है, हम केवल कुछ ही घण्टे वहाँ रहेंगे।

स्नेह।

बापू

श्री च० राजगोपालाचारी
४८, बजलुल्लाह रोड
त्यागरायनगर
मद्रास

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०७६) से।

१. यहाँ तात्पर्य सम्भवतः "वक्तव्य: समाचारपत्रोंको" से है; देखिए पृ० ३३७-३८।

३६८. पत्र : कनु गांधीको

३० अक्तूबर, १९३९

चि० कनैयो,

तुझे ले जाने की हिम्मत नहीं होती। सुशीलाबहनको यहीं छोड़े जाता हूँ। तू झट चंगा हो जा। बादमें तुझे राजकोट तन्दुरुस्त बनने के लिए जाना हो तो चला जाना। टॉन्सिल निकलवाने के लिए तो तुझे बम्बई जाना ही पड़ेगा। मैं तो बृहस्पतिवारको लौटने का विचार कर रहा हूँ। ठीक है न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

३६९. पत्र : कंचनबहन मु० शाहको

सेगाँव, वर्धा
३० अक्तूबर, १९३९

चि० कंचन,

तेरा पत्र मिला। तुझे हर पत्रमें अपना पता लिखना चाहिए। मुन्नालाल रमण आश्रम गये हैं, वहाँसे उनका जो पत्र आया है, वह सुन्दर है। तुझे भेजने के लिए लिखा है। जाने की इच्छा हो तो चली जाना। महीने-बीस दिनमें लौट आना। शारदा चली गई। प्रेमाबहन आ गई है, लीलावती यहीं है। वसुमती दो-चार दिनमें आ जायेगी; इस तरह घर तो भरा रहता है। तू ठीक तरहसे ध्यान देकर अपना स्वास्थ्य सुधार लेना। कल मैं दिल्ली जा रहा हूँ। उम्मीद है, बृहस्पतिवारको लौट आऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२८९) से; सी० डब्ल्यू० ७०६३ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

३७०. पत्र : शारदाबहन गो० चोखावालाको

सेगाँव, वर्धा
३० अक्तूबर, १९३९

चि० बबुड़ी,

तेरा पत्र मिला। तुझे नियमित रूपसे घूमने को महत्त्व देना चाहिए। तुझे कोई सहेली नहीं मिलती क्या? यहाँ सब-कुछ ठीक चल रहा है। प्रेमाबहन आज आ गई है। मुझे कल दिल्ली जाना पड़ेगा। बृहस्पतिवारको वापस पहुँचने की आशा रखता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००१७) से, सौजन्य . शारदाबहन गो० चोखावाला

३७१. कांग्रेसजन

काग्रेमी ल खास जातिके जीव बन गये मालूम पडते है। काग्रेस सस्थामें जो विभिन्न गुट हैं, उन सबमें एक बात समान रूपसे पाई जाती है। वे तहेदिलसे राष्ट्रवादी है। वे भारतकी स्वतन्त्रताके लिए जी रहे हैं और उसके लिए जान भी दे देंगे। वे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या अन्य किसी जातिके क्यो न हो, उन्होंने राष्ट्रीयताको अपने धर्मका अंग बना लिया है।

काग्रेसमें अब ऐसे लोगोंके अलावा, जिन्हें काग्रेसजन कहलाने के सिवा और किसी लेबलकी जरूरत नही है, समाजवादी, साम्यवादी, किसान-सभावादी, श्रमिक सघवादी, काग्रेस-राष्ट्रवादी, रायवादी, भूतपूर्व क्रान्तिकारी, तथाकथित गाधीवादी आदि भी शामिल हैं। मैंने जान-बूझकर किसी भी गुटको नहीं छोडा है। इनमें कुछ-एकके उप-विभाग भी है। फारवर्ड ब्लाक एक मिश्रित दल है। इसका दूसरा नाम वामपथी है। काग्रेस-आन्दोलनके फैलावके साथ-साथ उसमें और भी गुट बन सकते हैं। लेकिन इन सबमें एक बात समान है : स्वतन्त्रताकी तड़प और उसके लिए मर मिटने की तैयारी।

यह सच है कि कांग्रेसियोंमें बहुत बडी संख्या हिन्दुओंकी है। लेकिन जैसा कि दक्षिण भारतके मन्दिर-प्रवेश आन्दोलनके समय हमने पाया, दूसरे हिन्दुओंसे वे भिन्न हैं। सनातनी लोग, जो मैं समझता हूँ और आशा करता हूँ कि मुट्ठी-भर ही हैं, सुधारकोंसे, जो अधिकतर काग्रेसजन हैं, लडे है और उन्हें धर्मद्रोही कहकर उन्होंने उनकी निन्दा की है। हिन्दू महासभा तो काग्रेस-विरोधी सस्था ही बनती जा रही

है। उसके कुछ सदस्य कांग्रेसके बारेमें ऐसी भाषाका प्रयोग करते है जो उसके प्रति तिरस्कार-भाव पैदा करनेवाली है। कांग्रेससे सम्बन्ध रखनेवाले हिन्दुओंको वे हिन्दू-धर्मका दुश्मन समझते है। उसी तरह जो मुसलमान कांग्रेससे सम्बन्ध रखते है, वे लगभग जातिबहिष्कृत ही है।

कांग्रेसी पूर्ण स्वाधीनता, साहसपूर्ण समाज-सुधार और व्यापक सहिष्णुताके हामी है, तथा कष्ट-सहन और त्यागका उनका रिकार्ड बड़ा उज्ज्वल है — यह सब तो सचमुच सन्तोषका विषय है। कांग्रेस-जैसे जनव्यापी संगठनमें विविध गुटोका होना अनिवार्य है और वह प्रगति तथा जीवनका एक स्पष्ट संकेत हो सकता है। लेकिन अगर ऐसी बात है, तो फिर साम्प्रदायिक दगे क्यो होते है, हिन्दू महासभावादी काग्रेसी हिन्दुओंमें अविश्वास क्यों करते है, सभी धर्मोके स्त्री-पुरुष कांग्रेसके झण्डेके नीचे क्यों नही आ जाते, और अन्तमें इतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिन काग्रेसी गुटोंका मैने उल्लेख किया है, क्या खुद उन्हींमें अच्छे सम्बन्ध है?

आइए, जरा उनकी स्थितिकी जाँच करे। वे केन्द्राभिमुख है या केन्द्र-विमुख? वे कांग्रेस-संगठनको मजबूत करते है या कमजोर? क्या वे सत्ताके लिए होड़ नही कर रहे है? क्या वे एक-दूसरेपर अविश्वास नही करते? क्या वे अनुशासनका पालन करते है?

इन सब प्रश्नोंका मै उत्साहवर्द्धक जवाब नही दे सकता। मुझे भय है कि इन गुटोमें ही कांग्रेसके क्षयके बीज निहित है। काग्रेसजनोंकी आन्तरिक कमजोरीका जो कारण है उसी कारणसे वह सब सम्प्रदायोको अपनी ओर आकर्षित करने में असमर्थ हो रही है।

वह कारण है अहिंसामे मन-वचन-कर्मसे जीवन्त आस्थाका अभाव।

इसलिए हममें से हरएकके लिए अहिंसाकी शक्ति-अशक्तिकी परीक्षा कर लेने की यही घड़ी है। कांग्रेस आज अपने जीवन-पथकी ऐसी मंजिलपर है कि यदि उसने कोई गलत कदम उठाया तो उससे लक्ष्य-प्राप्तिकी ओर देशकी प्रगतिमें बाधा पड़ेगी। कांग्रेसजनोको यह बात अजीब तो मालूम होगी, फिर भी मै उनसे यह कहने का साहस करता हूँ कि साम्प्रदायिक सन्देहको दूर करने का एकमात्र रास्ता यह है कि इस समय स्वराज्यकी खातिर सविनय अवज्ञा न की जाये। देशके सामने आज ऐसी स्थिति आने के आसार है जब ब्रिटिश सरकार तथाकथित अल्पसंख्यकोंके साथ मिलकर अकेली काग्रेसके विरुद्ध खड़ी हो जाये। ब्रिटिश सरकार और तथाकथित अल्पसंख्यकोके गठ-बन्धनके विरुद्ध सविनय अवज्ञा करना सविनय अवज्ञा नहीं है। यह तो गृह-युद्ध भी नही, बल्कि अपराधपूर्ण युद्ध होगा।

जिस अहिंसाका मै इन पृष्ठोमें विश्लेषण-पल्लवन करता आ रहा हूँ, यदि कांग्रेसजनोंको — वे चाहे कांग्रेसका लेबल रखनेवाले हों, या बगैर लेबलके — उसमें विश्वास न हो और राजेन्द्र बाबू द्वारा दिये गये निर्देशों तथा 'हरिजन' के इन पृष्ठोमें मेरे द्वारा दी गई सलाह[1] उन्हें नापसन्द हो, तो उन्हें राजेन्द्र बाबूको लिखकर अपना

१. देखिए पृ० २९५-९६ और पृ० ३५२-५३।

असन्तोष प्रकट कर देना चाहिए तथा यह बतला देना चाहिए कि उनके खयालमें राजेन्द्र बाबूको क्या करना चाहिए, और अगर उन्होंने [राजेन्द्र बाबूने] उनकी बात न मानी तो वे खुद क्या करना चाहेंगे। यह बात हरएक कांग्रेसजनको स्पष्ट हो जानी चाहिए कि यह समय मतभेद, अनिर्णय या निर्देशोंका बेमनसे किये गये पालनका नहीं है। निर्णायक कदम उठानेके लिए सारी कांग्रेसको विश्वासके साथ और एक मनसे आगे बढ़ना होगा।

दिल्ली जाते हुए रेलगाडीमें, ३१ अक्तूबर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-११-१९३९

३७२. पत्र : अमृतकौरको

३१ अक्तूबर, १९३९

प्रिय पगली,

यह[1] अभी-अभी आया है। इसके सम्बन्धमें जो उचित लगे, करना।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३८) से; सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२७४ से भी

३७३. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेगाँव, वर्धा

३१ अक्तूबर, १९३९

भाई वल्लभभाई,

तुम इस तरह क्यों बीमार पड़ा करते हो? तुम्हें अपनी तबीयतका ध्यान रखना ही चाहिए। मुझे दिल्ली तार देना।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
११, चौपाटी सीफेस
बम्बई

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २३७

१. तात्पर्य अमृतकौरको भेजे गये एक तारसे है जिसके पीछे गांधीजीने यह पत्र लिखा था। "देहरादून, ३० अक्तूबर, १९३९" को आर्यसमाजके एक नेता रामदेवके भेजे इस तारमें लिखा था: "यदि हो सके तो एक दिन पहले आ जाएं।"

३७४. तार: सम्पूर्णानन्दको

[अक्तूबर][1] १९३९

आपकी क्षतिमें मेरी सहानुभूति आपके साथ है।

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

३७५. पत्र: सिकन्दर हयात खाँको

सेगाँव, वर्धा[2]
दिल्ली जाते हुए चलती रेलगाड़ीमें
१ नवम्बर, १९३९

प्रिय सर सिकन्दर,

सुच्चासिंहके मामलेकी फिरसे चर्चा करने के लिए आप मुझे क्षमा करने की कृपा करेंगे। मेरी पूछताछका जो उत्तर उन्होंने दिया है, उसकी एक नकल साथमें है। उनकी बातपर सन्देह करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। उन्होंने अपनी गवाहीमें चाहे जो कहा हो, जेलके सुपरिटेंडेंटका बयान निर्णायक होना चाहिए। मेरा सुझाव है कि उन्हें पैरोलपर अनिश्चित कालके लिए रिहा कर दिया जाये। हजारीबाग जेलमें उसका रिकार्ड साफ मालूम पड़ता है। उनकी रिहाईसे कोई अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं है। मैं मानवताके नाते दयाका अनुरोध करता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

१. साधनसूत्रमें "सितम्बर" है। लेकिन अपनी मेमरीज़ ऐंड रिफ्लेक्शन्स, पृ० १०४ पर सम्पूर्णानन्दने लिखा है: "अक्तूबर १९३९ में मेरे सबसे छोटे लड़केका देहान्त हो गया और उसकी मृत्युके कोई पखवारे-भर बाद मेरी पत्नी चल बसीं। अगले बारह महीनेमें मैंने अपने एक और लड़के और बड़ी लड़की मीनाक्षीको भी खो दिया।"

२. स्थायी पता

३७६. एच० एच० कुंगको[1] लिखे पत्रका अंश

[१ नवम्बर १९३९][2]

हमारे देशोंके पारस्परिक सम्बन्धोंके विषयमें आपने जो कहा है उसका मैं हृदयसे समर्थन करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-११-१९३९

३७७. चीनी बच्चोंको लिखे पत्रका अंश

[१ नवम्बर, १९३९]

मेरा सचमुच बहुत मन है कि मैं तुमसे मिल सकता और तुम्हारे सुन्दर देशको देख पाता।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-११-१९३९

३७८. तान युन-शानको[3] लिखे पत्रका अंश

[१ नवम्बर, १९३९]

मैं जानता हूँ कि चीनी लोगोंके दिलोंमें मेरे लिए स्थान है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-११-१९३९

१. चीनकी कार्यकारिणी युआनके उपप्रधानके।

२. साधन-सूत्रके अनुसार यह तथा अगले दो पत्र गांधीजीने "दिल्ली जाते हुए रेलगाड़ीमें" लिखे थे। यह रेलयात्रा उन्होंने १ नवम्बरको की थी। साधन-सूत्रमें यह भी बताया गया है कि "ये पत्र . . . सम्बन्धित व्यक्तियोंको प्रेषित कर देनेके लिए प्रोफेसर तान युन-शानको भेज दिये गये हैं। अपने एक उत्तरमें श्री गांधीने विनोदपूर्वक बताया है कि 'हिचकोलोंके कारण' लिखना कठिन हो गया था।"

३. प्रा० तान युन-शान; शान्तिनिकेतनमें चीनी भाषाके प्राध्यापक।

३७९. तार: अमृतकौरको

नयी दिल्ली
१ नवम्बर, १९३९

राजकुमारी अमृतकौर
पूना होटल
पूना

तुम्हारा तार मिला। आशा है अब तुम बेहतर होगी। कल रवाना हो रहा हूँ। स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९३९) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२४८ से भी

३८०. भाषण: हरिजन-निवास, नयी दिल्लीमें

२ नवम्बर, १९३९

श्रीमती जानकीदेवीके[1] स्मरणार्थ जो मन्दिर दिल्लीके चाँदीवाला-भाइयोंने बनवाया है, वह असलमें प्रार्थनाके निमित्त तो कई दिनोंसे खुला हुआ है। पर इसमें, मेरे हाथसे यह खोला जाये तो अच्छा हो, यह धार्मिक भावना रही है। मुझे पता नही कि मेरे हाथसे खोलने से यह धार्मिक भावना बढ़ेगी या नही। यहाँ जो हरिजन बालक हैं उनके दिलोंमे सचमुच प्रार्थनाका भाव होगा, तो इस छोटे-से मन्दिरका महत्त्व बढ़ जायेगा। यहाँ प्रार्थना करने के लिए जो हरिजन बालक आते हैं उनके और उनके संचालक वियोगी हरिजी के लिए दो शब्द कह देना चाहता हूँ।

भोजन न मिले तो मनुष्यकी इतनी हानि नहीं होती बल्कि भोजन-त्यागसे कुछ लाभ ही होता है, क्योंकि भोजनमें हम अतिशयता कर देते हैं। लेकिन प्रार्थना तो आत्माकी खुराक है, उसके बिना आत्माका हनन होता है। जितनी प्रार्थना की जाये उतना ही अच्छा है। प्रार्थनामें अतिशयता-जैसी कोई चीज नही है। मैंने तो ऐसा एक भी आदमी नहीं देखा है जिसे प्रार्थनाकी अतिशयतासे हानि पहुँची हो। प्रार्थनाके लिए हम जितना समय दे सकें उतना ही अच्छा है, यहाँतक कि अन्तमें हम प्रार्थनामय बन जायें। इस प्रकार यह मन्दिर अगर धार्मिक भावनाको बढ़ायेगा,

१. चाँदीवाला-बन्धुओं की माँ

तो जिन भाइयोंने इसके बनाने में मदद दी है उनकी भक्ति सफल होगी और श्री जानकीदेवीकी आत्माको शान्ति मिलेगी।

देशमें ऐसे दो-चार हरिजन-आश्रम हैं, जिनके द्वारा हरिजनेतर हिन्दू जनता प्रायश्चित्त कर रही है। इस प्रायश्चित्तसे अस्पृश्यताका नाश हो तो हिन्दू-धर्मकी रक्षा हो जायेगी।

हरिजन बालक यहाँ बिना भेद-भावके रहते हैं, संचालक भी सच्चे दिलसे उनके साथ मिल-जुलकर रहते हैं। सब मिलकर स्वर और तालबद्ध प्रार्थना करें, तो अच्छा ही है। लेकिन अगर ताल और स्वर न हो तो भी सच्चे दिलसे हुई प्रार्थनाका महत्त्व कम नहीं होता है। प्रार्थनामें हृदयका सम्पूर्ण मिलन होना चाहिए। यह प्रयास बराबर चलता रहे, तो अवश्य ही सफल होगा। मन्दिर खोलने का तो उद्देश्य धार्मिक भावनाको बढ़ाना है। अगर वह सफल हो जाये, तो बनानेवालोंको सन्तोष मिलेगा। हम सबकी यह सद्भावना सफल हो।

हरिजनसेवक, ४-११-१९३९

३८१. भेंट : 'मैंचेस्टर गार्जियन' के सम्वाददाताको

नयी दिल्ली
४ नवम्बर, १९३९

महात्मा गांधीने लॉर्ड सभामें भारतपर हुई बहसके[1] सम्बन्धमें 'मैंचेस्टर गार्जियन' के भारत-स्थित सम्वाददाताको दी गई एक भेंटमें कहा कि लॉर्ड जेटलैण्डके इस कथनसे मैं स्तम्भित रह गया कि कांग्रेस एक हिन्दू संस्था है; और मुझे आश्चर्य तो इस बातका है कि मन्त्री-जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर आसीन व्यक्तिके मुखसे ऐसी बात निकली है।

महात्मा गांधीने आगे कहा, हालाँकि कांग्रेसियोंमें अधिकतर हिन्दू हैं, फिर भी सभी वर्गों और धर्मोंके बहुत सारे भारतीय उसमें शामिल हैं। इससे भी बड़ी बात यह है कि जबसे कांग्रेसकी स्थापना हुई है तभीसे उसका यह दावा रहा है कि वह पूर्णतया राजनीतिक संस्था है। वास्तवमें वह ऐसी ही संस्था रही भी है, और कभी भी साम्प्रदायिक संस्था नहीं रही है। कांग्रेसने बार-बार और उचित प्रसंग उपस्थित होने पर अपने इस दावेको सत्य सिद्ध कर दिखाया है। हिन्दू महासभा एक साम्प्रदायिक संस्था है और इसकी स्थापना इसलिए की गई कि गण्यमान्य हिन्दुओंकी भी यह धारणा थी कि कांग्रेस हिन्दुओंके विशेषाधिकारोंकी रक्षा नहीं करती और न कर सकती है। भूतपूर्व

१. २ नवम्बरको; देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", पृ० ३७०-७१ और "क्या कांग्रेस हिन्दुओंकी संस्था है?", पृ० ३८१-८३।

गवर्नर और एक लेखक होने के नाते लॉर्ड जेटलैण्ड इन सब तथ्योंसे भली-भाँति अवगत हैं। लॉर्ड जेटलैण्डने कांग्रेसका यह जो गलत वर्णन किया है वह बड़ा असामयिक और चिन्ताजनक है और उससे क्षोभ और कटुताको प्रश्रय मिलेगा। महात्मा गांधीने आशा प्रकट की कि वे जिस बातको लॉर्ड जेटलैण्डकी एक गम्भीर भूल मानते हैं उसे सुधारने में लॉर्ड जेटलैण्ड देर नहीं करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, ५-११-१९३९

३८२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

रेलवे स्टेशन, दिल्ली
४ नवम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे चले जानेके तुरन्त बाद कृपलानीने मुझे बताया कि संयुक्त प्रान्तमें वातावरण बड़ा विक्षुब्ध है और सविनय अवज्ञाके लिए तैयारी चल रही है। उन्होंने यह भी कहा कि गुमनाम इश्तहार बाँटे गये हैं और उनमें लोगोंसे तार काटने और रेलकी पटरियाँ उखाड़नेके लिए कहा गया है। मेरी अपनी राय यह है कि अभी सविनय अवज्ञाके लिए उपयुक्त वातावरण नहीं है। यदि लोग कानून अपने हाथोंमें ले लेते हैं तो मुझे सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी कमान छोड़ देनी होगी। मैं चाहता हूँ कि तुम इस सप्ताहका 'हरिजन'[1] पढ़ो। उसमें इस सम्बन्धमें मेरी स्थितिके बारेमें बताया गया है। और मेरा इरादा तुमसे इसी सम्बन्धमें बातचीत करनेका था। परन्तु ऐसा हो नहीं सका। हमारे इतिहासके इस नाजुक दौरमें हमारे बीच कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए और सम्भव हो तो हमें एकमत होना चाहिए।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृ० ३९४-९५ से भी

१. देखिए पृ० ३५२-५३।

३८३. भेंट : समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंको[1]

नागपुर
५ नवम्बर, १९३९

जबतक देश सविनय अवज्ञाके लिए तैयार नही हो जाता, तबतक मैं इसका विरोध ही करूँगा।

जहाँतक असहयोगका सवाल है, उन्होंने कहा, इसकी तो कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलोंके पद-त्यागसे शुरुआत हो ही चुकी है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ६-११-१९३९

३८४. फिर त्रावणकोर

रियासत-कांग्रेसने सविनय अवज्ञा स्थगित करनेकी मेरी सलाह[2] मान ली, जिसके बाद त्रावणकोरमें जबरदस्ती थोपी गई अस्थायी शान्ति कायम हो गई थी। लेकिन हालत बद-से-बदतर हो गई मालूम पड़ती है। रियासत-कांग्रेसकी निष्क्रियताको गलतीसे शायद शान्ति या उससे भी बदतर कोई चीज समझ लिया गया। मैं जानता था कि रियासत-कांग्रेसके नेताओंको मैं दबाकर रख रहा था। वे बड़ी वफादारीके साथ मेरी बात मानते आ रहे थे। लेकिन उस दिन जब एक शिष्टमण्डलने आकर मुझसे पूछा कि सविनय अवज्ञासे बचनेके लिए क्या वे ऐसी साधारण प्रवृत्ति भी बन्द कर दें जिसे आम तौरसे राजनीतिक कहा जाता है, तो मैंने उनसे कहा[3] कि वैसा कठोर संयम भी जनताके शिक्षणका अंग हो सकता है। लेकिन साथ ही मैंने उनसे यह भी कहा कि ऐसे मामलोंमें मैं उनके लिए निर्णय नही कर सकता। क्योंकि जो तथ्य उन्हें उपलब्ध है, वे मुझे उपलब्ध नहीं हो सकते। त्रावणकोरके वातावरणको समझनेमें वे मेरी कोई मदद नही कर सकते। यह निर्णय करनेके लिए मेरा वहाँ व्यक्तिशः उपस्थित होना जरूरी है। दूसरोंसे सुनी-सुनाई बातोंसे, कमसे-कम मुझे तो, कोई मदद नही मिल सकती। इसलिए मैंने उनसे कहा कि मेरी रायका विचार न करते हुए वे खुद ही निर्णय करें। कारण काल्पनिक परिणामोंके भयसे निर्दोष राजनीतिक प्रवृत्तितक पर अंकुश लगानेका खतरा उठानेके लिए मैं तैयार

१. गांधीजी वर्धा लौटते हुए नागपुरसे गुजरे थे।
२ और ३. देखिए खण्ड ६९।

नहीं था। इसलिए इन नेताओंको मेरे किसी भी प्रकारके अंकुशसे स्वयंको मुक्त समझना चाहिए।

बहुत सोच-विचारके बाद काफी संयत भाषामें तैयार किये गये प्रस्तावोंके रूपमें उन्होंने दो कदम उठाये हैं। प्रस्ताव और उनके जवाबमें प्रकाशित सरकारी विज्ञप्ति नीचे दिये जा रहे हैं।[1]

मेरी रायमें रियासत-कांग्रेसको दीवानके शासनके यशोगानसे अलग रहनेका पूर्ण अधिकार था। यों तो वर्षगाँठपर किसी विरोधीके लिए भी शतायु होनेकी शुभ-कामनाएँ की जा सकती हैं। लेकिन वर्षगाँठ-जैसे निर्दोष अवसरसे जब राजनीतिक उद्देश्यकी सिद्धिका प्रयत्न किया जाये, जैसा कि इस मामलेमें किया गया बतलाते हैं, तो वह दूसरी बात हो जाती है। पहला प्रस्ताव दीवानकी वर्षगाँठके ऐसे राजनीतिक उपयोगका ही विरोध है।

दूसरे प्रस्तावमें कोई विवादास्पद बात नहीं है। उसमें तो मात्र सार्वजनिक सभाएँ आदि करनेके अधिकारपर जोर दिया गया है।

अब खबर मिली है कि श्री ताणु पिल्लै, श्री फिलिपोज तथा तीन अन्य व्यक्तियोंको इसी २ तारीखको गिरफ्तार कर लिया गया है और रियासत-कांग्रेसके कार्यालयपर त्रावणकोर की सरकारने कब्जा कर लिया है। कहते हैं, कार्यालयके उपस्कर बाहर फेंक दिये गये।

त्रावणकोर सरकारकी नीति समझमें नहीं आती। दमन मुझे तो बिलकुल अनुचित मालूम पड़ता है। सबसे श्रेष्ठ और सबसे समझदार नागरिकोंको जेलमें डाल देना गलत है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जो लोग गिरफ्तार किये गये हैं वे सच्चे, लगनवाले और योग्य कार्यकर्ता हैं।

त्रावणकोर रियासत-कांग्रेसके कार्यकर्ताओंको मैं इससे अच्छी सान्त्वना और क्या दे सकता हूँ कि जो लोग जेल जायें उन्हे प्रसन्नतापूर्वक और इस निश्चयके साथ वहाँ जाना चाहिए कि वे अपनी कैदकी मियाद पूरी करके ही वहाँ से लौटेंगे। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जेल जानेवालोंके हृदय शुद्ध हों तो स्वराज पानेका यही सबसे निश्चित रास्ता है।

सेगाँव, ६ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-११-१९३९

१. प्रस्ताव यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं; प्रेस-विज्ञप्तिके लिए देखिए परिशिष्ट १५।

३८५. पत्र : कुँवरजी खेतसी पारेखको

६ नवम्बर, १९३९

चि० कुँवरजी,

मैं तीन दिन देरसे लौटा और उतनेमें तुमने बुखारको न्योता दे डाला। आज तो मेरा 'हरिजन'-दिवस है। इसलिए मैं नहीं आऊँगा और फिर मौन-दिवस भी है। एक शिकायत है। तुम पूरा आराम नहीं करते। पूरा आराम जरूर करना चाहिए। जो सुशीलाबहन कहे सो सब करना। उन्होंने कल रात मुझे सब-कुछ बताया। बिलकुल आराम करने से बुखार चला जायेगा। बादमें तुम्हें नागपुर ले जाया जायेगा। इसमें कोई असुविधा तो नहीं है न? यदि हो तो सुशीलाबहनसे कहना। मुझे लिखना। कल तो मैं मिलूँगा ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३२)से।

३८६. पत्र : गुलाम रसूल कुरैशीको

६ नवम्बर, १९३९

चि० कुरैशी,

मुझे लगता है कि जो काम तुम्हें सौंपा जाये उसके अतिरिक्त यदि तुम खादी-कार्यमें जुट सको तो मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए यही एक स्थायी चीज दिखाई देती है। इसमें साहित्यसे ज्यादा मदद नहीं मिल सकती। अक्षरज्ञान तो खादीके साथ आ सकता है। सेवाके क्षेत्रकी खोजके लिए सारे हिन्दुस्तानका विचार नहीं करना चाहिए, अपितु तुम अकेले ही जितने क्षेत्रकी सेवा कर सको उतने का विचार करना चाहिए। ऐसा करते हुए यदि हममें शुद्धता होगी तो वह अपना असर जरूर दिखायेगी।

अकबरको[1] चिट्ठी लिखी है। उसको मेरी दुआ। उम्मीद है, वह अब ठीक होगा। क्या अमीनाको[2] बुखार आता है?

बापूकी दुआ

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य : नारायण देसाई। सी० डब्ल्यू० १०७९८ से भी, सौजन्य : गुलाम रसूल कुरैशी

१ और २. गुलाम रसूल कुरैशीके पुत्र एवं पत्नी

३८७. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव
६ नवम्बर, १९३९

लन्दन 'टाइम्स' का सम्पादकीय मुझे अनुचित मालूम होता है। जब-जब हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताका सवाल सामने आया है, तब-तब अल्पसंख्यकोंका यह प्रश्न हमेशा आगे खड़ा कर दिया गया है। कांग्रेसको और उसकी माँगको सर्वसत्तावादी बताना तथ्योंको गलत ढंगसे पेश करना है। ऐसा गलत चित्रण यदि अनजानमें हो गया हो तो इससे उसकी गम्भीरता कुछ कम नहीं हो जाती। कांग्रेसने विचारपूर्वक बलप्रयोगका परित्याग किया है। उसे न तो कोई सैनिक समर्थन प्राप्त है और न उसकी कोई सैनिक परम्परा है। आरम्भसे ही वह साम्प्रदायिक एकतामें विश्वास करती आई है। वह हिन्दुओ तथा गैर-हिन्दुओं, दोनोंका प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न करती है। उसका नेतृत्व करनेवालों में पारसी, मुसलमान तथा ईसाई सब रहे हैं। तमाम सम्प्रदायोको सन्तुष्ट करने के लिए उसने अपनी सीमासे बाहर जाकर प्रयत्न किये हैं। वह अन्यथा कर भी नही सकती थी, क्योंकि उसका एकमात्र बल वैध आन्दोलन था। बादमें उसने हिंसाके प्रभावकारी विकल्पके रूपमें असहयोग और सविनय अवज्ञाको उसमें जोड़ दिया। ब्रिटिश सरकारने भारतकी आकाक्षाओंको विफल करने के लिए साम्प्रदायिक मतभेदोंका हमेशा उपयोग किया है। सम्भव है, यह अनजानमें ही हुआ हो; तब भी इससे होनेवाला अनिष्ट कुछ कम नही हो जाता। कांग्रेसको पद और सत्ताका कोई लोभ नही है, यह तो काग्रेसी मन्त्रि-मण्डलोंके एकसाथ पदत्यागसे स्फटिकके समान स्पष्ट हो जाना चाहिए। काग्रेस साम्प्रदायिक झगड़ोंमें कभी शरीक नही होगी। ऐसा करने से तो वह एक ओर हटकर निर्वासनकी अवस्थामें चुपचाप किसी अच्छे दिनकी प्रतीक्षा करना ज्यादा पसन्द करेगी। इस समय भी ऐसा लगता है कि मुस्लिम लीगको काग्रेसके विरुद्ध भड़काकर एक कुत्सित कुचक्र चलाया जा रहा है। मुझे तो यह आशा थी कि यूरोपके इस भारी संकटसे ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंमें बेहतर बोध-शक्ति आयेगी।

इस सम्बन्धमें देशी राजाओंकी चर्चा करना विशेष रूपसे अनुचित है। अधीश्वरी सत्ताके कारण ही उनका अस्तित्व है और उससे अलग उनकी कोई स्वतन्त्र स्थिति नही है। मेरा यह कथन विचित्र तो मालूम हो सकता है, फिर भी मैं कहूँगा कि राजा लोग अधीश्वरी सत्ताकी मौन या अन्तर्निहित सम्मतिके बिना अच्छा या बुरा कुछ भी नही कर सकते। वे अपने सिवा अन्य किसीके प्रतिनिधि नही हैं।

१. यह "अनफेयर" (अनुचित) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। वक्तव्य ७-११-१९३९ के हिन्दूमें भी प्रकाशित हुआ था।

कांग्रेससे ऐसे राजाओंके साथ समझौता करनेके लिए कहने का अर्थ है अनियन्त्रित सत्ताके ही साथ समझौता करनेके लिए कहना।

'टाइम्स'ने कांग्रेससे पूछा है कि उसने पिछले दो वर्षोंके दौरान मुसलमानों तथा दलित वर्गोंके साथ कैसा बरताव किया है। इस सम्बन्धमें मैं तो इतना ही कहूँगा कि प्रान्तोंके गवर्नरोंसे इसका जवाब मांगा जाये। मुस्लिम लीग और दलित जातियोंके कुछ नेता जो शिकायत करते हैं उनमें कोई अनोखापन नहीं है। लोक-तन्त्रमें कुछ-न-कुछ असन्तोष तो अनिवार्य रूपसे रहता ही है। कांग्रेसने एक सुन्दर और उदारतापूर्ण प्रस्ताव रखा है — यह कि निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी संविधान-सभाको भारतके भावी शासनके लिए संविधान बनाने दिया जाये, जिसमें अल्प-संख्यकोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए ऐसी व्यवस्था करने का सवाल रखा जाये जो स्वयं उन लोगोंके लिए सन्तोषजनक हो। क्या ब्रिटिश राजनयिक यह खरा खेल खेलेंगे?[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-११-१९३९

३८८. मतभेद होते ही हैं

अलीगढ़से एक एम० ए० लिखते हैं:

आपने बहुत-से अवसरोंपर कहा है कि 'कुरान' शरीफके आपके अध्ययनने आपको यह स्पष्ट कर दिया है कि इस्लाम अपने अनुयायियोंको अहिंसाका आदेश देता है। आप यह भी कहते हैं कि आपने पैगम्बरके जीवनका जो अध्ययन किया है वह आपके इस विश्वासकी पुष्टि करता है। मुझे आप यह कहने की इजाजत देंगे कि अपने अध्ययनसे आप इस निष्कर्षपर इसलिए पहुँचे कि आपके अध्ययनका उद्देश्य इसी निष्कर्षपर पहुँचना था। सीधी-सादी बात तो यह है कि अहिंसाके आपके दर्शनमें बल-प्रयोगका कोई स्थान ही नहीं है। इसके विपरीत, इस्लाम कुछ अवसरोंपर बल-प्रयोगकी अनुमति देता है। क्या बद्र में पैगम्बरने बल-प्रयोगका उत्तर बल-प्रयोगसे नहीं दिया था? मैं प्रमाणके रूपमें किसी अधिकारी व्यक्तिकी व्याख्या पेश करने की हिम्मत नहीं करता; क्योंकि आप तो अपनी व्याख्याको छोड़कर अन्य किसी व्याख्याको स्वीकार ही नहीं करते। फिर भी मुझे आशा है, बहुत पहले प्रथम असहयोग आन्दोलनके समय ही आपके मोहपाशमें बँधे स्वयं आपके मौलाना साहबने जो-कुछ कहा था, उसके प्रति कुछ आदर दिखायेंगे। अदालतके सामने अपने वक्तव्यमें उन्होंने कहा था: "मैं महात्मा गांधीकी इस बातसे सहमत नहीं हूँ कि किसी भी दशामें बलका

१. देखिए पृ० ३६५ भी।

प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। मुसलमान होनेके नाते मैं यकीन करता हूँ कि इस्लाममें बताये गये कुछ खास मौकोंपर बलका प्रयोग करनेकी इजाजत है।" अपने मुकदमेके दौरान उन्होंने अदालतके सामने अपने उसी वक्तव्यमें फिर यह भी कहा कि "गैर-मुस्लिम सरकारके विरुद्ध इस्लाम केवल तलवार चलाना, लम्बे समयतक युद्ध करना और गला काटना ही सिखाता है।" मुझे यकीन है कि मौलाना साहब आज भी इससे इन्कार नहीं कर सकते।

यह तो रहा इस्लाममें अहिंसाके बारेमें। जहाँतक इस प्रश्नका ताल्लुक है कि मुसलमान एक पृथक् राष्ट्र हैं या नहीं, मैं कहूँगा कि इस्लामके प्रारम्भसे ही मुसलमान एक पृथक् राष्ट्र रहे हैं। वे उस समय भी पृथक् राष्ट्र थे जब मुहम्मद बिन कासिमने भारत-भूमिपर अपने पैर रखे थे, मुगल साम्राज्य-कालमें भी वे वैसे ही थे, आज भी वही हैं और अगर वे अपने धर्मके प्रति सच्चे हैं, तो सदा वैसे ही रहेंगे। अकबरने न केवल एक समान धर्म, बल्कि एक समान सामाजिक व्यवस्था भी चलानेका प्रयत्न किया; लेकिन क्या उसके ये प्रयत्न निष्फल नहीं गये? मुसलमान इस अर्थमें पृथक् राष्ट्र हैं कि वे अपनी पहचानको अन्य किसी समुदायमें विलीन नहीं कर सकते। लेकिन इससे एकताके समर्थकोंको भयातुर होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किसी क्षेत्र विशेषमें और किसी विशेष उद्देश्यके लिए सहयोग सर्वदा सम्भव है। कुछ लोगोंके एक ही वायु-मण्डलमें साँस लेने या एक ही भूमिपर रहनेसे वे एक राष्ट्र नहीं बन जाते। विचारोंके ऐक्यसे राष्ट्र बनता है। मानसको किसी खास साँचेमें धर्म ढालता है। एक मुसलमान सिखका पड़ोसी हो सकता है। लेकिन उनके दृष्टिकोण, उनके सोचनेका ढंग और उनकी जिन्दगीके तौर-तरीके सदा एक-दूसरेसे भिन्न होंगे। भूमण्डलमें हवा तो सब जगह एक ही है। क्या इंग्लैंडकी हवा किसी प्रकार भारतकी हवासे भिन्न है? प्राकृतिक अवस्थाएँ तो केवल शारीरिक रूपपर प्रभाव डालती हैं। मानस उससे प्रभावित नहीं होता। बेशक ईसाई भी एक पृथक् राष्ट्र हैं, और पारसी भी। भारत तो विभिन्न राष्ट्रीयताओंका देश है। जिस दिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 'भारतीय राष्ट्रोंका संघ' बन जायेगी, वह दिन भारतके इतिहासमें परम सौभाग्यका दिन होगा।

बेशक, चीनमें भी मुसलमान एक पृथक् राष्ट्र हैं। अगर संकेत इस ओर है कि उन्होंने अपनेको अन्य चीनियोंमें विलीन कर दिया है, तो मैं केवल यही कह सकता हूँ कि समस्त इस्लामी दुनियाके लिए वे एक पदार्थ पाठ हैं। यदि यही प्रक्रिया चलती रही तो मुसलमानोंका भाईचारा एक तमाशा-भर रह जायेगा। इस्लाममें निश्चित रूपसे इस बातका भी विधान है कि मुसलमान अपनी पोशाकतकमें दूसरोंसे कुछ अन्तर रखें। क्या मौलाना साहब कांग्रेसकी कार्य-समितिके सदस्योंमें साफ अलग नहीं दिखते?

मुझे कोई सन्देह नहीं कि इस पत्रमें जो मनोभाव है, वही आज बहुत-से शिक्षित मुसलमानोंका भी है। 'कुरान' की व्याख्याके बारेमें किसी लम्बी दलीलमें पड़नेका मेरा विचार नहीं है। गैर-मुस्लिम होनेके कारण मेरी स्थिति कुछ घाटेकी है। अगर मैं दलील देना शुरू करूँ तो उसका स्वभावत. यही जवाब मिलेगा कि 'आप तो गैर-मुस्लिम हैं। आप मुसलमानोंके धर्म-ग्रन्थोंकी व्याख्या क्या जानें?' उसका यदि मैं यह उत्तर दूँ कि इस्लाम और अन्य धर्मोंके प्रति मुझे उतनी ही श्रद्धा है जितनी कि अपने धर्मके प्रति है तो उससे भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

तथापि अपने पत्र-लेखकको मैं यह बता दूँ कि बद्रके युद्ध और पैगम्बरके जीवनकी वैसी ही अन्य घटनाओंका भी मुझे ध्यान था। मैं यह भी जानता था कि खुद 'कुरान' में कई ऐसी आयतें हैं जो मेरी व्याख्यासे मेल नहीं खातीं। फिर भी मेरी रायमें यह सम्भव है कि किसी सम्पूर्ण पुस्तकसे या किसी व्यक्तिके सम्पूर्ण जीवनसे मिलनेवाली शिक्षा उस पुस्तककी छिटपुट आयतों या उस व्यक्तिके जीवनकी छिटपुट घटनाओंसे, उनकी संख्या चाहे जितनी हो, भिन्न हो सकती है। 'महाभारत' रक्तरंजित युद्धकी कथा है। लेकिन कट्टर हिन्दुओंके विरोधके बीच भी मैं यही मानता आया हूँ कि वह पुस्तक युद्ध और हिंसाकी निष्फलता सिद्ध करनेके लिए लिखी गई है।

मौलाना साहबके बचावमें कुछ कहनेका मुझे अधिकार नहीं है। वे तो स्वयं ही अपना बचाव करनेमें समर्थ हैं। ऊपर मौलाना साहबके बयानके जो उद्धरण दिये गये हैं, उनका निश्चय ही मुझे स्मरण नहीं है। अपने पत्र-लेखककी सचाईपर मैं कोई शका नहीं करता। हाँ, 'कुरान' शरीफकी मूल शिक्षाके सम्बन्धमें बरसोंसे मेरी जो धारणा रही है, उक्त बयानसे उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मतभेद तो अनन्त कालतक रहेंगे। मैं तो पारस्परिक सहनशीलताका प्रतिपादन करता हूँ।

राष्ट्रोंके बारेमें पत्र-लेखकने जो बात कही है, वह चौंकानेवाली है। भारतमें मुसलमान पृथक् राष्ट्र हैं, इस मतके पक्षमें देनेको दलीलें हो सकती हैं। लेकिन मैंने कदापि यह कहा जाता नहीं सुना कि ससारमें जितने धर्म हैं, उतने ही राष्ट्र हैं। अगर है, तो उससे नतीजा यह निकलेगा कि आदमी जब अपना धर्म बदलेगा तो उसके साथ उसकी राष्ट्रीयता भी बदल जायेगी। मेरे पत्र-लेखकके मतानुसार अंग्रेज और मिस्री, अमेरिकी, जापानी आदि राष्ट्र नहीं हैं, लेकिन मुसलमान, पारसी, सिख, हिन्दू, ईसाई, यहूदी, बौद्ध आदि, वे चाहे जहाँ पैदा हुए हों, विभिन्न राष्ट्र हैं। मुझे भय है कि मेरे मित्रकी इस मान्यताका आधार बड़ा कमजोर है कि राष्ट्रोंका भेद धर्मके मुताबिक होता है या होना चाहिए। जिस सिद्धान्तको प्रतिपादित ही नहीं किया जा सकता उसे प्रतिपादित करनेके उत्साहमें पत्र-लेखक अपने पक्षके समर्थनमें सीमाका अतिक्रमण कर गये हैं।

मैं इस बातके मानने से इन्कार करता हूँ कि मुस्लिम राजवंशोंने भारतको दो राष्ट्रोंमें बाँट दिया था। अकबरका उदाहरण अप्रासगिक है। उसका उद्देश्य तो धर्मोंका मिश्रण था। वह एक ऐसा सपना था जो पूरा नहीं हो सकता था। लेकिन अन्य

मुस्लिम सम्राटों और राजाओंने समूचे भारतको अवश्य ही एक अविभाज्य इकाई माना था। बचपनमें मैंने तो इसी रूपमें इतिहास सीखा है।

अगर हम हिन्दू-मुसलमानों तथा दूसरोंको लोकतन्त्रका विकास करना है, तो ऐसा हम तभी कर सकेंगे जब समस्त राष्ट्र यथासम्भव व्यापकतम मताधिकारके आधारपर चुने गये अपने प्रतिनिधियोंके माध्यमसे अपनी बात कहेगा, चाहे यह व्यवस्था ब्रिटेनकी सद्भावनासे की जाये या उसके विरोधका मुकाबला करके। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो घोषणाएँ की गई हैं, उनसे ब्रिटेनकी सद्भावना प्राप्त होनेकी आशा दिखाई नही देती। ब्रिटिश साम्राज्यवाद अब भी सशक्त है और सर सैम्युअल होरने जो उसके विपरीत घोषणा की है[1] उसके बावजूद उसका खात्मा मुश्किलसे होगा। भारतके टुकड़े करनेका प्रस्ताव साम्राज्यवादके विकासमें एक योगदान है। क्योंकि भारतके टुकड़े ब्रिटिश संगीनोंकी मदद या घातक गृहयुद्धसे ही हो सकते हैं। मुझे आशा है कि कांग्रेस इनमें से किसी भी खेलमें शरीक नहीं होगी। ब्रिटेनने भारतके सन्दर्भमें अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्योंकी अपेक्षित घोषणा करनेसे इन्कार कर दिया, यह एक प्रकारसे भारतके लिए शायद शुभ ही हुआ है। इससे कांग्रेस मार्गसे हट गई है और मुस्लिम लीगको आठ प्रान्तोंके[2] कांग्रेसी शासनके दबावसे मुक्त होकर इस बातका निर्णय करनेका अवसर मिल गया है कि क्या वह भारतके टुकडे करके ब्रिटिश शासनको कायम रखेगी या अविभाज्य भारतकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ेगी। मुझे आशा है कि लीग भारतके टुकड़े नही करना चाहती। मैं यह भी आशा करता हूँ कि मेरे पत्र-लेखक भारतके किसी बड़े मुस्लिम जन-समुदायके मतका प्रतिनिधित्व नही करते। शीघ्र जिन्ना साहब और पण्डित जवाहरलाल नेहरूमें फिर बातचीत[3] शुरू होगी। हम आशा करे कि इस बातचीतके फलस्वरूप साम्प्रदायिक समस्याके स्थायी हलका आधार निकल आयेगा।

सेगाँव, ७ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-११-१९३९

१. देखिए परिशिष्ट १४।
२. असम, बिहार, बम्बई, मध्य प्रान्त, मद्रास, उड़ीसा, संयुक्त प्रान्त और उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त
३. बातचीतका पहला दौर २ नवम्बरको दिल्लीमें शुरू हुआ था।

३८९. पत्र : शम्भुशंकर त्रिवेदीको[1]

७ नवम्बर, १९३९

तुम्हारे पत्रमें उत्तर देने लायक कोई बात नहीं थी। तुम अपने वचनका पालन करो। प्रतिज्ञा-पालनके लिए बाड़ अवश्य लगानी चाहिए। लेकिन मनुष्यको उससे कबतक चिपके रहना चाहिए, क्या तबतक जबतक कि वह टूट न जाये, यह बात तो प्रत्येक व्यक्तिको खुद ही सोचनी चाहिए। अन्य लोगोंके पालन न करने पर व्यक्तिको क्या करना चाहिए, यह तो प्रत्येक मामलेको देखकर ही कहा जा सकता है। क्या तुम्हारे यहाँ की राजनीति सुधर रही है?

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई

३९०. तार : पालितानाके शासकको

[७ नवम्बर, १९३९ के पश्चात्][2]

ठाकुर साहब
पालिताना

मुझे मालूम हुआ है कि आपके कथित वचन-भंगके विरोधमें शम्भुभाई भूख-हड़ताल कर रहे हैं। आशा है आप उनका समाधान करेंगे और इस तरह एक अमूल्य जीवनको नष्ट होने से बचायेंगे।

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. अपने उपवासोंके लिए प्रसिद्ध पालिताना (सौराष्ट्र) के एक रचनात्मक कार्यकर्ता।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

३९१. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव
८ नवम्बर, १९३९

वाइसराय महोदयने रेडियोपर जो भाषण[2] दिया है और अपने, श्री राजेन्द्रप्रसाद और जिन्ना साहबके बीच हुए पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करते हुए प्रस्तावनाके रूपमें उन्होंने जो उद्‌गार[3] व्यक्त किये हैं उन्हें मैंने आदरके साथ ध्यानपूर्वक पढ़ा है। जो समस्या समाधानसे परे दिखाई देने लगी है उससे हार मानने से उनके इन्कार और उसका कोई-न-कोई समाधान ढूँढ़ निकालने के उनके संकल्पका मैं स्वागत करता हूँ। समस्याका हल ढूँढ़ निकालने की उनकी चिन्तामें मैं हृदयसे उनके साथ हूँ। इसलिए इन दो घोषणाओंकी कांग्रेसपर क्या प्रतिक्रिया होगी यह जानने की प्रतीक्षा किये बिना, जिस लक्ष्यको प्राप्त करने की आज सबको फिक्र है उसमें केवल सहायता देने की खातिर मैं यह कहना चाहूँगा कि जबतक ब्रिटिश सरकार भारतके सम्बन्धमें युद्ध-उद्देश्योंकी कोई स्वीकार्य घोषणा नहीं करती तबतक समस्याका समाधान मिलना असम्भव है। आजतक जो घोषणाएँ ब्रिटेन अथवा भारतमें की गई हैं वे सब पुराने ढर्रेकी हैं और उन्हें स्वतन्त्रता-प्रेमी भारतीय सन्देह और अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं। यदि साम्राज्यवादका सचमुच अन्त हो गया है तो अतीतसे स्पष्ट सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिए और नये युगके उपयुक्त भाषाका उपयोग किया जाना चाहिए। और यदि इस मूलभूत सत्यको स्वीकार करने का अभी समय नहीं आया है, तो मैं यह अनुरोध करूँगा कि समाधान ढूँढ़ निकालने के अगले प्रयत्न करना स्थगित कर दिया जाये। इस सम्बन्धमें मैं ब्रिटिश राजनयिकोंको याद दिलाना चाहूँगा कि आज जिस बातकी माँग की जा रही है वह यह है कि ब्रिटेन भारतीयोंकी इच्छाओंका विचार किये बिना भारत-सम्बन्धी अपने इरादेकी घोषणा करे। गुलामोंका मालिक जब गुलामीका अन्त करने का निश्चय करता है, तब वह अपने गुलामोंसे यह नहीं पूछता कि वे स्वतन्त्र होना चाहते हैं या नहीं।

यदि भारतको दासताकी जंजीरोंसे — धीरे-धीरे नहीं बल्कि एकबारगी — मुक्त करने की घोषणा कर दी जाती है, तो समस्याका अन्तरिम समाधान ढूँढ़ निकालना आसान हो जायेगा और अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी रक्षा करना भी

१. यह "एंड द गेम ऑफ सी-सॉ" (दुविधाकी स्थितिको समाप्त किया जाये) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। वक्तव्य ९-११-१९३९ के हिन्दूमें भी प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए परिशिष्ट १६।

३. देखिए परिशिष्ट १७।

सरल हो जायेगा। इस तरह दुविधाकी स्थितिका भी अन्त हो जायेगा। अल्पसंख्यकोंको संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है, और वह संरक्षण उन्हें कदम-ब-कदम नही, बल्कि एकदम मिल जाना चाहिए। जिस स्वतन्त्रताके अधिकार-पत्रमें अल्पसंख्यकोको बहुसंख्यकोंके समान ही स्वतन्त्रता देने की व्यवस्था न की गई हो उस अधिकार-पत्रका कोई मूल्य नही है। संविधानकी संरचनामें अल्पसंख्यक पूरे साझीदार होंगे। इसे किस तरह प्राप्त किया जा सकता है, यह बात उन प्रतिनिधियोंकी सूझ-बूझपर निर्भर करेगी जिन्हें संविधान बनाने का पवित्र कार्य सौंपा जायेगा। ब्रिटेन अल्पसंख्यकोको तथाकथित बहुसंख्यकोंके विरुद्ध लड़ाकर आजतक अपनी सत्ता बनाये हुए है, और साम्राज्यवादमें ऐसा होना लाजिमी भी है। उसकी इस नीतिके फलस्वरूप राष्ट्रके विभिन्न घटकोंके बीच कोई सर्वसम्मत समाधान प्रायः असम्भव हो गया है। अल्पसंख्यकोंके संरक्षणके लिए कोई सूत्र ढूँढ निकालने की जिम्मेदारी इन्ही पक्षोपर डाल दी जानी चाहिए। जबतक ब्रिटेन यह समझता रहेगा कि इस बोझको उठाने का जिम्मा उसका है, तबतक उसे भारतको अपने अधीन बनाये रखने की जरूरत महसूस होती रहेगी। और मुक्तिके लिए अधीर हो रहे देशभक्त इसके लिए लड़ेंगे। यदि मैं उनका मार्ग-दर्शन कर सका तो उनकी यह लड़ाई अहिंसक होगी और यदि मैं अपने प्रयत्नमें असफल रहता हूँ और उसीमें मेरा अन्त हो जाता है तो वे हिंसक ढगसे लड़ेंगे। मुझे उम्मीद थी और अब भी है कि ब्रिटेन यदि इस बातको समझ लेता है कि महायुद्धके औचित्य को सिद्ध करने और उसे शीघ्र समाप्त करने के लिए जो एक बात आवश्यक है वह यह कि उसे भारत-जैसे महान् और प्राचीन देशको दासताकी जजीरोंसे मुक्त कर देना चाहिए तो ईश्वरका भेजा यह युद्ध-रूपी अभिशाप वरदानमें बदल जायेगा।

चूँकि मुझे वाइसरायकी ईमानदारीपर भरोसा है, इसलिए मैं अपने साथी कार्यकर्त्ताओसे अनुरोध करूँगा कि वे अधीर न हो। इसके अतिरिक्त जबतक वाइसराय समाधानकी सम्भावनाओकी तलाशमें लगे हुए हैं, मुस्लिम लीग रास्ता रोककर खड़ी है और काग्रेसके अन्दर अनुशासनहीनता और फूट है, तबतक सत्याग्रह नही किया जा सकता।

दूसरी शर्तके उल्लेखका मुसलमान मित्रोको बुरा नही मानना चाहिए। जबतक मुस्लिम लीगके साथ कामचलाऊ समझौता भी नही हो जाता, तबतक सत्याग्रहका अर्थ मुस्लिम लीगके भी विरुद्ध सत्याग्रह होगा। कोई भी काग्रेसी इसमें शामिल नहीं हो सकता। मैं देखता हूँ कि 'हरिजन' में प्रकाशित मेरी टिप्पणीसे[1] जिन्ना साहबको आघात पहुँचा है। इसका मुझे दुःख है। लेकिन इस समय मैं अपने बचावमें कुछ नही कहूँगा। मैं किसी भी तरह पण्डित नेहरू और जिन्ना साहबके बीच होनेवाली वार्त्तामें व्यवधान नही डालना चाहता। मैं आशा करता हूँ कि यह शीघ्र ही

१. देखिए पृ० ३५६।

फिर आरम्भ हो जायेगी और प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि इस बातचीतके परिणाम-स्वरूप साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित हो।

यह वक्तव्य देनेके बाद मैंने कल लॉर्ड सभामें मन्त्री महोदयने जो वक्तव्य[1] दिया, उसका विवरण पढ़ा है। इससे मुख्य स्थितिमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-११-१९३९

३९२. तार : एस० सत्यमूर्तिको

[९ नवम्बर, १९३९ या उसके पूर्व][2]

तुम्हारे चुनावपर[3] मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ९-११-१९३९

३९३. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव
११ नवम्बर, १९३९

प्रिय पगली,

तुम्हारे तारसे चिन्ता होती है। भगवान् तुम्हारी रक्षा करे। आशा है, वहाँ तुम्हारा कार्यक्रम ज्यादा थकानेवाला नहीं होगा। कल रविवार होनेके बावजूद तुम्हारे तारकी प्रतीक्षा करूँगा।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४०) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२४९ से भी

१. देखिए परिशिष्ट १८।
२. यह तार दिनांक "मद्रास, ९ नवम्बर" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
३. मद्रासके महापौरके रूपमें

३९४. पत्र : प्रभावतीको

सेगाँव, वर्धा
११ नवम्बर, १९३९

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। जेल जानेकी बात मेरे मनमें नहीं है। तेरे मनमें भी नहीं है। भविष्यकी तो ईश्वर जाने। जयप्रकाशकी यह इच्छा है कि तू मेरे साथ आकर रहे जिससे घर-खर्च बचेगा और तेरी पढाई भी जारी रहेगी। ऐसा सेगाँव अथवा वर्धामें हो सकता है। मैं आम तौरपर तो सेगाँवमें ही रहूँगा। कभी-कभी यदि मैं दो-चार दिनोंके लिए जाऊँगा तो तुझे नहीं ले जाऊँगा। तेरी पढाई जारी रहनी चाहिए। इसलिए मेरे विचारसे तो आजकल तू वहाँ व्यर्थ ही अपना समय गँवा रही है। बा कहती है कि "क्या प्रभा मेरे पास अथवा मेरे लिए नहीं आयेगी? तुम न रहो तो भी क्या?" उसे लिखो कि 'बा बुलाती है'।" यह बाका सन्देश है। वह समय-समयपर पूछती रहती है: "प्रभा कब आ रही है?" मुझे १९ तारीखको इलाहाबाद पहुँचना है।[1] यदि तू आ सके तो चली आना और वहाँसे मेरे साथ रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३६) से।

३९५. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

सेगाँव
११ नवम्बर, १९३९

चि० अमृतलाल,

नटवरलाल भले ही आ जाये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

विजयाका पत्र इसके साथ है। फाड़ देना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९७) से।

१. कार्यसमितिकी बैठकमें शामिल होनेके लिए

३९६. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१२ नवम्बर, १९३९

प्रिय अमृत,

तुमने अपने वचनका पालन किया है। तुम्हारे तारमें दिये समाचार अच्छे तो नही थे, फिर भी तारोंसे मुझे सान्त्वना मिली, क्योंकि वे विस्तृत और यथातथ्य थे। आशा करता हूँ कि इतनी झंझटके बावजूद तुम बीमारीसे ठीक हो जाओगी और शिमला काफी अच्छी हालतमें ही पहुँचोगी। जबतक तुम बीमार हो, तबतक मुझे तार अवश्य भेजती रहना।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४१) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२५० से भी

३९७. पत्र : ईश्वरशरणको

सेगाँव, वर्धा
१२ नवम्बर, १९३९

प्रिय मुंशीजी,

मैं आपकी रचनाको देखना तो चाहूँगा। किन्तु मुझे भय है कि इसके लिए समय नही निकलेगा। मुझसे केवल वही विशेष कार्य कराना चाहिए जो मेरे स्वास्थ्यको देखते हुए मैं अब भी कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुंशी ईश्वरशरण
६, एडमंस्टन रोड
इलाहाबाद

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०२०४) से; सौजन्य: म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद

३९८. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

सेगाँव, वर्धा
१२ नवम्बर, १९३९

जो लोग समितियोंमें है उन्हें फिलहाल निकलने की कोई जरूरत नहीं है।[1] यदि इन समितियोंमें सरकारी अधिकारी अध्यक्ष बनते है तो भी कोई हर्ज नहीं। इससे हमें उन्हें पूरी तरहसे परखने का अवसर मिलता है। उसका यदि प्रतिरोध करना पड़े तो वह भी किया जा सकता है। कदाचित् ये समितियाँ अपने-आप ही खत्म हो जायेंगी।

एक नगरपालिकाको सबसे सम्बन्ध रखने चाहिए। इस बारका असहयोग १९२० के असहयोग-जैसा नहीं है। ये मेरे अपने विचार है, इन पर तू सरदारके साथ विचार करना।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृ० १७४

३९९. क्या कांग्रेस हिन्दुओंकी संस्था है?[2]

राष्ट्रीय कांग्रेस हिन्दुओंका प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था है और इसलिए वह सिर्फ नामके लिए राष्ट्रीय है लेकिन वस्तुतः वह साम्प्रदायिक है — स्पष्ट ही लॉर्ड जेटलैण्डके इस आरोपका सिलसिला अभी खत्म नहीं हुआ है। कांग्रेसपर इससे बड़ा और कोई कलंक नहीं लगाया जा सकता। प्रारम्भसे ही कांग्रेस राष्ट्रीय रही है। उसके जन्मदाता एक अंग्रेज थे। स्वर्गीय ए० ओ० ह्यूम बहुत समयतक उसके मन्त्री रहे। उसके मन्त्रियोंमें एक-दो मुसलमान सदा रहे हैं। मुसलमान, अंग्रेज, ईसाई और पारसी उसके अध्यक्ष रहे है। दादाभाई शरीर और मनसे सर्वथा असमर्थ हो जाने के पूर्वतक कांग्रेसके प्राण बने रहे। हरएक बातमें उसे वही रास्ता दिखलाते थे और हर बातके पीछे उन्हींका दिमाग काम करता था। सर फीरोजशाह मेहता बम्बई प्रान्तके बेताजके बादशाह थे। वही जिसको चाहते उसको कांग्रेस और बम्बई निगमका अध्यक्ष बनाते थे। कांग्रेसमें जो चर्चाएँ होती थी उनमें बहुत वर्षोंतक

१. २२ अक्तूबर, १९३९ के कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार सभी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंने त्यागपत्र दे दिये थे; देखिए परिशिष्ट १३। मथुरादास त्रिकमजी यह जानना चाहते थे कि इन हालातमें उन कांग्रेसियों को क्या करना चाहिए जो सरकारी समितियों और नगरपालिकाओंके सदस्य हैं।

२. देखिए "भेंट : 'मैंचेस्टर गार्जियन' के सम्वाददाताको", पृ० ३६५-६६ भी।

बदरुद्दीन तैयबजीका मतामत निर्णायक हुआ करता था। कौन नहीं जानता कि जबतक हकीम साहब अजमलखाँ जीवित रहे, तबतक कांग्रेस उनकी सम्मतिके बिना कुछ नहीं कर सकती थी? डॉ० अन्सारी बरसोंतक संयुक्त महामन्त्री रहे। खिलाफतके दिनोंमें अली-बन्धुओंका कांग्रेसपर जो प्रभाव था, उससे पाठक परिचित ही हैं। आज भी कार्य-समिति मौलाना अबुल कलाम आजादके सहयोग और बुद्धिमत्तापूर्ण पथ-प्रदर्शनके बगैर कुछ नहीं करती। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नोंपर उनकी आवाज ही निर्णायक होती है। कांग्रेस अब अपनी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें है और अपने इस पूरे इतिहासमें वह इस प्रकार समस्त भारतके प्रतिनिधित्वका प्रयत्न करती रही है जिस प्रकार और किसी संस्थाने नहीं किया है। कांग्रेसने जो जो विजय पाई है, उससे सभी जातियोंको लाभ पहुँचा है।

कुछ क्रुद्ध पत्र-लेखकोंने मुझसे पूछा है, "अगर सचमुच ऐसी बात है, तो कांग्रेसने उस कार्यको अपने हाथमें क्यों ले लिया है, जो अखिल भारतीय हिन्दू महासभाका है?" 'ट्रिब्यून' ने भी, उसके सम्पादकको कांग्रेसके आचरणमें जो असंगति दिखाई दी है, उसकी ओर ध्यान खींचा है। इस असंगतिको कबूल करना पड़ेगा। लेकिन संगतिके आधारपर न जीवन चलता है, न संस्थाएँ। स्पष्टतः देशकी राजनीतिक प्रगतिके लिए कांग्रेसको साम्प्रदायिक समाधानकी आवश्यकता प्रतीत हुई और उसके फलस्वरूप १९१६ में कांग्रेस-लीग समझौता हुआ। तभीसे कांग्रेसने साम्प्रदायिक एकताको कांग्रेस-कार्यक्रमका एक मुख्य आधार बना रखा है। तर्कबुद्धिसे देखें तो यह काम साम्प्रदायिक संस्थाओंका होना चाहिए, तथापि विविध जातियाँ अगर आपसमें लड़ती-झगड़ती हैं और अगर राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे झगड़ेका हल आवश्यक हो जाता है तो कांग्रेस-जैसी जन-संस्था चुपचाप सब-कुछ देखती-भर नहीं रह सकती। इस प्रकार स्पष्ट कर्त्तव्यके रूपमें जो चीज कांग्रेसके सामने आई उससे वह जी नहीं चुरा सकती थी। कांग्रेस ऐसी संस्था है और होनी चाहिए जो साम्प्रदायिक मामलोंमें शुद्ध राष्ट्रीय और निष्पक्ष दृष्टि रखे। मैं मानता हूँ कि कांग्रेसमें समस्त भारतकी आशाएँ और आकांक्षाएँ निहित हैं, इसके विपरीत भले ही कुछ भी क्यों न कहा जाये। जहाँतक भारतकी राजनीतिक आकांक्षाओंका सम्बन्ध है, यदि कांग्रेस सारे भारतका प्रतिनिधित्व न करती हो तो वह किसीके साथ कोई समझौता या करार नहीं कर सकती। इसकी परम्परा ही ऐसी है कि वह मुसलमानोंके खिलाफ हिन्दुओंका या हिन्दुओंके खिलाफ मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। वह तो भारतकी सभी सन्तानोंके सर्वसामान्य हितका प्रतिनिधित्व करने के ही योग्य है। सामान्य हितके पोषणकी दृष्टिसे यदि कांग्रेस व्यक्तियों अथवा उनकी संस्थाओंके साथ समझौते करने की कोशिश करती है तो उसमें मुझे कोई अनुचित बात दिखाई नहीं देती। कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे सब समझौते परस्पर सहायक होने चाहिए, परस्पर-विरोधी कदापि नहीं होने चाहिए। इसमें शक नहीं कि यह काम बहुत मुश्किल है। लेकिन यदि लोग और संस्थाएँ कांग्रेसके प्रति सद्भावनासे काम लें, तो यह काम उसके क्षेत्र या उसकी योग्यतासे बाहरका नहीं है। आज

उसे इस तरह सबका विश्वास प्राप्त नहीं है। इसलिए उसे उस दिनकी प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। अगर कोई और संस्था यह काम करे तो कांग्रेसजन उसका स्वागत करेंगे।

सेगाँव, १३ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-११-१९३९

४००. अनावश्यक भय

वाइसराय महोदय, श्री राजेन्द्रप्रसाद तथा जिन्ना साहबके पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करते हुए *वाइसराय महोदयने जो प्रस्तावना*[1] *लिखी थी*, उसपर मेरे वक्तव्यके[2] सम्बन्धमें लिखते हुए एक माननीय साथी कार्यकर्त्ता कहते है :

> आजके समाचारपत्रोंमें आपका वक्तव्य पढ़कर मुझे कुछ विस्मय और क्षोभ हुआ, क्योंकि उसके कारण हमारी अगली कार्रवाई इस बातपर निर्भर हो जाती है कि मुस्लिम लीगके साथ हमारा समझौता हो जाये और वाइसराय सुलह-वार्त्ताके लिए अपने प्रयत्न जारी रखें। मुझे लगता है कि इस रुखके कारण ब्रिटिश सरकार या मुस्लिम लीग, किसीके भी साथ समझौता करना बहुत मुश्किल हो जायेगा।

शायद और भी बहुत-से कांग्रेसजनोंकी यही भावना है। इसलिए मुझे इस भयका निराकरण करना चाहिए। मेरी रायमें दोनों ही मामलोंमें सविनय अवज्ञाको स्थगित करना अनिवार्य है। जब वाइसराय विभिन्न पक्षोंको सन्तुष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उस समय हमें सविनय अवज्ञा शुरू करने की जल्दबाजी नही करनी चाहिए। लेकिन सविनय अवज्ञाको अनिश्चित या बहुत लम्बे समयतक के लिए स्थगित नही किया जा सकता। हमें ऐसा कुछ नही करना चाहिए जिससे हमें गलतीपर माना जाये। वाइसरायका खयाल करके इसे स्थगित रखने का मतलब समाधानमें सहायता देना है।

जहाँतक मुस्लिम लीगका सवाल है, यह बात मुझे स्वयंसिद्ध मालूम पड़ती है कि आपसमें लड़ते हुए हम बड़े पैमानेपर सविनय अवज्ञा शुरू नही कर सकते। यह बिलकुल साफ है। इसके अलावा, अपने-आपसे या दूसरोंसे सचाईको छिपाकर हम सच्चा समझौता नही कर सकते। मैं इस बातको मानने से इन्कार करता हूँ कि मुसलमान लोग उस देशकी प्रगतिको, जो जितना दूसरोंका है उतना ही उनका भी है, किसी लम्बे अर्सेतक रोक सकते हैं। और यह बात स्वीकार करने में भी मुझे

१. देखिए परिशिष्ट १७।
२. देखिए पृ० ३७६-७८।

कोई नुकसान दिखाई नही देता कि करोड़ों मुसलमान आजादी न चाहें तो जबतक दूसरे उनसे लड़ने को तैयार न हों, तबतक वे दूसरोंके लिए उसे कुछ समयके लिए जरूर रोक सकते हैं। जहाँतक कांग्रेसका ताल्लुक है, मैंने ऐसी आपसी लड़ाईकी सम्भावनाको समाप्त कर दिया है। इस स्पष्ट बातकी स्वीकृति मुस्लिम लीगके प्रति सद्भावनाका सकेत है। साथ ही, इससे देशकी प्रगतिको अवरुद्ध करने की जिम्मेदारी भी मुस्लिम लीगपर आ जाती है। अत. स्थितिकी इस स्वीकृतिसे समझौतेकी सम्भावनामें वृद्धि होनी चाहिए।

मैंने जो कथन उद्धृत किया है, उसमें 'कार्रवाई' शब्दका प्रयोग ध्यान देने योग्य है। जिन दो परिस्थितियोका मैंने उल्लेख किया है, उनमें मैंने सिर्फ सविनय अवज्ञा ही स्थगित रखने का विचार पेश किया है, हर तरहकी कार्रवाई बन्द रखने का नही। काग्रेस कोई जड़ सस्था नही है, वह तो सदा गतिशील है। आगेकी घटनाओ की कल्पना तो मैं नही कर सकता, लेकिन मुझे इसमें कोई शक नही कि समस्या के मुकाबलेके लिए काग्रेस अपने ऊपर स्वयं ही लगाई हुई सीमाओंके अन्दर भी सविनय अवज्ञाके अलावा और कोई उपाय ढूंढ लेगी। इस बातको मैं फिर दुहराऊँगा कि अधीर होकर हम अपने ध्येयको ही नुकसान पहुँचायेंगे। मुझे नित्य ही ऐसे स्त्री-पुरुषोंके पत्र मिल रहे हैं, जो लिखते हैं कि उन्हें तो सिर्फ मेरा आदेश मिलने-भरकी देर है, फिर तो वे दिखा देंगे कि वे क्या हैं। वे यह भी लिखते हैं कि मुझे हिंसा फूट पड़ने का भय करने की कोई जरूरत नही है। इन सबसे मैं यही कहूँगा कि वे जो कहते हैं वह सब अगर सच है तो सब्रके साथ प्रतीक्षा करने से उनके बलमें वृद्धि ही होगी और सफलता सुनिश्चित हो जायेगी।

सेगाँव, १३ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-११-१९३९

४०१. तार : अमृतकौरको

वर्धागज

१३ नवम्बर, १९३९

राजकुमारी अमृतकौर

२, मेटकॉफ हाउस रोड, दिल्ली

आशा है तकलीफ कम होती जा रहा होगी। स्वस्थ रहो। प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४२) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२५१ से भी

४०२. राजनीति बनाम नैतिकता

कांग्रेसजन-सम्बन्धी अपने लेखमें[1] मैंने जो सुझाव पेश किया था उसके जवाबमें श्री मानवेन्द्रनाथ रायने डॉ० राजेन्द्रप्रसादको नहीं, बल्कि मुझे एक लम्बा पत्र भेजा है। उन्होंने जो प्रश्न उठाये हैं, वे चाहते हैं, उनपर सार्वजनिक रूपसे चर्चा की जाये। उसके आरम्भिक अंशोंको छोड़कर, जिनमें पाठकोंकी कोई दिलचस्पी नहीं होगी, पत्रको इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

सबसे पहले मैं मन्त्रिमण्डलोंके त्यागपत्रको[2] लेता हूँ। मैं महसूस करता हूँ कि इससे यकीनन कांग्रेसकी प्रतिष्ठा बढ़ी ही है। इसमें सन्देह नहीं कि अगर कांग्रेस कार्य-समितिने मेरी योजना मान ली होती, तो ज्यादा अच्छा किया होता, पर सिर्फ तभी, जब मेरे बताये तमाम फलितार्थों-सहित, अहिंसाको वह आत्मसात् कर सकी होती। लेकिन कार्य-समितिके सदस्य अपने कर्त्तव्यके प्रति इतने ज्यादा सचेत थे कि वे मेरी योजनाको यान्त्रिक रीतिसे और बिना हार्दिक विश्वासके माननेके लिए तैयार नहीं थे। इसलिए कार्य-समितिका प्रस्ताव ही एकमात्र सही रास्ता था, जिसे वह अपना सकती थी। और उसके ऐसा करने का तर्कसंगत परिणाम त्यागपत्र ही था।

नागरिक स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए सन्दिग्ध लाभकी खातिर पदोंपर बने रहना अशोभनीय होता। अगर वे लोग स्वायत्तशासी राज्योंके मन्त्री होते, तो युद्धके मामलेमें उनकी जैसी उपेक्षा की गई वैसी कभी न की जाती। इस उपेक्षा के बाद जब कार्य-समितिने इस भारी चूककी ओर ब्रिटिश सरकारका ध्यान खींचा और उससे कहा कि किस प्रकार इसकी क्षतिपूर्ति करके वह युद्ध-प्रयत्नमें भारतका सहयोग कायम रख सकती है, उस समय भी कांग्रेसको सन्तोष दिया जा सकता था। इसलिए मन्त्रिगण कमसे-कम जो कर सकते थे वह यह कि वे त्यागपत्र दे दें — और किसी प्रयोजनसे नहीं तो प्रान्तीय स्वायत्तताका खोखलापन दिखानेके लिए ही। अपनी बेबसीका पता लगनेके बाद पदोंपर बैठे रहना तो बदनामीको ही न्योता देना होता। नागरिक स्वतन्त्रताकी रक्षाकी खातिर मन्त्रिपदोंपर बने रहना सारके बदले छायाके पीछे भागने-जैसा होता। और श्री राय यह विश्वास रखें कि बेचारे कमजोर कर दिये गये मन्त्री नागरिक स्वतन्त्रताके अच्छे रक्षक भी नहीं हो सकते थे। गवर्नर उनके निर्णयोंका कोई लिहाज न करते और जिन्हें वे जेलखानोंमें भेजना चाहते, भेज देते। पदग्रहण मुख्यतया इसलिए किया गया था कि स्वतन्त्रताकी ओर हम तेजीसे बढ़ सकें। मन्त्री जब इसमें असफल हो गये तब अन्य लाभ चाहे जितने

१. देखिए पृ० ३५९-६१।

२. अपने पत्र में मानवेन्द्रनाथ रायने कहा था कि "इस अवस्थामें कांग्रेसी मन्त्रियोंसे त्यागपत्र दिलाना जरूरी नहीं था।"

बड़े हों, उन्हें छोड़ देने के लिए वे बाध्य थे। और जबतक कांग्रेसकी माँग पूरी नहीं हो जाती, तबतक वे कभी पदोंको पुनः स्वीकार नहीं कर सकते।

सविनय अवज्ञा किसी भी तरह अनिवार्य अगला कदम नहीं है। वह तो अनेक बातोंपर, जिनमें से कुछका मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ, निर्भर करती है। युद्ध-संचालनकी कलामें — और खासकर जब वह युद्ध अहिंसात्मक हो तब — निष्क्रियता अक्सर सबसे अधिक प्रभावकारी क्रियाशीलता होती है।

और अब हम सबसे अहम सवालपर आते हैं।[1] सविनय अवज्ञा शास्त्रमें अहिंसाका स्थान केन्द्रीय है। १९२० में कांग्रेसने अपनी राजनीतिको जान-बूझकर मूलभूत नैतिकता और आवश्यक समाज-सुधारसे जोड़ दिया था। कांग्रेस इस निर्णयपर पहुँची थी कि अहिंसा और अमुक निश्चित सामाजिक सुधारोंके बिना, जैसे मद्य-निषेध और अस्पृश्यता-निवारणके बिना, स्वराज्य हासिल नहीं किया जा सकता। अपने आर्थिक कार्यक्रमके केन्द्रमें उसने चरखेको भी रखा। सच तो यह है कि उसने तब के जाने-माने राजनीतिक कार्यक्रम, अर्थात् संसदीय कार्यक्रमको त्याग दिया। अतः कांग्रेसकी राजनीतिमें नैतिकताको दाखिल किया जाना कांग्रेसकी आजादीकी लड़ाईमें न तो अप्रासंगिक था और न है। यह तो उसके मर्म-स्थलके समान है। उस वक्त भी थोड़े-से लोग जरूर इसपर कुडमुड़ाये थे। लेकिन भारी बहुमतने इस कार्यक्रमका ऐसा स्वागत किया जैसा कांग्रेसके पूरे दीप्तिमान इतिहासमें पहले कभी नहीं हुआ था। इस कार्यक्रमने जनतामें अत्यन्त व्यापक जागृति पैदा कर अपना औचित्य सिद्ध किया। इसके कारण कांग्रेसने वह महत्त्व पाया, जो उसे पहले कभी नहीं मिला था। श्री राय मुझसे यहाँ यह आशा नहीं करेंगे कि मैं उस दलीलको दुहराऊँ जिसके फल-स्वरूप उक्त कार्यक्रम उत्साहपूर्वक स्वीकार किया गया था। अगर वे इस विषयके पक्ष-विपक्षको जानना चाहते हैं, तो उन्हें इसके लिए 'यंग इंडिया' के पृष्ठ उलटने चाहिए। इस कार्यक्रमको कांग्रेसने जबसे स्वीकार किया, तभीसे वह एक व्यापक लोकतान्त्रिक संस्था बन गई और, उसने अपना एक ऐसा लोकतान्त्रिक विधान[2] बनाया जो अबतक कायम है, और जिसमें आजतक कोई ठोस और मूलभूत परिवर्तन नहीं किया गया है।

कांग्रेसका काम दुहरा है। शान्तिके वक्त वह लोकतान्त्रिक संस्था है और युद्धके वक्त वह एक अहिंसात्मक सेना बन जाती है। अपने इस दूसरे रूपमें उसमें मताधिकार नहीं रहता। उस समय तो जो भी उस सेनाका अध्यक्ष हो उसीके माध्यमसे उसकी इच्छा अभिव्यक्त होती है। और उस हालतमें उसकी प्रत्येक इकाईको मन, वचन और कर्मसे स्वेच्छापूर्वक उसकी आज्ञाका पालन करना पड़ता है। हाँ, मनसे भी, क्योंकि उसकी लड़ाई अहिंसात्मक है।

१. मानवेन्द्रनाथ रायने कांग्रेसके अहिंसाके सिद्धान्तकी यह कहते हुए आलोचना की थी कि "उसका कांग्रेसके राजनीतिक कार्यक्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं है।"

२. देखिए खण्ड १९, पृ० १९४-२०२, और खण्ड ५९, पृ० २६१-७२।

श्री राय तथा अन्य कांग्रेसजनोको यह बताने की आवश्यकता नही कि अपने साथी कार्यकर्त्ताओंको खो देने की मुझे आदत नही है।[1] उनका प्रेम प्राप्त करने और उसे कायम रखने के लिए मै उनके साथ बहुत दूरतक चलने का प्रयत्न करता हूँ। लेकिन आखिर एक ऐसी सीमा भी आती है, जिसके आगे मै समझौता नही करता, नही कर सकता और न मुझे करना ही चाहिए। भला ऐसे समझौतेका क्या मूल्य जिससे सफलताकी सम्भावना ही खतरेमें पड जाये?

सेगाँव, १४ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-११-१९३९

४०३. टिप्पणियाँ

पंच-निर्णय या सरकारी निर्णय?

'अच्छा भी और बुरा भी'[2] शीर्षक मेरे लेख ('हरिजन', ४-११-१९३९) में एक निर्दोष वाक्य आया है, जिसके विरोधमें सब ओरसे मेरे ऊपर प्रतिवादोंकी बौछार हो रही है। इन पत्र-लेखकोंने मेरे लेखोमें जल्दबाजीके कारण हुई भूल दिखने पर उसके लिए मेरी कडी आलोचना करके अनचाहे ही मेरी तथ्यपरकताकी प्रशसा ही की है। मै मानता हूँ कि जिसे मैंने 'पच-निर्णय' कहा है वह वास्तवमें पच-निर्णय नही, बल्कि ब्रिटिश सरकारका निर्णय था। और यदि वह पच-निर्णय नहीं था तो उसमें मेरे शामिल होने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। किन्तु इसके बावजूद मेरे 'शामिल होने' का स्पष्टीकरण देना जरूरी है। मैंने दिवंगत श्री रैम्जे मैक्डॉनल्डके नाम किसी भी आवेदनपर हस्ताक्षर नही किये थे। किन्तु मेरे सामने जो आवेदन-पत्र पेश किया गया था, उसपर हस्ताक्षर करने से इन्कार करने के बाद मैंने दिवगत प्रधान मन्त्रीको इस आशयका एक पत्र[3] लिखा था कि साम्प्रदायिक समझौतेके सिल-सिलेमें सब पक्षोंको जो-कुछ मान्य होगा, उसे कांग्रेस भी स्वीकार कर लेगी। किन्तु वह योजना बीचमें ही खत्म हो गई और किसी सर्वसम्मत आवेदनके अभावमें ब्रिटिश सरकारने पच-निर्णय नही, बल्कि एक सरकारी निर्णय दे दिया। मेरे इस बात को भूल जाने से यथार्थ तो नही बदल सकता। किन्तु मुझे खेद है कि मेरी भूल

१. मानवेन्द्रनाथ रायने अपने पत्रके अन्तमें लिखा था कि ऐसी स्थिति नहीं पैदा की जानी चाहिए कि उन्हें और उनके दलको "कांग्रेससे अलग होना पड़े. . . और वह भी महज इस गुनाहके कारण कि हममें अपने विश्वासके प्रति आस्था प्रकट करनेका साहस है और हम भारतीय स्वतन्त्रताके लिए समर्पित हैं।"

२. देखिए पृ० ३५४-५५ तथा "टिप्पणियाँ", २७-११-१९३९ का उपशीर्षक "फिर साम्प्रदायिक निर्णय" भी।

३. देखिए खण्ड ४८, पृ० ३३४-३५।

से इतने लोगोंको पत्र लिखने का कष्ट उठाना पड़ा। किन्तु मुझे लगता है, खेद प्रकट करने के बाद मैं अपनी आदतोंको सुधार नहीं सकूँगा। दूने कामका भार वहन करते हुए मेरा उस तरहकी भूल फिरसे कर बैठना असम्भव नहीं जिसपर इतने सारे पत्र-लेखकोंको रोष हुआ है। किन्तु भावी पत्र-लेखक देखेंगे कि मैं जब-जब भूल करूँगा तब-तब उसे सुधारने के लिए तत्पर रहूँगा। और मेरे आलोचक यह भी याद रखें कि कांग्रेसके तटस्थताके जिस सूत्रके[1] प्रति उनमें अचानक ऐसा प्रेम जाग गया है, उसका जनक भी मैं ही था। वे यह भी विश्वास रखें कि यदि मेरे जीवन-कालमें अनेक दोषोंसे युक्त इस निर्णयको सर्वसम्मतिसे सुधारने का समय आया तो न्यायसंगत समझौता कराने में सहायता देनेवाले कार्यकर्त्ताओंमें मैं भी होऊँगा। किन्तु मैं यह नहीं कर सकता कि जिन पक्षोंसे इसका सम्बन्ध है उनकी परवाह किये बिना ब्रिटिश सरकारसे इसे सुधारने की प्रार्थना करूँ। जबतक कि सम्बद्ध पक्ष इसकी विचित्र असंगतियोंके निराकरणके लिए एकमत न हो जायें, तबतक यह कायम रहेगा।

सेगाँव, १४ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-११-१९३९

४०४. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
१४ नवम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे पत्र मुझे नियमित रूपसे मिलते रहे हैं। राजेन बाबूको लिखा तुम्हारा पत्र भी मैं पढ गया हूँ। पत्र पढने से पहले मैं उसपर 'हरिजन' के लिए टिप्पणी[2] लिख चुका था; तुम्हें उसकी अग्रिम प्रति भेजने का प्रयास करूँगा।

यदि तुम्हें इलाहाबादमें मुझे और रोकने की जरूरत होगी[3] तो रोक लेना।

लन्दनमें यहाँके हमारे वक्तव्योंका जो पक्षपातपूर्ण सम्पादन किया जाता है, उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। यदि समय मिला तो मैं 'न्यूज क्रॉनिकल' के लिए

१. देखिए खण्ड ४७, पृ० १५७-५८।

२. तात्पर्य सम्भवतः पिछले शीर्षकसे है।

३. जवाहरलाल नेहरूने अपने ८ नवम्बरके पत्रमें गांधीजीको लिखा था: "यदि सम्भव हो तो सं० प्रा० कां० कमेटीके सब सदस्य इलाहाबादके आपके प्रवासके समय आपसे मिलना चाहेंगे।... कार्य-समिति की बैठक तो शायद २१ या २२ तक चलेगी। आपके साथ संयुक्त प्रान्तके कोई तीसेक कार्यकर्त्ताओंकी अनौपचारिक भेंटके लिए क्या मैं ३० तारीख सुझा सकता हूँ?"

एक छोटा-सा सन्देश[1] लिख डालूँगा। इसके लिए उस पत्रने मुझे सशुल्क अधिकार दे रखा है।

शेष मिलने पर।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

महादेवने मुझे अभी-अभी बताया है कि आज तुम पूरे पचास वर्षके हो गये हो। मुझे आशा है कि तुम अगले पचास वर्ष भी ऐसी ही स्फूर्ति, निष्कपटता और खरी ईमानदारीके साथ पूरे करोगे।

बा०

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृ० ३९६ से भी

४०५. तार : 'न्यूज़ क्रॉनिकल' को[2]

१४ नवम्बर, १९३९

मैं देखता हूँ कि भारत और ब्रिटेनके बीच जो मुख्य मुद्दा है उसके बारेमें ब्रिटिश समाचारपत्र उलझनमें पड़े हुए हैं। क्या ब्रिटेनका इरादा भारतको एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें स्वीकार करनेका है अथवा क्या भारतको ब्रिटेनके अधीन ही रहना होगा? इस प्रश्न को कांग्रेसने ब्रिटेनकी स्थितिसे लाभ उठाने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए उठाया है कि भारतके लोग इस बातका निश्चय कर सकें कि उन्हें वर्त्तमान विश्व-संकटके समय कैसा व्यवहार करना चाहिए। इस तरह मुद्दा विशुद्ध नैतिक बन जाता है, क्योंकि ब्रिटेन भारतपर अपने पूर्ण आर्थिक और सैनिक नियन्त्रणके जोरसे भारतीय और ब्रिटिश सेनाका चाहे जिस तरह संचालन कर सकता है तथा अपनी इच्छानुसार भारतका आर्थिक दोहन करता रह सकता है। ग्यारह प्रान्तोंमें से आठ प्रान्तोंने जोरदार ढंगसे यह कह दिया है कि यदि युद्धका मतलब अन्य बातोंके अलावा भारतको पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है तो वे उसमें शरीक नहीं होंगे। इसके आगे अन्य सब मसले

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. यह "द मेन इशू" (मुख्य मुद्दा) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

गौण है। अल्पसंख्यकोंका मामला विशुद्ध घरेलू मामला है जिसे अल्प-संख्यक तथा बहुसंख्यक दोनों मिलकर तय कर लेंगे। प्रस्तावित संविधान-सभा ही ऐसी सभा है जो इस समस्याका स्थायी और उचित समाधान ढूंढ सकती है। अन्य कोई समाधान तो जन-समर्थनसे रहित कामचलाऊ समझौता ही हो सकता है। भारतके मुँहपर अल्पसंख्यकोका सवाल मारना मामलोंको उलझाना है। और राजाओंके प्रश्नको उठाना तो और भी अनुपयुक्त है। वे तो अधीश्वरी सत्ताके ही अंश हैं। यह सोचकर दुःख होता है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ रियासतोंमें रहनेवाले करोड़ो लोगोंकी चर्चा तक नही करते। क्या उन्हें अपने शासनमें राय व्यक्त करने का कोई अधिकार नही है? जैसे दास वे हैं, क्या उन्हे वैसे दास ही बने रहना है, हालाँकि उन्हें युद्धमें घसीटा जा रहा है? कोई आश्चर्य नही कि हिटलरने ब्रिटेनको चुनौती दी है कि वह भारतको स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें स्वीकार करके अपनी सदाशयताका प्रमाण दे। इस चुनौतीके पीछे उनकी मंशा चाहे कुछ भी रही हो, लेकिन इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह बहुत मौजूँ है। कुछ भी हो, ब्रिटेनकी जनताको जान लेना चाहिए कि कांग्रेसकी माँग बिलकुल स्पष्ट है और यदि ब्रिटेन अपने साम्राज्यवादी इरादोंको छोड़ने के लिए तैयार हो तो इस माँगको पूरा भी किया जा सकता है। कार्य-समितिकी बैठक १९ तारीखको इलाहाबादमें होनेवाली है, जिसमें आगेकी कार्रवाईपर विचार किया जायेगा। इसलिए असली मुद्देके बारेमें कोई गलत-फहमी नही होनी चाहिए। यदि ब्रिटेन और कांग्रेसके बीच संघर्ष होना ही है तो दुनियाको मालूम हो जाना चाहिए कि यह संघर्ष किस चीजके लिए है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-११-१९३९

४०६. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१४ नवम्बर, १९३९

प्रिय पगली,

तुम बहुत नियमपूर्वक मुझे तार भेजती रही हो। कल तुम्हारा तार मिलने से पहले ही मैं तार भेज चुका था।[1] भगवान्का शुक्र है कि तुम्हारा देहरादूनका कार्यक्रम समाप्त हो गया। अब तुम्हें पूरा आराम करना चाहिए। आशा है, तुम्हें शिमलामें कोई चिन्ता नहीं होगी। मैं ठीक हूँ। वैसे कामका दबाव तो है ही। रक्तचाप १८०/१०६ और १६०/१०० है। राधा और लीलावती आज चली गईं और होमी भी।

आजकी रात और नहीं लिखूँगा।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४३) से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२५२ से भी

४०७. पत्र : गोविन्द वी० गुरजलेको

सेगाँव, वर्धा
१५ नवम्बर, १९३९

प्रिय निर्मलानन्द,

जो सेवा-कार्य तुम कर रहे हो उससे तुम्हारा ध्यान हटना नहीं चाहिए।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३८९) से।

१. देखिए पृ० ३८४।

४०८. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

सेगाँव, वर्धा
१५ नवम्बर, १९३९

चि० जानकीबहन,

यदि दिनशा दाँत निकलवाने के लिए कहें तो डरना नही।

पीप निकलनेवाले दाँतको उखड़वाने में ही लाभ है। लेकिन यदि दाँतकी जड़ बहुत गहरी हो तो बात कुछ विचार करने योग्य जरूर होती है। दिनशा जैसा कहें वैसा होने देना। मुझे विस्तारपूर्वक लिखना। मदालसा कैसी है? ओमका पत्र मिल गया है। मेहरबानी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३००५) से।

४०९. तार : अमृतकौरको

वर्धा
१६ नवम्बर, १९३९

राजकुमारी अमृतकौर
शिमला वेस्ट

तुम्हारा तार चिन्ताजनक है। मेरी दुआएँ तुम्हारे साथ है। तुम्हें पूरा आराम लेना चाहिए। पूर्णतः स्वस्थ हो जाओ। स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४५) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२५४ से भी

४१०. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१६ नवम्बर, १९३९

प्रिय पगली,

शिमलासे आये हुए तुम्हारे तारसे मन परेशान हो उठा है। अपनेको मनमें दोषी पाता हूँ। भला तुम्हें देहरादून भेजनेका मैंने वादा किया ही क्यों? किन्तु मैं तो हूँ ही ऐसा। सहयोगियोंसे यथासम्भव अधिकसे-अधिक फायदा उठाना तो मेरा स्वभाव ही है। किन्तु मुझे तुम्हारे दुर्बल शरीरका खयाल तो करना चाहिए था। शम्मीसे[1] सहस्रदश क्षमा-याचनाएँ। लेकिन तुमसे एक भी नहीं; क्योंकि तुम्हें तो मेरा यह विचार भी बुरा लगेगा कि मैं तुम्हें बख्श दूँ। किन्तु हम जिस उद्देश्यको लेकर चल रहे हैं उसकी खातिर ही मुझे तुमको बख्शना होगा। मैं तुम्हें एक तार भेज रहा हूँ। तुम्हें अब स्वस्थ-सबल बन जाना है। बन भी सकती हो, यदि तुम इसका संकल्प कर लो। तुम्हें अपने मनकी उद्विग्नता और छुई-मुईपनसे छुटकारा पाना है। तुम्हारा यह कहना बेकार है कि तुम अपने स्वभावको नहीं बदल सकती। हमारा जन्म तो इस धरतीपर उस उच्चतर शक्तिकी इच्छानुसार अपने स्वभावको बदलनेके लिए ही हुआ है।

आशा है, शम्मी अच्छे होंगे। तोफानने[2] तो खूब उत्साहसे तुम्हारा स्वागत किया होगा। सब मरीज अच्छे हो रहे हैं। तुम सबको स्नेह।

तानाशाह

[पुनश्च :]

मैं समझता हूँ कि मैंने घनश्यामदासको पत्र दिया था कि गोंद लगवाकर डाकमें डलवा दें।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४६) से; सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ७२५५ से भी

१. अमृतकौरके भाई, एवं अवकाश-प्राप्त सर्जन शमशेरसिंह
२. अमृतकौरका पालतू कुत्ता

४११. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

सेगाँव
१६ नवम्बर, १९३९

चि० अमृतलाल,

कामथके लिए वहाँ रुककर तुमने ठीक किया। रेचक दवाके बारेमें मैं सुशीलासे सलाह-मशविरा कर लूँगा। आशालताबहनके बारेमें तुमने ठीक ही लिखा है। उसकी समस्या कठिन है। देखूँगा। यदि सयाने लड़के-लड़कियाँ खुद अपनी रक्षा न कर सकें तो कैसे निभेगी?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७९८) से।

४१२. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
१६ नवम्बर, १९३९

चि० विजया,

तेरा पत्र मिल गया है। मैंने तो पत्र लिखा ही है। नानाभाईकी तबीयत कैसी रहती है? तेरा स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है या नहीं? काकासाहबके न होनेके कारण आजकल अमृतलाल यहीं सोता है। प्रार्थना कराता है। वह आज नहीं है, क्योंकि उसके यहाँ कामथकी खटिया पड़ी हुई है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं तीन-एक दिनके लिए प्रयाग जा रहा हूँ।

श्री विजयाबहन
मारफत श्री नानाभाई
आँबला, बरास्ता सोनगढ़
काठियावाड़

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४६१२) से; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

४१३. पत्र : दिलखुश बी० दीवानजीको

सेगाँव, वर्धा
१६ नवम्बर, १९३९

भाई दिलखुश,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा काम तो हमेशा ठोस होता है। तुम्हारी परेशानी दूर हुई अथवा नहीं? तुम्हारी बुनाई वहाँ भी चलती है न? क्या तुम महीन बुन सकते हो? इस कलापर पूरी तरह अधिकार प्राप्त कर लेना।

बापूके आशीर्वाद

दिलखुश दीवानजी
गाधी कुटीर
कराडी, बरास्ता नवसारी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६४३) से।

४१४. पत्र : कंचनबहन मु० शाहको

सेगाँव, वर्धा
१६ नवम्बर, १९३९

चि० कंचन,

तेरे दो पत्र मिले हैं। उनमें जवाब देने लायक कोई बात नहीं थी। तेरी इच्छा हो तभी रमण आश्रम जाना। हालमें मुन्नालालका कोई समाचार नहीं मिला है। लेकिन चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं। तू अपनी सेहत सुधार लेना। मैं तीन-एक दिनके लिए इलाहाबाद जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२८८)से। सी० डब्ल्यू० ७०६४से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

४१५. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव
रात्रि ८ बजेके लगभग, १६ नवम्बर, १९३९

प्रिय अमृत,

तुम्हें यह पत्र[1] पहले ही भेजा जाना चाहिए था। किन्तु बहाना यह है कि समय नही था, या कहूँ कि ठीक व्यवस्था नही थी, अथवा दोनों ही नही थे?

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४४) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२५३ से भी

४१६. भेंट : एक साथी कार्यकर्त्ताको[2]

[१७ नवम्बर, १९३९ या उसके पूर्व][3]

साथी कार्यकर्त्ता : चूँकि मुझे आपके नेतृत्वमें विश्वास है, इसलिए आपकी बात सुनने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।

गांधीजी : मेरा नेतृत्व तो नीरस है; और दिखलाने को इसके[4] सिवा मेरे पास और कुछ नहीं है।

सविनय अवज्ञा-सम्बन्धी आपका वक्तव्य[5] चक्करमें डालनेवाला है। उसमें कही गई बातें अपने-आपमें स्पष्ट नहीं है। उदाहरणके लिए, जब आप यह कहते हैं कि मुस्लिम लीग रुकावट डाले तो हमें सविनय अवज्ञा शुरू नहीं करनी चाहिए, तो

१. तात्पर्य १०-११-१९३९ को बम्बईसे शंकरलाल बैंकर द्वारा अमृतकौरके नाम लिखे पत्रसे है, जिसके पृष्ठ भागपर गांधीजी ने यह पत्र लिखा था।

२ और ३. यह भेंट-वार्ता महादेव देसाईके लेख "पजल्ड एंड परप्लेक्स्ड" (हैरान और परेशान) शीर्षकसे, जो दिनांक "सेगाँव, १७ नवम्बर" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था, ली गई है।

४. महादेव देसाई लिखते हैं: "गांधीजी हँस रहे थे और उस चरखेकी ओर इशारा कर रहे थे जिसे वे ठीक करने की कोशिश कर रहे थे।"

५. देखिए पृ० ३७५-७८ और ३८३-८४।

मुझे बड़ी हैरानी होती है। क्या इसमें साम्प्रदायिक दंगोंका भय है? दंगा भला क्यों होना चाहिए?

तो अभी पिछले दिनों नेल्लूरमें क्यों हुआ?

वह तो दिवालीके सिलसिलेमें हुआ था, राजनीतिसे उसका क्या सरोकार?

साम्प्रदायिक एकताके अभावसे तो पूरा सरोकार है।

आपका खयाल है कि वे हमारे मार्गमें रुकावट डालेंगे, ताकि कहीं हम अपनी माँगें पूरी न करा लें?

नहीं, वे कहेंगे, सरकारसे लड़ते हुए हम उनसे लड़ रहे हैं और सहयोगके जरिये वे जो हासिल करना चाहते हैं उसमें हम रुकावट डाल रहे हैं। क्या आप मुसलमानोंसे लड़ना चाहते हैं?

नहीं। जिन्ना साहबसे आपकी जो बातचीत[1] हुई, उससे क्या आपके मनपर ऐसी कोई छाप पड़ी?

नहीं, उन्होंने ऐसी कोई बात तो नहीं कही। लेकिन मैंने जो-कुछ कहा वह इतना प्रत्यक्ष है कि उसे देखनेके लिए साधारण बुद्धिके सिवा और किसी बातकी जरूरत ही नहीं। दरअसल मुझे तो इस बातपर आश्चर्य है कि जो बात इतनी स्पष्ट है वह भी आपको दिखाई नहीं देती। आपके दलके अन्य लोग इस बातको साफ-साफ समझते हैं कि टटा होगा, लेकिन उनका कहना सिर्फ यह है कि हमें उसकी परवाह न करके उनका सामना कर सकना चाहिए। मैं कहता हूँ कि ऐसी आशा करके कि हम दंगोंका सामना कर सकते हैं, दंगोंकी सम्भावना प्रस्तुत होने देना गलत होगा। एक बड़ा अल्पसंख्यक वर्ग यदि सविनय अवज्ञा शुरू करनेके खिलाफ है, तो मैं कहूँगा कि हम प्रतीक्षा करें।

लेकिन आपने अन्य बाधाओंका भी तो उल्लेख किया है।

मुख्य बाधा तो वही है। लेकिन क्या मुझे यह नहीं कहना चाहिए था कि हमारे अन्दर अनुशासन होना चाहिए?

लेकिन अनुशासन तो है। जब आप कहते हैं कि हमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू नहीं करना चाहिए, तो हम उसे शुरू नहीं करते। हमारे वामपंथियोंने भी आपकी बातपर जिस तरह अमल किया है उससे मुझे आश्चर्य है। निःसन्देह, हममें से एक-दो ने उग्र भाषाका प्रयोग किया है, लेकिन वैसे अनुशासन मौजूद है।[2]

आप तो, महात्माजी, प्रतीक्षा ही करते रहेंगे और दूसरोंसे भी यही चाहेंगे?

इसीलिए मैंने कहा है कि दो मालिक मत रखो। या तो मुझे अपने विचारोंका कायल करो या मुझे त्याग दो।

१. दिल्ली में १ और २ नवम्बर को

२. महादेव देसाई लिखते हैं: "गांधीजी ने इन मित्रको अनुशासनहीनताके उदाहरण दिये।"

तो इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम कांग्रेससे अलग होकर सविनय अवज्ञा शुरू करें तो उसमें आपको कोई आपत्ति नहीं होगी?

गैर-कांग्रेसियोंपर मेरी आपत्तिका कोई असर नहीं होगा।

लेकिन हम रहेंगे अहिंसक। जिस मुख्य बाधाका, अर्थात् साम्प्रदायिक विभेदका, आपने जिक्र किया है वह दूर होनी चाहिए। यह तो मैं मानता हूँ, लेकिन उसके दूर हो जाने पर आप हमें नहीं रोकेंगे।

इसके विपरीत, अगर आप मन-वचन-कर्मसे अहिंसक रहे तो आप मुझे ही अपना अनुयायी बना लेंगे। जैसा कि मैं पृथ्वीसिंहसे कहता रहा हूँ, यदि वे मन-वचन-कर्मसे पूर्ण अहिंसक बन जायें तो मुझे ही उनका अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि तब वे मेरी बनिस्बत कहीं श्रेष्ठ होंगे। अतः जब आप सब अहिंसक हो जायेंगे तो मैं खुशीके मारे नाच उठूँगा।

आपने सरकार द्वारा किये जानेवाले शत्रुतापूर्ण कार्योंका भी उल्लेख किया है। इससे आपका क्या अभिप्राय है?

मसलन, जब वह नागरिक स्वतन्त्रताको नामुमकिन बना देती है।

लेकिन वह तो नामुमकिन ही है। हमारे बोलने पर ही हमें गिरफ्तार कर लिया जाता है। अगर हम सरकारकी आलोचना करें तो क्या यह आपके खयालमें हमारी स्वेच्छासे ली गई प्रतिज्ञाका भंग होगा?

नहीं, अगर आपकी भाषा हिंसात्मक न हो।

तो हम लॉर्ड जेटलैंडके भाषणकी आलोचना कर सकते हैं। हम उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय डाकू बताकर यह कह सकते हैं कि उनके साम्राज्यवाद और फासिज्ममें कोई फर्क नहीं?

जरूर।

इससे हम मुसीबतमें तो नहीं पड़ेंगे?

मेरी हदतक तो निश्चय ही नहीं।

तब मैं दूसरी बातपर आता हूँ। अब चूँकि कार्यपालिका अनुत्तरदायी है, हम उसे कर आदि क्यों दें? किसान-सभाके हमारे कुछ मित्रोंको यह स्थिति असंगत मालूम पड़ती है। क्या हम कर देने से इनकार नहीं कर सकते?

वह तो सविनय अवज्ञा होगी। भला बड़े पैमानेपर करबन्दी आप कैसे कर सकते हैं?

नहीं, मेरा मतलब बड़े पैमाने पर ऐसा करने से नहीं है।

तब तो वह करबन्दी ही नहीं होगी। क्योंकि बड़े पैमाने पर ऐसा न किया जाये तो उसका कोई मतलब ही नहीं है।

किसी गाँवके एक-दो आदमी भी विरोधके रूपमें कर देने से इन्कार क्यों न करें? वह एक आजमाइशी मामला होगा।

आप इसे आजमा सकते हैं, लेकिन मैं कहता हूँ कि वह मात्र पागलपन होगा। और आप निश्चय मानिए कि आपकी बात कोई नही सुनेगा। नही, आप अपनी भावनाओंके प्रवाहमें हरगिज न बहें। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं लोगोसे यह भी कह सकता हूँ कि जो लोग अधिकसे-अधिक कष्ट सहने को तैयार हैं, वे कर देनें से इन्कार कर सकते हैं। लेकिन वह आज नही होगा। फिर कभी — और हमें उम्मीद करनी चाहिए कि मेरे जीते-जी ही — ऐसा समय आ सकता है।

लेकिन जिस बातका निषेध कांग्रेस नहीं करती उसे करने में क्या कोई हानि है?

जो करने को काग्रेस नही कहती वैसी हर बात निषिद्ध ही है।

लेकिन अगर कोई बहुत तीव्रतासे किसी बातको महसूस करे और कोई रास्ता निकालना चाहे तो वह क्या करे?

काग्रेससे अलग होकर — यही एकमात्र उचित रास्ता है।

आपने हमसे रचनात्मक कार्यक्रमसे ही सन्तुष्ट रहने को कहा है। पर हमारे अन्दर कुछ बहुत जोशीले लोग भी हैं। वे कुछ करना चाहते हैं — ऐसा-कुछ जो सविनय अवज्ञा चाहे न हो पर दुर्निवार रूपसे उसी ओर ले जानेवाला हो।

नि सन्देह, रचनात्मक कार्यक्रम ऐसा ही है। यह तो निश्चय ही सेनापतिको तय करना है कि वह कार्य क्या हो। मान लीजिए, वह प्रत्येक आदमीको हर रोज पाँच मील चलने का हुक्म देता है, या हरएक से एक टैकको खाली करने में मदद देकर आगे बढने के लिए कहता है। अगर आप अनुशासन-पालनमें विश्वास करते हैं, तो क्या आप यह नही सोचते कि हरएकको ऐसा ही करना चाहिए?

लेकिन अन्तमें क्या होगा, वह हम नहीं जानते।

इसलिए आप यह कह सकते हैं कि मेरी भाषा यथार्थ और सुनिश्चित नही है। अगर आप मुझसे यह कहलवाना चाहें कि 'इतने घटे चरखा चलाओ और अगर इतने आदमी इतने घटेतक ऐसा करें तो सविनय अवज्ञाकी स्थिति आ जायेगी, तो ऐसा कहने के लिए मैं पूरी तरह तैयार हूँ।

हम यह नहीं कहते कि समझौता-वार्त्ता जारी न रहे और शान्तिके प्रयत्न ढीले कर दिये जायें, लेकिन हमें अपनेको तैयार तो रखना ही चाहिए।

मै भी ऐसी हिदायतें जारी करने के लिए तैयार हूँ कि ये मेरी न्यूनतम अपेक्षाएँ हैं और जो इन्हें पूरा करे वे ही अहिंसक सेनामें शामिल हो सकते हैं।

आप ऐसा करेंगे, इस बातकी मुझे खुशी है। जब आपने यह घोषित किया कि कार्य-समितिने कमसे-कम सविनय अवज्ञा-सम्बन्धी सारा भार तो आपपर ही छोड़ दिया है, तो हम सब बड़े खुश हुए। आपने हमारा उत्साह बढ़ाया और हमारे अन्दर आत्मविश्वासकी भावना पैदा हुई। अब अगर आप यह समझें कि ऐसा करने में कोई खतरा नहीं है, तो कार्य-समिति लड़ाईके लिए तैयारी-समितिके ढंगकी एक कमेटी

क्यों न बनायें या सभी स्थितियोंका सामना करने की तैयारी करने का सारा अधिकार आपको ही क्यों न सौंप दें?

मैं देखूँगा कि इलाहाबादमें क्या होता है।

अन्तमें मैं एक बात और पूछता हूँ। यदि एकताकी इतनी अधिक आवश्यकता है, तो फिर वामपंथियोंपर इतना अत्याचार क्यों?

अत्याचार गलत शब्द है। अत्याचार कोई नहीं किया जा रहा है, और प्रतिबन्ध[1] हटाया जा सकता है, बशर्ते कि हृदयसे अनुशासनका पालन करने का आश्वासन मिल जाये।

आप ऐसा मानकर क्यों नहीं चलते कि वे वैसा ही करेंगे?

हम ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि पार्टीके सदस्योंमें खुल्लमखुल्ला आज्ञाभंग करनेवाले लोग भी हैं। ज्यादासे-ज्यादा यही तो हो सकता है कि हम सदस्योंको पार्टीसे निकालते चले जायें, यहाँ तक कि अन्तमें अकेला मैं ही बच रहूँ। तब मुझे इस्तीफा दे देना चाहिए और कह देना चाहिए कि मैं हार गया। लेकिन मजाक छोड़ दें, तो क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि जो व्यक्ति चाहता हो कि प्रतिबन्ध हटा लिया जाये उसे कहना चाहिए, और दिलसे मानता हो तभी कहना चाहिए कि 'मुझे अलग नहीं रहना है, मैं माफी माँग लूँगा?' फिर तो उसे फौरन ले लिया जायेगा।

जब उन्होंने देखा कि कार्य-समितिके निर्णयका आप भी अनुमोदन करते हैं तो वे स्तम्भित रह गये। उनके मनमें आपके लिए गहरा आदर-भाव है, जिसका आधार बुद्धि नहीं, बल्कि व्यक्तिगत स्नेह है। आपकी खातिर वे कुछ भी कर सकते हैं। अगर आप प्रतिबन्ध हटवा सकें, तो वे सब बहुत खुश होंगे।

तब मेरी सलाह है कि आप सारी बात समझाते हुए राजेन्द्र बाबूको एक पत्र लिखकर यह सुझाव दें।

मैं देखूँगा कि क्या किया जा सकता है। मैं तो आपसे सिर्फ इस बातको समझने का अनुरोध करूँगा कि कार्य-समितिको इस मामलेको प्रतिष्ठाका प्रश्न नहीं बनाना चाहिए।

यहाँ प्रतिष्ठाका कोई प्रश्न नहीं है। प्रश्न तो अनुशासनका है।

मैं समझता हूँ कि दुनियाकी किसी भी सेनाके मुकाबले कांग्रेसके सदस्योंने ज्यादा अनुशासनका परिचय दिया है। सोचिए कि आपको कितने कम लोगोंके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करनी पड़ी है?

काश कि मैं आपसे सहमत हो सकता! मैंने यहाँ और दक्षिण आफ्रिकामें कितने ही संगठनोंको खड़ा किया है और मैं यह कह सकने में असमर्थ हूँ कि कांग्रेस

१. तात्पर्य सुभाषचन्द्र बोसपर कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धसे है; देखिए पृ० ९४-९५

उनकी तुलनामें बेहतर ठहरती है। जहाँ-जहाँ इन संगठनोंने अच्छा काम किया है, उसका कारण यह रहा है कि उनके सदस्योंने खुशीसे आज्ञाका पालन किया है। इसके विपरीत, हम देखते हैं कि हमारे यहाँ सदस्योंने उग्र अवज्ञाका परिचय दिया है।[1]

आप अपने मनमें इस बातपर विचार कीजिएगा कि कितने कांग्रेसियोंने खादी-सम्बन्धी धाराका पालन किया है।[2]

कामका प्रमाण तो कामका परिणाम है। सभी जगह बहुत-सी अनबिकी खादी जमा है। आपका प्रान्त अपने यहाँकी सारी अनबिकी खादी खत्म क्यों नहीं कर देता?

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-११-१९३९

४१७. एक पत्र

१७ नवम्बर, १९३९

"किसी बातकी चिन्ता मत करो।"[3] यह ठीक वैसी ही बात है जैसी कि 'गीता' में वर्णित अनासक्ति। इस मुख्य विचारको ध्यानमें रखकर इस ग्रन्थका अध्ययन करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य नारायण देसाई

४१८. पत्र : मनुबहन सु० मशरूवालाको

सेगाँव, वर्धा

१७ नवम्बर, १९३९

चि० मनुड़ी,

मैं तुझे जितने पत्र लिखना चाहता हूँ उतने नहीं लिख पाता। अब तो तेरा [प्रसवसे] तुरन्त छुटकारा हो जाना चाहिए। आशा है, तू हिम्मतसे काम ले रही

१. यहाँ महादेव देसाई लिखते हैं : "उक्त साथी कार्यकर्ता गांधीजी की बातसे सहमत नहीं थे, और वे आगे बातचीत जारी रखना चाहते थे। लेकिन समय नहीं रह गया था।"

२. महादेव देसाई लिखते हैं कि गांधीजी के उपर्युक्त कथनसे "साथी कार्यकर्ता विचलित नहीं हुए और उन्होंने यह साबित करने की कोशिश की कि उनके प्रान्तमें इस धाराका पालन न करनेवाले कांग्रेसी बहुत कम ही हैं।"

३. फिलिपियन्स, ४/६

होगी। सुरेन्द्रको तार भेजना चाहिए। कहा जा सकता है कि तूने ये महीने तो बिना किसी कष्टके बिताये हैं। कृष्णदास प्रगति कर रहा है और कुँवरजी भी। जितना सोचा था उससे कहीं तेजीके साथ उनका स्वास्थ्य सुधर रहा है। रामी मजेमें है। तूने बच्चीका यह कितना लम्बा नाम[1] रखा है? तुझे यह नाम किसने सुझाया? या फिर तू अपने सादे-से नामका बदला ले रही है।

तुम दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

श्री मनुबहन मशरूवाला
बालकिरण
सान्ताक्रूज

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २६७३) से; सौजन्य: मनुबहन सु० मशरूवाला

४१९. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१७ नवम्बर, १९३९

चि० जयसुखलाल,

मैं कल प्रयाग जा रहा हूँ। बहुत करके २५ तारीखसे पहले लौट आऊँगा। समाचारपत्रोंमें मेरा कार्यक्रम पढ़कर ही आना।

माणेकलाल[2] अथवा लड़कियोंको मैं अलगसे नहीं लिख रहा हूँ।

सबको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/३) से।

१. नवमल्लिका
२. जयसुखलाल गांधीके भाई

४२०. पत्र : माणेकलाल और राधा कोठारीको

सेगाँव, वर्धा
१७ नवम्बर, १९३९

चि० माणेकलाल[1] और चि० राधा,[2]

तुम दोनोंके पत्र मिले। ईश्वर करे तुम्हारा नया वर्ष[3] सुखपूर्ण हो।

बापू और बा के आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/३) से।

४२१. पत्र : शारदाबहन गो० चोखावालाको

सेगाँव, वर्धा
१७ नवम्बर, १९३९

चि० बबुडी,

तेरा यह कैसा पत्र है! तुझे यह क्यों लगता है कि तू मुझसे दूर होती जा रही है? मुझे विस्तारपूर्वक लिख। तूने मुझे चिन्तामें डाल दिया है। तुझसे तो मैंने बड़ी आशाएँ लगा रखी हैं। मुझे निराश मत करना। हम कल प्रयाग जा रहे हैं। प्यारेलालको यहीं छोड़ रहा हूँ। आश्रममें मैंने एक कुष्ठ-रोगी रखा है। उनका नाम परचुरे शास्त्री[4] है। उम्मीद है कि हम २३ तारीखको वापस लौट आयेंगे। आशा है, तेरा काम ठीक चल रहा होगा। मुझे तुरन्त उत्तर देना।

तुम दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००१८) से, सौजन्य शारदाबहन गो० चोखावाला

१. गांधीजी के सबसे बड़े भाई लक्ष्मीदास गांधीके दामाद माणेकलाल कोठारी

२. माणेकलाल कोठारीकी पत्नी

३. विक्रम सम्वत्के अनुसार दिवालीके बादका दिन (कातिक सुदी १) नव वर्ष के रूपमें मनाया जाता है। १९३९ में नव वर्ष १२ नवम्बरको पड़ा था।

४. अपनी पुस्तक बापूकी छायामें (पृ० १६८) पर बलवन्तसिंह लिखते हैं: परचुरे शास्त्री "आकर खड़े हो गये और बापूजी से कहने लगे, मुझे तो आपके सान्निध्यमें रहना है और यहीं मरना है। . . . बापूजी गम्भीर विचारमें पड़ गये। . . . बस, बापूजी ने उन्हें आश्रममें रखने का निश्चय कर लिया। . . . जब उनका रोग भयानक स्थितिमें पहुँचा तो बापूजी ने स्वयं ही उनकी मालिश करना भी शुरू कर दिया।" ५ सितम्बर, १९४५ को परचुरे शास्त्रीकी मृत्यु हो गई।

४२२. मुहम्मद यूनुसको लिखे पत्रका अंश

१८ नवम्बर, १९३९

यदि तुम मेरी बातका विश्वास न करो तो मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिला सकता हूँ कि सब प्रश्नोंसे महत्त्वपूर्ण इस प्रश्नकी ओर मेरा ध्यान निरन्तर लगा हुआ है। किन्तु मनुष्य तो केवल मंसूबे ही बाँध सकता है, उनको पार लगाना तो भगवान्‌के ही हाथोंमें है। जिनका भगवान्‌ने योग जुटाया है उन्हें कोई भी स्थायी रूपसे अलग नहीं कर सकता।[1]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य: नारायण देसाई

४२३. पत्र: पी० कोदण्डरावको

रेलगाड़ीमें
[१८][2] नवम्बर, १९३९

प्रिय कोदण्डराव,

तुम्हारा तर्क तो काफी अच्छा है, किन्तु मुझे बताओ कि आज राष्ट्र-संघ[3] है कौन? स्थिति चक्करमें डालनेवाली है, लेकिन साथ ही अत्यन्त दिलचस्प भी। मुझे उम्मीद है कि इस मर्मस्पर्शी नाटकमें हमारा देश महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२८३) से।

१. देखिए पृ० २८० भी।

२. तथापि साधन-सूत्रमें "१० नवम्बर" की तारीख दी गई है। इस दिन गांधीजी इलाहाबाद जा रहे थे।

३. सितम्बर १९३९ में युद्ध भड़क उठने पर यद्यपि राष्ट्र-संघ (लीग ऑफ नेशन्स) की सभी गतिविधियाँ बन्द हो गई थीं, तथापि अप्रैल १९४६ तक उसका अस्तित्व कायम रहा।

४२४. पत्र : अमृतकौरको

इटारसी
१८ नवम्बर, १९३९

प्रिय पगली,

हमें यहाँ पाँच घंटे गाड़ीकी प्रतीक्षा करनी है। राजाजी और जयरामदास हमारे साथ हैं। शिमलासे भेजा तुम्हारा तार मिल गया था। तुम्हारा व्यवहार असाधारण रूपसे अच्छा रहा है। आशा है, तुम्हारे स्वास्थ्यमें निरन्तर सुधार होता जायेगा। तुम्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए और अपना सारा ध्यान स्वस्थ और सशक्त बनने पर लगाना चाहिए।

इलाहाबादसे सेगाँवके लिए मंगलवारको रवाना होनेकी आशा रखता हूँ, किन्तु शायद ऐसा न बन पड़े। तब मैं बुधवारको निकलूँगा। मेरा मन सेगाँवमें है — विशेष रूपसे जबसे परचुरे शास्त्री आये हैं। वे तो मेरे लिए भगवान्‌की देन हैं। लेकिन यह मेरे लिए एक कसौटी भी है।[1]

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४७) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२५६ से भी

४२५. पत्र : जयकृष्ण प्र० भणसालीको

इटारसी
१८ नवम्बर, १९३९

चि० भणसाली,

नयन तुम्हारे पत्रकी आस लगाये हुए हैं। उसे सन्तुष्ट करना तुम्हारा धर्म है, क्योंकि यह अहिंसा है। सम्बन्धियोंके साथ हम निजी सम्बन्ध भले ही न रखें, लेकिन उनके मनको दुःखाना भी तो नहीं चाहिए। जब सम्बन्धियोंका दायरा अधिक विस्तृत हो जाये, तब हमें सबके प्रति तटस्थ दृष्टिकोण अपना लेना चाहिए और

१. देखिए पृ० ४०३, पाद-टिप्पणी ४।

उनसे सेवा करने-भरका सम्बन्ध रखना चाहिए। तुम जो मेहनत कर रहे हो वह अपने स्वास्थ्यको बनाये रखकर करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३) से।

४२६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

इटारसी
१८ नवम्बर, १९३९

चि० कृष्णचद्र,

तुमारी प्रगति देखकर मुझे सतोष होता है। बढ़ते रहो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३१) से।

४२७. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

चलती रेलगाड़ीमें
१८ नवम्बर, १९३९

भाई डाह्याभाई,

तुम्हारा पत्र मिला था। उम्मीद है, तुम्हारी गाड़ी ठीक चल रही होगी।

बापूके आशीर्वाद

श्री डाह्याभाई मनोरदास पटेल
धोलका

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २७११) से, सौजन्य डाह्याभाई म० पटेल

४२८. एक ही रास्ता

पण्डित जवाहरलाल नेहरूने मुझे यह दायित्व सौंपा है कि अन्य चीजोंके साथ-साथ मैं संविधान-सभाके फलितार्थोंका भी अध्ययन करूँ। जब उन्होंने कांग्रेस-प्रस्तावोंमें इसे[1] पहले-पहल दाखिल किया तो उसके सम्बन्धमें मैंने यह सोचकर अपने मनको मना लिया था कि लोकतन्त्रकी बारीकियोंका उन्हें बेहतर ज्ञान है। लेकिन मेरा मन संशय-मुक्त नहीं था। मगर घटना-चक्रने मुझे पूरी तरहसे उसका कायल कर दिया है और उसी वजहसे शायद मैं इसके प्रति खुद जवाहरलालसे भी ज्यादा उत्साहशील हो गया हूँ। कारण, जनसाधारणके राजनीतिक तथा अन्य प्रकारके शिक्षणका वाहन होने के अतिरिक्त उसमें मुझे साम्प्रदायिकता तथा हमारे अन्य रोगोका उपचार भी दिखाई देता है, जो हो सकता है, जवाहरलालको शायद न दिखाई देता हो।

उस योजनाकी जितनी अधिक आलोचना मैं देखता हूँ, मैं उसपर उतना ही अधिक मुग्ध होता जाता हूँ। वह जन-भावनाकी सबसे अचूक सूचक होगी। उससे हमारी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ खुलकर सामने आ जायेंगी। अशिक्षाकी मुझे चिन्ता नहीं है। मैं तो पुरुषों और स्त्रियों, दोनोंके लिए आँख मूंदकर विशुद्ध वयस्क मताधिकारकी व्यवस्था कर दूंगा, अर्थात् उन सबके नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज कर दूँगा। उन्हें आजादी होगी कि यदि वे अपने उस अधिकारका उपयोग न करना चाहें, तो न करें। मुसलमानोको मैं पृथक् निर्वाचक-मण्डल दूंगा, लेकिन अगर आवश्यकता हुई तो पृथक् निर्वाचक-मण्डल दिये बिना हरएक वास्तविक अल्पसख्यक समुदायको उसकी सख्याके अनुसार सुरक्षित स्थान दूँगा, हालाँकि ऐसा मैं अनिच्छासे ही करूँगा।

इस प्रकार संविधान-सभा साम्प्रदायिक समस्याका न्यायसम्मत समाधान ढूंढने का सबसे आसान तरीका प्रस्तुत करती है। आज हम ठीक-ठीक यह नहीं कह सकते कि कौन किसका प्रतिनिधित्व करता है। काग्रेस निर्विवाद रूपसे व्यापकतम पैमानेपर देशकी सबसे पुरानी प्रातिनिधिक सस्था है, तथापि अन्य राजनीतिक और अर्ध-राजनीतिक सस्थाएँ आज उसके प्रबल प्रातिनिधिक स्वरूपपर प्रश्न-चिह्न लगा सकती है और लगाती भी है। मुस्लिम लीग, निस्सन्देह, मुसलमानोंकी सबसे बड़ी प्रातिनिधिक संस्था है, मगर कई मुस्लिम संस्थाएँ, जो किसी तरह नगण्य नहीं हैं, उसके इस दावेसे इन्कार करती है कि वह उनका प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन सविधान-सभा तो सभी समुदायोंका उनके ठीक अनुपातमें प्रतिनिधित्व करेगी। उसके अतिरिक्त परस्पर विरोधी दावोंके साथ पूर्ण न्याय करने का और कोई उपाय नही है। उसके बिना साम्प्रदायिक तथा अन्य दावोंका अन्तिम निबटारा नहीं हो सकता।

१ १४ सितम्बर, १९३९ को कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें; देखिए परिशिष्ट १०।

और सिर्फ संविधान-सभा ही ऐसा संविधान बना सकती है जो देशी हो और जो ठीक-ठीक और पूरी तरहसे जनेच्छाका प्रतिनिधित्व कर सके। निस्सन्देह, वह संविधान कोई आदर्श संविधान नही होगा। सिद्धान्तवादियों या कानूनके विद्वानोंके हिसाबसे वह चाहे कितना ही अपूर्ण हो, लेकिन वह वास्तविक होगा। स्वराज्य स्वराज्य हो, इसके लिए केवल इतना ही जरूरी है कि वह उस जनताके मतको प्रतिबिम्बित करे जिसे अपने ऊपर आप शासन करना है। अगर जनता ऐसे स्व-सचालित तन्त्रके लिए तैयार न हो तो वह स्वराज्यको छिन्न-भिन्न कर डालेगी। मै इस सम्भावनाकी कल्पना कर सकता हूँ कि जनता आरम्भमें बहुत-से गलत प्रयोग करे, और ये गलतियाँ करते हुए अन्तमें अपनेको उचित सरकारके योग्य बना ले; लेकिन जिस प्रकार कौआ मोरके चमकदार पंख लगाकर भी मोर-जैसी सुन्दर चाल नही चल सका उसी प्रकार मै इस सम्भावनाकी भी कल्पना नही कर सकता कि जनता बाहरसे थोपी गई सरकारके द्वारा अपने ऊपर ठीक शासन कर सकेगी। रुग्ण व्यक्ति अपने निजी प्रयत्नसे स्वस्थ हो सकता है, लेकिन वह दूसरोंसे स्वास्थ्य उधार नही ले सकता।

इस प्रयोगमें खतरे हैं, यह निर्विवाद है। जाली मतदाताओं द्वारा मतदान किये जाने की सम्भावना है। गलत ढंगके व्यक्ति अनपढ़ जनताको, गलत पुरुषों और स्त्रियोको मत देने के लिए गलत रास्तेपर ले जाने की कोशिश करेंगे। अगर हमें किसी असली और बड़ी चीजका निर्माण करना है तो इन खतरोंको तो उठाना ही पड़ेगा। अगर हमारे और ब्रिटिश जनताके बीच हुए सम्मानपूर्ण समझौतेके फल-स्वरूप संविधान-सभा जन्म लेती है — और मुझे उम्मीद है कि वह जन्म लेगी — तो दो राष्ट्रोके सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति मिलकर अपनी बुद्धिसे एक ऐसी संविधान-सभाका सृजन करेंगे जो भारतके श्रेष्ठ मानसको काफी सचाईके साथ प्रतिबिम्बित करेगी। इसलिए भारतके इतिहासकी वर्त्तमान अवस्थामें इस प्रयोगकी सफलता ब्रिटिश राजनीतिज्ञोकी इस इच्छापर निर्भर है कि भारतको भयंकर अव्यवस्थित विद्रोहके मार्गपर प्रवृत्त किये बिना वे हमें सत्ता दे दें, क्योंकि मै जानता हूँ कि भारत अब अधीर हो उठा है। मुझे इस बातका दुःखद भान है कि भारत अभी बड़े पैमानेपर अहिंसात्मक सविनय अवज्ञाके लिए तैयार नही है। इसलिए अगर मै कांग्रेसको उस समयतक प्रतीक्षा करते रहने के लिए राजी नहीं कर सकता जब कि अहिंसात्मक युद्ध किया जाना सम्भव हो सके, तो दो जातियोमें विनाशकारी गृहयुद्ध देखने के लिए जीवित रहने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि अगर मैं कांग्रेसके सन्तोष लायक अहिंसात्मक क्रियाशीलता या निष्क्रियताका कोई तरीका न निकाल सका और साम्प्रदायिक समझौता न हुआ, तो संसारकी कोई भी शक्ति हिंसाके विस्फोटको नही रोक सकती, जिसका परिणाम कुछ समयके लिए अराजकता और महाविनाश होगा। मेरी राय है कि सभी कौमों और अंग्रेजोंका यह फर्ज है कि वे उस महा विपत्तिको रोकें।

कठिनाईसे बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता संविधान-सभा ही है। अपनी राय मैंने उसपर दे दी है; लेकिन उसकी तफसीलसे मै बँधा हुआ नही हूँ। इस लेखको

मै लगभग समाप्त कर चुका था कि तभी सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवीका[1] नीचे लिखा तार मिला :

> **संविधान-सभाके बारेमें अल्पसंख्यकोंमें काफी भ्रम फैला हुआ है। मेरा उत्कट आग्रह है कि आप उसकी तफसील, मताधिकार, रचना, निर्णय करने के तरीके स्पष्ट कर दें।**

मेरा विचार है कि सैयद साहबके सवालका जवाब देने के लिए ऊपर मैंने काफी लिख दिया है। अल्पसंख्यकोसे उनका आशय मुख्यत उन मुसलमानोंसे है जिनका प्रतिनिधित्व मुस्लिम लीग करती है। अगर एक बार यह बात स्वीकार कर ली जाये कि सब जातियाँ किसी सविधान-सभा द्वारा बनाया गया स्वतन्त्रताका अधिकार-पत्र चाहती है और उसके सिवा दूसरी किसी भी चीजसे उन्हें सन्तोष न होगा, तो तफसीले तय करना तो निश्चय ही बहुत आसान हो जायेगा। किसी भी अन्य तरीकेका परिणाम तो थोपा हुआ सविधान निकलेगा, जो मुख्यत: अलोकतान्त्रिक होगा। उसका अर्थ होगा उस साम्राज्यवादी शासनको अनिश्चित कालतक के लिए बढा देना जो उन लोगोकी मददसे चलेगा जिन्हे संविधान-सभाका पूर्ण लोक-तान्त्रिक तरीका मान्य नही होगा।

मुख्य रुकावट तो निस्सन्देह ब्रिटिश सरकार है। अगर वह एक गोलमेज सम्मेलन बुला सकती है, जिसे लडाईके बाद बुलाने का उसका इरादा है, तो वह निश्चय ही इस शर्तके साथ सविधान-सभा भी बुला सकती है कि अल्पसंख्यकोंको ऐसा सरक्षण दिया जायेगा जो उनके लिए सन्तोषजनक हो। 'अल्पसख्यकों के लिए सन्तोषजनक', इन शब्दोको शायद अस्पष्ट समझा जाये। लेकिन पारस्परिक सहमतिसे उसकी व्याख्या पहले ही की जा सकती है। इसलिए प्रश्न यह रह जाता है कि क्या ब्रिटिश सरकार सत्ताका त्याग करना और अपने इतिहासमें एक नया अध्याय प्रारम्भ करना चाहती है। मै पहले ही दिखा चुका हूँ[2] कि देशी नरेशोका सवाल रास्तेमें नाहक ला खडा किया गया है। यूरोपीयोंके हित तबतक सर्वथा सुरक्षित है, जबतक कि 'भारतीय हितो' से उनका विरोध नही है। मै समझता हूँ कि ये शब्द अर्विन-गाधी समझौतेमें[3] भी है।

इस प्रश्नको आप जिस दृष्टिसे भी देखें, पता यह चलेगा कि लोकतान्त्रिक स्वराज्यका मार्ग केवल बाकायदा सगठित प्रतिनिधि-सभासे होकर ही गुजरता है, चाहे उस सभाको आप कोई भी सज्ञा दे लें। इसलिए सीधी कार्रवाई करने का विचार करने से पहले सविधान-सभाके लिए सारा प्रयत्न कर लिया जाना चाहिए।

१. बॉम्बे क्रॉनिकलके सम्पादक

२. देखिए पृ० ३७०-७१।

३. ५ मार्च, १९३१ का; देखिए खण्ड ४५, परिशिष्ट ६।

वह स्थिति भी आ सकती है जब सीधी कार्रवाई संविधान-सभाकी एक आवश्यक प्रस्तावना हो जाये। वह स्थिति अभी नहीं आई है।

इलाहाबाद, १९ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-११-१९३९

४२९. भाषण : कमला नेहरू स्मारक अस्पताल, इलाहाबादमें[1]

१९ नवम्बर, १९३९

आफ्रिकासे लौटने के बाद मैं जिन लोगोंके सम्पर्कमें आया उनमें से एक कमला नेहरू भी थी। वे असाधारण व्यक्ति थीं। अधिकतर भारतीय महिलाओंके समान उनके मनमें अपने पतिके प्रति अगाध प्रेम और श्रद्धा तो थी ही; साथ ही, उन्हें देशसे भी बहुत प्रेम था और उनका वह प्रेम महान् था। उनके आदर्श बहुत ऊँचे थे और सिद्धान्तके प्रश्नपर मतभेद होता तो उसे प्रकट करनेकी उनमें पर्याप्त निर्भीकता थी। उनकी आत्मा महान् थी और वे जो-कुछ भी करती थीं, वह आडम्बर या लाभ या पक्षपातसे प्रेरित होकर नहीं करती थीं।

कांग्रेसजनोंके बारेमें लोगोंके मनमें यह धारणा घर कर गई है कि वे केवल आन्दोलन करते हैं और कोई रचनात्मक कार्य करने के योग्य नहीं हैं। किन्तु अब इन लोगोंकी धारणा बदलती जा रही है। सविनय अवज्ञा आन्दोलनके समय कमला दुःखियोंके कष्टसे बहुत दुःखी हुई थी। तभी उन्होंने कांग्रेस अस्पतालमें सक्रिय दिलचस्पी लेनी शुरू की, जो तब खोला ही गया था। कमलासे मेरी अन्तिम मुलाकात[2] बम्बईमें उस समय हुई जब वे इलाजके लिए यूरोप रवाना हो रही थीं। तब उन्होंने मुझसे कहा कि शायद वे अब वापस न लौटें और मैं इस बातका ध्यान रखूँ कि अस्पतालका काम चालू रहे। मैंने वचन दिया कि मैं इसका ध्यान रखूँगा। यह मेरा पवित्र कर्त्तव्य है और मैं इलाहाबाद विशेष रूपसे इसीके लिए आया हूँ। इस कार्यको सम्पन्न करने के बाद मैं कल वापस चला जाता, किन्तु पण्डित जवाहरलाल नेहरूका आग्रह है कि मैं यहाँ कुछ समय और रहूँ।

इस अस्पतालके लिए चन्देकी अपीलपर मैंने हस्ताक्षर किये हैं। अपील पाँच लाखके लिए है। इस राशिका अभी केवल आधा ही इकट्ठा हुआ है। मैं आशा करता हूँ, आप सभी इस कोषके लिए धन देंगे। यह अस्पताल केवल संयुक्त प्रान्तके

१. अस्पतालके भवनका शिलान्यास करने के बाद गांधीजी हिन्दीमें बोले, किन्तु भाषणका पूर्णतर विवरण अंग्रेजीमें उपलब्ध होने के कारण उसीसे अनुवाद किया गया है। गांधीजी ने अस्पतालके एक न्यासी मदनमोहन मालवीयका सन्देश भी पढ़कर सुनाया।

२. २२ मई, १९३५ को; २८ फरवरी, १९३६ को जिनेवामें कमला नेहरूकी मृत्यु हो गई।

लिए नहीं, बल्कि सारे भारतके लिए है। अब हमें सारे भारतको दृष्टिमें रखकर सोचना चाहिए। संयुक्त प्रान्तमें कितने ही विश्वविद्यालय और कितने ही विद्यार्थी हैं। मैं आशा करता हूँ कि कोष एकत्र करने में वे सब सहायता देंगे। और फिर कानपुरमें इतने सारे उद्योगपति हैं। आप लोगोंको इतना धन इकट्ठा करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अन्तमें मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि वह कमलाकी आत्माको शान्ति प्रदान करे।[1]

[अंग्रेजीसे]
हिन्दुस्तान टाइम्स, २०-११-१९३९

४३०. राजकोट सुधार

राजकोटके ठाकुर साहब और दरबार श्री वीरावालाको अनजाने ही सही, एकबार दुःखी कर देने के बादसे मैंने राजकोट रियासतमें दरबारकी कार्रवाइयोंकी आलोचनाके रूपमें कुछ भी कहने से अपनेको रोक रखा है।[2] लेकिन राजकोटकी जनताके प्रति, जिसने अनुकरणीय अनुशासनका परिचय दिया है, मेरा कर्त्तव्य है कि अभी हालमें जिन सुधारोंकी घोषणा की गई है उनपर कुछ कहूँ। वे लोग मुझसे आशा करते हैं कि मैं उनके बारेमें अपनी राय दूँ। यह कहते हुए मुझे दुःख होता है कि स्वर्गीय ठाकुर साहबने जो-कुछ किया था, उस सबपर इन्होंने पानी फेर दिया है। स्वर्गीय ठाकुर साहबका आशीर्वाद-रूप वयस्क-मताधिकार, जो १५ बरसतक कायम रहा, समाप्त कर दिया है, और उसके लिए जायदाद और अधिवासकी कड़ी शर्तें लगा दी गई हैं। निर्वाचित सभापतिका स्थान दीवानको स्थायी सभापतिके रूपमें दे दिया गया है। पहले की सभामें जहाँ सभी निर्वाचित प्रतिनिधि ही हुआ करते थे, वहाँ अब उसमें ४० निर्वाचित सदस्योंके मुकाबले २० नामजद सदस्य होंगे। फिर, निर्वाचित सदस्य विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायोंके प्रतिनिधियोंके रूपमें बँटे हुए होंगे। इस तरह तथाकथित बहुसंख्या वास्तवमें अल्पसंख्यामें बदल जायेगी। सुधारोंका स्वाभाविक परिणाम होता है लोक-नियन्त्रणकी उत्तरोत्तर वृद्धि। पर यहाँ रंचमात्र औचित्यके बिना लोकनियन्त्रणको बहुत कम कर दिया गया है। मूल सभाको कानून बनाने के व्यापक अधिकार थे। उनको सीमित कर दिया गया है।

पहले एक निश्चित घोषणा की गई थी कि राजा के निजी खर्चकी राशि तय कर दी जायेगी। सुधारोंमें उस घोषणाकी उपेक्षा की गई है। गत २६ दिसम्बरकी अधिसूचना जनताके हाथोंमें 'यथासम्भव अधिकसे-अधिक अधिकार' देने की थी। इन सुधारोंके अध्ययनसे मैं तो इसी निष्कर्षपर पहुँचता हूँ कि जो अधिकार जनताको पहले

१. देखिए पृ० ४१३ भी।
२. यहाँ गांधीजी का अभिप्राय ३ मार्चसे किये गये चार दिनके अपने उपवास से है, जिसे उन्होंने वाइसरायके हस्तक्षेपपर तोड़ दिया था; देखिए खण्ड ६९।

मिले हुए थे, वे छीने ही नही गये हैं, बल्कि उन्हें यथासम्भव अधिकसे-अधिक सीमित भी कर दिया गया है। संक्षेपमें कहें तो ठाकुर साहब, यानी दीवानकी इच्छा ही राजकोटमें सबसे बडा कानून होगी।

मुझे दु:ख है कि ये पक्तियाँ मुझे लिखनी पड़ रही हैं। मै नही जानता कि क्या ये सुधार उस दु:खान्त नाटकके अन्तिम दृश्य होंगे जिसके लिए मेरी हिंसा जिम्मेदार है। उपवास तो एक ऐसी ओषधि है जिसका प्रयोग विशेषज्ञ ही कर सकता है। वह किसी आन्दोलनकी सहज गतिमें बाधा डालता है तो भलाईके लिए। हिंसाका लेश भी उसे क्षति पहुँचाता है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि जब उपवास चल रहा था उस समय ठाकुर साहबके कामोंके विरुद्ध वाइसरायसे की गई मेरी अपील हिंसा थी और उसने अनशनको दूषित कर दिया। मैंने सोचा था कि मैंने पश्चात्ताप करके उसका मूल्य चुका दिया है और ठाकुर साहब, दरबार श्री वीरावाला और मेरे बीच जो शुभ सम्बन्ध कायम हुए हैं, वे राजकोटकी जनताके लिए एक नवीन और उज्ज्वल अध्यायका आरम्भ करेंगे। मेरे सार्वजनिक पश्चात्तापके बाद मेरे सम्मानमें जो दरबार आयोजित किया गया था, उससे उस पश्चात्तापके शुभ परिणामपर अन्तिम मुहर लग गई प्रतीत हुई थी। मै देखता हूँ कि वह मेरी भूल थी। मनुष्यका स्वभाव क्षण-भरमें नही बदल जाता। राजकोटकी जनतासे मैं क्षमा माँगता हूँ।

लेकिन अपने पश्चात्तापपर मुझे दु:ख नही है। मुझे पूरा यकीन है कि जो नैतिक रूपसे ठीक था, वह राजनीतिक रूपसे भी ठीक था। मेरे पश्चात्तापने राजकोट की जनताको और भी बड़े दुर्भाग्यसे बचा लिया है। उसने साम्प्रदायिक संघर्षको टाल दिया। मुझे पूरा विश्वास है कि अन्ततः राजकोटकी प्रजाको अपना प्राप्य मिल-कर रहेगा। इस बीच इन सुधारोको, जो मेरी रायमें अनिष्ट-रूप हैं, अपना क्षय स्वय करने के लिए छोड़ देना चाहिए। राजकोटके जिन नागरिकोंमें आत्म-सम्मानकी कोई भावना है, उन्हें इन सुधारोंके अमलमें सहयोग देने से दूर रहना चाहिए। मेरी राय यदि वे मानते हैं तो वे धीरजके साथ प्रतीक्षा करे और देखें, प्रार्थना करे और सचमुच सूत कातें। यदि वे ऐसा करेंगे तो देखेंगे कि वे अहिंसाके एकमात्र सच्चे तरीकेसे राजकोटके स्वतन्त्रता-रूपी सूतको भी कातनेवाले साबित हुए हैं।

इलाहाबाद, २० नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-११-१९३९

४३१. टिप्पणियाँ

कमला नेहरू स्मारक

गत १९ तारीखको इलाहाबादमें मुझे एक विशाल जन-समुदायके सामने कमला नेहरू स्मारक अस्पतालकी आधार-शिला रखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।[1] यह अस्पताल एक सच्ची देशसेविका और महान् आध्यात्मिक सौन्दर्यसे युक्त महिलाका न केवल उपयुक्त स्मारक होगा, बल्कि उससे उन्हे दिये हुए मेरे इस वचनकी पूर्ति भी होगी कि उनकी मृत्युके बाद भी मै यथाशक्ति इस बातका प्रयत्न करता रहूँगा कि जिस कामकी जिम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ले रखी थी वह ठीक तरहसे चलता रहे। वे अपने स्वास्थ्यकी खोजमें यूरोप जा रही थीं। पर वह यात्रा मृत्युकी खोज साबित हुई। जाते वक्त उन्होने मुझे लिखा था कि मैं या तो बम्बईके रास्तेमें उनसे मिलकर थोडी देर बातचीत कर लूँ या उनसे मिलने सीधे बम्बई पहुँच जाऊँ। मै बम्बई गया। उन्हें जो थोडा-सा वक्त मै दे सका, उस बीच उन्होने मुझसे कहा, अगर मेरा शरीर यूरोपमें छूट जाये, तो जवाहरलालने स्वराज्य-भवनमें जो अस्पताल खोला है और जिसे कायम रखने के लिए उन्होंने [कमला नेहरूने] इतना परिश्रम किया है, उसे पक्की नीवपर खड़ा करने का मैं प्रयत्न करूँ। मैंने उनसे कहा कि मुझसे जो-कुछ हो सकेगा, वह जरूर करूँगा। इस स्मारक-कोषके लिए जो अपील निकाली गई थी और जिसमें मै सम्मिलित था उसका आधार अशत. मेरा यह वचन भी था। परिस्थितियोंसे विवश होकर धन-सग्रहके काममें मैं अधिक सक्रिय भाग नही ले सका। अपील पाँच लाखके लिए की गई थी, पर आधी रकम ही आई है। स्मारकका शिलान्यास करते समय मैंने उपस्थित विराट् जन-समूहसे, जिसमें अमीर और गरीब, दोनों शामिल थे, अपील की कि जो कमी रह गई है उसे पूरा करने में वे योग दें। इतने अच्छे कार्य और एक ऐसे व्यक्तिकी पुण्य-स्मृतिकी खातिर इतना धन सुचारु संगठनके जरिये एकत्र हो जाना सरल होना चाहिए। न्यासियोंमें जीवराज मेहता और विधानचन्द्र राय-जैसे भारत-विख्यात सुयोग्य डाक्टर है। अस्पतालको ठीक तरहसे बनवाने और उसके सगठन और प्रबन्धकी जिम्मेवारी उन्होंने ले ली है। मुझे आशा है कि न केवल यह आर्थिक कमी ही जल्द पूरी हो जायेगी, बल्कि अस्पतालके उचित इन्तजामके लिए उपयुक्त कर्मचारी जुटानेमें भी डाक्टरोको कोई कठिनाई नहीं होगी।

फिर याद दिला दूँ

नारणदास गांधीने मुझसे कहा है कि मैं पाठकोको फिरसे याद दिला दूँ कि 'रेंटिया जयन्ती' के अवसरपर कताई-यज्ञमें जो लोग भाग लेना चाहते है वे अपने

१. देखिए पृ० ४१०-११।

नाम तुरन्त भेज दें। यह यज्ञ गत ११ अक्तूबरसे आरम्भ हो गया है। जिन्होंने अपने नाम अभीतक नहीं भेजे हैं वे पहले ही पिछड़ गये हैं। लेकिन देर आयद दुरुस्त आयद। जो लोग पिछड़ गये हैं वे नित्यके लिए निर्धारित मात्रासे ज्यादा सूत कातकर पिछली कमीको पूरा कर सकते हैं। नारणदास गांधीने खादी-कार्यके इस क्षेत्रमें विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है। उन्हें आँकड़ोंका काम बड़ा प्रिय है और इसमें उनकी बड़ी अच्छी गति है। यज्ञ-भावसे कताई करनेवालों के नाम और पतोंका ठीक ब्योरा और उनके द्वारा काते गये सूतकी मात्राका लेखा-जोखा रखने के काममें उन्हें किसी तरहकी ऊब या थकान नहीं होती। इसके विपरीत, उन्हें इस कार्यमें आनन्द आता है। वे तरतीबसे काम करने में विश्वास रखते हैं। उनका विचार है कि ऐसे रजिस्टर रखने से वह काम सुव्यवस्थित हो जाता है जिसके बारेमें रजिस्टर रखा जाता है, साथ ही उससे काम करनेवालों को प्रोत्साहन मिलता है। यदि काफी बड़ी संख्यामें लोग यज्ञकी भावनासे कताई करें, तो वे खादीकी कीमतको कम करने में काफी मदद कर सकते हैं। यह योजना बड़ी सम्भावनाओंसे युक्त है। अतः मैं आशा करता हूँ कि लोग इसका उचित उत्तर देंगे।

एक अच्छा सुझाव

एक खादी-प्रेमी लिखते हैं:

> अब चूंकि तथाकथित कांग्रेसी प्रान्तोंमें मन्त्रियोंने इस्तीफा दे दिया है, अतः यदि वे फेरी लगाकर या अन्य प्रकारसे खादी बेचने का काम करें तो क्या यह अत्यन्त उपयोगी नहीं होगा? खादी कांग्रेस-कार्यक्रमकी जान है। खादी-कार्यमें हजारों कांग्रेसजन जिस तरह उपयोगी ढंगसे अपनी शक्ति लगा सकते हैं उस तरह किसी और काममें नहीं। क्या आप मेरा यह विनम्र सुझाव विशेष रूपसे भूतपूर्व मन्त्रियों और सामान्य रूपसे सभी कांग्रेसजनोंके सामने रखने की कृपा नहीं करेंगे? प्रत्येक प्रान्तमें खादीका फालतू स्टाक जमा है। नतीजा यह है कि कताईमें कटौती की जा रही है। ऐसा नहीं होना चाहिए।

मैं इस खादी-प्रेमीकी हर बातका अनुमोदन करता हूँ। कांग्रेसजनोंको इस बातका प्रयत्न करना अपना कर्त्तव्य बना लेना चाहिए कि सारी बची हुई खादी अविलम्ब बिक जाये।

इलाहाबाद, २० नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-११-१९३९

४३२. पत्र: शमशेरसिंहको

२० नवम्बर, १९३९

प्रिय शम्मी,

बेचारी अमृतपर तरस खाओ। उसको मेरे पास आत्म-सन्तोष प्राप्त होता है। उसको वह मिला है जिसकी उसे बरसोंसे लालसा थी। उसके मामलेमें यह सवाल नही है कि मुझे उससे किस तरहकी सेवाकी अपेक्षा है, बल्कि यह कि वह मेरी यानी मेरे उद्देश्यकी किस प्रकारसे सेवा कर सकती है। वह मेरे निकट रहना चाहती है। उसे इसीमें उल्लास और सान्त्वना मिलती है कि मेरे सान्निध्यमें रहे, मेरे लिए कुछ कर सके। उसका विरोध करना तो निष्ठुरता है। अपनेको बेहतर और मानव-जातिकी सेवाके लिए योग्य बनानेकी उसकी इच्छापर तुम्हें उससे नाराज नहीं होना चाहिए। तुम्हें तो चाहिए कि उसे प्रोत्साहन दो और उसका मार्ग सुगम बनाओ। तुम्हारे प्रति उसका प्रेम विरल श्रद्धासे पूरित है। यदि तुम उसपर नाराज होते हो तो वह मानो जड हो जाती है और तुम्हें खुश देखकर वह आनन्दित हो उठती है। तुम उससे नाराज हो, इस कारण वह व्याकुल हो गई है। अपना क्रोध शान्त करके अपनी दिली रजामन्दीसे उसे सेगाँव आने दो। सेगाँवमें वह सचमुच स्वस्थ रहती है। वह खाना भी रुचिपूर्वक खाती है। स्वस्थसे-स्वस्थ लोग भी कभी-कभी बीमार पड ही सकते हैं। बहुत ज्यादा काम और चिन्तासे उसका शरीर दुर्बल हो गया है। थोड़ा-सा भी जोर पड़ते ही उस पर बुरा असर पड़ता है। वह अकारण ही असुविधाएँ उठाती रहतीं है। मैं उसके स्वास्थ्यका और भी ध्यान रखूंगा। देहसे तो आत्माका अधिक महत्त्व है न? और सेगाँवमें हमेशा उसकी आत्मा पनप उठती है। जबतक तुम्हारी जेब इजाजत दे, उसे यात्राएँ करने दो। उसको अनुभवका लाभ होता है। किन्तु यदि तुम नही चाहते तो वह यात्राएँ नही करेगी। मुझे तो अब तुम तारसे ही सूचित करो कि तुम्हारा मेल हो गया है और तुम अब उससे अप्रसन्न नहीं हो। इलाहाबादमें मेरे बुधवारतक रहनेकी सम्भावना है। मैं तुम्हारे तारकी प्रतीक्षा करूँगा, बशर्ते कि उसे भेजनेके पीछे तुम्हारा यह विश्वास हो कि मेरा कहा सही और उचित है।

तुम सबको स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य: नारायण देसाई

४३३. कांग्रेस कार्य-समितिका प्रस्ताव[1]

[२२ नवम्बर, १९३९][2]

यूरोपमें छिड़े युद्ध और भारतपर हुए उसके प्रभावके बारेमें कार्य-समिति द्वारा घोषित नीतिका[3] देशने जैसा स्वागत किया है उससे समितिको बहुत प्रसन्नता हुई है। कांग्रेसकी अनेक घोषणाओंपर आधारित इस नीतिका प्रतिपादन समिति द्वारा १४ सितम्बरको जारी किये गये एक वक्तव्यमें[4] किया गया था, और परवर्ती घटनाओंने उसमें निहित बुद्धिमानी और व्यवहार-नीतिको पर्याप्त रूपसे सिद्ध कर दिया है। जिस रीतिसे युद्ध चल रहा है और बरतानवी तथा फ्रान्सीसी सरकारें जिस नीतिका अनुसरण कर रही हैं उससे — विशेष रूपसे भारतके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारकी ओरसे की गई घोषणाओंसे — ऐसा प्रकट होता जान पड़ता है कि १९१४-१८ के विश्व-युद्धकी तरह यह लड़ाई भी साम्राज्यवादी उद्देश्योंसे चलाई जा रही है, और ब्रिटिश साम्राज्यवादके पैर भारतमें जमे ही रहनेवाले हैं। ऐसे युद्ध और ऐसी नीतिमें कांग्रेस शरीक नहीं हो सकती और इस प्रयोजनसे भारतकी साधन-सामग्रीके शोषणका वह समर्थन नहीं कर सकती।

कार्य-समितिकी स्पष्ट माँग थी कि ब्रिटिश सरकार लोकतन्त्र और साम्राज्यवाद के सम्बन्धमें अपने युद्ध-विषयक उद्देश्योंकी घोषणा करे और विशेष रूपसे यह बताये कि भारतके सन्दर्भमें इन उद्देश्योंको किस प्रकार लागू किया जाना है। ये उद्देश्य तो तभी योग्य माने जा सकते थे जब इनमें साम्राज्यवादकी समाप्ति और भारतके साथ एक ऐसे स्वतन्त्र राष्ट्रकी तरह व्यवहार करने की बातका समावेश होता जिसकी नीति उसकी जनताकी इच्छाके अनुसार चलने दी जाये। इस माँगका जो उत्तर दिया गया वह सर्वथा असन्तोषजनक रहा है, और ब्रिटिश सरकारकी ओरसे गलत-फहमियाँ पैदा करने और मुख्यतः नैतिक मुद्देको धूमिल बनाने की कोशिश की गई है। कार्य-समितिके प्रस्तावके अनुरूप घोषणा करने से इन्कारका औचित्य बताते हुए साम्प्रदायिक मतभेदकी दुहाई दी गई है और भारतकी स्वतन्त्रताके मार्गमें अल्प-संख्यकों तथा देशी नरेशोंके अधिकारोंके प्रश्नको बाधाकी तरह पेश किया गया है।

समिति पूरा जोर देकर यह घोषणा करना चाहती है कि कांग्रेसकी माँगकी स्वीकृतिके सन्दर्भमें साम्प्रदायिक प्रश्न उठता ही नहीं है, और अल्पसंख्यकोंका चाहे

१ और २. हिन्दुस्तान टाइम्समें दिनांक "इलाहाबाद २२ नवम्बर" के अन्तर्गत प्रकाशित रिपोर्टमें लिखा है: "कार्य-समितिने भारतके वर्तमान राजनीतिक संकटपर महात्मा गांधी द्वारा तैयार किये गये मसौदेपर आज सात घंटेतक चर्चा की।"

३. देखिए परिशिष्ट ८।

४. देखिए परिशिष्ट १०।

और जिस बातपर मतभेद हो वे भारतकी स्वतन्त्रता और स्वाधीनताके अधिकारका विरोध नहीं करते। देशी नरेशोंका प्रतिनिधित्व भारतमें अधीश्वरी सत्ता करती है और वे उसी सत्ताके प्रतीक हैं। अन्तमें इस बातका फैसला उन राज्योंके प्रजाजन करेंगे कि स्वतन्त्र भारतमें उनकी क्या भूमिका होगी, यद्यपि ब्रिटिश सरकार ऐसे मामलेमें निरन्तर उनकी इच्छाओंकी उपेक्षा करती रही है जिससे उनके हितोंका गहरा सम्बन्ध है। जो भी हो, जो लोग भारतकी स्वाधीनताका विरोध कर सकते हैं, उनकी इच्छाएँ ब्रिटिश सरकारके इरादोंकी घोषणाके सन्दर्भमें अप्रासंगिक हैं और होनी चाहिए। अप्रासंगिक प्रश्नोंकी आड लेकर युद्धके उद्देश्यों और भारतकी स्वतन्त्रता-सम्बन्धी घोषणाको टालनेके प्रयत्नका अर्थ समिति केवल यही लगा सकती है कि देशके प्रतिक्रियावादी तत्त्वोंसे साँठ-गाँठ करके ब्रिटिश सरकार इस देशपर अपना साम्राज्यवादी प्रभुत्व कायम रखना चाहती है।

कांग्रेसने युद्धके विषम प्रसंग और उससे उत्पन्न होनेवाली समस्याओंको तत्त्वत. एक नैतिक प्रश्न माना है, और सौदेबाजीकी किसी भावनासे उससे कोई लाभ उठाने की कोशिश नही की है। किसी भी दूसरे गौण प्रश्नपर विचार किया जाये, इससे पहले यह आवश्यक है कि युद्धके उद्देश्यो तथा भारतकी स्वतन्त्रता-सम्बन्धी नैतिक और सर्वोपरि मुद्देका निबटारा हो जाये।

जबतक लोक-प्रतिनिधियोको वास्तविक अधिकार नही दिये जाते तबतक कांग्रेस किसी भी हालतमें — यहाँतक कि सक्रमण-कालमें भी — सरकारका दायित्व अपने सिरपर नहीं ले सकती। इसलिए कार्य-समिति ३ नवम्बरको[1] कांग्रेस-अध्यक्ष द्वारा वाइसरायको भेजे गये उत्तरको सही मानती है और उसकी पुष्टि करती है।

समिति फिर घोषणा करती है कि ब्रिटेनकी नीतिमें से साम्राज्यवादका कलक मिटाने और कांग्रेसको आगे सहयोग करनेके प्रश्नपर विचार करनेका अवसर प्रदान करने के लिए भारतकी स्वाधीनता और एक सविधान-सभाके माध्यमसे अपना संविधान आप तैयार करनेके जनताके अधिकारकी स्वीकृति आवश्यक है। वह मानती है कि किसी स्वतन्त्र देशके संविधानकी रचना करनेका एकमात्र लोकतान्त्रिक तरीका संविधान-सभा ही है, और लोकतन्त्र तथा स्वतन्त्रतामें विश्वास रखनेवाला कोई भी व्यक्ति उस पर आपत्ति नहीं कर सकता। कार्य-समिति यह भी मानती है कि साम्प्रदायिक तथा अन्य समस्याओंका समाधान करनेवाला कार्यक्षम साधन भी केवल संविधान-सभा ही है। किन्तु इसका मतलब यह नही कि कार्य-समिति अन्य प्रकारसे साम्प्रदायिक समस्याका समाधान ढूंढने के अपने प्रयत्नमें शिथिलता आने देगी। यह सभा ऐसा सविधान तैयार कर सकती है जिसमें स्वीकृत अल्पसंख्यक समुदायोंके अधिकारोंको उनके लिए सन्तोषजनक रीतिसे सुरक्षित कर दिया जाये, और यदि अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंसे सम्बन्धित कुछ मामलोंपर पारस्परिक सहमति न हो पाये तो उन्हे पच-फैसलेके लिए सौंपा जा सकता है। संविधान-सभाका निर्वाचन वयस्क मताधिकारके आधारपर होना चाहिए, और जो अल्पसंख्यक समुदाय चाहें उनके लिए पृथक

१. साधन-सूत्रमें "४ नवम्बर" है; देखिए परिशिष्ट १९।

निर्वाचक-मण्डलकी वर्त्तमान व्यवस्था कायम रखी जाये। इस संविधान-सभामें इन सदस्योंकी संख्या सम्बन्धित अल्पसंख्यक समुदायोंके लोगोंके अनुपातमें होनी चाहिए।

ब्रिटिश सरकारकी ओरसे की गई घोषणाएँ[1] चूंकि अपर्याप्त थी, इसलिए कांग्रेसको ब्रिटेनकी नीति तथा युद्ध-प्रयत्नसे अपने-आपको अलग कर लेने पर विवश होना पड़ा, और असहयोगके प्रथम कदमके रूपमें उसे प्रान्तोंमें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोसे त्यागपत्र दिलवाने पड़े। जबतक ब्रिटिश सरकार अपनी नीतिमें परिवर्तन नही करती और कांग्रेसके दावेको स्वीकार नहीं करती तबतक असहयोगकी वह नीति कायम रहेगी, कायम रहनी चाहिए।

कार्य-समिति काग्रेसजनोंको याद दिलाना चाहेगी कि विरोधीके साथ सम्मानपूर्ण समझौता करने के लिए कुछ भी उठा न रखा जाये, यह बात हर प्रकारके सत्याग्रह के मूलमें सहज समाहित रहती है। अगर प्रसंग आ ही जाये तो अहिंसक लड़ाईके लिए सत्याग्रही सदा तैयार रहता है, किन्तु शान्तिके लिए अपने प्रयत्नमें वह कभी शिथिलता नही आने देता और हमेशा उसकी प्राप्तिके लिए काम करता है। इसलिए कार्य-समिति सम्मानजनक समझौतेकी प्राप्तिके उपाय ढूंढ़ती रहेगी, हालांकि ब्रिटिश सरकारने तो उसके लिए अपना दरवाजा बन्द कर लिया है। किन्तु जिस राहको भारतकी जनताने नही चुना है उसपर उसे बलात् चलाने के सभी प्रयत्नोंका और भारतकी गरिमा और स्वतन्त्रताके विरुद्ध पड़नेवाली हर चीजका कार्य-समिति कांग्रेस के अहिंसक तरीकोंसे विरोध करेगी।

सविनय अवज्ञा आवश्यक हो जाने पर उसे आरम्भ करने के लिए कांग्रेसजनों द्वारा दिखाई गई तत्परताकी कार्य-समिति कद्र करती है और उसपर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करती है। किन्तु जैसे कठोर अनुशासनकी आवश्यकता सशस्त्र संघर्षके लिए सगठित सेनाको होती है वैसा ही अनुशासन सविनय अवज्ञाके लिए भी अपेक्षित है। विनाशकर हथियारोंसे विहीन और उनके प्रयोगसे अनभिज्ञ सेना असहाय होती है; उसी प्रकार अहिंसक सिपाहियोंकी सेना यदि अहिंसाके आवश्यक तत्त्वोंको नही समझती और उनसे युक्त नही होती तो वह भी लाचार हो जाती है।

कार्य-समिति स्पष्ट कर देना चाहती है कि सविनय अवज्ञाकी तैयारीकी सच्ची कसौटी यह है कि कांग्रेसजन स्वयं कातें और मिलके कपड़ोंका इस्तेमाल छोड़कर खादी-कार्यको आगे बढायें, अन्य सम्प्रदायोंके लोगोकी व्यक्तिगत रूपसे सेवा करके विभिन्न सम्प्रदायोंके बीच मेल-जोल स्थापित करना अपना कर्त्तव्य मानें, और हिन्दू कांग्रेस-जन व्यक्तिशः हरिजनोंके साथ भ्रातृत्व-सम्बन्ध कायम करने के हर अवसरका लाभ उठाने को प्रयत्नशील रहें। इसलिए कांग्रेसके सभी संगठन और सभी सदस्य इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाकर भावी कार्रवाईकी तैयारी करें। वे लोगोंको संविधान-सभाके, जो कांग्रेसके भावी कार्यक्रमका केन्द्र-बिन्दु है, सन्देश, नीति और फलितार्थ समझायें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २-१२-१९३९

1. देखिए परिशिष्ट १२, १४, १६, १७ और १८।

४३४. प्रमाणपत्र : मुन्नीलालको

आनन्द भवन, इलाहाबाद
[२३ नवम्बर, १९३९][1]

भाई मुन्नीलालने बड़े भावसे अच्छी तरह मेरी हजामत की है। इनका अस्त्रा देहाती है और बगैर साबुनके हजामत करता है।

मो० क० गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४८४)से।

४३५. पत्र : सुभाषचन्द्र बोसको

आनन्द भवन, इलाहाबाद
२३ नवम्बर, १९३९

प्रिय सुभाष,

मुझे आज ही क्षण-भरका अवकाश मिला है कि मैं पत्र लिखकर तुम्हें यह बता सकूँ कि मुझे तुम्हारा पत्र तथा तार मिल गये थे। जैसाकि तुम जानते हो, मैं कार्य-समितिकी बैठकमें तभी भाग लेता हूँ जब मेरी आवश्यकता होती है तथा केवल उन्हीं विषयोंके सम्बन्धमें अपनी राय व्यक्त करता हूँ जिनपर मुझसे सलाह ली जाती है। लेकिन पत्र पाने के बाद मैंने वह कार्य-समितिके सदस्योंको पढ़कर सुनाया और उनसे कहा कि यदि उन्हें बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीपर विश्वास नहीं रहा और उसके लिए उनके पास पर्याप्त कारण मौजूद हैं तो मैं तुम्हारी इस बातसे सहमत हूँ कि वे उसे भंग कर दें। इस दिशामें उठाया गया कोई अधूरा कदम असफल रहेगा और इससे लोग केवल चिढ़ेंगे ही।

लेकिन मुझे स्वीकार करना होगा कि तुम्हारा पत्र मुझे चुनौती-जैसा लगा है। प्रकट है कि तुम्हें कार्य-समितिमें विश्वास नहीं है। कार्य-समितिने तुमपर जो प्रतिबन्ध लगाया है, वह तुम्हें प्रतिशोधकी कार्रवाई प्रतीत होता है। तुम्हें पता ही है कि सर्वसम्मतिसे लगाये गये उस प्रतिबन्धमें मैं भी शरीक था। कार्य-समिति और तुम्हारे बीच फैसला कौन करे? तुमने प्रतिबन्धको कभी स्वीकार ही नहीं किया।

जहाँतक कार्य-समिति द्वारा कार्रवाई किये जाने का सवाल है, मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ। तुम्हारे और मेरे रास्ते अलग हैं। फिलहाल तो तुम भटक गये हो और

१. गांधी — १९१५-१९४८ : ए डिटेल्ड क्रॉनोलॉजीसे

मैंने तुम्हें खो दिया है। यदि मैं सही हूँ और मेरा प्रेम सच्चा है तो मैं तुम्हें किसी दिन अपने समूहमें वापस लौटा हुआ पाऊँगा।

सदा तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य: नारायण देसाई

४३६. बातचीत: संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी कार्यकारिणीके सदस्योंके साथ[1]

इलाहाबाद
[२३ नवम्बर, १९३९][2]

प्रश्न: आज आप अहिंसापर जरूरतसे ज्यादा जोर देते मालूम होते हैं। आपका मंशा यह तो हरगिज न होगा कि १९२०-२१ में या १९३० में अहिंसाके लिए हमारी तैयारी आजसे ज्यादा थी? या, आप यह कहेंगे कि तबसे आपका मापदण्ड ऊँचा हो गया है?

उत्तर. दोनों बातें हैं। आज प्रकटत: जितनी हिंसा दिखाई देती है उतनी उन दिनों नहीं थी। और, मेरा मापदण्ड भी ऊँचा हो गया है। अपनी शर्तोंके प्रति मेरा जितना आग्रह इस वक्त है उतना उस समय न था। अगर आप लोगोंको मेरा सेना-पतित्व मजूर है तो आपको न सिर्फ मेरी शर्तें माननी होंगी, बल्कि हम तैयार हैं या नहीं, इस बारेमें भी मेरा निर्णय स्वीकार करना पड़ेगा। यह बिलकुल सम्भव है कि आजकी और उन दिनोंकी परिस्थितियोंमें कोई असली अन्तर न हो। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि उस वक्त मैं यह नहीं जानता था कि मेरे पैरों-तले बारूद बिछी हुई है। आज तो यह खयाल भूतकी तरह मेरा पीछा कर रहा है और इसे मैं दिलसे किसी तरह निकाल नहीं सकता।

क्या यह डर नहीं है कि अगर गर्म लोहेपर हमने चोट न की तो फिर कभी मौका ही हाथ न लगे? इस वक्त तो लोगोंके दिलोंमें तैयारीकी भावना है। अगर हम अवसर चूक गये, तो मुमकिन है, उनका उत्साह ठंडा पड़ जाये और सारी तैयारी काफूर हो जाये। इस कारण आपके लिए सबसे अच्छा यही है कि आप कोई

१. यह बातचीत महादेव देसाई द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट "द टास्क बिफोर अस" (हमारा कर्तव्य) शीर्षकसे प्रकाशित हुई थी।

२. देखिए पृ० ३८८, पाद-टिप्पणी ३।

ऐसा कार्यक्रम हमें सुझायें जिससे हम जमीन भी तैयार कर सकें और साथ ही लोगोंका जोश भी कायम रख सकें।

इस तरहकी भाषासे ही मुझे सदा चिढ रही है। मेरी समझमें नही आता कि वह तैयारी किस कामकी जो तुरन्त काममें न लाये जाने पर काफूर हो जाये। यह कोई तैयारी नही। तैयार तो वह है जो हर घडी और हर जगह, जहाँ और जब उसका आह्वान किया जाये, तैयार मिले। तैयारीका एक यही अर्थ है कि सेनापतिका हुक्म मानने की तैयारी हो। फौजी भाषा काममें ले तो यों कहा जायेगा कि इतनी तैयारी होनी चाहिए कि लडने की जरूरत ही न पडे। असल बात स्वाधीनता हासिल करना है, न कि सविनय अवज्ञा का समय और साधन तथा उपाय। आपसे मुझे इतनी श्रद्धा और अनुशासनकी अपेक्षा है जिससे आप सहज ही अपने सेनापति के हुक्मका इन्तजार और पालन कर सकें। इससे अधिक कुछ भी कहने की मुझसे उम्मीद मत रखिए। आप मुझसे यह बताने की भी आशा मत रखिए कि अगर कभी मैंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेडा तो मैं किस तरह छेडूंगा। मैं कुछ भी छिपाकर नही रख रहा हूँ। और बात यह है कि आखिरी वक्तसे पहले खुद मुझे भी कुछ मालूम नही होनेवाला है। मेरा वह तरीका ही नही है। नमक-कानून भगके कूचके[1] बारेमें जबतक उसका निर्णय नही हो गया, लगभग उस क्षणसे पहलेतक मुझे कुछ भी पता न था। हाँ, इतना मुझे मालूम है कि ईश्वरने मेरे द्वारा इतिहासकी पुनरावृत्ति शायद ही कभी करवाई हो और सम्भव है, इस बार भी न करवाये। लेकिन एक बात है। हो सकता है, कुछ ऐसे कारणोसे जो आप मुझे शायद न बतायें, मुझे सेनापति होने के लायक न समझा जाता हो। उस सूरतमें आपको मुझे त्याग देना चाहिए। इसका मुझे कुछ भी अफसोस न होगा।

अब आपके सवालका आखिरी मुद्दा ले। आप ऐसा कार्यक्रम चाहते है जिसका सविनय अवज्ञाके साथ सीधा सम्बन्ध हो। आप मेरी हँसी न उडायें तो मैं नि सकोच कहूँगा कि सब लोग कातें, यही वह कार्यक्रम है। मैंने डाक्टरोकी चेतावनियो और सलाह मानकर कुछ समयतक कातना छोड दिया था। नारणदास गांधीकी पुकारपर मैंने कातना फिर शुरू कर दिया और मैं नही समझता कि जबतक मेरे हाथ बिलकुल जवाब ही न दे दें, तबतक मैं कभी कातना छोडूंगा। तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप लोग जितना ज्यादा कातेंगे उतने ही अच्छे सैनिक बनेंगे। अगर मेरा यह पक्का विश्वास है, तो इसकी घोषणा करने में मुझे क्यों शर्म होनी चाहिए? मेरी सलाहको काटकर आप ऐसे दो भाग नही कर सकते कि एक को तो आप कबूल कर लें और दूसरे को रद्द कर दें। मेरी शर्त अनिवार्य है। सम्भव है कि उसके पीछे अपेक्षित बुद्धि-प्रेरित विश्वास न हो, किन्तु श्रद्धासे वह विश्वास अपने-आप आ जायेगा। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने इस भावनासे काम किया

१. १२ मार्च, १९३० को; देखिए खण्ड ४३।

है। जुलू-विद्रोहके दौरान अफसरकी आज्ञा मानकर मैं झाड़-झंखाड़ोंसे भरे अनजान रास्तोंपर मीलों पैदल चला हूँ।[1]

लेकिन जैसा कि मैं कह चुका हूँ, आपको यह सब हवाई किले बाँधना या हास्यास्पद दुःसाहस मालूम हो सकता है। इस सूरतमें आपको बस, मेरा नेतृत्व छोड़ देना चाहिए। मैंने बीस साल नेतृत्व कर लिया। अब मेरे लिए आराम लेना ही शायद अच्छा हो। सम्भव है, आप लोग सत्याग्रहकी कोई नयी शैली निकाल सकें। अगर वैसा हुआ तो ज्यों ही मुझे उसपर विश्वास हो जायेगा, त्यों ही मैं आपके पीछे चलने को तैयार हो जाऊँगा। आप कुछ भी करें, मगर मनमें कोई दुराव रखकर मेरा नेतृत्व स्वीकार न करें; अन्यथा आप मुझे धोखा देंगे और देश को भी। अगर मुझे आपका सहयोग मिलता है तो वह पूरा और दिलसे मिलना चाहिए। मैं बीस सालसे यही कहता आया हूँ; अब मैं कोई नयी दलील नहीं दे सकता।

हम तो बिलकुल जुदा विचारधारापर चल पड़े हैं।

हाँ, कठिनाई तो यही है। इसीलिए मैं बार-बार नेता बदल लेने की बात सुझा रहा हूँ।

पर हममें से कुछके लिए चरखा आपके नेतृत्वकी निशानीके सिवा और कुछ न हो, तो?

नहीं, उसे अहिंसाका प्रतीक और अहिंसात्मक युद्धकी तैयारीकी एक खास शर्त होना चाहिए। मैं इससे भी अच्छा रास्ता बताऊँ। यही रास्ता मैंने १९३४ में सुझाया था।[2] कताई और खादीको कांग्रेसके कार्यक्रममें से निकाल दीजिए, फिर तो मैं अपने-आप अलग हो जाऊँगा। आप ऐसा करें तो यह गलती आपकी नहीं, मेरी होगी; क्योंकि यह बात आपके दिलमें बिठाना मेरा फर्ज है कि चरखे और अहिंसामें गहरा सम्बन्ध है।[3]

जब कहीं दंगा हो रहा हो तो कांग्रेसियोंका क्या धर्म है?

उसे शान्त करने में प्राण दे देना। हमारे बीच १९३१ में एक गणेशशंकर विद्यार्थी हो गये थे।[4] तबसे और किसीने उनका अनुकरण नहीं किया। दंगोंमें इतने

१. नेटालमें; गांधीजी ने एक डोली-वाहक भारतीय दस्तेका नेतृत्व किया था; देखिए, खण्ड ५।

२. देखिए खण्ड ५९, पृ० ४-१३।

३. यहाँ महादेव देसाई लिखते हैं: "इस बातपर सब सहमत हो गये कि जब देशके लोगोंका एक बड़ा भाग सत्याग्रह कार्यक्रमके विरुद्ध है तो उसके बावजूद आन्दोलन कैसे छेड़ा जा सकता है। इसपर यह निर्णय किया गया कि रचनात्मक कार्यका एक हिस्सा ऐक्य स्थापित करना होगा। मतभेदकी कई बातें थीं, जिनपर कार्य-समितिकी अगली बैठकमें विस्तारसे विचार किया जायेगा। इसके अलावा साम्प्रदायिक दंगोंके शाश्वत प्रश्नपर भी विचार करने की बात थी, भले ही वे दंगे किसी भी समय या किसी भी कारणसे क्यों न हों।"

४. जिनकी मार्च १९२१ में कानपुरमें हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगोंमें हत्या कर दी गई थी; देखिए खण्ड ४५।

लोग मरते हैं, पर वे स्वेच्छापूर्वक अपना बलिदान नही करते। जिन्हें यह कार्यक्रम मजूर न हो वे मुझे छोड़ दें।

लेकिन मान लिया जाये कि हिन्दू-मुस्लिम दंगे होंगे ही, तो क्या उनके कारण हमारा आन्दोलन रुका रहे?

वे अनिश्चित कालतक तो ऐसा नही कर सकते। मुझे मुसलमानोपर इतना विश्वास अवश्य है कि ऐसी आशा रखूं कि एक दिन वे स्वाधीनताके रास्तेमें रुकावट बनने से बाज आ जायेंगे। उनमें आजादी और लोकतन्त्रका इतना प्रेम जरूर है कि उन्हे उस हालतपर किसी दिन शर्म आये।

हमारे पास समय थोड़ा है, इस दृष्टिसे क्या आप बता सकते हैं कि कताईके खयालसे आप कमसे-कम कितनी तैयारी जरूरी समझेंगे?

थोडा समय क्यो? क्या यह आवश्यक है कि हम तीन या छह महीनेमें ही आन्दोलन शुरू कर दें? छह साल लग जायें तो लगने दीजिए। जरूरी चीज तो यह है कि तैयारी पूरी हो। मै कहता हूँ कि आप लोग यह अधीरता छोड दीजिए। मेरी कसौटी यह नही है कि आप सब मुझे सन्तुष्ट करने या मेरा नेतृत्व हासिल करने के लिए रोज आधा या एक घटा भी कातें, बल्कि यह है कि कताई इतनी आम हो जाये कि आपके प्रान्तमें देशी या विदेशी किसी भी तरहका मिलका कपड़ा देखने में न आये। अगर मुझे ऐसा लगेगा कि इस दिशामें हम तेजीसे आगे बढ रहे हैं तो मै सन्तोष मानूंगा। आप लोगोको इस बातका गर्व है कि आपके यहाँ कांग्रेसके सदस्योकी सख्या लाखो में है। यदि ये सब इस कार्यक्रमको अंगीकार करके चरखा सघके स्वयंसेवक बन जायें, तो इस प्रान्तमें मिलका कपड़ा नही रहेगा। यह काम आपके दैनिक जीवनका हिस्सा होना चाहिए। जैसे एक अफरीदीका बन्दूकके बगैर काम नही चल सकता, ठीक उसी तरह आप अहिंसक सिपाहियोंमें से किसीका काते बिना काम नही चलना चाहिए। और यह सब इसलिए न हो कि यह बूढा ऐसा चाहता है, बल्कि इसलिए हो कि आप स्वाधीनता चाहते है। जब आपकी समझमें यह बात अच्छी तरह आ जायेगी, तब मेरे पास इस तरहके सवाल लेकर आप नही आयेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-१२-१९३९

१. देखिए "चक्करमें डालनेवाली स्थिति", पृ० ४३६-३८ भी।

४३७. पत्र : बारीन घोषको

२४ नवम्बर, १९३९

बारीन घोष,

चरखेके विषयमें हमारा मतभेद मामूली चीज नही है। मेरा तो सारा जीवन ही इससे बँधा हुआ है। यदि तुम चरखेका समर्थन नही करते हो तो तुम पूरे हृदयसे अहिंसाका भी समर्थन नही कर सकोगे, और अहिंसाके बिना भला मैं किस कामका?

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य: नारायण देसाई

४३८. मैसूरके लोगोंको लिखे पत्रका अंश

२४ नवम्बर, १९३९

आपको वही करना चाहिए जो परिस्थितियोको देखते हुए आपको ठीक लगे। स्वयं परिस्थितियोको देखे बिना मुझे आपको कोई सलाह नही देनी चाहिए। इस मामलेमें मैं अपनी संबुद्धिसे कोई राय नहीं दे सकता। आप कसौटीपर खरे उतरे हैं। आपने कष्ट सहन किया है तथा और कष्ट सहनेको तैयार है। प्रकट है कि मैसूरके लोग कष्ट-सहन करनेकी कलामें दक्ष है। इसलिए मुझे मैसूरके मामलोंमें हस्तक्षेप नही करना चाहिए।[1] जंगल-सत्याग्रहका[2] विचार मुझे निश्चय ही पसन्द नही आया था, क्योंकि उस तरह हम अपनी ही सम्पदाको हानि पहुँचाते हैं। मैंने ताड़के पेड़ काटने के आन्दोलनका नेतृत्व किया था और हजारों ताड़-वृक्ष काट गिराने में तामसी सुखका अनुभव किया। तामसी इसलिए क्योंकि अब मैं देखता हूँ कि यह सब मेरी जल्दबाजी थी। अब मैं एक भी पेड़ नही कटवाऊँगा। इससे गुड़, नीरा प्राप्त होता है। यहाँतक कि तना भी बाड बनानेके काम आता है, पत्तियोंसे चटाइयाँ बनती हैं, इस पेड़की देखभाल नही करनी पड़ती, और यह स्वयं ही बढ़ता जाता है। अतएव अब ताडपर मेरी पूरी आस्था है।

१. देखिए "पत्र: एम० एस० हर्डीकरको", पृ० २८० और ३१६-१७ भी।

२. मध्य प्रान्तमें

और यदि जगल-सत्याग्रह रोकनेसे जेल जानेवालोंकी सख्या कम हो जाये तो भी आपको उसकी कोई परवाह नही करनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य नारायण देसाई

४३९. पत्र: सरस्वती गांधीको

२५ नवम्बर, १९३९

चि० सरू,

तेरा खत मिला था। तू अच्छी होगी। कांती आ गया सो अच्छा ही हुआ। मुझे लिखा करो। यह खत ट्रेनपर से लिख रहा हू। आज वर्धा पहूचेगे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१७६)से। सी० डब्ल्यू० ३४५०से भी, सौजन्य. कान्तिलाल गाधी

४४०. पत्र: मदनमोहन मालवीयको

रेलगाडीमें
२५ नवम्बर, १९३९

भाई साहब,

महादेवसे आपका प्रेमसे छलकता हूआ सदेश सुनाया। 'भागवत'के एकादश स्कंधका श्लोक[1] भी बताया। श्लोक मैंने द० अफरीकामें देखा था। एकादश स्कंधका मेरे पर बडा प्रभाव पडा। लेकिन मैंने हमारे शास्त्रोके सर्व वचनोको वेद-वाक्यसे नही माने हैं। जो जड पुतलीके स्पर्शसे विकारी हो सकता है वह ब्रह्मचारी नही है। मैंने माना है कि सकारण स्पर्श करते हूए जो निर्विकार रह सके वही ब्रह्मचारी है और मेरा ब्रह्मचारी जीवन ऐसे ही व्यतीत हूआ है। सच्च है कि मै सर्वथा निर्विकार नही बना हू। आप आशीर्वाद दें कि मै इसी जीवनमें ऐसा बनु। मेरा

१. तात्पर्य शायद उक्त सर्गके आठवें अध्यायके तेरहवें श्लोकसे है, जो इस प्रकार है :

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।
स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः॥

अर्थात् भिक्षुको अपने पैरसे भी स्त्रीकी काष्ठ-प्रतिमा तक का स्पर्श नहीं करना चाहिए। हथिनीकी संगतिसे ही हाथी बन्धनमें बँध जाता है।

प्रयत्न प्रतिक्षण चलता है। इस प्रयोगकी परीक्षा तो मेरे मृत्युके बाद ही होगी। आपके सदेशका भेदको मै समज गया हूं। मै सावधान हूं, और भी अधिक होनेकी चेष्टा करूंगा।

आपने रजस्वलाके बारेमें कहलाया है उसमें मै क्या कहूं? मैंने उनका पालन कभी नहिं किया या करवाया है। इस स्पर्शमें मैंने पाप नही माना है। हमारे ऐसे विशेष आचारोंके बारेमें परिवर्तनको अवकाश है, ऐसी मेरी अल्प मति है।

मौनके बारेमें मै आपके साथ हू। मात्रा बढाता रहूंगा।

आपका ऋणी भाई,
मोहनदास

मूल पत्रसे: पद्मकान्त मालवीय कलेक्शन; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

४४१. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
२६ नवम्बर, १९३९

प्रिय पगली,

तुम्हारे तीन पत्र मिले। मैंने सब पत्र महादेव देसाईके हवाले कर दिये। कम टिकट क्यों लगे और पत्र ठीकसे चिपकाये क्यों नही गये, इसका कारण मै नही बता सकता। इसके लिए मै शर्मिन्दा हूँ। पूछताछ करूँगा। तुम्हारे पत्रोंकी और सब बातें मै समझ गया। कुछ बातें तो हमें भगवान्पर ही छोड़ देनी चाहिए। इलाहाबादमें मुझे कोई परेशानी नही हुई। जवाहरलाल काफी अच्छी तरह पेश आया। उससे मेरी कोई विशेष बातचीत नही हुई, क्योंकि वह बहुत व्यस्त था।

शम्मीका एक भला-सा उत्तर आया था।[1]

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४८) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२५७ से भी

१. गांधीजीके पत्रके लिए, देखिए पृ० ४२५

४४२. पत्र : त्र्यम्बकलाल पोपटलालको

सेगाँव, वर्धा
२६ नवम्बर, १९३९

भाई त्र्यम्बकलाल,

मुझे ४,४०१-६-९ रुपयेकी हुंडी मिली थी। अब १३-६-० रुपयेकी मिली है। तुम्हें पक्की रसीद दिल्लीसे मिलनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

श्री त्र्यम्बकलाल पोपटलाल
१२१, मुगल स्ट्रीट
रंगून[1]

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९८३०)से; सौजन्य त्र्यम्बकलाल पोपटलाल

४४३. स्त्रियोंके हाथों स्वराज

अब चूंकि कार्य-समितिने कताईको सविनय अवज्ञाकी एक अनिवार्य शर्तके रूपमें मान लिया है,[2] भारतकी स्त्रियोको देश-सेवाका दुर्लभ अवसर मिला है। नमक-सत्याग्रहके कारण वे हजारोकी संख्यामें चहारदीवारीसे बाहर निकल आई थी, और तभी स्पष्ट हो गया था कि वे भी पुरुषोंके बराबर ही देशकी सेवा कर सकती हैं। उससे ग्रामीण स्त्रियोको वह गौरव मिला जो उन्हे पहले कभी प्राप्त नही हुआ था। साम्राज्यवादके जुएसे आजाद होनेके लिए हिन्दुस्तानके अहिंसक आन्दोलनमें कताईको फिरसे अपना केन्द्रीय स्थान मिल जानेसे यहाँकी स्त्रियोको एक खास दर्जा हासिल हो गया है। कताईके क्षेत्रमें पुरुषोंकी अपेक्षा उनकी स्थिति स्वभावत. विशेष अनुकूल है।

अनादि कालसे स्त्री और पुरुषके बीच श्रम-विभाजन रहा है। आदम बुनते थे और हौवा कातती थी। यह भेद आजतक मौजूद है। कातनेवाले पुरुष अपवाद-स्वरूप हैं। १९२०-२१में जब मैं पंजाबके पुरुषोंसे कातनेको कहता था, तो वे जवाब

१. मूलमें पता अंग्रेजीमें है।
२. देखिए पृ० ४१८।

दिया करते थे कि यह उनकी शानके खिलाफ है और औरतोंका काम है। आजकल पुरुष गौरवकी दुहाई देकर आपत्ति नही करते। हजारों पुरुष ऐसे है जो यथार्थ कातते हैं। जब पुरुष देश-सेवाकी भावनासे कातने लगे तभीसे कताई एक विज्ञान बनी, और उसमें भी दूसरे क्षेत्रोंकी तरह बहुत-से आविष्कार हुए। फिर भी अनुभव यही बताता है कि कताई स्त्रीकी ही विशेषता रहेगी। मैं मानता हूँ कि इस अनुभवका एक सबल कारण है। कताई एक धीमी और अपेक्षाकृत शान्त क्रिया है। स्त्री त्यागकी और इसीलिए अहिंसाकी मूर्ति होती है। इस कारण उसके काम युद्धकी अपेक्षा शान्तिको बढ़ावा देनेवाले होते है और होने चाहिए। आज अगर उसे हिंसात्मक युद्धके कामोमें घसीटा जा रहा है तो यह मौजूदा सभ्यताके लिए कोई शोभाकी बात नही है। मुझे इस बातमें जरा भी शक नही है कि हिंसा स्त्रीके लिए इतनी अशोभनीय चीज है कि वह अपनी मूल प्रकृतिपर इस तरह प्रहार किये जाने के विरुद्ध शीघ्र ही उठ खड़ी होगी। मुझे लगता है कि पुरुष भी अपनी इस भूलपर पछतायेगा। स्त्री-पुरुषकी समानताका यह अर्थ नही है कि उनके काम भी एक-से ही हों। स्त्रीके शिकार खेलने या भाला चलाने पर कोई कानूनी रुकावट भले ही न हो, परन्तु ऐसे कामोसे स्त्री सहज ही अपना मुँह फेर लेती है जो सिर्फ मर्दके करने के ही है। प्रकृतिने स्त्री और पुरुषको अलग-अलग इसलिए बनाया है कि वे एक-दूसरेके पूरक हों। उनकी आकृतियोंकी तरह उनके कार्य भी निश्चित कर दिये गये हैं।

लेकिन मेरे प्रयोजनके लिए यह सिद्ध करना जरूरी नही कि स्त्री-पुरुषके काम अलग-अलग है। और कही नही तो भारतमें तो यह निर्विवाद तथ्य है कि लाखों स्त्रियाँ कताईको अपना स्वाभाविक काम समझती है। कार्य-समितिके प्रस्तावसे पुरुषोंका भार स्वत: स्त्रियोंके कंधोपर आ गया है और उन्हें अपना जौहर दिखाने का मौका मिला है। मुझे यह देखकर खुशी होगी कि मेरी भावी सेनामें पुरुषोसे स्त्रियाँ कही अधिक हैं। उस दशामें अगर लड़ाई हुई तो मैं उसकी ओर अधिक आत्मविश्वासके साथ कदम बढ़ा सकूँगा। पुरुषोकी प्रमुखतापर उतने आत्मविश्वासके साथ आगे नही बढ़ पाऊँगा। मुझे उनकी हिंसाका डर रहेगा। किन्तु स्त्रियोंको मैं हिंसाके विस्फोटके विरुद्ध अपनी गारंटी मानूँगा।

सेगाँव, २७ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २-१२-१९३९

४४४. टिप्पणियाँ

हिन्दू महासभा क्यों नहीं?

एक सज्जन लिखते हैं:

> लॉर्ड सभामें भारतपर जो बहस हुई थी उसके दौरान लॉर्ड जेटलैंडने अपने भाषणमें कांग्रेसको हिन्दू संस्था बताया था। उसपर आपने जो टिप्पणी[1] की वह मैंने पढ़ी है। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि लॉर्ड जेटलैंडने जो भूल की उसके लिए कुछ हदतक स्वयं कांग्रेस जिम्मेदार है। अगर कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है — और वह बेशक है — तो उसका सिर्फ मुस्लिम लीग-जैसी निरी साम्प्रदायिक संस्थाके साथ आम तौरसे साम्प्रदायिक समस्या और खास तौरपर हिन्दू-मुस्लिम समस्याके समाधानके लिए वार्त्ता चलाना कहाँतक उचित था? कांग्रेसको तटस्थ रहना और जिन्ना साहबको हिन्दू महासभाके अध्यक्ष श्री सावरकरसे समझौतेकी बातचीत करने देना चाहिए था। अगर यह अव्यावहारिक था तो कांग्रेस देशकी विभिन्न साम्प्रदायिक संस्थाओंके प्रतिनिधियों का सम्मेलन बुलाकर उसमें पंचका काम करती। कांग्रेसी नेताओंकी ओरसे किसी एक कौमके अगुओंसे सीधी और ऐकान्तिक चर्चा द्वारा हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल करने की कोशिशका तो यही परिणाम निकल सकता था कि कांग्रेसके विरोधियोंको एक हथियार हाथ लग जाता और इन लोगोंसे यह आशा भी नहीं की जा सकती थी कि वे इस अस्त्रका पूरा उपयोग करने में तनिक भी ढील करेंगे। मेरी रायमें एक राष्ट्रीय संस्थाके रूपमें कांग्रेसकी जो प्रतिष्ठा है, वह इससे कम हुई है।

पत्र-लेखककी दलीलमें जो वजन है, उसे मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ। मैं यह भी बता चुका हूँ कि किस तरह अपने ऊपर आये हुए कर्त्तव्यसे कांग्रेस आँखें नहीं चुरा सकती थी। लेकिन उनके इस विचारसे मुझे असहमति प्रकट करनी पड़ेगी कि एक कठिन राष्ट्रीय समस्याको सुलझानेका प्रयत्न करनेसे कांग्रेसकी प्रतिष्ठा कम हुई है। मैं सभी हितैषियोंसे अनुरोध करता हूँ कि जिन्ना साहब और पण्डित जवाहरलाल नेहरूके बीच कुछ ही दिनोंमें जो बातचीत होनेवाली है उसकी प्रगतिमें बाधा डालनेवाली कोई बात वे न करें।

फिर साम्प्रदायिक निर्णय

श्री राधाकान्त मालवीयके पत्रसे निम्न अंश मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ:

१. देखिए पृ० ३६५-६६ और ३८१-८३।

अपने लेख "अच्छा भी और बुरा भी"[1] में आपने कहा है: "... इस पंच-निर्णयकी योजना तो गोलमेज सम्मेलनके समय तैयार की जा रही थी, और मेरी उसके बारेमें बड़ी कटु स्मृतियाँ हैं। ... मैं सभी सम्बन्धित पक्षोंके लिए इस निर्णयको अशोभनीय मानता हूँ। ... लेकिन कांग्रेसने उसे निष्ठापूर्वक स्वीकार कर लिया है; क्योंकि स्वर्गीय श्री मैक्डॉनल्डसे मध्यस्थता करने की प्रार्थना करनेवालों में मैं भी शामिल था।"

क्या बात यह है कि चूँकि गोलमेज सम्मेलनसे लौटते ही आपको कैद कर लिया गया, इसलिए उसके बाद साम्प्रदायिक समस्याके समाधानके लिए होनेवाली वार्त्ताओंसे सम्बन्धित बातोंकी आपको कोई खबर नहीं है? श्री जे० रैम्जे मैक्डॉनल्डके साम्प्रदायिक निर्णयकी तारीख १७ अगस्त, १९३२ है। वाइसराय महोदय ने २४ फरवरी, १९३२ को ही स्पष्ट कर दिया था कि कोई पंच-फैसला नहीं होगा, बल्कि श्री रैम्जे मैक्डॉनल्ड अपना निर्णय देंगे। इस सम्बन्धमें ठीक जानकारीके लिए गोलमेज सम्मेलनकी सलाहकार समितिकी उस बैठककी कार्रवाईको देखना चाहिए जो २२ और २४ फरवरी, १९३२ को वाइसराय हाउसमें हुई थी।

उस कार्रवाईमें आप देखेंगे कि २२ फरवरी, १९३२ की बैठकमें जनाब (अब सर) जफरुल्ला खाँने कहा था: "... कठिनाई स्वयं ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये किसी निर्णयसे ही हल हो सकती है। ... वाइसराय महोदय ब्रिटिश सरकारको इन प्रश्नोंके सम्बन्धमें शीघ्र ही कोई निर्णय घोषित करने की आवश्यकता समझायें तो कोई हर्ज नहीं है। ..." डॉ० शफात अहमद खाँने कहा: "... मैंने आपसे अनुरोध किया है कि आप प्रधान मन्त्रीसे हमें अपना कोई निर्णय देनेका आग्रह करें।" फिर, २४ फरवरीकी बैठकमें डॉ० शफात अहमद खाँने कहा: "मुस्लिम शिष्टमण्डलने 'पंच-फैसला' शब्दका उल्लेख कभी नहीं किया। हमने बराबर यही कहा है कि निर्णय देना सम्राट् की सरकारका काम है। बेशक, हमने कभी पंच-फैसलेकी माँग नहीं की है।" सर तेजबहादुर सप्रू [ने कहा]: "जो बात कही गई थी वह यह थी कि प्रधान मन्त्री अपना कोई निर्णय देंगे।" डॉ० शफात अहमद खाँने फिर कहा: "... वे (प्रधान मन्त्री) निर्णय देंगे। ... हम उनसे पंच-फैसलेकी माँग नहीं कर रहे हैं। हम सम्राट्की सरकारके निर्णयके लिए अनुरोध करते हैं।" सरदार उज्ज्वलसिंहने कहा: "... अल्पसंख्यकोंसे सम्बन्धित उपसमितिमें प्रधान मन्त्रीने इस प्रश्नका निर्णय करने का दायित्व अपने ऊपर लिया, बशर्ते कि सभी कौमोंके लोग इस प्रश्नको उनके पंच-फैसलेके लिए सौंप

१. देखिए पृ० ३५४-५५। किन्तु साधन-सूत्रमें इसका शीर्षक "हिन्दू-मुस्लिम एकता" दिया गया है।

दें। यह बिलकुल अलग बात थी। कुछ सदस्योंने अपनी-अपनी कौमोंकी ओरसे उन्हें पत्र अवश्य भेजे, लेकिन सबने प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। . . . अब पंच-फैसलेका कोई सवाल ही नहीं है।" अन्तमें अध्यक्ष-पदसे वाइसराय महोदयने कहा: "मुझे बताया गया है कि समितिके अध्यक्षकी हैसियतसे उस समय प्रधान मन्त्रीने एक प्रस्ताव किया था, किन्तु वह स्वीकार नहीं किया गया।"

अगर आप उचित समझें तो इसे 'हरिजन' के किसी अंकमें जल्दी ही प्रकाशित कर सकते हैं, ताकि आपके उपर्युक्त कथनसे जो गलतफहमी पैदा हुई है वह खत्म हो जाये।

अपनी याददाश्तकी चूक मैं स्वीकार कर चुका हूँ।[1] जो तथ्य श्री राधाकान्तने बताये हैं उन्हें लिपिबद्ध कर देना अच्छा है। मेरे कोई गलती करने से ये तथ्य बदल नही सकते। सौभाग्यकी बात है कि मेरी भूलसे सर सैम्युअल होरके खिलाफ की गई मेरी शिकायत कोई कमजोर नही पड जाती।

धरना शान्तिपूर्ण कब होता है?

एक पत्र-लेखक लिखते है

मैं देखता हूँ कि यहाँ बम्बईमें 'शान्तिपूर्ण धरने' के शस्त्रका दुरुपयोग किया जा रहा है। दलील यह दी जाती है कि धरना शान्त हो तो, भले ही उसका उद्देश्य उचित हो या अनुचित, वह कोई अपराध नहीं है। ऐसी स्थितिमें जिस-किसीके यहाँ ऐसा धरना दिया जाता है, उसे कानून अथवा पुलिससे कोई संरक्षण नहीं मिलता। उदाहरणके लिए, 'क' एक दुकानदार है। 'ख' उसका नौकर है। 'क' से उसकी कोई माँग है। कानूनी दृष्टिसे उसका दावा चल नहीं सकता। लेकिन अपनी माँग पूरी न होने की हालतमें 'ख', 'क' की दुकानपर धरना देने की धमकी देता है। और वह तथाकथित नेताओं 'ग' और 'घ' की मददसे 'क' की दुकानपर धरना शुरू कर देता है और 'क' के ग्राहकोंको उलटी-सीधी बातें कहकर उसकी दुकानसे खरीदारी न करने के लिए उकसाता है। ऐसा धरना, भले ही उसमें बल-प्रयोग न किया जाये, क्या 'शान्त' कहा जायेगा?

मैं नहीं कह सकता कि कानून की दृष्टिसे ऐसा करना जायज है या नही। लेकिन मैं यह कह सकता हूँ कि इस तरहके धरनेको शान्त अर्थात् अहिंसक नही कहा जा सकता। शरीर-बलका प्रयोग न किये जाने पर भी जिस धरनेके

१. देखिए "टिप्पणियाँ" का उप-शीर्षक, "पंच-निर्णय या सरकारी निर्णय?", पृ० ३८७-८८।

लिए निश्चित रूपसे उचित कारण न हो वह हिंसात्मक है। ऐसे कारणके बिना दिया गया धरना एक बला है और निजी अधिकारके इस्तेमालमें हस्तक्षेप है। साधारणत. जबतक कोई जिम्मेदार संस्था न कहे तबतक व्यक्तियोंको धरनेका आश्रय नही लेना चाहिए। सविनय अवज्ञाकी तरह ही धरनेकी भी कुछ निश्चित मर्यादाएँ हैं, जिनका पूरी तरह पालन किये बिना वह अनुचित और निन्द्य हो जाता है।

सेगाँव, २७ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-१२-१९३९

४४५. सन्देश : ठक्कर बापा जयन्ती समारोहके अवसरपर[1]

[२७ नवम्बर, १९३९][2]

बापाकी सत्तरवी जयन्ती मनानेमें मुझे हाजिर होना चाहिए था। लेकिन मेरा शरीर ऐसे समारोहोंमें शरीक होने लायक नही रहा हैं। मेरी तो हार्दिक कामना है कि बापा सौ वर्ष पूरे करे। बापाका जन्म ही दलितोकी सेवाके लिए हुआ था, चाहे वे अस्पृश्य हो या भील, संथाल या खासी। उनकी सेवाकी कद्र करनेमें भी हम दलितोंकी कुछ-न-कुछ सेवा करते हैं। बापाकी सेवा हिन्दुस्तानको अपने लक्ष्यकी ओर काफी आगे ले गई है।[3]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-१२-१९३९

४४६. दुःखकी बात

एक सयाने और विद्वान् अंग्रेजने एक अंग्रेज मित्रको पत्र लिखा, जो उन्होंने मेरे पास भेज दिया। नीचे पत्रका एक अंश दे रहा हूँ:

> मुझे लगता है कि गांधीजी अपनी इस मूल स्थितिसे बिलकुल हट गये हैं कि वे ब्रिटिश सरकारके साथ किसी प्रकारकी सौदेबाजी सहन नहीं करेंगे और इस युद्धमें वे उसे समर्थन देनेको तैयार हैं। मुझे लगता है, अब वे पूरी

१. यह सन्देश महादेव देसाईके लेख "बापा जयन्ती इन बॉम्बे" (बम्बईमें बापा-जयन्ती) से उद्धृत किया गया है।

२. भील सेवा मण्डल सेवा स्मृति ग्रन्थ, १९६६, पृ० १६ से।

३. देखिए पृ० २९२ भी।

तरह् कांग्रेसकी अतिवादी स्थितिके हामी हो गये हैं, जो यह है कि यदि इसी समय भारतको पूर्ण और बिना शर्त स्वाधीनता देनेका वचन नहीं दिया जाता तो वे सरकारसे किसी प्रकारका सहयोग नहीं करेंगे, बल्कि जहाँ वे सत्तामें हैं वहाँ उसका त्याग करके, उस सरकारसे जिसने यह घोषित किया है कि भारत जर्मनीसे युद्ध-रत है, अपनेको पूरी तरह अलग कर लेंगे। मुझे तो यह रवैया न केवल औपनिवेशिक स्वराज्य, जिसे देनेका वादा स्पष्ट शब्दोंमें किया जा चुका है, बल्कि पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करनेके निमित्त की जा रही सौदेबाजी प्रतीत होता है, और ब्रिटेनकी विपत्तिसे नाजायज फायदा उठाना जान पड़ता है। फिर, कांग्रेस एक ओर यह कहती है कि जो वास्तविक अल्पसंख्यक समुदायोंको उनके सन्तोषके लायक संरक्षण प्रदान न करे, ऐसे किसी संविधानकी रचना करनेका उसका कोई विचार नहीं है, और दूसरी ओर वह मुस्लिम लीगसे कोई समझौता करने में सर्वथा विफल रही है। यह विफलता मुसलमानोंको कांग्रेसका, जिसे भारतीय स्वतन्त्रताके फलस्वरूप सर्वोपरि सत्ता प्राप्त हो जायेगी, विश्वास करने की प्रेरणा देनेवाली बात तो नहीं ही है।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ,[1] मैं अपनी पूर्वस्थितिसे जरा भी नही हटा हूँ। मैंने उसी समय वता दिया था कि मैंने यह स्थिति इसलिए अपनाई है कि मुझे अहिंसामें अटूट विश्वास है। अपनी सहानुभूति (मैंने 'समर्थन' शब्दका इस्तेमाल नही किया था) प्रकट करते समय मेरी नजरमें भी वही उद्देश्य था जो काग्रेसका है। मैंने अपनी स्थिति कार्य-समितिके सामने रख दी। वह ईमानदारीके साथ उस स्थितिको स्वीकार नहीं कर सकती थी। चूँकि उसे स्वाधीनता चाहिए, इसलिए वह और कोई रुख अख्तियार भी नही कर सकती थी। अपनी मान्यताओंके अनुसार काग्रेसकी स्थिति उतनी ही ठीक थी जितनी अपनी मान्यताओके अनुसार मेरी थी। अगर ब्रिटिश सरकार युद्धके सचालनमें काग्रेससे मदद लेना चाहती थी तो काग्रेसको अग्रेजोकी नीयत जाननेका पूरा हक था। भारत एक पराधीन राष्ट्र है, और यदि वह अपनी आजादी प्राप्त करनेको कृतसकल्प है तो उससे यह आशा नही की जा सकती कि उनकी स्थिति क्या है, यह जाने बिना वह शासक राष्ट्रको खुशीसे सहायता देगा। हिन्दुस्तानका झुकाव हिंसाकी तरफ होता और उसके पास वैसी शक्ति भी होती, तो उसका फर्ज हो जाता कि ब्रिटेनकी कठिनाईका लाभ उठाकर आजादीकी घोषणा कर दे और विरोध होने पर हथियारोसे उसकी रक्षा करे। और इस तरह अवसरका लाभ उठाने पर ससार-भर में — यहाँतक कि ब्रिटेनमें भी — उसकी प्रशसा होती। परन्तु कांग्रेसने तो उससे अच्छा अर्थात् अहिंसाका मार्ग ग्रहण किया है, चाहे उसकी अहिंसा जितनी फीकी हो। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि भारत सशस्त्र विद्रोहके

१. देखिए पृ० २८७-८९।

लिए तैयार नहीं है। परन्तु यह न तो ब्रिटेनके लिए शोभाकी बात है और न भारतके लिए। भारतमें सशस्त्र विद्रोहकी शक्ति नहीं है। ब्रिटेनके साथ सम्बन्ध होनेसे वह और भी कमजोर हो गया है। उसका निःशस्त्रीकरण ब्रिटिश इतिहासका एक काला प्रकरण है।

ईश्वरने मुझे राष्ट्रके स्वीकारार्थ उसके आगे अहिंसा-मन्त्रको रखनेका कार्य सौंपा है। चाहे यह अच्छा हुआ हो या बुरा, किन्तु तथ्य यही है कि कांग्रेसने अहिंसाको अपना लिया है और पिछले उन्नीस सालसे वह, जो निर्विवाद रूपसे देशकी सबसे लोकप्रिय और सशक्त संस्था है, अहिंसाका पालन करनेकी भरसक कोशिश बराबर करती रही है। यही कारण है कि जबरदस्ती थोपे गये निःशस्त्रीकरणका दंश भारतको उतना महसूस नहीं होता है जितना अन्यथा होता। यह अनुमान लगाना व्यर्थ होगा कि अगर कांग्रेस स्वराज्य-प्राप्तिके मुख्य साधनके तौरपर अहिंसाको स्वीकार न करती तो वह क्या करती। कांग्रेसने अपनेको अहिंसाकी कसौटीपर कसने दिया है। सिर्फ इसी नजरसे यह सवाल उठाया जा सकता है कि कांग्रेसका रुख उचित है या नहीं। साधारण माप-दण्डके अनुसार तो कांग्रेसने जो रुख अख्तियार किया है, वह पूर्णतया उचित ठहरता है।

मैं आशा करता हूँ कि विद्वान् समालोचकका यह मंशा नहीं है कि कांग्रेसने मेरी बात नहीं मानी इसलिए मुझे उससे बिलकुल नाता तोड़ लेना चाहिए था और उसका मार्ग-दर्शन करनेसे इन्कार कर देना चाहिए था। मेरे साथ सम्बन्ध होनेसे कांग्रेसको सामूहिक रूपसे अहिंसक पद्धतिका अनुसरण करनेमें मदद मिलती है।

लेखक महोदय औपनिवेशिक दर्जेसे भिन्न स्वाधीनताकी माँगपर गलत आपत्ति करते जान पड़ते हैं। यदि भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्रका दर्जा प्राप्त करना चाहता है तो बेशक वह पूर्ण स्वतन्त्रतासे कम किसी भी चीजसे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। मैंने तो सोचा था कि वेस्टमिन्स्टर अधिनियमके अनुसार औपनिवेशिक दर्जा स्वाधीनताके बराबर ही होगा। औपनिवेशिक दर्जा (डोमिनियन स्टेटस) शब्दोंमें एक विशेष अर्थ निहित है। इसका अभिप्राय उन गोरी जातियोंके एक संघसे है, जो स्वयं साम्राज्यवादकी स्तम्भ हैं और गैर-यूरोपीय जातियोंको असभ्य मानती हैं तथा उनका शोषण करनेमें लगी हुई हैं। स्वतन्त्र भारत ऐसे शोषणमें कदापि साझीदार न होगा। हाँ, काले, भूरे या गोरे सभी लोगोंकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए ब्रिटेनके साथ सन्धि करनेमें भारतको कोई अड़चन न होगी। इसलिए अगर औपनिवेशिक दर्जा स्वाधीनतासे कम है तो भारत उससे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। अगर उसका अर्थ वही है जो स्वाधीनताका है, तो यह फैसला भारतको करना होगा कि वह अपने दर्जेको किन शब्दोंमें व्यक्त करे।

समालोचक महोदय आगे चलकर मुस्लिम लीगके साथ समझौता न करनेके कारण कांग्रेसकी निन्दा करते हैं। कितने अफसोसकी बात है कि जिम्मेदार अंग्रेज भी ऐसे सवालोंका अध्ययन करनेका कष्ट नहीं उठाते जिनपर वे बराबर फतवा देते रहते हैं। कांग्रेसने साम्प्रदायिक प्रश्नको हल करनेका प्रयत्न कभी छोड़ा नहीं है।

वह आज भी इस कठिन कार्यमें लगी हुई है। मगर कांग्रेस कोई हल नहीं निकाल सकी, इसको बहाना बनाकर भारतको अपने निश्चित लक्ष्यपर पहुँचने से रोक रखना अन्याय है। अंग्रेज अधिकारियोंने, जिनमें वाइसराय भी शामिल हैं, स्वीकार किया है कि उन्होंने 'फूट डालो और हुकूमत करो' की नीतिका आश्रय लेकर शासन किया है। अंग्रेजोंने हमारे भीतरी झगड़ोंका फायदा उठाकर यहाँ अपने पैर जमाये और उन झगड़ोंको ताजा रखकर वे अबतक यहाँ जमे हुए हैं। मेरी इस दलीलके लिए यह साबित करना अनावश्यक है कि यह नीति जान-बूझकर बरती जा रही है।

अंग्रेजोंने अपने दिलमें यह विश्वास पैदा कर लिया है कि हम लोगोंके परस्पर लड़ते रहने के कारण वे राज कर रहे हैं और जब हम लड़ना छोड़ देंगे तो वे खुशी से वापस चले जायेंगे। इस तरह वे दुश्चक्रमें फँसे हुए हैं। अगर हिन्दुस्तानके कौमी झगड़ोंका निबटारा भारतके आजाद होनेकी शर्त है तो यहाँ ब्रिटिश हुकूमत कयामत तक बनी रहेगी। यह तो एक विशुद्ध घरेलू समस्या है और यदि हमें आपसमें शान्तिपूर्वक रहना है तो इसे हल करना ही होगा। समालोचक महोदय और उनकी-जैसी दलीलें देनेवालोंको क्या मैं याद दिला दूं कि थोड़े ही दिन पहलेतक यह कहा जाता था कि अंग्रेज चले जायेंगे तो हिन्दुओंको उत्तरकी ताकतवर जातियोंकी दया पर निर्भर रहना पड़ेगा और एक भी कुमारीका सतीत्व सुरक्षित न रहेगा तथा किसी भी धनवान व्यक्तिकी दौलत न बचेगी? और अब देशी नरेशों और मुसलमानों की उन करोड़ों निहत्थे लोगोंसे ब्रिटिश संगीनोंके जोरपर रक्षा करनेकी बात कही जा रही है जिनका खास प्रतिनिधित्व करनेका कांग्रेस दावा करती है और जिनसे अपनी रक्षा करने में ये नरेश और मुसलमान स्वयं ही पूरी तरह समर्थ हैं। जो भी हो, कांग्रेसको तो अपनी सीधी राह ही चलना है। अपने मार्गमें उपस्थित तमाम कठिनाइयोंसे जूझते हुए भी उसे साम्प्रदायिक एकताके लिए काम करना है। यह उसके कार्यक्रमका एक अंग है, उसकी अहिंसक कार्य-पद्धतिका एक हिस्सा है।

एक अन्य अंग्रेज समालोचकने इस समस्याको अधिक सही परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत किया है। और बहुत सारी बातोंके साथ वे कहते हैं "अंग्रेज लोग ऐसा महसूस करते हैं कि इस भीषण संग्रामके समय ग्रेट ब्रिटेनको मुस्लिम-संसारको अपने साथ रखनेकी जरूरत है।" इस स्थितिके साथ सहानुभूति रखनेमें मुझे कोई अड़चन नहीं। अलबत्ता हमें मुद्दा साफ-साफ समझ लेना चाहिए। ग्रेट ब्रिटेन न्यायकी खातिर हारनेकी जोखिम नहीं उठा सकता। अधिकांश भारतवासी यही महसूस करते हैं। ब्रिटेनको खुले दिलसे सहायता देनेके पहले कांग्रेस यह यकीन कर लेना चाहती है कि ब्रिटेनका पक्ष पूरी तरह न्यायसम्मत है। हालकी घटनाओंने इस बारेमें गम्भीर सन्देह पैदा कर दिया है। अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी पूरी रक्षा करनेकी चिन्ता कांग्रेसको ग्रेट ब्रिटेनसे कहीं अधिक है। अगर कांग्रेस खुद न्याय करनेको तैयार नहीं होगी तो वह किस मुंहसे दूसरोंसे न्याय माँगेगी, और उसे देगा भी कौन? अहिंसक

संस्थाओंके लिए यही एक मार्ग है कि उनकी नीयतपर किसीको शक न हो। परन्तु हो सकता है, ब्रिटिश नीति इस समय न्यायसम्मत समाधानको असम्भव बना दे।

सेगाँव, २८ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-१२-१९३९

४४७. चक्करमें डालनेवाली स्थिति

जवाहरलाल जन्मजात लोकवादी ठहरे, सो उन्होंने मेरे और संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कार्यकारिणीके बीच बेबाक चर्चाकी व्यवस्था की थी।[1] हमने तीन बार इस तरहकी चर्चा की। मैंने समझ रखा था कि इससे हमारे रास्ते अलग हो जायेंगे। मेरे सामने जो कांग्रेसी आये उनमें कुछ ऐसे भी थे जो चरखे और अहिंसाकी हँसी उड़ा चुके थे। परन्तु मैंने आश्चर्यके साथ देखा कि वे दोनों चीजोंपर राजी हो गये हैं। यह स्थिति कांग्रेसजनों और मेरे, दोनोंके लिए चक्करमें डालनेवाली है।

कह नहीं सकता कि जो कांग्रेसी कलतक मुझमें आस्था नहीं रखते थे, उनके नेतृत्वका भार उठाने में मैंने कोई अक्लमन्दी की है। वे लड़ाईमें मुझे अपना सेनापति बनाने की खातिर बहुत बड़ी कीमत तो नहीं चुका रहे हैं? अगर वे आस्थाके बिना ही आज्ञा-पालन करते हैं, तो यह उनके या मेरे लिए क्या अच्छी बात है? उस हालतमें क्या मैं उन्हें सफलताकी मंजिलतक ले जा सकूँगा? अगर मैं शान्ति-कालमें उनके काम का नहीं था तो लड़ाईके वक्त कैसे हो जाऊँगा? शान्ति-काल तो खैर था भी नहीं। जबतक स्वाधीनता हासिल नहीं हो जाती, तबतक ग्रेट ब्रिटेनसे कांग्रेसकी लड़ाई ही है। वह कभी बन्द नहीं हुई थी, सिर्फ सविनय अवज्ञाको पहलेसे ज्यादा और बेहतर तैयारीके लिए स्थगित कर दिया गया था। इस तैयारीके समयमें जिन कांग्रेसियोंने हिदायतोंपर अमल नहीं किया वे निश्चय ही लड़ाईके मैदानमें सिपाही होने के योग्य न थे। फिर भी इलाहाबादमें मेरे सामने जो जिम्मेदार लोग आये उनपर मैं अविश्वास नहीं कर सकता था। जो बात इन लोगोंपर लागू होती है वही दूसरे प्रान्तोंके कांग्रेसजनोंपर भी लागू होती है। और इसलिए मैं यह बोझा अपने कन्धोंपर ले रहा हूँ।

तब मैं अपने मनकी बात साफ-साफ क्यों न कह दूँ? मुझे आशा है कि कांग्रेसजन 'हरिजन' को यह मानकर पढ़ने का ध्यान रखेंगे, मानों यह उनको निर्देश देनेवाला एक साप्ताहिक बुलेटिन है।

१. देखिए पृ० ४२०-२३।

अधीर कांग्रेसजनोंसे मेरा कहना यह है : निकट भविष्यमें सविनय अवज्ञाका ऐलान करने का मुझे कोई आसार नही दीखता। ग्रेट ब्रिटेनको परेशान करने के लिए सविनय अवज्ञा नही की जा सकती। वह उसी समय होगी जब निश्चित रूपसे अनिवार्य हो जायेगी। शायद सरकारी हलको द्वारा कोच-कोचकर मजबूर कर दिये जानेपर ही ऐसा करना पड़े। मुझे वाइसराय महोदय या भारत-मन्त्री महोदयकी ईमानदारीमें सन्देह नहीं है। साथ ही मुझे इसमें भी कोई शक नही कि वे गलतीपर हैं। इसका कारण यह है कि वे जिस पुरानी लीकपर चलने के आदी हैं वह उनसे छोड़ी नही जाती। हमें उन्हे सँभलने के लिए समय देना चाहिए। हमें अपने देश और विदेशोकी जनताको सच्ची बातें बताकर वास्तविक प्रचार-कार्य करना चाहिए। हमारे चारो तरफ जो गलतफहमी फैली हुई है — और वह न सिर्फ अंग्रेज लोगोमें है, बल्कि अपने देशवासियोंमें भी है — उसे आनन-फानन दूर नहीं किया जा सकता। इसमें जरा भी शक नहीं है कि बहुतेरे गैर-कांग्रेसी मुसलमान ईमानदारीसे मानते हैं कि कांग्रेसी मन्त्रियोंने मुसलमानोकी शिकायतोपर काफी ध्यान नही दिया। गैर-कांग्रेसी मुसलमानो की शिकायतोपर तो अहिंसावादी कांग्रेसियोको खास तौरपर ध्यान देना चाहिए। यह कहने से कोई लाभ नही कि ये शिकायतें खामखाह की जाती हैं। मै खुद जानता हूँ कि बहुत-सी शिकायतें यो ही की गई हैं। लेकिन हममें इतना धीरज और शिष्टता होनी चाहिए कि हम इन शिकायतोंको गम्भीर समझकर हाथमें लें और साफ तौरपर साबित कर दें कि ये निराधार हैं। मेरा मतलब यह नही कि उन शिकायतोसे निपटने की कोशिश ही नही की गई। अभी तो मेरा सम्बन्ध महज इस बातसे है कि लोगो की शिकायतें हैं। इसलिए हमें यह प्रमाणित करने में समय लगाना चाहिए कि शिकायतोमें कभी कोई तथ्य था ही नही। अगर आगे जाँच करने से पता लगे कि हमसे भूलें हुई है, तो उनको ठीक करना चाहिए। हमें अपने मुसलमान भाइयों और दुनियाके सामने साबित कर देना है कि मुसलमानों या और किसीके एक भी उचित हितका बलिदान करके कांग्रेस स्वाधीनता नही लेना चाहती। हमें अल्पसख्यक सम्प्रदायोको अपने साथ करने के लिए कोई भी कोशिश उठा नही रखनी चाहिए। हममें जो छोटेसे-छोटे और कमजोरसे-कमजोर लोग हैं, उनके अधिकारोका इतनी सावधानीसे ध्यान रखना हमारी अहिंसाकी अनिवार्य शर्त है।

अगर यह सच है — और वास्तवमें सच है — कि कौमी एकताके अभावको आजादीके लिए रुकावट बताना अंग्रेजोंके लिए गलत दलील है, तो यह भी उतना ही सच है कि यह फूट स्वराज्यतक पहुँचने के हमारे रास्तेमें एक बड़ी बाधा है। अगर मुस्लिम लीग और दूसरोंको हम अपने साथ ले सकें तो हमारी मांगको कौन अस्वीकार कर सकता है ?

यह तो हुई बाहरी कठिनाइयोंकी बात। जबतक हम इन्हें हल करने में काफी समय नही लगाते तबतक सविनय अवज्ञा की बात हम नही सोच सकते।

हमारी भीतरी कमजोरियाँ भी कुछ कम नही है। मै चरखे और अहिंसामें महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध देखता हूँ। जैसे हथियारबन्द सिपाहीमें कमसे-कम अमुक गुणोंका

होना जरूरी है वैसे ही अहिंसक सैनिक अर्थात् सत्याग्रहीमें कुछ दूसरे और हथियार-बन्द सिपाहीसे शायद उलटे गुणोंका होना अनिवार्य है। इनमें से एक है कताई और उसके पहलेकी क्रियाओंमें पर्याप्त निपुणताका गुण। सत्याग्रही किसी-न-किसी उत्पादक कार्यमें लगा रहता है। और करोड़ों लोगोंके लिए कताईसे ज्यादा सरल और अच्छा कोई उत्पादक काम नही है। इससे भी बड़ी बात यह है कि यह तो शुरूसे ही हमारे अहिंसात्मक कार्यक्रमका एक अभिन्न अंग रहा है। जिस सभ्यताका आधार अहिंसा है वह हिंसाके लिए सगठित सभ्यतासे भिन्न ही होनी चाहिए। इस मौलिक सत्यके साथ कोई काग्रेसी खिलवाड़ न करे। जो बात मै हजारों बार कह चुका हूँ उसीको फिर दुहराता हूँ कि अगर करोड़ों लोग स्वराज्यकी खातिर और अहिंसाकी भावनासे कातने लगें, तो शायद सविनय अवज्ञाकी जरूरत ही न पड़े। ससारमें यह एक अभूतपूर्व रचनात्मक प्रयत्न होगा। 'दुश्मन' को दोस्त बनाने का यह अचूक उपाय है।

जो वार्त्ताएँ आवश्यक हो उन्हें चलाने के लिए और उनके विफल हो जानेपर सविनय अवज्ञाका संचालन करने के लिए कार्य-समिति मुझे अपना एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त करना चाहती थी। यह ऐसा भार था जिसे मै उठा नही सकता। मै सेगाँवमें पड़ा हुआ हूँ, इसलिए मेरा जनताके साथ सीधा सम्पर्क नही रहता। किसी विषयमें निर्णयपर पहुँचने के लिए मुझे बहुत-से तथ्योंकी यथार्थ और प्रत्यक्ष जानकारी की आवश्यकता होती है, इसलिए वर्त्तमान परिस्थितिमें अपनी अकेलेकी निर्णय-बुद्धि पर मेरा भरोसा नही है। मै तो हर घड़ी कार्य-समितिकी राय और हिदायत मिलनेपर ही काम कर सकता हूँ। समझौतेकी बातचीत भी मै अन्तिम रूपमें नही करूँगा। सच तो यह है कि यदि मुझे इस भारसे मुक्त कर दिया जाये तो मुझे खुशी होगी। लेकिन जबतक कार्य-समिति और साधारण काग्रेसजनोंका विश्वास और स्नेह मुझे प्राप्त है, और जबतक मै महसूस करता हूँ कि मुझमें आवश्यक योग्यताएँ हैं, तबतक मै किसी जिम्मेदारीसे बचने की कोशिश नही करूँगा।

सेगाँव, २८ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-१२-१९३९

४४८. सिन्धमें दंगे

सिन्धके दंगोंके[1] समाचार मैं दुःखपूर्ण जिज्ञासाके साथ पढ़ता रहा हूँ। बहुत-से लोग इस भ्रममें पड़े हुए हैं कि मेरे पास तो सारे रोगोंका उपचार है। काश! ऐसा होता, हालाँकि कह नहीं सकता कि यदि ऐसा होता तो वह विशुद्ध वरदान ही साबित होता। अगर मैं ऐसी शक्तिका बिना सोचे-विचारे सर्वत्र प्रयोग करने लगता तो लोगोंको असहाय बना देता। और यदि मैं उसका मनचाहा उपयोग न कर सकूँ तो वह किसी कामका नहीं होता। बहरहाल, स्थिति यह है कि आज मुझमें जो शक्ति है उसका मैं पूरा-पूरा उपयोग करता हूँ। और प्रभुकी बड़ी कृपा है कि वह शक्ति इतनी सीमित है कि हानिकर हो ही नहीं सकती। लेकिन मेरा मुख्य कार्य लोगोंको यह सिखाना है कि वे अपनी मदद आप कैसे कर सकते हैं।

नीचे शिकारपुरसे प्राप्त एक करुणाजनक तार दे रहा हूँ.

> दंगा-फसाद, लूटपाट और आगजनीका बाजार गरम। सक्खर जिलेके गाँवोंमें हिन्दुओंका कत्लेआम और स्त्रियों तथा लड़कियोंपर बलात्कार और उनका अपहरण। हिन्दुओंकी जान-माल असुरक्षित। स्थिति अत्यन्त संकटापन्न। सरकारी नीतिमें कोई दृढ़ता नहीं। कृपया कोई जाँच-समिति शीघ्र भेजें, जो स्थितिका स्वयं जायजा ले।

इस ढंगका यह तीसरा सन्देश है। पहले दो सन्देशोंपर मैंने इसलिए ध्यान नहीं दिया कि मैं इलाहाबादमें बहुत व्यस्त था और मेरे पास उन लोगोंको देने के लिए कोई ठोस सान्त्वना नहीं थी। शिकारपुर पंचायतने एक गलत व्यक्तिसे सहायताकी माँग की है। क्योंकि मैं तो खुद ही लाचार हूँ। कांग्रेस अब भी अहिंसाके क्षेत्रमें इतनी प्रगति नहीं कर पाई है कि दंगों आदिसे निबट सके। यदि उसे अपनी प्रतिष्ठा कायम रखनी है तो उसे ऐसी परिस्थितियोंसे निबटने के लिए अपने अन्दर पर्याप्त अहिंसाका विकास करना ही होगा। मैंने शान्ति-सेना संगठित करने का सुझाव दिया था। लेकिन वह सुझाव यदि अव्यावहारिक नहीं तो समयसे पहले दिया गया तो साबित हुआ ही। इसमें सन्देह नहीं कि सिन्ध सरकारको अपने क्षेत्रके लोगोंकी जान-मालकी रक्षा करने में समर्थ होना चाहिए। स्पष्ट है कि स्थिति उसके नियन्त्रणसे बाहर है। सिन्ध नाममात्रको स्वशासित प्रान्त है और इस हदतक वह पिछली सरकारकी अपेक्षा जान-मालकी हिफाजत करने में कम समर्थ है। कारण, उसको

१. दंगे १ अक्तूबर, १९३९ को उस समय भड़क उठे थे जब सक्खरके मुसलमानोंने मंजलगाहका कब्जा पाने के लिए सत्याग्रह आरम्भ किया। २० नवम्बरको सिन्ध सरकारको दंगाइयोंकी हिंसाका मुकाबला करने के लिए गोलीबारीका सहारा लेना पड़ा।

पुलिस-व्यवस्था या सेनाके ठीक उपयोगकी कलाका प्रशिक्षण पहले कभी नहीं मिला है। अपने पहलेके लेखोंमें मैं दिखा चुका हूँ कि केन्द्रीय सरकार दंगोंके सिलसिलेमें होनेवाली जान-मालकी क्षति और उससे भी ज्यादा बुरी दूसरी चीजोंको रोकने में सर्वथा असमर्थ है। जब वह चाहती है तो दंगोंके प्रसारको रोकने और अपराधियोंको दण्ड देने की सामर्थ्यका परिचय जरूर देती है। उसका संगठन केवल साम्राज्यके व्यापारको संरक्षण देने और इसलिए जिस हदतक व्यापारिक सुरक्षाके लिए शान्तिकी रक्षा करना आवश्यक है, उस हदतक उसकी रक्षा करने के लिए किया गया है। इसलिए लोगोको सच्ची सुरक्षा प्रदान करने की सामर्थ्य और साधन उसके पास नहीं हैं। ऐसी सुरक्षाके लिए यह आवश्यक है कि लोगोको आत्मरक्षाकी कला सिखाई जाये और दंगे आदिको दबाने के लिए उनका सहयोग प्राप्त किया जाये। लेकिन इससे तो साम्राज्यवादी शासन ही खतरेमें पड़ जायेगा।

अब, मेरे पास तो सिन्धियोंको सहायता देने का एक ही कारगर तरीका है कि मैं उन्हें अहिंसाकी राह दिखला दूं। लेकिन अहिंसाकी कला एक दिनमें नहीं सीखी जा सकती। दूसरा रास्ता वह है जिसपर दुनिया आजतक चलती रही है। तात्पर्य जान-मालकी सशस्त्र रक्षासे है। ईश्वर उसीकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करता है। सिन्धी लोग इसके अपवाद नहीं हैं। उन्हें डाकू-लुटेरों आदिसे अपनी रक्षा करना सीखना है। यदि वे निरापद नहीं महसूस करते और इतने कमजोर हैं कि अपनी रक्षा आप नहीं कर सकते तो उन्हें वह जगह, जो उनके रहने के लिए बहुत प्रतिकूल साबित हुई है, छोड़ देनी चाहिए।

सेगाँव, २८ नवम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-१२-१९३९

४४९. पत्र : अमृतकौरको

२८ नवम्बर, १९३९

प्रिय अमृत,

बस एक-दो पंक्तियाँ लिखने का ही समय है। महादेव बापाकी[1] खातिर बम्बई गये हुए हैं। मैं गलेतक काममें डूबा हुआ हूँ। मौसम तो अत्युत्तम है।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९४९)से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२५८ से भी

१. अमृतलाल वि० ठक्करकी सत्तरवीं जयन्तीके उत्सवमें सम्मिलित होने के लिए

४५०. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा (म० प्रा०)
२९ नवम्बर, १९३९

प्रिय पगली,

आश्चर्यकी बात है कि लगातार तीन दिनसे तुम्हारा कोई पत्र नही आया है। किन्तु मै इसका यथासम्भव शुभ अर्थ ही लगा रहा हूँ कि डाक गलत पतेपर भेजी गई है या बहुत देरसे भेजी गई है और सब कुशल-मगल है। यहाँ सब कुशल है। मरीजोंका हाल काफी अच्छा है। आज मुझे कुछ समय मिला है कि अटकी हुई डाकको निबटा लूँ।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च .]

अभी-अभी तुम्हारे दो पत्र एकसाथ मिले है। २५ तारीखका लिखा तुम्हारा पत्र उदास मनसे लिखा गया है—यह उदासी अनावश्यक है। तुम्हें अलमारी तो मिल जायेगी, किन्तु उसे तुम्हारे आने पर बनवाना या खरीदना पडेगा। तानाशाही-जैसी तो कोई बात नहीं, किन्तु जो-कुछ है वह उतना ही गम्भीर है। मैं यह तो नही कह सकता कि जवाहरलाल इसमें खुशीसे शामिल रहा है। समय अपनी कहानी आप बतायेगा। 'हरिजन' वस्तुस्थितिका सच्चा दर्पण है। इसलिए तुम्हे कुछ और बताने की सचमुच कोई आवश्यकता नही है।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५०) से; सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ७२५९ से भी

४५१. पत्र : भारतन् कुमारप्पाको

२९ नवम्बर, १९३९

प्रिय भारतन्,

यदि केल्लपन अभी वही हों तो साथका पत्र उन्हें दे देना।

स्नेह।

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५८८) से।

४५२. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
३० नवम्बर, १९३९

प्रिय अमृत,

आज फिर तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। यह चिट्ठी[1] (जो पीछे है) और एक अपील, जिसकी एक प्रति 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में से तुमने भी मुझे भेजी थी, आज ही तुम्हारे नाम बुक-पोस्टसे आई है। तुम्हारी टिप्पणी[2] मैंने रख ली है। प्रकाशित करने योग्य है या नहीं, सो देखूँगा। शिक्षापर लिखी तुम्हारी टिप्पणी[3] रख ली है। मैंने अभी पढी नही है। अगर सन्तोषजनक लगी तो किसी दिन प्रकाशित हो जायेगी। तुम्हे मेरे साथ धैर्यसे काम लेना होगा। रही बात नायकम्[4] और आशा[5] की, सो हम सबको एक-दूसरेके प्रति सहिष्णु रहना चाहिए।

महादेव अभीतक नही लौटे है। कल लौट आना चाहिए। उसने बम्बईमें कमाल कर दिखाया। १५,००० से अधिक रुपये इकट्ठे कर लिये। थैली[6] एक लाख सत्तरह हजार रुपयेकी बन पड़ी।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

आशा है, तुम्हारा फोडा ठीक हो गया होगा।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५१) से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२६० से भी

१. यह ख्रीष्टीय गृह समितिके मन्त्री जे० एन० विल्सनके हस्ताक्षरसे जारी की गई मुद्रित गश्ती चिट्ठी थी, जिसमें ईसाइयोंसे "महायुद्धके मूलभूत कारणोंके विरुद्ध धर्मयुद्धमें शामिल होने" और "इस विकट समयमें सब प्रकारके दमन और शोषणका विरोध करने" का अनुरोध किया गया था। इसके साथ वाइसरायके नाम एक घोषणापत्र भी भेजा गया था।

२. यह "क्रिश्चियन ड्यूटी" (क्रिश्चयन लोगोंका कर्त्तव्य) शीर्षकसे ९-१२-१९३९ के हरिजनमें प्रकाशित हुआ था।

३. यह "ए के वुमन्स इम्प्रेशन्स" (एक सामान्य महिलाके विचार) शीर्षकसे ३०-१२-१९३९ के हरिजनमें प्रकाशित हुआ था।

४ और ५. ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम् तथा उनकी पत्नी आशादेवी

६. ठक्कर बापाको भेंट करने के निमित्त

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

सिकन्दर हयात खाँका पत्र[1]

शिमला
२० जुलाई, १९३९

प्रिय महात्माजी,

आपका १७ जुलाईका पत्र मुझे आज सुबह मिला। उसके लिए अनेक धन्यवाद। यह पत्र मिलने से पहले १८ जुलाईको आपको लिख चुका हूँ।

खेद है, प्रस्तावित लाहौर निगममें हरिजनोंके प्रतिनिधित्वके बारेमें आपके सवालका जवाब देनेका ध्यान मुझे नहीं रहा। मैंने सम्बन्धित मन्त्रीसे पूछताछ की तो मालूम हुआ कि विधेयकमें हरिजनोंको पृथक् निर्वाचक-मण्डल देने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। अभी चुनाव और प्रतिनिधित्वका तरीका नियमोंमें ही शामिल है और विचार है कि नये कानूनमें भी इस मामलेको नियमोंमें ही रहने दिया जाये। मुझे लगभग पूरा यकीन है कि जब विधानसभामें विधेयकपर विचार आरम्भ होगा उस समय हरिजनोंके लिए पृथक् निर्वाचक-मण्डलका सवाल उठाया जायेगा, क्योंकि हरिजन-संस्थाओंकी ओरसे कई आवेदनपत्र मिले हैं। जहाँतक सरकारका सम्बन्ध है, जबतक विधानसभाके हरिजन सदस्य मौजूदा रीतिमें सशोधन करनेका आग्रह नहीं करेंगे तबतक उसका विचार उसमें कोई परिवर्तन करनेका नही है; और अगर वे ऐसा आग्रह करेंगे तो निर्णय मुख्यत. इस बातपर निर्भर करेगा कि इस मामलेमें सदनका दृष्टिकोण क्या है। जैसा कि आप जानते है, खुद मुझे सयुक्त निर्वाचक-मण्डलपर कोई आपत्ति नही है, लेकिन दुर्भाग्यवश पिछले कुछ वर्षोंसे घटनाक्रम कुछ ऐसा रहा है कि दोनो बडे समुदायोंके बीच सच्चे सौहार्दके अभावमें उसे कायम करना और भी कठिन हो गया है।

सघ-व्यवस्थाकी मेरी वैकल्पिक योजनापर आपने ध्यानपूर्वक विचार किया, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मै आपके एक-दो भ्रमोंका निवारण कर देना चाहता हूँ। आपके मनमें ये भ्रम इसलिए पैदा हुए कि आप मेरी योजनाका भारत सरकार अधिनियममें निहित योजनाके साथ तुलनात्मक अध्ययन करनेका समय नही निकाल पाये। मेरे सुझावोंमें भारत सरकार अधिनियममें प्रस्तुत योजनाको पूर्ण

1. देखिए पृ० ४ और २९।

रूपसे रद्द कर देनेकी कोई तजवीज नही है। ज्यादासे-ज्यादा अधिनियमके लगभग आधा दर्जन खण्डोमें कुछ फेर-बदल करना होगा और शायद दो-तीन खण्ड और जोड़ने पड़ेंगे। बेशक मेरी योजनाके अनुसार सघीय, प्रान्तीय और सहवर्ती सूचियोंमें परिवर्तन करना पड़ेगा। मैंने अपने १८ जुलाईके पत्रके साथ जो सशोधित सूची भेजी थी उसमें आपने यह चीज देखी भी होगी। मेरी योजनामें जिन 'क्षेत्रीय' विधानमण्डलोंकी तजवीज है, उनके सम्बन्धमें भी आपको कुछ गलतफहमी हुई जान पड़ती है। आपने देखा होगा कि विभिन्न क्षेत्रोको कोई कार्यपालक सत्ता देनेका मेरा विचार नही है, और क्षेत्रीय विधानमण्डलोंको सौंपे जानेवाले विधि-निर्माणके अधिकारोका प्रयोजन केवल 'क्षेत्र' विशेषकी विभिन्न इकाइयोंको एक-दूसरेके निकट लाना है, ताकि उनके बीच पारस्परिक विश्वास कायम हो सके। उसमें कोई अतिरिक्त खर्च नही पड़ेगा, क्योकि क्षेत्रीय विधानमण्डलके सदस्य सघीय विधानमण्डलके भी सदस्य होंगे, और सभी क्षेत्रीय विधानमण्डलोके सदस्य मिलकर संघीय विधानमण्डलकी रचना करेंगे। उनके लिए अलग इमारत या संगठनकी आवश्यकता नही होगी। जब-कभी जरूरी होगा, वे ऐसे विधानकी पुष्टि करने या उसे पारित करने के लिए अपनी संयुक्त बैठक करेंगे जिसपर 'क्षेत्र'-विशेषकी इकाइयोकी सहमति होगी। सच तो यह है कि मेरी योजना अपेक्षाकृत कम व्ययसाध्य होगी, क्योंकि मैंने द्विसदनीय सघीय विधानमण्डलके बजाय एक-सदनीय विधानमण्डलका सुझाव रखा है।

जहाँतक सेनाके गठनका सवाल है, सेनाकी शान्तिकालीन संख्याकी हदतक मैंने पूर्व स्थितिको कायम रखने के अतिरिक्त और कोई सुझाव नहीं दिया है। जैसा कि मैंने हम दोनोकी बातचीतमें आपको बताया था, इस व्यवस्थापर मेरा आग्रह इसलिए है कि मैं पारस्परिक विश्वास कायम करना चाहता हूँ और राष्ट्रीय मेल-जोल तथा एकताको सुदृढ आधार प्रदान करना चाहता हूँ।

औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्वीकृतिके बारेमें मैं आपकी बातोंको समझता हूँ। मैं इस बातसे बाखबर हूँ कि देशके सभी राजनीतिक सगठनोंने अब 'पूर्ण स्वराज्य' को अपना अन्तिम लक्ष्य बना लिया है। लेकिन मुझे यकीन है, आप मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि मौजूदा परिस्थितिमें अगर सार-तत्त्व हमारी पहुँचके अन्दर है तो उसे छोड़कर छायाको पकड़े रहना समझदारीकी बात नही होगी। आखिर हम यही तो चाहते हैं कि हमारे देशके प्रशासन और राज-काजपर हमारा पूर्ण नियन्त्रण हो, और औपनिवेशिक स्वराज्य पा लेने से यह चीज हमें मिल जायेगी। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि हमारे कुछ देशभाई अपनी पूर्ण स्वराज्यकी माँगको छोड़नेके बजाय मृग-मरीचिकाके पीछे भागना ज्यादा पसन्द करते हैं; लेकिन उन्हें छाया छोड़कर सार ग्रहण करने के लिए मनाना तो आप-जैसे प्रमुख देशभक्त और नेताका ही काम होगा।

अपने पत्रमें आप कहते हैं: "लीगकी ओरसे पेश किये गये प्रस्तावोंमें केवल आपका प्रस्ताव ही रचनात्मक है।" मैं आपको स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि मेरी योजनाका लीगसे कोई सरोकार नही है। इसे अकेले मैंने तैयार किया है और इसे

तैयार करने में मैंने लीगके किसी भी सदस्यसे, बल्कि सच पूछिए तो देशके अन्य किसी भी दलके किसी सदस्यसे कोई परामर्श नहीं किया है। उसे हमारी साम्प्रदायिक और राजनीतिक समस्याओंका समाधान प्रस्तुत करने के उद्देश्यको ध्यानमें रखकर तैयार किया गया है, और मुझे भरोसा है कि जिस भावनासे इसे तैयार किया गया है उसी भावनासे सभी सम्बन्धित लोग इसकी जाँच और अध्ययन करेंगे।

जहाँतक आपके साम्प्रदायिक समस्याके समाधानके मसौदे और उसपर मेरी टिप्पणियोंका सम्बन्ध है, अगर आप चाहते हो कि इस मामलेमें मैं आगे और कुछ करूँ तो आप अपने विचारोंके कुछ और अधिक स्पष्ट संकेत देने की कृपा करें। मैं यह समझता हूँ कि यह मसौदा केवल 'आपके' ही विचारोंको प्रतिबिम्बित करता है, लेकिन मेरे प्रयोजनके लिए तो वह इस रूपमें भी पर्याप्त है, बशर्ते कि मसौदेकी विभिन्न मदोंके बारेमें मेरे सुझाव आपको ठीक लगते हों। फिर मैं महत्त्वपूर्ण मुसलमान नेताओं और लीगकी कार्य-समितिसे बातचीत करके आपको उनकी प्रतिक्रियाओंसे अवगत करा सकता हूँ। मैंने बम्बईमें आपको अपना जो नोट दिया था उसमें उल्लिखित मुद्दोंके बारेमें आपकी हार्दिक सहमति और समर्थनका आश्वासन जबतक मुझे नहीं मिल जाता तबतक उन लोगोंसे अपने दृष्टिकोणको स्वीकार करवाने की मेरी कोशिशका कोई मतलब नहीं होगा। आपको यह भरोसा दिलाने की जरूरत नहीं कि हमारे बीच हो रहे पत्र-व्यवहारको बिलकुल गोपनीय रखा जायेगा। शायद आप लीगकी कार्य-समिति और अन्य प्रमुख मुसलमानोंसे मशविरा करना चाहेंगे। अगर इन बातोंके सम्बन्धमें सहमति हो जाये तो हम उनपर अनौपचारिक सहमति देने और उनकी पुष्टि करने के लिए दोनों कार्य-समितियोंके प्रतिनिधियोंकी सम्मिलित बैठक बुला सकते हैं।

जहाँतक सरकारी सेवाओंका सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता कि 'अल्पसंख्यकों' की कोटिमें आनेवाले समुदायोंकी संख्याके बारेमें हमें चिन्ता करने की कोई जरूरत है। इसका स्पष्ट उपाय यह होगा कि हर प्रान्तमें बहुसंख्यक समुदायका हिस्सा निर्धारित कर दिया जायेगा और शेषको अल्पसंख्यक समुदायोंके बीच बाँट दिया जायेगा। पंजाबमें हमने यही किया है। हमने ५० प्रतिशत मुसलमानोंको और ५० प्रतिशत गैर-मुसलमानोंको दे दिया है। जिस अनुपात (७ प्रतिशत)को बहुसंख्यक समुदायने स्वेच्छासे त्याग दिया वह लघुतर अल्पसंख्यक समुदायोंको अधि-प्रतिनिधित्व (वेटेज)के रूपमें दे दिया गया। गरज यह कि समस्या पहली नजरमें जितनी लगती है उतनी जटिल नहीं है। हमें जरूरत सच्चे हृदय-परिवर्तनकी है, और अगर ऐसा हो जाये तो मतभेदोंके निपटारेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। मेरा पत्र कुछ लम्बा हो गया है, लेकिन सम्बन्धित मामले इतने महत्त्व-पूर्ण हैं कि मुझे आपके पत्रमें उठाये गये मुद्दोंका किंचित् विस्तृत उत्तर देकर आपका कुछ अधिक समय लेनेपर विवश होना ही पड़ा।

स्नेह और शुभकामनाओं-सहित,

अंग्रेजीकी नकलसे : गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

परिशिष्ट २

हरिजन-सेवक सम्मेलनके प्रस्ताव[1]

४/७ जून, १९३९

१. हरिजन सेवकोका यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि हरिजन सेवकोंको उन मन्दिरोमें नही जाना चाहिए जिनके द्वार हरिजनोंके लिए खुले हुए नही हैं। यह बात साफ-साफ समझ लेनी चाहिए कि हरिजन सेवकोको ऐसे मन्दिरोमें न केवल पूजाके लिए, बल्कि दर्शनीय स्थानोंके रूपमें उन्हें देखने के लिए भी उनके अन्दर नही जाना है। लेकिन इस बातका खयाल रखा जाये कि यह नियम हरिजन-सेवाके आड़े नही आना चाहिए। इसी तरह हरिजन सेवकोंको उन सार्वजनिक सभाओंमें भी नही जाना है जिनमें हरिजनोका शामिल होना वर्जित है।

२. पश्चिमी और मध्य भारतके हरिजन सेवकोका पूनामें आयोजित यह सम्मेलन होलकर राज्यमें किये गये हरिजन कल्याण-कार्यकी, जिसका वर्णन प्रो० आर० के० यरदेईने किया है, बहुत कद्र करता है, लेकिन वह मानता है कि ७,००० रुपयेका अनुदान इस प्रयोजनके लिए बहुत कम है, और इसलिए महाराजा साहब होलकर और उनकी सरकारसे निवेदन करता है कि अनुदानको काफी बढा दें, ताकि कामको कुशल ढंगसे संगठित किया जा सके। इस सम्मेलनका यह विचार भी है कि बम्बई, मैसूर, त्रावणकोर और कोचिनकी तरह हरिजनोंके हितोंकी देख-भालके लिए विशेष अधिकारी नियुक्त करने से राज्यका हरिजन-उद्धार-कार्य अधिक अच्छी तरह सम्पन्न हो सकेगा।

३. सम्मेलनके मन्त्री द्वारा पेश किये गये ग्वालियर रियासतके हरिजन सेवक संघके कार्य-विवरणसे प्रकट होता है कि ग्वालियर सरकारके व्यावहारिक समर्थनके नितान्त अभावके कारण वहाँ हरिजन कार्यका नुकसान हो रहा है। महाराजा साहब ग्वालियरने अपने सार्वजनिक भाषणोंमें जैसे विचार बार-बार व्यक्त किये हैं उनको देखते हुए यह बड़े खेदकी बात है कि इस सम्बन्धमें ऐसी उदासीनता बरती जा रही है। सम्मेलन ग्वालियर रियासतके प्रशासन और शासकका ध्यान हरिजनोकी अवस्थाको सुधारने और अस्पृश्यता निवारणकी आवश्यकताकी ओर आकृष्ट करता है। इस प्रयोजनके लिए सम्मेलन एक विशेष अधिकारीकी या एक समितिकी नियुक्ति और वार्षिक बजटमें एक अच्छी-खासी रकमका प्रावधान करने की प्रार्थना करता है। इस सम्मेलनकी यह भी राय है कि हरिजनोंको सार्वजनिक कुओं, तालाबों, मन्दिरों, यातायातके साधनो और स्कूलोंके उपयोगके

१. देखिए पृ० ५३।

नागरिक अधिकार देने के वारेमें रियासतकी नीतिकी मार्वजनिक घोषणा अविलम्ब की जाये।

४ शारीरिक कार्य — विशेष रूपमे जिनको करने में गन्दी चीजोका स्पर्श करना पड़ता है ऐसे शारीरिक कार्य — करने की लोगोमें जो सर्वत्र अनिच्छा पाई जाती है, वह अस्पृश्यताकी प्रथाके चलनका एक कारण है। उदाहरणके लिए, भगीका काम, मरे ढोरोकी खाल उतारने का काम, चमड़ा कमाने और चमडेकी चीजें वनाने का काम, नाईका काम और इसी तरहके दूसरे कार्य व्यक्तिको अपवित्र करने वाले माने जाते हैं। इसी प्रकार किसी तथाकथित निम्नतर जातिके आदमीकी व्यक्तिगत शुश्रूपा और आतिथ्य भी वर्जित है।

अस्पृश्यताको पूर्ण रूपसे मिटाने के लिए सामाजिक दृष्टिसे इन परम उपयोगी कार्योंके प्रति घृणाकी गलत भावनाको यथासम्भव जल्दसे-जल्द दूर करना आवश्यक है। इसलिए यह सम्मेलन सभी हरिजन सेवको और हरिजन-उत्थानमें रुचि रखनेवाले अन्य लोगोसे अनुरोध करता है कि उन्हें अपने हाथोसे उपर्युक्त कार्य करके ससारको यह वतलाने में सकोच नहीं करना चाहिए कि इन कार्योंमें कोई अप्रतिष्ठा नही है और न उनको करने से कोई अपवित्र हो जाता है।

यह सम्मेलन हिन्दू भाइयो और बहनोंसे यह अनुरोध भी करता है कि वे विश्वास रखें, किसी भी प्रकारसे किसी की भी व्यक्तिगत सेवा करने से कोई अपनी विरादरी नही खो वैठता। इस धार्मिक सिद्धान्तको अपने ध्यानमें रखकर उन्हें अपने घर आनेवाले किसी भी जातिके अतिथिका वैसा ही सत्कार करना चाहिए जैसा वे अपनी जातिके अतिथिका करेंगे। ऐसे अतिथियोकी सेवा करते हुए किसीके मनमें अपराध-भावना नही होनी चाहिए।

स्वाभिमानी हरिजनोंमें अपने पुश्तैनी धन्धेको छोडने की वढती हुई प्रवृत्ति दिखाई दे रही है, जिसका कारण यह है कि इन धन्धोको समाजमें तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाता है। यद्यपि यह सम्मेलन ईमानदारीके किसी भी धन्धेको नीचा नही मानता, यह हरिजनोकी भावनाके औचित्यको पूरी तरह समझता है और घोषित करता है कि अगर वे चाहें तो उन्हें अपने धन्धे छोड़ने का पूरा अधिकार है, और सवर्ण हिन्दुओका उन्हें वे काम करने पर विवश करना अन्यायपूर्ण होगा।

५. अस्पृश्यताको मिटाने और शीघ्रतासे हरिजनोके उन्नयन के लिए सम्मेलन हरिजन सेवक संघके सभी सम्वन्धित प्रान्तीय वोर्डोंसे ऐसे आवश्यक कदम उठाने का अनुरोध करता है जिससे, जिन स्थानोंमें जिला स्कूल वोर्ड या नगरपालिका स्कूल वोर्डके स्कूल पहलेसे मौजूद हैं, उन स्थानोंमें कमसे-कम हरिजनोंके निमित्त प्रायमिक शिक्षा नि:शुल्क और अनिवार्य हो जाये।

६. इस अवसरपर सम्मेलन हरिजन सेवक सघके हरिजन छात्रावासोंके प्रवन्धकोंको यह वताना चाहता है कि हरिजन छात्रावास चलाने का उद्देश्य हरिजनो का पृथक्करण नही है, और इसलिए तमाम हरिजन उपजातियोंके वालकों और वालिकाओ और कुछ सवर्ण हिन्दू वालक-वालिकाओंको भी हरिजन छात्रावासोंमें

दाखिल करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए, बशर्ते कि सवर्ण हिन्दू छात्र-छात्राओंके खर्चका कोई बोझ संघपर न पड़े।

७. सम्मेलनकी राय है कि हरिजनोंको, जिन्हें सामान्य नागरिक अधिकारका उपभोग करने पर सामाजिक बहिष्कारका शिकार बनना पड़ता है, कानूनी संरक्षण दिया जाना चाहिए, और सम्मेलन बम्बई सरकारसे सिफारिश करता है कि सरकार जो अन्य विधान बनाने का विचार कर रही है उसके साथ-साथ, आंशिक संरक्षणकी कारवाईके रूपमें, उपयुक्त विधान बनाकर यह व्यवस्था कर दे कि यदि कोई दुकानदार या जीवनके लिए आवश्यक वस्तुओंका नियमित विक्रेता किसी हरिजन या उसके नौकरों या उसके परिवारके आश्रितोंको ऐसी चीजें बेचने से इस कारण — बतौर सामाजिक बहिष्कारके — इनकार करे कि सम्बन्धित हरिजनोंने सामान्य नागरिक अधिकारोंका उपभोग करने का प्रयत्न किया था उनका उपभोग किया तो यह दण्डनीय अपराध होगा।

८. सम्मेलन यह प्रस्ताव करता है कि विभिन्न प्रान्तीय बोर्ड अपने-अपने क्षेत्रोंकी नगरपालिकाओंसे अपने हरिजन कर्मचारियोंके लिए बम्बई नगरनिगमके ढंगका कल्याण कार्य आरम्भ करने का अनुरोध करें, और नगरपालिकाओंसे कमसे-कम जुर्मानेसे होनेवाली आयका उपयोग इस प्रयोजनके निमित्त करने का निवेदन किया जाये।

निम्नलिखित बुनियादी बातोंको ध्यानमें रखकर काम करने का सुझाव दिया जा सकता है: मनोरंजनात्मक, शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक और कल्याण-कार्यमें श्रमिक कल्याण-अधिकारीका कार्य — अर्थात् कर्मचारियोंकी कार्य-परिस्थितियोंसे सम्बन्धित शिकायतें प्राप्त करने और उनका निवारण करने का काम — भी शामिल होगा।

९. सम्मेलन हरिजन सेवक संघके प्रान्तीय बोर्डों और स्थानीय समितियोंसे आग्रह करता है कि कुओं, होटलों आदिके सम्बन्धमें हरिजनोंको नागरिक अधिकार दिलाने के लिए संगठित और विशेष प्रयत्न करें।

१०. सम्मेलनकी राय है कि बम्बई प्रान्त के सरकारी अनुदान पानेवाले सभी माध्यमिक विद्यालयोंमें योग्य हरिजन विद्यार्थियोंकी यथासम्भव जल्दीसे-जल्दी नि.शुल्क शिक्षा सुलभ कराने के लिए बम्बई सरकार आवश्यक कदम उठाये।

११. चूंकि विविध हरिजन क्षेत्रोंमें पंसारीकी दुकानें नहीं हैं और हरिजनोंको अन्य लोगोंकी दुकानोंसे बहुत ऊँची कीमतोंपर अनाज आदि खरीदना पड़ता है, इसलिए यह सम्मेलन हरिजन सेवक संघोंसे अनुरोध करता है कि वे पर्याप्त हरिजन आबादीवाले गाँवोंमें सहकारिताके आधारपर ऐसी दुकानें खुलवाने की कोशिश करें।

१२. यह सम्मेलन सभी हरिजन सेवकोंसे अनुरोध करता है कि उन्हें हरिजन-सेवाके कार्यमें कार्यकर्त्ताओंका सक्रिय सहयोग प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

१३. चूंकि अनुभवसे यह देखा गया है कि विधानमण्डलों तथा स्थानीय संस्थाओंके ऐसे बहु-सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्रों, जिनमें हरिजनोंके लिए स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं, सवर्ण हिन्दू मतदाता और हरिजन मतदाता आमतौर पर पारस्परिक आदान-प्रदानके भावसे मत नहीं देते, और चूंकि भ्रातृत्वकी भावना पैदा करना और पूना-समझौतेके[1] इस वास्तविक प्रयोजनको पूरा करना आवश्यक है कि मत पारस्परिक आदान-प्रदानके भावसे दिये जायें, इसलिए यह सम्मेलन सभी सवर्ण हिन्दू मतदाताओंसे कमसे-कम अपने एक मतका उपयोग हरिजन उम्मीदवारोंके लिए और हरिजन मतदाताओंसे कमसे-कम अपने एक मतका उपयोग सवर्ण हिन्दू उम्मीदवारोंके पक्षमें करने का अनुरोध करता है। इस सम्मेलनकी यह राय भी है कि हमारे सामने जो लक्ष्य है, उसकी प्राप्तिकी दृष्टिसे मतदानकी एकत्रित (क्यूम्युलेटिव) प्रणालीकी अपेक्षा विभाजित (डिस्ट्रिब्यूटिव) प्रणाली अधिक उपयुक्त है।

सेगाँव, ३० जुलाई, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-८-१९३९

परिशिष्ट ३

लॉर्ड लिनलिथगोका पत्र[2]

वाइसरायका शिविर, भारत (पुरी)
२ अगस्त, १९३९

प्रिय श्री गांधी,

आपके तारके लिए, जो मुझे अभी-अभी मिला है, अनेक धन्यवाद। इस समय वहाँसे निकलने में आपकी कठिनाईको मैं महसूस करता हूँ। मुझे इस बातकी आशंका थी कि शायद ऐसा करना आपके लिए सभव नहीं होगा, और वैसा ही हुआ भी। मैं ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहूँगा जिससे आपके शरीरपर थोड़ा भी जोर पड़े और मैं आशा करता हूँ कि मेरी ऐसी किसी सूचनासे कि आप मुझसे मिल जायें यदि आपको ऐसा लगे कि उससे वैसा परिणाम आना सम्भव है तो आप मुझे यह बताने में कदापि कोई संकोच नही करेंगे। ऐसी स्थितिमें मैं आपको गलत नही समझूंगा।

२. इसी माह बादमें किसी समय मिलने के आपके इस सुझावको मैं आपकी मेहरबानी मानता हूँ। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, मेरे पास चर्चाके लिए कोई खास विषय नहीं है और मेरा यह निमन्त्रण कि आप मुझसे दिल्लीमें मिल लें, महज

१. सितम्बर १९३२ का; देखिए खण्ड ५१, परिशिष्ट २।
२. देखिए पृ० ५८-५९।

मेरी इस इच्छाका निष्पादन है कि आपके साथ मेरा सम्पर्क बना रहे और मैं समय-समयपर मिलता भी रहूँ। मैं आपको शिमलाकी थका देनेवाली यात्राका कष्ट भी नही देना चाहता। इसलिए मैं सोचता हूँ कि हम फिलहाल स्थितिको ऐसी ही बनी रहने दें। अब मैं पहाड़से वापस आने के बाद, किसी समय इस सालके अन्तिम महीनोंमें आपसे मिलने की आशा करूँगा।

सद्भावनापूर्वक,

हृदयसे आपका,

श्री मो० क० गांधी,
सेगाँव

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८३१) से; सौजन्य: घ० दा० बिड़ला

परिशिष्ट ४

काठियावाड़की रियासतें[1]

संख्याकी दृष्टिसे देखा जाये तो पश्चिमी भारतकी रियासतोंसे सम्बन्धित एजेंसी राजनीतिक विभागके प्रशासनिक नियन्त्रणमें काम करनेवाली सबसे बड़ी एजेंसी है। काठियावाड़की सभी २८४ रियासतें इसी एजेंसीमें आती हैं। भारतकी कुल ५६२ रियासतोंमें से आधी काठियावाड़में ही हैं। क्षेत्रफल तथा शासन-पद्धतिकी दृष्टिसे इन रियासतोंमें यथासम्भव अधिकसे-अधिक विविधता देखने को मिलती है। एक ओर तो ८,२५० वर्गमील क्षेत्रवाली कच्छ और डेढ़ करोड़की आमदनीवाली भावनगरकी रियासतें हैं; तो दूसरी ओर.... रियासत है, जिसका क्षेत्रफल मात्र ०.२९ वर्ग-मील, आबादी सिर्फ २०६ और सालाना आमदनी केवल ५०० रुपये है।... अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द इंडियन स्टेट्स ऐंड प्रिंसेस' लिखते समय निश्चय ही सर जॉर्ज मैकमनके मनमें इन छोटी-छोटी रियासतोंका खयाल रहा होगा। पुस्तकके प्रथम अध्यायमें ही वे कहते हैं:

> भारतके देशी नरेशोंकी संख्या पाँच से छह सौके बीच है, और उनकी रियासतोंमें जहाँ फ्रान्सके एक-तिहाई हिस्सेके बराबर पड़नेवाली निजामकी रियासत-जैसी बड़ी रियासतें शामिल हैं, वही इतने छोटे-छोटे इलाके भी शामिल हैं जिनका क्षेत्रफल बैटरसी पार्कसे बड़ा नही है।

यह समझ लिया जाना चाहिए कि रियासतोंकी प्रजाकी असली माँग केवल सुशासनकी नही, बल्कि स्वशासन या उत्तरदायी शासनकी है। प्रशासनिक तन्त्रके व्यापक लोकतन्त्रीकरणसे कम कोई चीज उन्हें सन्तुष्ट नही कर सकती। चूँकि लोकतन्त्रीकरणमें अनिवार्यतः आर्थिक दायित्व भी कुछ बढ़ेंगे, इसलिए जिन रिया-

1. देखिए पृ० ९३, ९९ और १९०। यहाँ केवल कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

सतोंकी सालाना आय — मान लीजिए — ५० लाख रुपयेसे कम हो उनमें उत्तरदायी शासनकी माँग करना न तो लाभदायक है और न विवेकयुक्त। इसलिए ऐसी रियासतोंकी हदतक मौजूदा व्यवस्थाका एकमात्र विकल्प संयुक्त प्रशासन है।

छोटी-छोटी रियासतोंके लिए संयुक्त प्रशासनकी व्यवस्थाका यह विचार न तो नया है और न मात्र कल्पना-प्रसूत। देशी नरेशोंके कल्याणकी वाइसराय महोदयसे ज्यादा चिन्ता और किसे हो सकती है, लेकिन उन्होंने ही इस विचारको विज्ञापित किया है। लेकिन इस सिद्धान्तका बीज १९२८-२९ की बटलर कमेटीकी रिपोर्टमें देखा जा सकता है। रियासतोंके वर्गीकरणके सन्दर्भमें रिपोर्टमें कहा गया है:

> तीसरी श्रेणीकी कुल ३२७ रियासतोंमें से काठियावाड़ और गुजरातमें पड़नेवाली २८६ छोटी रियासतें, अधीश्वरी सत्ताके स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा नियुक्त अधिकारियोंके मातहत, थाना संज्ञासे अभिहित समूहोंमें संगठित हैं। ये अधिकारी विभिन्न प्रकारके और अलग-अलग प्रमाणमें दण्डात्मक, राजस्विक और नागरिक प्रशासनके अधिकारोंका उपभोग करते हैं। ज्यों-ज्यों प्रशासनका खर्च बढ़ता है, इन रियासतोंको यह आवश्यक प्रतीत होता जाता है कि कई रियासतोंके लिए एकसाथ काम करनेवाले अधिकारियोंको नियुक्त करके इस खर्चके बोझको अधिक बड़े क्षेत्रोंमें वितरित कर दिया जाये। सच तो यह है कि काठियावाड़की कुछ बड़ी रियासतोंमें एक ऐसा उच्च न्यायालय स्थापित करने की बात चल रही है जिसे कई राज्योंके समूहपर क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा।

इस प्रश्नपर वाइसराय महोदयके विचारोंका अन्दाजा उनके उस अभिभाषणसे लगाया जा सकता है जो उन्होंने गत मार्च महीनेमें देशी नरेश मण्डलके अधिवेशनका उद्घाटन करते हुए दिया था:

> सहयोग और सामूहीकरणकी आवश्यकता जैसी स्पष्ट, प्रत्यक्ष और आकुल छोटी रियासतोंके मामलेमें दिखाई देती है वैसी और किसी मामलेमें नहीं। जिन रियासतोंके साधन इतने सीमित हैं कि उनके लिए आधुनिक मापदण्डके अनुसार अपनी प्रजाकी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी कोई सम्भावना ही नहीं रह जाती है, उनके सामने वास्तवमें और कोई व्यावहारिक विकल्प नहीं है। इस अवसरपर मैं ऐसी रियासतोंके शासकोंको पूरे आग्रहके साथ समझाना चाहूँगा कि समझदारीका तकाजा यही है कि वे प्रशासनिक सेवाओंके मामलेमें जहाँतक व्यावहारिक हो वहाँतक अपने पड़ोसियोंसे मिलकर अपनी संयुक्त व्यवस्था कायम करने के लिए यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र कदम उठायें।

यद्यपि वाइसराय द्वारा प्रतिपादित संयुक्त संगठनका सिद्धान्त भारतकी सभी छोटी रियासतोंपर लागू हो सकता है किन्तु काठियावाड़की रियासतोंके लिए वह विशेष रूपसे उपयुक्त है। इन रियासतोंकी अपनी एक अलग विशेषता यह है कि अपने पड़ोसियों, अर्थात् गुजरातकी या मध्य भारतकी रियासतोंके विपरीत ये एक

सुबद्ध भौगोलिक इकाई हैं।... इस भौगोलिक अविच्छिन्नताके कारण इनके संयुक्त या समूहबद्ध होने, या कुछ ज्यादा सख्त शब्दका इस्तेमाल करने की इजाजत हो तो, महासंघबद्ध होने की प्रक्रियाका रास्ता बहुत सुगम है। इन सभी रियासतोंका कुल क्षेत्रफल बस ४०,००० वर्गमीलसे कुछ ज्यादा और आबादी ४२,२९,४९४ है। कुल वार्षिक आयका अन्दाजा लगभग छह करोड़ रुपयेका है।

पिछले तीन महीनोंके दौरान काठियावाड़के नरेशोंने कई बार अपनी बैठके की है, और... खबर है कि उन्होंने संयुक्त पुलिस दल, सभी रियासतोंके लिए एक आबकारी विभाग, चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य विभागकी सम्मिलित व्यवस्था तथा संयुक्त वन-विभाग और सबके लिए एक उच्च न्यायालय रखने की सम्भाव्यतापर विचार किया।... संयुक्त विधानमण्डलकी व्यवस्था किये बिना इन महत्त्वपूर्ण विभागोंके लिए संयुक्त प्रशासनकी व्यवस्था करना कितना निरर्थक है, यह सहज ही देखा जा सकता है। कारण, तब प्रश्न यह उठता है कि ये संयुक्त विभाग जिम्मेदार किसके प्रति होंगे? इन बीसों नरेशों और उनकी सरकारोंके प्रति तो नहीं ही होंगे। कोई भी एक ही समयमें बीस प्राधिकारियोंके प्रति ईमानदारीके साथ जिम्मेदार नहीं रह सकता, बशर्ते कि उन प्राधिकारियोंका उद्देश्य उलझन मोल लेना और उसका लक्ष्य गड़बड़ी पैदा करना ही न हो।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-९-१९३९

परिशिष्ट ५
कांग्रेस-अध्यक्षके नाम सुभाषचन्द्र बोसका पत्र

७ अगस्त, १९३९

रांचीसे लिखे आपके १८ जुलाईके पत्रका उत्तर देने में विलम्ब हो गया, इसके लिए मुझे अत्यन्त खेद है। आपने मुझसे इस बातकी कैफियत माँगी है कि मैंने बम्बईमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित कुछ प्रस्तावोंके प्रति विरोध प्रकट किया है।

पहली बात तो यह कि किसी प्रस्तावका विरोध करने और सचमुच उसकी अवज्ञा या उल्लंघन करने में भेद किया जाना चाहिए। अबतक जो-कुछ हुआ है वह सिर्फ यही कि मैंने महासमितिके दो प्रस्तावोंके प्रति विरोध प्रकट किया है।

महासमिति द्वारा पारित किसी भी प्रस्तावपर अपनी राय व्यक्त करना मेरा संविधान-सम्मत अधिकार है। आप शायद यह तो स्वीकार करेंगे कि महासमितिका कोई अधिवेशन जब समाप्त होने को होता है तो उसके द्वारा पारित प्रस्तावोंपर बहुत-से कांग्रेसजन दस्तूरन अपने विचार व्यक्त करते हैं। अगर

१. देखिए पृ० ९४।

आप कांग्रेसजनोंको महासमिति द्वारा पारित प्रस्तावोंपर अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार देते हैं तो आप ऐसी कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं खींच सकते कि केवल अनुकूल रायें ही जाहिर की जायें और प्रतिकूल रायें व्यक्त न की जाये। अगर हमें अपने विचार व्यक्त करने का संवैधानिक अधिकार है तो वे विचार अनुकूल हैं अथवा प्रतिकूल इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके पत्रका आशय तो यह प्रतीत होता है कि प्रतिकूल विचार व्यक्त किये ही नहीं जा सकते।

हम लोग इतने दिनोंसे जिन चीजोंके लिए ब्रिटिश हुकूमतसे लड़ते आये हैं उनमें से एक हमारी नागरिक स्वतन्त्रता भी है। मैं मानता हूँ कि नागरिक स्वतन्त्रतामें बोलने की आजादी भी शामिल है। आपके दृष्टिकोणसे तो जब हम महासमिति या कांग्रेसके बहुमतसे सहमत न हों तब बोलने की आजादीका आग्रह हमें करना ही नहीं चाहिए। यह तो बड़ी विचित्र स्थिति होगी कि ब्रिटिश सरकारके खिलाफ तो हमें बोलने की आजादी हो लेकिन कांग्रेस या उसकी किसी मातहत संस्थाके विरुद्ध बोलने की स्वतन्त्रता न हो। महासमितिके जिन प्रस्तावोंको हम देशके हितके लिए हानिकर समझें, उनकी प्रतिकूल आलोचना करने का अधिकार यदि हमसे छीन लिया जाता है तो यह एक लोकतान्त्रिक अधिकारके अपहरणके समान होगा। क्या मैं सम्पूर्ण गम्भीरताके साथ आपसे पूछ सकता हूँ कि लोकतान्त्रिक अधिकारोंका प्रयोग क्या केवल कांग्रेसके बाहर ही किया जाना है, इसके अन्दर नहीं ?

आशा है, आप मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि महासमिति द्वारा कोई प्रस्ताव पारित कर दिये जाने के बाद हमें यह अधिकार होता है कि उसीकी किसी अगली बैठकमें हम उस प्रस्तावपर पुनर्विचार करवायें, उसे संशोधित या परिवर्तित करवायें या उसे वापस ही करवा लें। आशा है, आप यह भी स्वीकार करेंगे कि हमें महासमितिके विरुद्ध उससे ऊपरके संगठन, अर्थात् कांग्रेसके खुले अधिवेशनमें अपील करने का अधिकार है। इसी तरह, उम्मीद है, आप यह भी मंजूर करेंगे कि अल्पसंख्यक पक्षको बहुसंख्यक पक्षके लोगोंको अपने दृष्टिकोणका कायल करने के लिए प्रचार-अभियान चलाने का भी हक है। लेकिन यह काम हम सार्वजनिक सभाओं और समाचारपत्रोंमें प्रकाशित लेखोंमें कांग्रेसजनोंसे अपील करने के अलावा और किस तरह कर सकते हैं? आज कांग्रेस कोई मुट्ठी-भर लोगोंकी संस्था नहीं है। मैं समझता हूँ, उसके सदस्योंकी संख्या लगभग ४५ लाखतक पहुँच गई है। हम आम कांग्रेसजनोंसे अपील करके उन्हें अपना दृष्टिकोण समझा पाने की आशा तभी कर सकते हैं जब हमें समाचारपत्रोंमे लिखने और सभाएँ बुलाने की छूट हो। अगर आप यह मानते हो कि एक बार महासमिति द्वारा पारित कर दिये जाने के बाद हर प्रस्ताव अलंघ्य हो जाता है और वह सदाके लिए उचित और संगत होता है तो प्रस्तावकी आलोचनाके निषेधका आपके पास कुछ औचित्य हो सकता है। लेकिन यदि आप हमें महासमितिके प्रस्ताव-विशेषपर, उसी संस्था या कांग्रेसके खुले अधिवेशनके माध्यमसे, पुनर्विचार करने या उसमें संशोधन अथवा

परिवर्तन करने या उसे मंसूख करने का हक देते है तो समझमें नही आता कि आप आलोचनापर पाबन्दी कैसे लगा सकते है, जबकि इस प्रसगमें आप यही करने की कोशिश कर रहे है।

मुझे लगता है कि 'अनुशासन' शब्दकी आप ऐसी व्याख्या कर रहे है जिसे मै स्वीकार नही कर सकता। मै अपनेको बहुत कठोर अनुशासनवादी मानता हूँ और मुझे तो ऐसा लग रहा है कि अनुशासनके नामपर आप शुभ आलोचनापर प्रतिबन्ध लगा रहे है। अनुशासनका अर्थ किसीको अपने संवैधानिक और लोकतान्त्रिक अधिकारसे वंचित कर देना तो नही होता।

जिन प्रस्तावोको हम देशके हितके लिए हानिकर समझते है उनका विरोध करने का हमें सवैधानिक और लोकतान्त्रिक अधिकार है, इस बातको अलग रखकर अगर हम सिर्फ इन दोनो प्रस्तावोके गुण-दोषोका विचार करे तो भी यह प्रकट हो जायेगा कि वास्तवमें ऐसे विरोध-प्रदर्शनकी आवश्यकता थी। अगर इन दो प्रस्तावोंपर अमल किया गया तो मेरे विचारसे सविधानवादकी ओर हमारी गतिको ये और तेज कर देंगे, कांग्रेस संगठनोंको नुकसान पहुँचाकर प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डलोके प्रभाव, अधिकार और सत्ताको बढायेंगे और कांग्रेसको कृत्रिम रूपसे आम जनतासे तथा महासमितिको भी आम कांग्रेसजनोसे अलग कर देंगे। इसके अतिरिक्त उनसे कांग्रेसकी क्रांतिकारी प्रवृत्तिकी जडें खोखली होगी। फलत. देशके हितों का ध्यान रखते हुए इन प्रस्तावोको तत्काल अमल-बाहर स्थितिमें डाल दिया जाना चाहिए और अन्ततः या तो इनमें उपयुक्त परिवर्तन कर देना चाहिए या इन्हें वापस ले लेना चाहिए।

इस सम्बन्धमें मै १९२२ की गया कांग्रेसके समय और उसके बादकी कुछ घटनाओकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करने को विवश हूँ। यह न भूलिए कि उन दिनों स्वराज पार्टीने क्या-कुछ किया। यह भी याद रखिए कि जब महासमितिने गया कांग्रेसके प्रस्तावको संशोधित किया तब गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने उसकी अवज्ञा करने का निश्चय किया था।

और अन्तमें, कृपया यह भी न भूलिए कि महात्मा गांधीने — अगर मुझे ठीक याद है तो — 'यंग इंडिया' में लिखा था[1] कि अल्पसंख्यक पक्षको विद्रोह करने का अधिकार है। हम तो अभी बहुसख्यक पक्षके निर्णयके विरुद्ध सचमुच विद्रोह करने की सीमातक गये भी नही है। हमने जो-कुछ किया है वह यही कि हमारे विरोधके बावजूद बहुसंख्यक पक्ष द्वारा पास किये गये कतिपय प्रस्तावोकी आलोचना करने की स्वतन्त्रता ली है।

मुझे यह देखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है कि जिस चीजको हम अपना सहज अधिकार मानते है उसे आपने इतना तूल दे दिया है। आशा है, आप मेरी कैफियतको सन्तोषजनक मानेंगे। लेकिन अगर आप ऐसा नही मानते और मेरे खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का ही फैसला करते है तो जिस ध्येयको मैं

१. देखिए खण्ड २२, "टिप्पणियाँ", पृ० ५१०-११।

न्यायसम्मत मानता हूँ उसकी खातिर मैं उस कार्रवाईको सहर्ष झेलूँगा। अन्तमे, मेरा निवेदन है कि यदि किसी भी कांग्रेसीको ९ जुलाईकी घटनाओंके सिलसिलेमे दण्डित किया जाता है तो आप मेरे खिलाफ भी कार्रवाई करें। अगर ९ तारीखको अखिल भारतीय दिवसके रूपमें मनाना अपराध है तो मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं मुख्य अपराधी हूँ।

समादरपूर्वक,

[अंग्रेजीसे]

इण्डियन एन्युअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २१९-२०

परिशिष्ट ६

कांग्रेस-अध्यक्षकी घोषणा[1]

६ जुलाई, १९३९

समाचारपत्रोमें श्री सुभाषचन्द्र बोसका यह वक्तव्य पढकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने बम्बईमें जो प्रस्ताव पास किये है उनका विरोध करने के लिए ९ जुलाईका दिन निश्चित किया गया है। यह बात सब लोग अच्छी तरह जानते है कि वह प्रस्ताव एक लम्बी बहसके बाद श्री सुभाषचन्द्र बोसके विरोधके बावजूद बहुत बड़े बहुमतसे पास हुआ था। यदि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी अधीनस्थ समितियाँ और उन समितियोंके पदाधिकारी या कांग्रेसका अल्पमत इस तरहके प्रस्तावोंकी अवज्ञा करने लगें और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी या कांग्रेस द्वारा अच्छी तरहसे सोच-विचार करने के बाद लिये गये निर्णयोंके विरुद्ध प्रदर्शनोंका आयोजन करने लगें तो कांग्रेसमें अनुशासनका नाम भी नहीं रहेगा और यह संस्था पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो जायेगी। इसलिए मैं सभी कांग्रेस-समितियों और उनके पदाधिकारियोंको यह समझाना चाहूँगा कि कांग्रेसकी नीति और व्यवहारका और कांग्रेस संस्थाके प्रति उनकी वफादारीका यह तकाजा है कि वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पास किये गये प्रस्तावोंका पालन करें और उनपर अमल करें। इस तरहके प्रस्तावोंकी निन्दा करना अथवा उनके विरुद्ध विरोध-प्रदर्शनोंका आयोजन करना अनुशासनको भंग करना होगा। मुझे विश्वास है कि कांग्रेस समितियाँ और उनके पदाधिकारी इस तरहकी विरोधी सभाओं और प्रदर्शनोंका न तो आयोजन करेंगे और न उनमें भाग ही लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इण्डियन एन्युअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २१९

१. देखिए पृ० ९४।

परिशिष्ट ७

कांग्रेस-अध्यक्षका सुभाषचन्द्र बोसको पत्र[1]

१८ जुलाई, १९३९

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा बम्बईमें पास किये गये कुछ प्रस्तावोंके विरुद्ध विरोध-सभाएँ आयोजित करने की आपकी कार्रवाईसे एक नाजुक और कठिन परिस्थिति पैदा हो गई है। जैसा कि मैंने ९ जुलाईकी सभाओंके होने से पहले दिये गये अपने वक्तव्योंमें साफ कर दिया था, मुझे ऐसा लगता है कि यदि कांग्रेसकी मातहत समितियाँ और उनके पदाधिकारी जिनका कर्त्तव्य अ० भा० कां० क० के प्रस्तावोंका पालन करना और उन्हें अमलमें लाना है, वैसा करने के बजाय उन प्रस्तावोंके विरुद्ध विरोध-सभाएँ और प्रदर्शन आयोजित करने लगें, तो कांग्रेस संगठनके लिए काम करना असम्भव हो जायेगा। उनकी इस तरहकी किसी भी कार्रवाईको मैं, व्यक्तिगत रूपसे, न केवल हर तरहके अनुशासनके लिए घातक बल्कि कांग्रेस संगठनके भविष्यके लिए भी खतरनाक मानता हूँ। इसलिए मैं इस सारे मामलेको कार्य-समितिके सम्मुख विचारार्थ रखूंगा ताकि वह इसपर अनुशासनात्मक या जो भी उचित समझे वह कार्रवाई कर सके। लेकिन कार्य-समितिके सामने आपकी कार्रवाईके बारेमें आपका स्पष्टीकरण और दृष्टिकोण भी होना चाहिए। इसलिए यदि आप शीघ्र ही मुझे वह भेज दें तो मैं आपका आभारी होऊँगा।

[अंग्रेजीसे]

इण्डियन एन्युअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २११

परिशिष्ट ८

कांग्रेस कार्य-समितिका प्रस्ताव[2]

कार्य-समितिने विश्वकी नाजुक स्थितिपर और विश्वपर युद्धके जो बादल मँडरा रहे हैं उसपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। विश्वकी इस संकटकी घड़ीमें कार्य-समितिकी सहानुभूति पूर्णतया उन लोगोंके साथ है जो लोकतंत्र और स्वतंत्रताके पक्षमें हैं। कांग्रेसने यूरोप, आफ्रिका और सुदूरपूर्व एशियामें हुए फासिस्ट आक्रमण तथा चेकोस्लोवाकिया और स्पेनमें लोकतन्त्रके साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद

१. देखिए पृ० ९४।

२. देखिए पृ० १२५, २१०. २४०, २९७, ३४७ और ४१६।

द्वारा विश्वासघात किये जाने की बार-बार निन्दा की है। काग्रेसने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि यदि युद्ध छिड़ा तो उसकी नीति क्या होगी और यह घोषणा कर दी है कि भारतपर युद्ध थोपने की सभी कोशिशोंका वह डटकर विरोध करेगी। कार्य-समिति काग्रेसकी इस नीतिसे बँधी हुई है और वह इसे अमलमें लायेगी, ताकि साम्राज्यवादी उद्देश्योंके लिए भारतीय साधनोका शोषण न होने पाये। ब्रिटिश सरकारकी पिछली नीति और हालकी घटनाओसे यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि यह सरकार स्वतन्त्र लोकतन्त्रकी पक्षधर नही है और इन आदर्शोंके साथ किसी भी समय विश्वासघात कर सकती है। भारत इस तरहकी सरकारके साथ सहयोग नहीं कर सकता और जिस लोकतन्त्रीय स्वतन्त्रतासे उसे वंचित रखा जा रहा है तथा जिसके साथ विश्वासघात किये जाने की सम्भावना है उसके लिए उससे अपने साधन सुलभ कराने के लिए भी नही कहा जा सकता।

अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीने १ मई, १९३९ को कलकत्तामें हुई अपनी बैठकमें काग्रेसकी यह नीति दोहराई थी और भारतीय सैनिकोंके विदेशोंमें भेजे जाने का विरोध किया था। बावजूद इसके कि यह राय साफ-साफ जाहिर कर दी गई थी ब्रिटिश सरकारने, भारतीय जनताकी घोषित इच्छाके विरुद्ध, मिस्र और सिंगापुरमें भारतीय सैनिक भेजे है या वह भेज रही है। युद्धकी परिस्थितिके अलावा केन्द्रीय विधानसभा पहले यह घोषणा कर चुकी है कि विधानसभाकी सहमतिके बिना कोई भी भारतीय सैनिक विदेश नही भेजे जाने चाहिए। ब्रिटिश सरकारने इस तरह कांग्रेस और विधानसभाकी घोषणाकी अवहेलना की है और ऐसे कदम उठाये है जो भारतको अनिवार्य रूपसे युद्धमें उलझा सकते है। उसने केन्द्रीय विधान-सभाकी अवधि एक सालके लिए और बढा दी है। कार्य-समिति ब्रिटिश सरकारके इन निर्णयोको स्वीकार नही कर सकती और न केवल अपने-आपको उनसे अलग करती है बल्कि वह ऐसे कदम भी उठायेगी जो काग्रेसकी नीतिको अमलमें लाने के लिए जरूरी हो सकते है। इस दिशामें पहले कदमके तौरपर, कार्य-समिति केन्द्रीय विधानसभाके सभी काग्रेसी सदस्योसे अनुरोध करती है कि वे विधानसभाके अगले अधिवेशनमें भाग न ले।

कार्य-समिति प्रान्तीय सरकारोको एक बार फिर यह याद दिलाती है कि वे ब्रिटिश सरकारकी युद्धकी तैयारियोमें किसी भी तरहकी सहायता न करें और काग्रेस द्वारा निर्धारित नीतिको ध्यानमें रखें, जिसका उन्हें पालन करना चाहिए। यदि इस नीतिको अमलमें लाने से कांग्रेसी मन्त्रियोको इस्तीफा देना पडे या हटना पडे तो उन्हें इस स्थितिके लिए तैयार रहना चाहिए।

युद्धका संकट आने पर यदि भारतके किसी हिस्सेको हवाई या अन्य हमलेका खतरा पैदा होता है तो सुरक्षाके उपाय आवश्यक हो सकते हैं। यदि इस तरहके उपाय प्रान्तोंमें लोकप्रिय मन्त्रिमण्डलोंके नियन्त्रणमें रहे तो कार्य-समिति उन्हे प्रोत्साहन देने को तैयार रहेगी। परन्तु कार्य-समिति इस बातसे सहमत नहीं है कि

ऐसे सुरक्षात्मक उपायोका उपयोग साम्राज्यवादी सरकारके नियन्त्रणमें चल रही युद्धकी तैयारियोंपर परदा डालने के लिए किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

इण्डियन एन्युअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २१४-१५

परिशिष्ट ९

यादवेन्द्रसिंहका पत्र[1]

रणवीर विला, चैल
९ सितम्बर, १९३९

प्रिय श्री गांधी,

पिछली ३० तारीखके आपके पत्रके लिए धन्यवाद। जिसमें उस पत्रकी एक प्रति भी संलग्न थी जो मुझे ३ अगस्तको भेजा गया बताया जाता है और जो, जैसा कि मैंने पिछली २८ तारीखके अपने तारमें आपको बताया था, मुझे मिला ही नहीं। मुझे यह जानकर थोड़ी हैरानी हुई कि पत्रलेखकने जो पत्र आपको लिखा था वह उसपर आपकी टिप्पणी सहित, देशी भाषाओके समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो गया है। इसपर मैंने एक बार तो यह सोचा कि जब आपने उस पत्रको समाचारपत्रोंको देने से पहले मेरे जवाबका इन्तजार करना उचित नही समझा, तो मेरे लिए आपके पत्रका जवाब देना भी जरूरी नही रह जाता। परन्तु उसके बाद शिमलाके अपने वकीलके द्वारा मुझे आपका यह संदेश मिला कि अंग्रेजी समाचारपत्रोंको तो समय रहते यह सूचना दे दी गई थी कि वे उसका प्रकाशन रोक दें, पर कामके बोझके कारण देशी भाषाओं के समाचारपत्रोको इस तरहकी हिदायतें नहीं भेजी जा सकीं। आपने मुझे यह सूचना भिजवाई है कि मेरा जवाब मिलने पर यदि आवश्यक लगा तो देशी भाषाओंके समाचारपत्रोंमें प्रकाशित टिप्पणीमें संशोधन कर दिया जायेगा या वह वापस ले ली जायेगी। इसके लिए निस्सन्देह, मैं आपका आभारी हूँ।

पत्रलेखकने अपने पत्रमें ये दो मुद्दे लिये हैं, यथा (क) १९८८ की 'हिदायत' और (ख) यह आरोप कि १८ जुलाईको जो प्रतिनिधि-मण्डल मुझसे मिलने आया था उससे भेंटके दौरान मैंने धमकी-भरे शब्दोंका प्रयोग किया था। . . .

'हिदायत' के खिलाफ मुख्य बात यह कही गई है कि इसका प्रयोजन क्योंकि एक विशेष परिस्थितिका सामना करना था, इसलिए इसे रियासतके एक स्थायी कानूनके रूपमें कायम रखना उचित नही है। आप यह स्वीकार करेंगे कि साम्प्रदायिक उपद्रव ठीक उसी तरहकी विशेष परिस्थिति है जिसका सामना करने के लिए सरकारको अपनेको इस तरहके विशेष कानूनसे सज्जित करना पड़ता है। इसलिए यह चीज

[1] देखिए पृ० १३६ और १९२। यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

साफ हो जायेगी कि जो लोग साम्प्रदायिक शांति भंग करने के लिए जिम्मेदार हैं उनके द्वारा स्वतन्त्रताका दुरुपयोग ही वह हेतु था जिसके कारण बादमें 'हिदायत' की व्यवस्थाओंको लागू करने का आदेश जारी करना पडा। इस दुर्भाग्यपूर्ण काण्डके कारण ही मुझे 'हिदायत' की व्यवस्थाएँ लागू करनी पडी — यह तथ्य उन लोगोकी भी समझ में आ गया जिन्होने पहले इस कानूनके खिलाफ आन्दोलनका गठन किया था। यह बात उनको स्वय अपनी इच्छासे किये गये इस निर्णयसे स्पष्ट हो जाती है कि वे २५ मईको जारी किये गये मेरे आदेशका पालन करेंगे। 'हिदायत' जिस अवधिके लिए लागू की गई हैं वह अभी समाप्त नही हुई है। परन्तु साम्प्रदायिक स्थिति क्योंकि तबसे शात हो गई है और मैंने नरमी बरती है तथा साम्प्रदायिक झगड़ोमें फँसे लोगोपर चल रहे मुकदमे वापस ले लिये है, इसलिए मै 'हिदायत' की व्यवस्थाओ पर पुनर्विचार करने के औचित्यपर भी विचार करता। लेकिन, जैसा कि आप जानते हैं, युद्ध छिड गया है और उसके सफल सचालनके लिए ऐसे आपत्कालीन उपाय अमलमे लाये जा रहे हैं जिनसे नागरिक अधिकार और नागरिक स्वतंत्रताएँ कम हो जाती हैं, इसलिए इस आपत्कालीन कानूनको जरूरतके कारण ही विधि-पुस्तिकामे कायम रखा गया है। सुनामके जिला नाजिमने जो आश्वासन दिया था उससे पीछे हटने का मेरा जरा भी इरादा नहीं है। पर ऐसा करने के लिए और भी अनुकूल परिस्थितियोकी प्रतीक्षा करने को मै बाध्य हूँ।

जहाँतक १८ जुलाईको प्रतिनिधि-मण्डलसे हुई मेरी भेंटमें जो-कुछ हुआ उसके विवरणका सम्बन्ध है, मुझे खेद है कि मैंने प्रतिनिधि-मण्डलसे जो-कुछ कहा आपके पत्र-लेखकने उसे तोड़ा-मरोड़ा है और उनका पत्र कई अर्ध सत्य और गलतबयानियो से भरा पड़ा है। मैंने उन्हें यह विश्वास दिलाया था कि अपनी प्रजाकी वास्तविक शिकायतें दूर करने की तो मुझे बहुत चिंता है, पर मै इस बातका समर्थन नही कर सकता कि वह ऐसे लोगो द्वारा गुमराह हो जो सर्वथा अवैयक्तिक उद्देश्योंसे प्रेरित नही हैं। मैंने जो शब्द प्रयुक्त किये थे बिलकुल वही तो मुझे याद नही है, पर मेरा खयाल है कि मैंने उनसे कहा था कि अपनी प्रजाकी सभी न्यायोचित इच्छाओंको मैं जरूर पूरा करूँगा, पर मैं किसी भी ऐसे आन्दोलनसे नही डरूँगा जो ऐसे लोगो द्वारा खड़ा किया गया होगा जिनका विवादके मुद्दोंसे कोई सीधा सम्बन्ध नही है और न ही मैं किसी बाहरी सस्थाके आदेशको स्वीकार करूँगा।

जो-कुछ मैंने ऊपर कहा है उसे देखते हुए, मैं समझता हूँ कि देशी भाषाओंके समाचारपत्रोंमें आपकी जो टिप्पणी छपी है वह वांछनीय नही लगती और मुझे विश्वास है कि आप उसे वापस लेनें की कृपा करेंगे। पत्र-लेखकके पत्रपर मेरी टिप्पणी आमंत्रित कर आपने जो सौजन्य दिखाया है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

हृदयसे आपका,
यादवेन्द्रसिंह

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १६-९-१९३९

परिशिष्ट १०

कार्य-समितिका घोषणा-पत्र[1]

१. यूरोपमें युद्धकी घोषणासे जो गम्भीर संकट पैदा हो गया है, कार्य-समितिने उसपर अत्यन्त गम्भीरतासे विचार किया है। युद्ध छिड़ने पर राष्ट्रको जिन सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिए कांग्रेस उन्हे बार-बार सामने रख चुकी है और अभी एक महीने पहले इस समितिने उन्हें दोहराया था और ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय लोकमतकी अवहेलना किये जाने पर रोष व्यक्त किया था। ब्रिटिश सरकारकी इस नीतिसे अपने-आपको अलग करने की दृष्टिसे पहले कदमके रूपमें इस समितिने केन्द्रीय विधानसभाके कांग्रेसी सदस्योको यह आह्वान दिया कि वे उसके अगले अधिवेशनमें भाग न ले। तबसे ब्रिटिश सरकार भारतको एक युद्धरत देश घोषित कर चुकी है, कई अध्यादेश जारी कर चुकी है, भारत अधिनियम संशोधन विधेयक पास कर चुकी है और अन्य ऐसे दूरगामी कदम उठा चुकी है जिनका भारतीय जनतापर भारी असर पड़ता है और जिनसे प्रान्तीय सरकारोंके अधिकारों और उनकी गतिविधियों पर अंकुश लगता है और वे सीमित हो जाते हैं। यह सब भारतीय जनताकी स्वीकृति लिये बिना किया गया है और इस तरहके मामलोमें उसकी घोषित इच्छाओंकी ब्रिटिश सरकारने जान-बूझकर अवज्ञा की है। कार्य-समिति इन सब घटनाओंको बहुत ही गंभीर मानती है।

२ कांग्रेसने फासिस्टवाद और नाजीवादकी विचारधारा और उसके व्यावहारिक रूपकी तथा युद्ध एवं हिंसाको गौरव देने तथा मानवीय भावनाको दबाने की उनकी नीतिकी बार-बार निन्दा की है। उसने उनके द्वारा बार-बार आक्रमण करने की और सभ्य-व्यवहारके सुपरिचित मानदण्डो तथा सर्वमान्य सिद्धान्तोंका हनन किये जानेकी बातकी भी भर्त्सना की है। फासिस्टवाद और नाजीवादमें इसे साम्राज्यवादके ही सिद्धान्तका उग्र रूप नजर आया है, जिसके विरुद्ध भारतकी जनता बहुत सालोंसे संघर्ष करती आई है। कार्य-समिति इसलिए अभी-अभी पोलैंडपर किये गये जर्मनीकी नाजी सरकारके आक्रमणकी नि.संकोच निंदा करती है और जो लोग उसका प्रतिरोध कर रहे हैं उनके साथ सहानुभूति रखती है।

३. कांग्रेसने यह भी कहा है कि भारतके लिए युद्ध और शांतिके प्रश्नका निर्णय भारतीय जनताको ही करना है और कोई भी बाहरी शक्ति उसपर यह निर्णय नही थोप सकती और न ही भारतीय जनता अपने साधनोंका साम्राज्यवादी उद्देश्योके लिए शोषण होने दे सकती है। यदि कोई निर्णय उसपर थोपा गया

१. देखिए पृ० १९४, २०९, २४०, २९७, ४०७ और ४१६।

या यदि भारतीय साधनोंका उपयोग ऐसे उद्देश्योंके लिए करनेकी कोशिश की गई जो उसे स्वीकार नहीं हैं, तो उसे उसका विरोध करना ही होगा। यदि किसी उचित ध्येयके लिए सहयोग चाहिए, तो वह मजबूर करके या कोई चीज थोपकर प्राप्त नहीं किया जा सकता, और समिति यह कभी स्वीकार नहीं कर सकती कि भारतीय जनता किसी बाहरी शक्ति द्वारा जारी किये गये आदेशोंका पालन करे। सहयोग बराबरके पक्षोंमें आपसी सहमतिसे किसी ऐसे ध्येयके लिए होता है जिसे दोनों ही उचित समझते हैं। भारतीय जनताने निकट अतीतमें अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने और भारतमें एक स्वतंत्र लोकतान्त्रिक राज्य स्थापित करनेके लिए भारी खतरे मोल लिये हैं और स्वेच्छासे बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ दी हैं, और उसकी सहानुभूति पूर्णतया लोकतंत्र और स्वतन्त्रताके पक्षमें है। परन्तु भारत अपनेको किसी ऐसे युद्धसे नहीं जोड़ सकता जो कहनेको तो लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रताके लिए हो पर उसे उसी स्वतंत्रतासे वंचित रखा जाये और जो थोड़ी-बहुत स्वतन्त्रता उसे प्राप्त है वह भी उससे छीन ली जाये।

४. समितिको यह ज्ञात है कि ब्रिटेन और फ्रांसकी सरकारोंने यह घोषणा की है कि वे लोकतंत्र और स्वतन्त्रताके लिए तथा आक्रमणको समाप्त करनेके लिए लड़ रहे हैं। परन्तु निकट अतीतका इतिहास ऐसे उदाहरणोंसे भरा पड़ा है जो उनके शब्दों, घोषित आदर्शों और वास्तविक उद्देश्यों एवं लक्ष्योंकी परस्पर भिन्नता ही प्रकट करते हैं। १९१४-१८के युद्धके दौरान युद्धके उद्देश्य लोकतंत्रकी रक्षा, आत्मनिर्णय और छोटे राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता घोषित किये गये थे। परन्तु जिन सरकारोंने इन उद्देश्योंकी बड़ी गम्भीरतासे घोषणा की थी वही ऐसी गुप्त संधियाँ कर बैठी जिनमें उस्मानिया साम्राज्यको आपसमें बाँट लेनेकी साम्राज्यवादी योजनाएँ थीं। कहा तो यह गया था कि वे किसी इलाकेपर कब्जा करना नहीं चाहते हैं, लेकिन विजयी देशोंने अपने-अपने औपनिवेशिक क्षेत्रका बहुत विस्तार कर लिया। यूरोपका वर्तमान युद्ध स्वयं इस बातका द्योतक है कि वर्साई संधि और उसके जनक, जिन्होंने अपना पवित्र वचन तोड़ा था और पराजित राष्ट्रोंपर एक साम्राज्यवादी शांति थोपी थी, बुरी तरह असफल रहे। उस संधिकी एक आशापूर्ण उपलब्धि लीग ऑफ नेशन्सका उसके जनक राज्योंने शुरूमें ही गला घोंट दिया और बादमें जिसकी हत्या कर दी।

५. बादके इतिहासने एक बार फिर यह दिखा दिया कि विश्वास और आस्थाकी बड़े जोरोंसे घोषणा करके भी निर्लज्जतापूर्वक उनका परित्याग किया जा सकता है। मंचूरियामें ब्रिटिश सरकारने आक्रमणकी तरफसे आँखें मूँद लीं; अबिसीनियामें आक्रमणको अपनी मौन स्वीकृति दे दी। चेकोस्लोवाकिया और स्पेनमें जब लोकतंत्र खतरेमें था तो उसके साथ जान-बूझकर विश्वासघात किया गया और जिन शक्तियोंने पहले सामूहिक सुरक्षामें अपनी दृढ़ आस्था व्यक्त की थी उन्होंने ही उसकी पूरी व्यवस्थाको भीतरसे ध्वस्त कर दिया।

६. अब एक बार फिर यह दृढ़तापूर्वक कहा जा रहा है कि लोकतन्त्र खतरेमें है और उसकी अवश्य रक्षा होनी चाहिए और समिति इस बातसे पूरी तरह सहमत

है। समिति यह विश्वास करती है कि पश्चिमके लोग इस आदर्श और उद्देश्यसे परिचालित हैं और वे इनके लिए बलिदान करने को तैयार हैं। किन्तु लोगोंके आदर्शों और उनकी भावनाओंकी तथा जिन्होंने इस संघर्षमें अपनी बलि दी है उनकी बार-बार उपेक्षा हुई है और उनके साथ विश्वासघात किया गया है।

७. यदि यह युद्ध यथास्थिति — साम्राज्यवादी आधिपत्य, उपनिवेशों, निहित स्वार्थों और विशेषाधिकारों—की रक्षाके लिए है, तो भारतका इससे कोई सरोकार नहीं है। लेकिन यदि सवाल लोकतंत्र और लोकतन्त्रपर आधारित एक विश्व-व्यवस्थाका है तो भारतकी इसमें गहरी रुचि है। समितिका यह विश्वास है कि भारतीय लोकतन्त्रके हितोंका ब्रिटिश या विश्व-लोकतन्त्रके हितोंसे साथ कोई टकराव नहीं है। लेकिन भारत या किसी भी देशके लोकतन्त्रका साम्राज्यवाद और फासिस्ट-वादके साथ एक सहज और ऐसा विरोध है जो किसी भी तरह दूर नहीं किया जा सकता। यदि ग्रेट ब्रिटेन लोकतन्त्रकी रक्षा एवं उसके विस्तारके लिए लड़ता है तो उसे अनिवार्यतः अपने कब्जेमें जो इलाके हैं उनमें साम्राज्यवादका अन्त करना चाहिए, भारतमें पूरी तरहसे लोकतन्त्रकी स्थापना करनी चाहिए और भारतीयोंको आत्मनिर्णय करने का अधिकार मिलना चाहिए। अर्थात् उन्हें यह अधिकार होना चाहिए कि वे बिना किसी बाहरी हस्तक्षेपके संविधान सभा द्वारा अपने संविधानका निर्माण करें और अपनी नीति स्वयं निर्धारित करें। स्वतन्त्र लोकतांत्रिक भारत आक्रमणके विरुद्ध एक-दूसरे की रक्षा और आर्थिक सहयोगके लिए अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रोंके साथ खुशीसे मिलकर काम करेगा। वह स्वतंत्रता और लोकतंत्रपर आधारित एक सच्ची विश्व-व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए काम करेगा, जिसमें विश्वके ज्ञान और साधनोंका उपयोग मानव-जातिकी प्रगति और उन्नतिके लिए होगा।

८. यूरोपपर आज जो संकट छाया है वह अकेले यूरोपका नहीं है, बल्कि सारी मानव-जातिका है और वह अन्य संकटों या युद्धोंकी तरह आजकी दुनियाके मूल ढाँचेको क्षत-विक्षत किये बिना कभी नहीं टलेगा। सम्भवतः यह युद्ध दुनियाका राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक नक्शा बदल देगा, चाहे उसका परिणाम अच्छा हो या बुरा। यह संकट उन सामाजिक और आर्थिक अंतर्विरोधोंका अनिवार्य परिणाम है जो पिछले महायुद्धके बाद खतरनाक हदतक बढ़ गये हैं, और जबतक ये टकराव और अंतर्विरोध दूर नहीं होंगे और एक नया संतुलन कायम नहीं होगा, तबतक यह संकट बिलकुल खत्म नहीं होगा। वह सन्तुलन एक देश द्वारा दूसरे देश पर कायम किये गये प्रभुत्व और शोषण को समाप्त कर तथा सबकी भलाईको ध्यानमें रखते हुए आर्थिक सम्बन्धोंका अधिक न्यायोचित पुनर्गठन करके ही स्थापित किया जा सकता है। भारत इस समस्याका केन्द्रबिन्दु है, क्योंकि भारत आधुनिक साम्राज्यवादका अन्यतम उदाहरण रहा है, और विश्व-व्यवस्थाकी कोई भी नई योजना इस मुख्य समस्याकी उपेक्षा करके सफल नहीं हो सकती। भारतको अपने विशाल साधनोंके साथ विश्व-पुनर्गठनकी किसी योजनामें एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। परन्तु वह ऐसा केवल एक स्वतंत्र राष्ट्रकी हैसियतसे ही कर सकता है;

जिनकी शक्तियाँ इस महान् उद्देश्यके लिए कार्य करनेको मुक्त हो चुकी हों। स्वतन्त्रता आज एक ऐसी समग्र वस्तु है जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता और दुनियाके किसी भी हिस्सेमें साम्राज्यवादी आधिपत्यको कायम रखने की जो भी कोशिश की जायेगी उसका अनिवार्य परिणाम नया संकट होगा।

९. कार्य-समितिकी नजर इस बातपर गई है कि भारतीय रियासतोंके बहुत-से शासकोंने यूरोपमें लोकतन्त्रके ध्येयका समर्थन करने की इच्छा व्यक्त की है और उसके लिए अपनी सेवाएँ और साधन अर्पित किये हैं। यदि उन्हें देशसे बाहर लोकतन्त्रके पक्षमें अपनी आस्थाकी घोषणाएँ करनी ही हैं तो समिति यह सुझाव देना चाहेगी कि उन्हें सबसे पहले अपनी रियासतोंमें लोकतन्त्रकी स्थापना करनी चाहिए जहाँ आज विशुद्ध तानाशाहीका बोलबाला है। जैसा कि पिछले सालकी दु:खद घटनाओं से सिद्ध हो गया है, इस तानाशाहीके लिए भारतकी ब्रिटिश सरकार रियासतोंके शासकोंसे भी कहीं ज्यादा जिम्मेदार है। ग्रेट ब्रिटेन यूरोपमें जिस लोकतंत्र और नई विश्व-व्यवस्थाके लिए लड़ने का दावा करता है, यह नीति उसको पूरी तरह नकारती है।

१०. कार्य-समिति जब यूरोप, आफ्रिका और एशियामें हुई पिछली घटनाओं पर दृष्टि डालती है, खासकर जब वह भारतमें हुई पिछली और मौजूदा घटनाओं पर दृष्टि डालती है, तो उसे लोकतंत्र या आत्मनिर्णयके ध्येयको आगे बढ़ाने की कोई कोशिश नजर नहीं आती और न उसे इस बातका ही कोई प्रमाण मिलता है कि ब्रिटिश सरकारकी युद्धकी वर्त्तमान घोषणाओंपर अमल हो रहा है या होनेवाला है। लोकतन्त्रका सही मापदण्ड यह है कि साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद दोनोंको समान रूपसे और उनके चलते पहले जो युद्ध हुए हैं और आज भी हो रहे हैं उन्हें खत्म किया जाये। केवल इसी आधारपर एक नई व्यवस्था खड़ी की जा सकती है। उस नई विश्व-व्यवस्थाके लिए होनेवाले संघर्षमें समिति हर तरहमे सहायता देनेके लिए उत्सुक और इच्छुक है। किन्तु समिति किसी ऐसे युद्धसे नाता नहीं जोड़ सकती और न उसमें कोई सहयोग ही दे सकती है जो साम्राज्यवादी नीतियोंपर चलाया जा रहा हो तथा जिसका उद्देश्य भारतमें और अन्यत्र साम्राज्यवादको मजबूत करना हो।

११. फिर भी, अवसरकी गम्भीरताको देखते हुए और इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए कि पिछले कुछ दिनोंमें हालात इतनी तेजीसे बदले हैं कि आदमी सोच भी नहीं सकता, समिति अभी कोई अंतिम निर्णय लेना नहीं चाहती है, ताकि जो मुद्दे दाँवपर लगे हैं, वस्तुत: जो उद्देश्य हैं, और भारतकी वर्त्तमान एवं भावी स्थिति पूरी तरह स्पष्ट हो जाये। लेकिन इस स्थितिको ज्यादा दिनोंतक रोका नहीं जा सकता, क्योंकि भारतको दिन-प्रति-दिन एक ऐसी नीतिमें बाँधा जा रहा है जिसमें वह शरीक नहीं है और जो उसे नापसन्द है।

१२ इसलिए कार्य-समिति ब्रिटिश सरकारसे यह अनुरोध करती है कि वह साफ-साफ शब्दोंमें यह घोषित करे कि लोकतन्त्र और साम्राज्यवादके बारेमें और

जिस नई व्यवस्थाकी परिकल्पना की जा रही है उसके बारेमें युद्धके उसके उद्देश्य क्या हैं और खासकर यह कि ये उद्देश्य भारतपर किस तरह लागू होने हैं और इस समय इन्हें किस प्रकार अमलमें लाया जायेगा। क्या उनमें साम्राज्यवादकी समाप्ति और भारतके साथ एक स्वतंत्र राष्ट्रकी तरह व्यवहार करने की बात भी शामिल है, जिसकी नीति उसकी जनताकी इच्छाओंके अनुरूप होगी? भविष्यके बारेमें एक ऐसी स्पष्ट घोषणाका कि सरकार साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद, दोनोको खत्म करने के लिए प्रतिबद्ध है, सभी देशोंके लोग स्वागत करेंगे। परन्तु इससे कही ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि उसे, जहाँतक भी सम्भव हो, तुरन्त अमलमें लाया जाये, क्योकि सिर्फ इसीसे लोगोंको यह विश्वास होगा कि इस घोषणामें जो बातें कही गई हैं सरकारका इरादा उन सब बातोपर अमल करने का है। किसी भी घोषणाकी सच्ची कसौटी यह है कि वर्त्तमानमें उसपर कार्य होता है या नही, क्योंकि वर्त्तमान ही आजकी प्रवृत्तियोंका नियमन करता है और भविष्यको उसका रूप देता है।

१३. यूरोपमें युद्ध छिड़ गया है और भविष्य भयानक दिखाई देता है। परन्तु युद्धने पिछले साल भी अबिसीनिया, स्पेन और चीनमें मनुष्योंकी भारी बलि ली है। हालके कुछ भयानक सालोमें शहरोंमें असंख्य निर्दोष नर-नारी और बच्चे आकाशसे की गई बमबारीके परिणामस्वरूप काल-कवलित हो गये और निर्मम नरसंहार, यंत्रणाओं और घोर दमनका लगातार दौर चलता रहा है। युद्धका यह त्रास निरन्तर बढ़ता जाता है और हिंसा तथा हिंसाकी आशंकासे विश्व संत्रस्त है और यदि इसे रोका और दूर नही किया गया तो युगों-युगोंकी अमूल्य विरासत नष्ट हो जायेगी। यूरोप और चीनमें इस आतंकको रोकना होगा। पर वह तबतक समाप्त नहीं होगा जबतक कि उसके मूल कारण फासिस्टवाद और साम्राज्यवादको नष्ट नही कर दिया जाता। इसके लिए कार्य-समिति अपना सहयोग देने को तैयार है। परन्तु यदि यह भीषण युद्ध भी साम्राज्यवादकी भावनासे और उस ढाँचेको बरकरार रखने के लिए चलाया जाता है जो खुद युद्ध और मानव-जातिके अधः-पतनका कारण है, तो यह एक भयंकर त्रासदी होगी।

१४. कार्य-समिति यह घोषणा करना चाहती है कि भारतीय जनताकी जर्मन जनता, जापानी जनता या किसी अन्य देशकी जनतासे कोई लड़ाई नहीं है। परन्तु उसकी उन व्यवस्थाओसे गहरी लड़ाई है, जो स्वतन्त्रताको नकारती हैं और जो हिंसा तथा आक्रमणपर आधारित हैं। वह एक राष्ट्रपर दूसरे राष्ट्र की विजय या जबरदस्ती लादी गई शांतिकी अभिलाषी नहीं है बल्कि उसकी इच्छा तो विश्वके सभी देशोंके लोगोंके लिए सच्चे लोकतन्त्रकी विजय और हिंसा एवं साम्राज्यवादी उत्पीड़नके भयानक दुःस्वप्नसे मुक्त एक सुखी विश्व देखने की है।

१५. यह समिति भारतके लोगोंसे हार्दिक अनुरोध करती है कि वे सभी आन्तरिक झगड़ों और विवादोंको खत्म कर दें और संकटकी इस नाजुक घड़ीमें एकजुट राष्ट्रकी जनताके रूपमें कटिबद्ध रहें, एकताको बनाये रखें, अपने उद्देश्यपर

शांतिमें डटे रहें तथा विश्वकी बृहत् स्वतन्त्रताके अंतर्गत भारतकी स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए दृढ़ संकल्प रहें।

वर्धा, १४ सितम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-९-१९३९

परिशिष्ट ११

अ० भा० कां० कमेटी का प्रस्ताव[1]

यूरोपमें युद्धकी घोषणासे एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पैदा हो गई है जो विश्व और भारतके लिए बहुत ही गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है। विश्व-संकटकी इस घड़ीमें भारतीय जनताके पथ-प्रदर्शनकी जिम्मेदारी क्योंकि अ० भा० कां० क० पर आती है, इसलिए उसने इस गम्भीर परिस्थितिपर विचार करते हुए कांग्रेसके सिद्धान्तों और उसकी घोषणाओंसे मार्गदर्शन ग्रहण किया है। कांग्रेसके सामने सदा यह लक्ष्य रहा है कि भारतीय जनताके लिए स्वाधीनता प्राप्त की जाये और भारतमें एक स्वतन्त्र लोकतांत्रिक राज्य स्थापित किया जाये जिसमें सभी अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों और हितोंकी सुरक्षा हो। अपने संघर्ष और अपनी प्रवृत्तियोंके लिए इसने शांतिपूर्ण और न्यायोचित साधनोंको अपनाया है और युद्ध एवं हिंसाको इसने भयानक तथा प्रगति और सभ्यताका विरोधी माना है। विशेष रूपसे सभी साम्राज्यवादी युद्धोंका और एक देशपर दूसरे देशके आधिपत्यका कांग्रेसने सदा विरोध किया है।

युद्धके सम्बन्धमें कांग्रेस अपनी नीतिकी यद्यपि बार-बार घोषणा कर चुकी है, फिर भी ब्रिटिश सरकारने, भारतीय जनताकी स्वीकृति लिये बिना ही, भारतको एक युद्धरत देश घोषित कर दिया है और विधानसभाओंके जरिये तथा अध्यादेशोंके रूपमें जल्दी-जल्दी तरह-तरहके दूरगामी कदम उठाये हैं जिनका भारतीय जनतापर जबरदस्त असर पड़ता है और जिनसे प्रान्तीय सरकारोंके अधिकारोंपर अंकुश लगता है और वे मर्यादित हो जाते हैं।

तथापि अ० भा० का० क० ब्रिटिश सरकारको इस बातका पूरा मौका दिये बिना कि वह युद्ध और शांतिके अपने उद्देश्योंको, विशेष रूपसे भारतके सन्दर्भमें, स्पष्ट करे, अन्धाधुन्ध कोई अंतिम निर्णय नहीं लेना चाहती है। कांग्रेस कार्य-समितिने १४ सितम्बर, १९३९ को युद्ध-संकटपर जो वक्तव्य जारी किया है यह समिति उसका अनुमोदन और समर्थन करती है और उसमें ब्रिटिश सरकारसे युद्ध और शांतिके अपने उद्देश्योंकी घोषणा करने की जो माँग की गई है, उसे दोहराती है।

जबकि यह समिति जहाँ फासिस्टवाद और नाजी आक्रमणकी निन्दा करती है, उसे इस बातका पूरा यकीन है कि सभी औपनिवेशिक देशोंमें लोकतन्त्रके

1. देखिए पृ० २४०, २७३, २७६ और २९७

विस्तारसे और उन्हें आत्मनिर्णय करने का अधिकार देकर जिससे कि साम्राज्यवादी नियन्त्रण खत्म हो सके, स्वाधीनता एवं शान्तिकी स्थापना की जा सकती है और उसे सुरक्षित रखा जा सकता है। विशेष रूपसे, भारतको एक स्वाधीन राष्ट्र घोषित किया जाना चाहिए और उसकी इस हैसियतको फिलहाल जहाँतक सम्भव हो अधिक-से-अधिक अमलमें लाया जाना चाहिए। अ० भा० कां० क० हृदयसे यह विश्वास करती है कि युद्ध और शांतिके उद्देश्योको लेकर की गई किसी भी घोषणाके साथ ब्रिटिश सरकार इस तरहकी घोषणा भी करेगी।

यह समिति नये सिरेसे इस बातकी घोषणा करना चाहती है कि भारतकी स्वतन्त्रता लोकतन्त्र और एकतापर आधारित होनी चाहिए तथा उसमें सभी अल्प-संख्यक समुदायोंके अधिकारोको पूर्ण मान्यता और सुरक्षा प्राप्त होनी चाहिए जिसके लिए कि कांग्रेस हमेशासे प्रतिवद्ध रही है।

कार्य-समितिने इस प्रस्तावको तथा युद्ध संकटपर अपने वक्तव्यको अमलमें लाने की गरजसे आवश्यक कदम उठाने के लिए युद्ध आपत्कालीन उप-समितिकी जो स्थापना की है, यह समिति उसे अपनी मंजूरी देती है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-१०-१९३९

परिशिष्ट १२

वाइसरायकी घोषणा[१]

१७ अक्तूबर, १९३९

युद्ध शुरू होने के बादसे और विशेष रूपसे पिछले चार हफ्तोंके दौरान मैं ब्रिटिश भारतके राजनीतिक नेताओ और देशी रियासतोंके प्रतिनिधियोंके अत्यन्त निकट सम्पर्कमें रहा हूँ। . . . मुझे कमसे-कम ५२ व्यक्तियोंके साथ पूरी तरहसे और साफ-साफ बातचीत करने का अवसर मिला है, जिनमें श्री गांधी, कांग्रेस-अध्यक्ष एवं कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्य, श्री जिन्ना और मुस्लिम लीगके प्रतिनिधि सदस्य, देशी नरेश मण्डलके प्रधान तथा ब्रिटिश भारतके राजनीतिक जीवनके अनेक प्रमुख व्यक्ति शामिल हैं।

जैसा स्वाभाविक था, इतने सारे अलग-अलग दृष्टिकोणोंका प्रतिनिधित्व करने-वालों से हुई बातचीतसे मालूम हुआ कि उनके नजरियोंमें बहुत ज्यादा फर्क है, उनकी माँगे एक-दूसरेसे बहुत भिन्न है और हमारे सामने उपस्थित समस्याओंके उनके बताये समाधानोमें भी परस्पर स्पष्ट अन्तर है। . . .

१. देखिए पृ० २९७, २९८, ३१०, ३२७, ३३९ और ४१७-१८। यहाँ घोषणाके कुछ अंश ही दिये गये हैं।

जिन महत्त्वपूर्ण मामलोंके सम्बन्धमें स्थितिके निर्विवाद स्पष्टीकरणकी अपेक्षा की जाती है, वे निम्नलिखित हैं :

एक तो यह कि युद्धमें सम्राट्की सरकारके क्या उद्देश्य हैं? उनका स्वरूप किस हदतक ऐसा है कि लम्बे इतिहास और महान् परम्पराओंवाला देश भारत, बिना किसी अपराध-भावके, उनमें सहयोग कर सके?

दूसरे, सवैधानिक क्षेत्रमें भारतीय महाद्वीपके लिए कैसे भविष्यकी तजवीज की जा रही है? सम्राट्की सरकारके क्या इरादे हैं? क्या उन इरादोंको ज्यादा स्पष्ट शब्दोंमें और ऐसे ढगसे परिभाषित करना सम्भव है जिससे ब्रिटिश राष्ट्रकुलमें भारतको अन्तत. जो दर्जा देने का विचार किया जा रहा है, उसके बारेमें विश्वको कोई सन्देह न रह जाये?

तीसरे, भारत और भारत लोकमतकी इस इच्छाको पूरा करने का सबसे अच्छा उपाय क्या हो सकता है कि युद्धके संचालनमें वह अधिक घनिष्ठ और प्रभावकारी रूपसे शामिल हो सके? . . . सम्राट्की सरकार युद्धके सचालनसे सम्बन्धित अपने तफ़सीलवार उद्देश्यको अन्तिम और स्पष्ट रूपसे अबतक परिभाषित नहीं कर पाई है। यह स्पष्ट है कि ऐसी परिभाषा तो लड़ाईकी बादवाली किसी अवस्थामें ही पेश की जा सकती है और जब की जायेगी तब वह किसी एक मित्र-राष्ट्रके युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्योंकी घोषणा नहीं होगी। युद्ध समाप्त होने से पहले विश्वकी स्थिति में और हमें आज जिन परिस्थितियोंका सामना करना पड़ रहा है उनमें बहुत-से परिवर्तन हो सकते हैं, और बहुत-कुछ तो इस बातपर निर्भर करेगा कि युद्धके दौरान स्थिति क्या रहती है और किन हालातमें युद्ध समाप्त होता है। . . .

हम यह लडाई आक्रमणका प्रतिरोध करने के लिए, चाहे वह हमपर किया गया हो अथवा किसी और पर, लड रहे हैं। हमारे प्रधान मन्त्रीने पिछले कुछ दिनोंमें युद्ध-सम्बन्धी हमारे सामान्य उद्देश्योंकी घोषणा इन शब्दोंमें की है:

> हम यह युद्ध किसी भौतिक लाभकी प्राप्तिके लिए नहीं लड़ रहे हैं। हमारा उद्देश्य केवल युद्धमें विजय प्राप्त करना ही नहीं है, हमारा उद्देश्य तो इससे भी आगे एक ऐसी बेहतर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाकी नींव रखना है जिसका अर्थ यह होगा कि हर आनेवाली पीढ़ीके लिए युद्ध अनिवार्य चीज नहीं है। यूरोपके अन्य सभी राष्ट्रोंकी तरह हम भी शान्तिके लिए लालायित हैं। लेकिन वह अस्थायी शान्ति नहीं होनी चाहिए, जिसमें हमेशा युद्धका खतरा बना रहे। यह शान्ति सच्ची और सुनिश्चित होनी चाहिए।

मेरे ख़यालसे प्रधान मन्त्रीके इस वक्तव्यसे यह अच्छी तरहसे स्पष्ट हो जाता है कि हम जिस उद्देश्यको लेकर लड़ रहे हैं वह क्या है और अगर इस बातका औचित्य सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता थी कि उस उद्देश्यको सफल बनाने के लिए भारतको अपनी सद्भावना एवं नैतिक समर्थन प्रदान करना चाहिए तो इससे उसका औचित्य भी सिद्ध हो जाता है।

मुझसे जो दूसरा प्रश्न पूछा गया है, अब मैं उसपर आता हूँ — भारतके भविष्य और उसके संवैधानिक विकासकी दिशासे सम्बन्धित प्रश्नपर। ... आज

भारतकी संवैधानिक स्थिति और सम्राट्की सरकारकी नीतिका निर्धारण १९३५ के भारत सरकार अधिनियमकी व्यवस्थाओंके अनुसार होता है। इस अधिनियमका भाग ३, जिसमें ब्रिटिश भारतके प्रान्तोंको प्रान्तीय स्वायत्तता देनेकी व्यवस्था है, लागू कर दिया गया है। पिछले ढाई सालसे विभिन्न प्रान्त इस अधिनियमके अन्तर्गत अपनी-अपनी शासन-व्यवस्था स्वयं चलाते आ रहे हैं। और इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि यद्यपि बीच-बीचमें कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई हैं, तथापि कुल मिलाकर उन्होंने बहुत सफल ढंगसे शासन चलाया है। उन प्रान्तोंमें चाहे कोई भी राजनीतिक दल सत्तामें रहा हो, जनहितकी दृष्टिसे उसकी पिछले ढाई वर्षोंकी विशिष्ट उपलब्धियोंपर सबको गर्व हो सकता है। उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किया है उससे निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो गया है कि इस अधिनियमकी योजनाके लागू किये जानेमें चाहे जो भी छोटी-मोटी समस्याएँ उपस्थित हुई हों, प्रान्तोंमें इस अधिनियमपर अमल करनेमें हमारे सामने चाहे जो भी कठिनाइयाँ आई हों, अधिनियमकी योजना निस्सन्देह निर्दोष है और उसकी बदौलत विधानमण्डलोंमें अपने बहुमतके समर्थनपर निर्भर लोक-निर्वाचित सरकारोंको व्यापक अधिकार और अवसर प्राप्त हुए हैं।

अधिनियममें जिस दूसरी अवस्थाकी तजवीज थी वह यह थी कि केन्द्रीय सरकारका पुनर्गठन ऐसे आधारपर किया जाये जिससे भारतकी एकताका आवश्यक लक्ष्य प्राप्त हो सके। इसके लिए सोचा गया तरीका यह था कि पूरे भारतको ऐसे संघमें गठित कर दिया जाये जिसमें ब्रिटिश भारतके सभी राजनीतिक दलोंके प्रतिनिधि, भारतीय रियासतोंके नरेशोंके साथ मिलकर, सम्पूर्ण भारतके लिए एक एकीकृत सरकारकी रचना करें। . . . मैं हमेशा यह मानता रहा हूँ कि संघ-योजना अपने अमली रूपमें उतनी ही सन्तोषजनक सिद्ध होती जितनी कि — अगर मोटे तौरपर कहें तो — हम सब प्रान्तीय स्वायत्तताकी योजनाको सन्तोषजनक सिद्ध हुआ मान सकते हैं। मैं आज इस विषयपर ज्यादा देरतक चर्चा नहीं करूँगा, क्योंकि संघीय योजनाके सम्बन्धमें किये जानेवाले हमारे कार्यको स्थगित कर दिया गया है। लेकिन १९३५ के अधिनियमकी संघ-विषयक व्यवस्थाओंके तात्त्विक रूपसे सही होनेमें अपना विश्वास मैं इस कारण और भी जोर देकर व्यक्त करता हूँ कि उनमें इस बातका सबूत मिलता है कि सम्राट्की सरकार यथासम्भव शीघ्रसे-शीघ्र और विभिन्न पक्षों तथा सम्बन्धित हितोंके बीच परस्पर अधिकसे-अधिक सहमतिके आधारपर भारतकी एकता स्थापित करने और इस तरह भारतकी लक्ष्य-सिद्धिके मार्गपर एक और भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मीलके पत्थरसे आगे बढ़नेको उत्सुक है।

इसी पृष्ठभूमिमें आज हम काम कर रहे हैं, अब प्रश्न यह है कि भारतके सम्बन्धमें सम्राट्की सरकारके क्या इरादे और उद्देश्य हैं? इस प्रश्नके उत्तरका सबसे अच्छा तरीका यही होगा कि मैं भूतपूर्व भारत-मन्त्रीके उस वक्तव्यकी ओर इंगित करूँ जो उन्होंने सम्राट्की सरकारकी ओरसे तथा उसकी अनुमतिसे ६ फर-

वरी, १९३५ को दिया था। उनके उस वक्तव्यमें स्थिति पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। . . . वक्तव्यके शब्दोंको यहाँ विस्तारसे उद्धृत करने की जरूरत नहीं है। वे सुस्पष्ट और सुनिश्चित हैं। वे संसदके अभिलेखोंमें भली प्रकार सुरक्षित हैं। इस दिशामें, भारतके भावी संवैधानिक विकास और स्थितिके मामलेमें वे शब्द सम्राट्की वर्तमान सरकारकी नीति और उनके इरादोंकी निश्चित और स्पष्ट व्याख्या करते हैं। मैं इतना ही और कहना चाहूँगा कि गवर्नर-जनरलके रूपमें मुझे मई १९३७ में सम्राट्ने जो निर्देश-पत्र दिया उसके अधीन गवर्नर-जनरलकी हैसियतसे मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि सम्राट्ने मुझमें जो विश्वास व्यक्त किया उसके अनुसार मुझे इस ढंगसे काम करना है कि "हमारे साम्राज्यके अन्तर्गत भारत और यूनाइटेड किंगडमकी साझेदारीका इस तरहसे आगे विकास हो जिससे भारतको हमारे उपनिवेशोंके बीच अपना उचित स्थान प्राप्त हो जाये।"

यह हमारी नीति है और यह हमारी स्थिति है। सम्राट्की सरकारके ये इरादे हैं। मैं १९३५ के अधिनियमके बारेमें चन्द शब्द और कहना चाहूँगा। इस अधिनियमका आधार वह अधिकतम आम सहमति थी जिसे प्राप्त करना अधिनियम-रचनाके समय सम्भव हो सका। जैसाकि हम सब लोगोंको विदित है, यह ब्रिटिश और भारतीय राजनीतिज्ञों तथा ब्रिटिश भारत एवं देशी रियासतोंके प्रतिनिधियोंके दीर्घकालके सामूहिक प्रयत्नोंसे तैयार किया गया था। इसकी रचना करनेके लिए किये जानेवाले विचार-विमर्शसे सभी पक्ष किसी-न-किसी अवस्थामें घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध रहे। . . .

चाहे जो हो, सम्राट्की सरकार इस बातको स्वीकार करती है कि जब भारतकी भावी संघीय सरकारकी योजनापर पुनर्विचार करने तथा पालियामेन्टमें भूतपूर्व भारत-मन्त्री द्वारा दिये गये आश्वासनोंको — जिनकी कि मैंने अभी-अभी चर्चा की है — लागू करने की योजनापर विचार करने का समय आयेगा उस समय जो परिस्थितियाँ होंगी उन्हें देखते हुए इस बातपर विचार करना जरूरी होगा कि १९३५ के अधिनियममें समाविष्ट योजनाकी तफसीलें कहाँतक उपयुक्त रह गई हैं।

और अब मुझे सम्राट्की सरकार द्वारा यह कहने का अधिकार दिया गया है कि युद्धका अन्त होने पर वह भारतकी विभिन्न कौमों, दलों और हितों तथा भारतीय नरेशोंसे, अधिनियममें वाछनीय परिवर्तनोंकी रूपरेखा तैयार करने में उनकी सहायता और सहयोग प्राप्त करने की दृष्टिसे परामर्श करने को सहर्ष प्रस्तुत रहेगी। मुझे विश्वास है, अभी मैंने जो-कुछ कहा है उससे यह स्पष्ट हो गया है कि — गवर्नर-जनरलको दिये गये निर्देश-पत्रकी भाषामें कहें तो — भारतका महान् उपनिवेशोंके बीच अपना उचित स्थान उपलब्ध करवाने की दृष्टिसे साम्राज्यके अन्तर्गत भारत और यूनाइटेड किंगडमकी साझेदारीको आगे बढ़ाना ही सम्राट्की सरकारका इरादा है और इसी चीजकी उसे फिक्र है।

१९३५ के अधिनियममें जिस शासन-योजनाका समावेश है उसे उस प्रक्रियाकी एक अनिवार्य अवस्थाके रूपमें ही तैयार किया गया था।

लेकिन अभी मैंने जो बात कही है उससे यह स्पष्ट हो गया है कि युद्धका अन्त होने पर सम्राट्की सरकार अधिनियमकी योजनाको भारतीयोंकी राय के मुताबिक परिवर्तनाधीन मानने को तैयार रहेगी।

और मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सम्राट्की सरकारका उद्देश्य यह होगा — जैसा कि अतीतमें हमेशा रहा है — कि उस लक्ष्यकी ओर भारत की व्यवस्थित और तालमेलयुक्त प्रगतिमें योग देने की आशासे सभी शक्य उपायोंसे विभिन्न पक्षोंकी सहमतिको और आगे बढ़ाने के निमित्त कोई भी प्रयत्न वह उठा नहीं रखे।

इस सम्बन्धमें मैं यह भी कह दूं कि मेरी जो वार्त्ताएँ हुईं उनके दौरान अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधियोंने मुझे अत्यन्त आग्रहपूर्वक इस आशयका आश्वासन देनेकी आवश्यकता समझाई कि अधिनियममें जो भी परिवर्तन सोचे जायें उनमें उनके विचारों और हितोंका पूरा-पूरा खयाल रखा जायेगा। इसपर मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि दशाब्दी-भरसे अधिक कालतक, तीन गोलमेज परिषदों और संयुक्त प्रवर समितिकी बैठकके दौरान, सम्राट्की सरकारने इस देशके सभी दलों और सभी हितोंके प्रतिनिधियोंसे परामर्श किया और उनकी सलाहका लाभ उठाया। यह बात कल्पनातीत है कि निकट अतीतमें जो लोग सम्राट्की सरकार और पार्लियामेंटसे ऐसे ही कार्यमें इतने घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध रहे हैं, अब उनसे सलाह-मशविरा किये बिना हम भारतके भावी संविधानके किसी भी महत्त्वपूर्ण हिस्सेकी योजना नये सिरेसे बनाने लग जायें या उनमें कोई परिवर्तन करें।

पिछले कुछ हफ्तोंके दौरान मैंने जो वार्त्ताएँ चलाईं उनसे मुझे भली-भाँति पता लग गया है कि इस देशके कुछ हल्कोंकी ऐसी इच्छा है कि मैंने जिसका उल्लेख किया है उससे भी कोई अधिक विस्तृत योजनाके, सम्राट्की सरकारके इरादोंके और भी ज्यादा तफसीलवार संकेत पेश किये जायें।

मैं यह बेझिझक और पूरी तरह स्वीकार करता हूँ कि इस इच्छाके पीछे पूरी ईमानदारी है और जिनकी ऐसी इच्छा है उन्हें पूरा यकीन है कि भारतकी भावी प्रगति और विकास सम्पन्न करने और सम्राट्की सरकारके स्पष्ट इरादोंको अंजाम देनेका यही सबसे अच्छा तरीका है। चेतावनी-स्वरूपमें इतना ही कहना चाहूँगा कि . . . इस देशके करोड़ों लोगोंके भविष्यको. बड़ी-बड़ी कौमोंके आपसी सम्बन्धोंको, भारतके नरेशोंको, और जबरदस्त व्यापारिक तथा औद्योगिक हितोंको — चाहे वे हित यूरोपीयोंसे सम्बद्ध हों या भारतीयोंसे — प्रभावित करनेवाले इस तरहके मामलेमें जहाँतक व्यावहारिक हो, अधिकसे-अधिक सहमति प्राप्त की जानी चाहिए। चाहे प्रगतिकी जितनी प्रबल इच्छा हो, व्यावहारिक बातोंका खयाल रखते हुए ही उसे सम्पादित करना होता है। . . .

मैं अनुरोध करना चाहूँगा कि चेतावनीके इन शब्दोंका अर्थ यह न लगाया जाये कि सम्राट्की सरकारमें भारतकी आकांक्षाओंके प्रति सहानुभूतिकी कोई कमी है या उनकी प्रगतिकी रफ्तारके बारेमें वह उदासीन है; और मैं इस बातको दोह-

राना चाहूँगा कि अतीत की ही तरह आज भी सम्राट्की सरकार सचमुच इस बात के लिए बहुत उत्सुक है कि वह इस देशके सभी दलो और हितोंके बीच वह सहमति और समझौता कायम करने के लिए भरसक प्रयत्न करे जो अपने लक्ष्यकी ओर भारतकी प्रगतिके लिए इतना आवश्यक है।

अब मैं युद्ध-संचालनमें भारतके लोकमतको शरीक करनेके लिए की जानेवाली व्यवस्थाकी चर्चा करूँगा। भारतका अवतक का योगदान ही इतना महान् रहा है जिससे सारी दुनिया प्रभावित है। जो-कुछ उसने दिया है उसकी सूचीमें सर्वोच्च स्थानमें उसके भौतिक नहीं, बल्कि नैतिक योगदानको — यहाँके लोग जिसे शुभ और न्यायसम्मत उद्देश्य मान सकते हैं उसको उनके द्वारा दिये गये समर्थनको — देता हूँ। भौतिक क्षेत्रमें भी उसका योगदान उतना ही महत्त्वपूर्ण है और भविष्यमें इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो सकता है। इन परिस्थितियोमें भारतीय जनमानसकी युद्ध-संचालनमें शरीक किये जानेकी इच्छा और आतुरता स्वभावतः ऐसी चीज है जिसके प्रति मैंने सदासे अधिकसे-अधिक सहानुभूतिका अनुभव किया है। जिन परिस्थितियोका मैंने वर्णन किया है उनमें ऐसे कदम उठाना अत्यधिक वाछनीय है जिससे लोकमतका नेतृत्व करनेवाले लोगोको घटनाक्रमकी ठीक-ठीक खबर रहे।

संवैधानिक स्थितिके सम्बन्धमें मुझसे मिलने आनेका सौजन्य दिखानेवाले विभिन्न दलोंके नेताओंसे मैंने अत्यधिक स्पष्ट रीतिसे इस विषयकी चर्चा की है कि इस इच्छाको हम किस विधिसे सबसे अच्छे ढंगसे कार्यान्वित कर सकते है। . . .

मैं इतना ही कहूँगा कि इन चर्चाओं और महान् दलोंके प्रतिनिधियो तथा देशी नरेशोके विचारों (जो हमेशा परस्पर समान ही नही होते थे)को ध्यानमें रखते हुए, मेरी राय यह है कि सही समाधान एक सलाहकार समिति होगी। इस समितिमें ब्रिटिश भारतके सभी बड़े राजनीतिक दलो और देशी नरेशोंके प्रतिनिधि शामिल होंगे। इसकी अध्यक्षता स्वयं गवर्नर-जनरल करेंगे। इसकी बैठकें अध्यक्षके आमन्त्रण पर होंगी। इसका उद्देश्य युद्ध-संचालनमें और युद्ध-विषयक कारंवाइयोसे सम्बद्ध प्रश्नोंके बारेमें भारतके लोकमतको शरीक करना होगा।

व्यावहारिक कारणोसे इस समितिका आकार अनिवार्यत. बहुत सीमित होगा। लेकिन सम्राट्की सरकारका विचार है कि इसे पूर्णत प्रातिनिधिक होना चाहिए, और खासकर यह कि इसके सदस्य विभिन्न बड़े राजनीतिक दलो द्वारा तैयार की गई सूचियोंमें से गवर्नर-जनरल द्वारा चुने जायें . .।

मैं निकट भविष्यमें राजनीतिक नेताओ और देशी नरेशोसे इस प्रश्नपर बातचीत करने की आशा रखता हूँ। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी व्यवस्थासे, युद्धसचालनके लिए जो कदम उठाये जा रहे हैं और उसके सम्बन्धमें जो इन्तजाम किये जा रहे हैं, उनमें भारतकी रियासतो और ब्रिटिश भारतके शरीक किये जाने से बहुत अधिक सहायता मिलेगी। और मुझे इस बातका भी पूरा यकीन है कि सभी दलों और हितोंके प्रतिनिधियोके इस तरह युद्ध-प्रयत्नोंमें शामिल होने में इस देशके सभी दृष्टिकोणोंके लोगोंके उस पूर्णतर और व्यापकतर साहचर्यके बीज विद्यमान हैं जो सम्पूर्ण भारतके भविष्यके लिए ऐसे लाभ की सम्भावनाओंसे आपूरित हैं।

महीने-भर पहले केन्द्रीय विधानमण्डलमें बोलते हुए मैंने एकताके लिए अनुरोध किया था। आज उसी अनुरोधको दोहराना चाहूँगा। . . . आज हम बड़ी कठिन और आशंकापूर्ण परिस्थितियोंमें रह रहे हैं। बड़े-बड़े आदर्श दाँवपर चढ़े हुए हैं। वास्तविक और आसन्न खतरे हमारी सभ्यताके समक्ष उपस्थित हैं। भारतके सन्दर्भमें भी वे खतरे उतने ही वास्तविक और आसन्न हैं जितने कि ब्रिटिश राष्ट्रकुलके अन्य राष्ट्रोंके सन्दर्भमें। वे आदर्श भारतके लिए भी उतने ही मूल्यवान हैं जितने साम्राज्य या विश्वके किसी अन्य देशके लिए। राष्ट्रोंकी नियतिके इस गम्भीर क्षणमें सभी पक्षोंसे मेरी यही प्रार्थना होगी कि वे सबके हितके लिए किये जानेवाले इस प्रयत्नसे अपनेको अलग न रखें, बल्कि युद्ध-संचालनमें अपना सहयोग और सहायता प्रदान करें। इस युद्धने भारतको एकजुट होकर प्रयत्न करने का जो अवसर दिया है उसका वह पूरा-पूरा उपयोग करे — अपनी परम्पराओंके प्रति उसकी निष्ठाका इससे अधिक निर्णायक प्रभाव और कुछ नहीं हो सकता। हमने अपने सामने जो आदर्श रखे हैं, जिन लक्ष्योंकी प्राप्तिके लिए हम वर्त्तमान संघर्षमें लगे हुए हैं, वे भारतमें व्यापक सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करने योग्य हैं। वे उसके विगत इतिहास और उच्चतम परम्पराओंसे मेल खाते हैं। मुझे आशा है कि हमारे सामने उपस्थित इस नाजुक क्षणमें भारत सबके हितोंसे सम्बद्ध उद्देश्यके समर्थनमें ऐक्यबद्ध देशके रूपमें आगे बढ़ेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, १८-१०-१९३९

परिशिष्ट १३

कांग्रेस कार्य-समितिका प्रस्ताव[1]

२२ अक्तूबर, १९३९

कार्य-समितिकी राय है कि समितिने ब्रिटेनको अपने युद्ध-लक्ष्योंको — खासकर जहाँतक वे भारतपर लागू होते हैं — घोषित करने का जो आमन्त्रण दिया था उसके उत्तरमें वाइसराय महोदय द्वारा दिया गया वक्तव्य सर्वथा असन्तोषजनक और भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त करने को उत्सुक तथा तदर्थ कटिबद्ध लोगोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला है। यह आमन्त्रण न केवल भारतकी जनताकी ओरसे, बल्कि संसार-भरके शान्ति और स्वतन्त्रताकी नयी व्यवस्थाके लिए आकुल उन करोड़ों लोगोंकी ओरसे दिया गया था जो युद्ध तथा हिंसासे उन फासिस्टवादी और साम्राज्यवादी प्रणालियोंसे श्रान्त-क्लान्त हो चुके हैं जो राष्ट्रों और जनताका शोषण करती हैं और जिनके कारण अन्ततः युद्ध छिड़ा। वाइसराय महोदयके वक्तव्यमें फिर उसी पुरानी साम्राज्यीय नीतिको स्पष्ट रूपसे दोहराया गया है। विभिन्न पक्षोंके मत-

१. देखिए पृ० २९८, ३२४, ३३८, ३४० और ३८१।

भेदोंके उल्लेखको समिति ग्रेट ब्रिटेनके वास्तविक इरादोंपर परदा डालने की कोशिश मानती है। समितिने माँग यह की थी कि अपनी प्रामाणिकताके सबूतके रूपमें ब्रिटेन भारतके सम्बन्धमें अपने युद्ध-लक्ष्योंको घोषित करे, चाहे परस्पर-विरोधी पक्षों और गुटोंका रुख कुछ भी हो। कांग्रेस सदासे अल्पसंख्यक समुदायोंके अधिकारोंकी पूर्ण सुरक्षाकी पक्षधर रही है। कांग्रेसने जिस स्वतन्त्रताकी माँग की वह कांग्रेस या किसी विशेष गुट या समुदायके लिए नहीं थी, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र और उस राष्ट्रका निर्माण करनेवाले भारतके सभी समुदायोंकी स्वतन्त्रता थी। इस स्वतन्त्रताको स्थापित करने और सम्पूर्ण राष्ट्रकी इच्छाका पता लगाने का एकमात्र उपाय सभी समुदायोंको पूर्ण अवसर देनेवाली लोकतान्त्रिक प्रक्रिया है। इसलिए समिति वाइस-रायके वक्तव्यको हर तरहसे दुर्भाग्यपूर्ण मानने को विवश है। इस परिस्थितिमें समिति ग्रेट ब्रिटेनको कोई समर्थन नहीं दे सकती, क्योंकि समर्थन देने का मतलब उस साम्राज्यवादी नीतिकी ताईद करना होगा जिसे समाप्त करने के लिए कांग्रेस सदासे प्रयत्नशील रही है। इस दिशामें पहले कदमके रूपमें समिति कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंसे त्यागपत्र देने को कहती है।

समिति राष्ट्रसे हार्दिक अनुरोध करती है कि महान् संकटकी इस घड़ीमें वह सभी आन्तरिक विवादोंको समाप्त कर, भारतकी स्वतन्त्रताके लिए एकजुट होकर काम करे। समिति कांग्रेस कमेटियों और आम कांग्रेसजनोंसे आग्रह करती है कि वे परि-स्थितिमें आनेवाले सभी मोड़ों और सभी सम्भाव्य घटनाओंका सामना करने के लिए तैयार रहें और अपने वचन तथा कर्ममें ऐसे संयमका परिचय दें जिससे कोई ऐसी बात कही या की न जा सके जो भारतकी प्रतिष्ठा और जिन सिद्धान्तोंका कांग्रेस प्रतिनिधित्व करती है उनके विरुद्ध हो। समिति कांग्रेसजनोंको सविनय अवज्ञा, राज-नीतिक हड़तालों आदिके रूपमें जल्दबाजीमें कोई कदम न उठाने का आग्रह करती है। समिति परिस्थिति और भारतमें ग्रेट ब्रिटेनकी प्रवृत्तियोंपर नजर रखेगी, जब जरूरत होगी तब देशको आगे कदम उठाने का निर्देश देने में संकोच नहीं करेगी। समिति कांग्रेसजनोंको समझाना चाहती है कि देशके सामने जो महान् प्रश्न उपस्थित है उसको देखते हुए प्रतिरोधके किसी भी कार्यक्रमका तकाजा है कि कांग्रेसजनोंमें पूर्ण अनुशासन हो और कांग्रेस-संगठनको सुदृढ़ बनाया जाये।

कार्य-समिति यह महसूस करती है कि अतीतमें कांग्रेसने जो अहिंसक प्रतिरोध किया उसमें हिंसा भी समाविष्ट थी। समिति कांग्रेसजनोंको समझा देना चाहती है कि जो भी प्रतिरोध किया जाये वह हिंसासे सर्वथा मुक्त हो। समिति उन्हें १९२१ में ही, कांग्रेसके अहमदाबाद-अधिवेशनके दौरान ली गई और बादमें अनेक अवसरोंपर दोहराई गई इस आशयकी प्रतिज्ञाओंका स्मरण कराना चाहती है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २८-१०-१९३९

परिशिष्ट १४

सर सैम्युअल होरका भाषण[1]

२६ अक्तूबर, १९३९

भारतपर होनेवाली बहसोंमें श्री वेजवुड बेन और मैं अक्सर एक-दूसरेसे उलझते आये हैं। कभी-कभी हममें असहमति और बहुत ही जबरदस्त असहमति रही है। पर कभी-कभी सहमति भी हुई है। आज शामकी बहसमें . . . आइए हम कुछ क्षण उन अवसरोंपर दृष्टि डाले जब हम परस्पर सहमत रहे हैं। मुझे अच्छी तरह ऐसे एक अवसरकी याद है जब कोई आठ-नौ साल पहले इस सदनमें हमने लॉर्ड अर्विनकी उन आलोचकोंके प्रहारोंसे रक्षा की थी जो यह कहते थे कि उन्हे महात्मा गांधीसे बातचीत नही करनी चाहिए थी। . . . मुझे विश्वास है कि वे और मैं इस बातपर सहमत हैं कि आज यह देखकर सन्तोष होता है कि वाइसराय प्रमुख सम्बन्धित दलोंके नेताओंसे मिल रहे हैं जिनमें चरमपंथी नेता भी, यहाँतक कि हैरोके मेरे पुराने सहपाठी पंडित नेहरू भी, शामिल हैं।

भारत-सम्बन्धी इन बहसोंमें श्री वेजवुड वेनके और मेरे पिछली बार भाग लेनेके बाद विश्वमें बहुत-सी ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। . . . एक ऐसे समयमें जब यूरोपमें लोकतन्त्र नष्ट किये जा रहे थे, हमने भारतमें ग्यारह बड़ी लोकतान्त्रिक सरकारोंकी स्थापना होते देखी, जिन्होंने विश्वके लोकतान्त्रिक राष्ट्रोंकी शक्तिमें अभिवृद्धि की। इनसे निश्चय ही इस सदनके प्रत्येक सदस्यको बहुत सन्तोषका अनुभव होना चाहिए।

भारतीय उपलब्धिकी इसी पृष्ठभूमिमें इस साल ३ सितम्बरको भारत और ब्रिटिश राष्ट्रकुलके समक्ष युद्धका संकट उपस्थित हुआ। इस संकटके समय . . . भारत पाशविक शक्तिका प्रतिरोध करनेके अपने संकल्पमें और उस खतरेको राष्ट्रकुलके हर भागके लिए एक समान खतरा माननेके अपने बोधमें एकजुट था। इस एकताको देखते हुए वाइसरायने भारतीय सद्भावना और सहयोगकी प्राप्तिके लिए अपनी सच्ची और हार्दिक इच्छाका परिचय दिया . . .। . . . वाइसरायने पहले भारतीय लोकमतके नेताओंके साथ कई मुलाकातें की और उन मुलाकातोंके फलस्वरूप उन्होंने दो सुनिश्चित प्रस्ताव रखे। पहला प्रस्ताव एक प्रकारका वचन था। वह एक स्पष्ट और सुनिश्चित वक्तव्य था कि युद्ध समाप्त हो जानेपर संवैधानिक समस्याओंपर, पिछले कुछ सालोंके अनुभवकी रोशनीमें, फिरसे विचार किया जायेगा। दूसरेमें, भारतकी सलाहसे लाभ उठानेके खयालसे और भारतीय नेताओंको अपना विश्वास-

१. देखिए पृ० ३३७, ३५४, ३७०-७१ और ४१७-१८। यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

पात्र बनाने की गरजसे, उन्होंने यह सुझाव दिया कि एक सलाहकार समिति बनाई जाये, जो युद्धके कारण पैदा होनेवाली बहुत-सी समस्याओंपर उनके साथ विचार-विमर्श करे और भारतीय लोकमतके रुझानोंके साथ उनका निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क रखे। . . .

. . . सलाहकार समितिके प्रस्तावके पीछे पूर्णतया यह इच्छा थी कि भारतीय लोकमतकी प्रमुख संस्थाओंका यथासम्भव अधिकसे-अधिक सहयोग प्राप्त किया जाये। कांग्रेसने, जो निश्चय ही भारतका सबसे बड़ा दल है, इसे अस्वीकार कर दिया। गैर-कांग्रेसी भारतने — जिसमें स्मरण रहे करोड़ो भारतीय आते हैं — इसे सारतः स्वीकार कर लिया। यह पूछा जा सकता है कि क्या वाइसरायके लिए यह सम्भव न था कि वे और आगे बढ़ते और कोई ऐसा प्रस्ताव रखते जिससे भारतीय लोकमतके इस कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी विभाजनसे बचा जा सकता? यह पहला सवाल है और बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल है, जिसकी ओर मैं सदनका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। सदस्य यदि इसके गूढ़ार्थोंको समझना चाहते हैं तो उन्हें भारत सरकार अधिनियम पर हुई कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण बहसोंको याद करना होगा। उनका केन्द्र-बिन्दु यह वचन था कि भारतीय नीतिका लक्ष्य औपनिवेशिक दर्जा है। जैसा कि श्री वेजवुड बेनने कहा है, ये वचन बार-बार दुहराये गये थे। भारत सरकार अधिनियमके द्वितीय वाचनकी प्रस्तावनामें मैंने जो भाषण दिया था उसमें बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें उन वचनोंकी पुनः पुष्टि की गई थी।

मैंने यह स्पष्ट कर दिया था और आज फिर स्पष्ट कर देता हूँ कि हम लॉर्ड अर्विनके वचनपर कायम हैं और जब हम औपनिवेशिक दर्जेकी बात करते हैं तो हमारा आशय वही होता है जो हम कहते हैं, और हमारा आशय सरकारकी कोई ऐसी व्यवस्था नहीं रहा है जिसमें भारत राष्ट्रकुलके अन्य सदस्योंके साथ बराबरीके दर्जेसे वंचित रहे।

कुछ लोगोंका खयाल मालूम देता है कि औपनिवेशिक दर्जेकी कोई दो किस्में हैं, लेकिन ऐसी बात नहीं है। हम जिस औपनिवेशिक दर्जेकी बात सोचते हैं वह वही औपनिवेशिक दर्जा है जिसका वर्णन श्री वेजवुड बेनने किया है, अर्थात् १९२६ का औपनिवेशिक दर्जा। मैंने यह भी कहा था कि औपनिवेशिक दर्जा किसी योग्य समाजको दिया जानेवाला कोई पुरस्कार नहीं है, बल्कि जो तथ्य वस्तुतः अस्तित्वमें होते हैं उन्हींकी स्वीकृति है। जैसे ही ये तथ्य भारतमें अस्तित्वमें आते हैं, और मेरे विचारसे वे जितनी जल्दी अस्तित्वमें आयें उतना ही अच्छा है, वैसे ही हमारी नीतिका लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा। यदि कठिनाइयाँ मार्गमें आ रही हैं तो वे हमारी पैदा की हुई नहीं हैं। इस बड़े उपमहाद्वीपमें वर्गों और समुदायोंके जो बहुत-से भेद हैं, ये कठिनाइयाँ उनमें अन्तर्निहित हैं। इन भेदोंको दूर करना स्वयं भारतवासियोंका लक्ष्य होना चाहिए, जैसे कि इस कार्यमें भारतवासियोंकी सहायता करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

फूट डालने और राज करनेकी इच्छासे हम इतनी दूर हैं कि इन भेदोंको हम भारी मुसीबत मानते हैं और उन्हें मिटाने के लिए ज्यादासे-ज्यादा कोशिश करने को

तैयार है। इस विषयमें अपने सद्भावका हम परिचय दे चुके हैं। हमने जब साम्प्रदायिक पंच-फैसला दिया तो यह सद्भाव दिखाया था। मान लीजिए हमारी इच्छा फूट डालने और राज करने की होती तो उस समय हम कह सकते थे: 'पहले खुद अपने साम्प्रदायिक मतभेद सुलझाओ, जबतक आप उन्हें सुलझा नही लेते तब तक कोई संवैधानिक प्रगति नही हो सकती।' वह रास्ता हमने नही अपनाया, बल्कि खुद भारी जोखिम उठाते हुए और बहुत अधिक आलोचनाका सामना करते हुए, साम्प्रदायिक पंच-फैसला दिया, जिसके बिना प्रान्तीय स्वायत्त शासन सम्भव ही न होता।

परन्तु हमारे पंच-फैसलेके बावजूद, ये भेद अब भी मौजूद हैं और जबतक ये मिट नही जाते तबतक अल्पसंख्यकोंके प्रति हमारी कुछ जिम्मेदारियाँ है, जिन्हें हम छोड़ नही सकते। १९३५ में हमारी यह स्थिति थी, और आज हमारी यही स्थिति है। हम चाहते हैं कि ये भेद मिट जायें, लेकिन यदि हम इनके अस्तित्वकी ओरसे आँखें मूंद लें और उन्हे मानने से इन्कार कर दें तो हम इन्हें कभी मिटा नही सकेंगे? इन भेदोंके कारण ही केन्द्रमें उत्तरदायी सरकारकी स्थापना और एक अखिल भारतीय परिसंघके महान् आदर्शकी प्राप्तिका कार्य इतना कठिन हो गया।

नरेशोंको ब्रिटिश भारतके आधिपत्यका डर है, मुसलमान केन्द्रमें हिन्दुओंके बहुमतके कट्टर विरोधी हैं। दलित वर्ग और अन्य अल्पसंख्यक वस्तुतः यह सोचते हैं कि उत्तरदायी सरकार, अर्थात् हिन्दू बहुमतपर निर्भर सरकार, उनके हितोंको तिलांजलि दे देगी। ये दुश्चिन्ताएँ अब भी मौजूद रहेंगी। काश, ये न होतीं।

लेकिन जबतक ये मौजूद हैं, तबतक सरकारके लिए यह असम्भव है कि वह केन्द्रमें तुरन्त, एक निश्चित तिथिपर, पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम करनेकी माँग स्वीकार कर सके। यदि हमने ऐसा किया तो मुसलमानों, अन्य अल्पसंख्यकों और यूरोपीय समुदायको हम बार-बार बहुत ही गम्भीरतापूर्वक जो वचन दे चुके हैं वे सब झूठे हो जायेंगे।

यह कहा जा सकता है कि 'मान लीजिए, केन्द्रमें तुरन्त पूर्ण उत्तरदायी शासन असम्भव ही हो, तो भी क्या कुछ ऐसे अन्य कदम नहीं उठाये जा सकते जो हमारे सद्भावके सूचक हों और जिनसे भारतके आगे यह स्पष्ट हो जाये कि वह लक्ष्य हमारे ध्यानमें आज भी उसी तरह है जिस तरह कि चार वर्ष पहले उन वचनोंको देते समय था?' श्री वेजवुड बेनने खुद आज तीसरे पहर कई सुझाव रखे हैं और मैं उनपर विचार करनेकी कोशिश करूँगा। पहले मैं उनकी यह भ्रान्त धारणा दूर कर दूँ, जो मेरे खयालसे वे पाले हुए हैं, कि हम निकट भविष्यमें लन्दनमें एक शाही सामरिक मन्त्रिमण्डल स्थापित करनेकी बात सोच रहे हैं और उसमें भारतके एकसे अधिक प्रतिनिधि होने चाहिए। उस तरहका कोई शाही सामरिक मन्त्रिमण्डल स्थापित करनेका अभी कोई इरादा नही है। यदि कभी उसका समय आया तो मैं तब निश्चय ही उन विचारोंको ध्यानमें रखूँगा जो इस विषयमें उन्होंने व्यक्त किये हैं और मैं समझता हूँ कि उनपर बहुत ही सावधानीसे विचार किया जायेगा।

उसके बाद वे उस योजनापर बोले थे जिसपर पहले एकाधिक बार बहस हो चुकी है। उन्होंने पूछा था : "वाइसरायकी कौंसिलमें राजनीतिक नेताओंको शामिल करना क्या सम्भव न होगा, जिनके पास कि कुछ बडे-बड़े विभाग रहें?" मैं कह चुका हूँ कि यह कोई नया सुझाव नही है। जहाँतक मुझे याद है, सयुक्त प्रवर समितिमें हुई बहसमें यह रखा गया है।

मेरा खयाल है कि एक समय स्वयं विरोधी पक्षके नेताने यह सुझाव रखा था। तब हमने इसपर पूरी तरह विचार किया था और उस समय इसे स्वीकार करनेमें हमें अपने आगे कुछ कठिनाइयाँ नजर आई थी। उन कठिनाइयोको मैं आज गिनाने नही जा रहा हूँ। मै द्वार बन्द करना नही चाहता, बल्कि भारत सरकार अधिनियमकी सीमाओंके अन्तर्गत जितनी भी सम्भावनाएँ हैं मै उन सबकी छानबीन करना चाहता हूँ। . . .

. . . उसके बाद श्री वेजवुड वेनने उस विचार-विमर्शकी चर्चा की थी जो पिछले युद्धके दौरान सविधानके विषयपर हुआ था। उन्होंने मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड विचार-विमर्शका उल्लेख करते हुए पूछा था कि क्या इस युद्धके दौरान उस तरहका विचार-विमर्श सम्भव होगा।

इसका कोई अन्तिम उत्तर तो मैं नही देना चाहता, पर यह जरूर बताना चाहूँगा कि कुछ मामलोमें आज परिस्थिति मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड विचार-विमर्शके समयकी परिस्थितिसे काफी भिन्न है। समस्याएँ तब इतनी कटु नही हुई थी जितनी कि आज हो गई है। खास तौरपर मैं साम्प्रदायिक समस्याकी बात सोच रहा हूँ। इसके अलावा कमसे-कम युद्धके आरम्भमें उस तरहके विचार-विमर्शका होना मुझे असम्भव लगता है। मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड विचार-विमर्श, मेरे खयालसे, पिछला युद्ध छिड़ने के तीन वर्ष बाद हुआ था। फिर भी, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, इस तरहके मुद्देपर मैं आज कोई अन्तिम उत्तर देना नही चाहूँगा।

एक और मुद्देपर भी, जो श्री वेजवुड बेनने उठाया है, यानी कि भारतमें आम चुनाव होने चाहिए, मै कोई अन्तिम उत्तर नही दूँगा। कमसे-कम युद्धके आरम्भमें आम चुनाव मुझे प्राय. असम्भव लगते हैं। भारतमें अधिकारी रात-दिन युद्धके कार्यमें लगे हैं। इसके अलावा, तथ्य यह है कि चुनावमें साम्प्रदायिक भावनाएँ, मुझे यकीन है, बहुत भड़क जायेंगी। इस विषयमें मै कोई सिद्धान्त तो बनाना नही चाहता और न 'कदापि नहीं', 'किसी भी हालतमें नहीं'-जैसे शब्द ही प्रयुक्त करना चाहता हूँ, पर यह जरूर कहना चाहूँगा कि आज जो हालात हैं उनमें केन्द्रीय विधान-सभाके लिए आम चुनाव, मेरी रायमें, असम्भव होगा।

सलाह-मशविरेके व्यापक प्रश्नपर लौटते हुए मैं बता दूँ कि वाइसराय इस सलाह-मशविरेके लिए किन्ही निश्चित तरीकोंके प्रति बद्ध नहीं हैं। यह मूलतः ऐसा प्रश्न है जिसे उन्हें और राजनीतिक नेताओंको परस्पर हल करना है। मै यह कह सकता हूँ कि वे नेताओंके साथ उसके तरीके और तफसीलोंके बारेमें विचार-विमर्श करने को तैयार हैं, और उनका विचार इस विचार-विमर्शके लिए तुरन्त मिलने को

उन्हें निमन्त्रण भेजने का है। जबतक यह और अन्य विचार-विमर्श नहीं हो जाता तबतक कोई निर्णायक रुख अपनाना, मेरे विचारमें बड़ी भारी गलती होगी। भारतीय नेताओंको इन सम्भावनाओंको तोलना चाहिए। उन्हें वाइसरायसे मिलकर एक बार फिर इसपर विचार-विमर्श करना चाहिए और उन्हें इसके विकल्पोंपर भी एक बार फिर विचार कर लेना चाहिए।

जहाँतक केन्द्रमें सीधा और तुरन्त उत्तरदायी शासनके विकल्पका प्रश्न है, मुझे उम्मीद है कि मैंने सदनको यह यकीन दिला दिया है कि आजकी परिस्थितियोंमें इस तरहके विकल्पको स्वीकार करना असम्भव है।

मैं एक दूसरे विकल्पपर आता हूँ और चाहूँगा कि भारतीय नेता एक बार फिर उसपर गम्भीरतासे विचार करें। चाहता तो असलमें मैं यह था कि मुझे उसकी कतई चर्चा न करनी पड़ती। वह विकल्प असहयोगका है, एक ऐसा विकल्प जिसके अधीन भारतीय कांग्रेस अपने रास्तेपर चलेगी और ब्रिटिश सरकार तथा भारतके अल्पसंख्यक सम्प्रदाय अपने रास्तेपर चलेंगे। यदि बात इसपर आ जाती है तो हमारे पास कोई और चारा नहीं रह जायेगा। सम्राट्की सरकार चालू रहनी ही चाहिए और वह कुशलता, ओज और न्यायके साथ चालू रहेगी। जैसा कि इस तरहकी परिस्थितियोंमें कोई भी सरकार करेगी, हम वाइसरायको अपना पूरा समर्थन देंगे। परन्तु भारत और ब्रिटेनके हर सदाशयी व्यक्तिको यह सोचना चाहिए कि असहयोगके इस तरहके अध्यायका अर्थ कितनी बरबादी होगी। इतने सालोंतक गोलमेज सम्मेलनों, संयुक्त प्रवर समितियों और इस सदनकी बहसोंमें हमने जो संवैधानिक प्रयास किये हैं, वे सब व्यर्थ हो जायेंगे। . . .

मैं जब इंडिया ऑफिसमें आया तब असहयोग पूरे जोरोंपर था। . . . मैंने आशा की थी कि जब यह अधिनियम अमलमें आयेगा तो यह अध्याय समाप्त हो जायेगा। परन्तु आज जब दुनियाके सामने उसके इतिहासका सबसे बड़ा संकट उपस्थित है—ऐसा संकट जिसमें हमारे लिए जो खतरा है वह भारतके लिए भी खतरा है और जो भारतके लिए खतरा है वह हमारे लिए भी खतरा है, जिसमें हम और भारत एक नई और बेहतर विश्वव्यवस्था स्थापित करने का एक-जैसा दृढ़ संकल्प रखते हैं—तब भी यह अध्याय चालू है। इस बातका भारी खतरा है कि इस तरह हम ऐसी स्थितिमें पहुँच सकते हैं कि एक समान मोर्चेपर दुश्मनसे लड़ने के बजाय हम परस्पर एक-दूसरेसे ही झगड़ते रहें।

मुझे बताया गया है, यद्यपि मैं इसपर मुश्किलसे ही यकीन कर पाता हूँ, कि भारतमें कुछ क्षेत्रोंमें यह कहा जा रहा है कि ब्रिटिश सरकार टकरावके लिए बहाना खोज रही है। मैं पूरी शक्तिसे इस बातका खण्डन करता हूँ। ब्रिटिश सरकार सहयोग चाहती है, टकराव नहीं। ब्रिटिश सरकार अपनी नीतिके ध्येयको पूरा हुआ देखना चाहती है और उन परिस्थितियोंको प्राप्त करना चाहती है जिनमें भारत स्वतन्त्र जातियोंके ब्रिटिश राष्ट्रकुलमें अपना वास्तविक स्थान ग्रहण कर सके। असहयोग हमें वापस वर्षों पूर्वकी परिस्थितिमें ले जा सकता है। उसके प्रवर्तक चाहे ऐसा चाहें या न चाहें, पर असहयोग हमें सविनय अवज्ञा, कानून और व्यवस्थाके उल्लंघन

और दंगे एवं दमनके उस दुश्चक्रकी ओर ले जाता है जिससे हमेशाके लिए बच निकलने की हमने आशा की थी।

जबतक कि ये चीजें वस्तुत: होती नही हैं, तबतक तो मैं यही मानूंगा कि ये होनेवाली नही है। मेरा बराबर यह विश्वास रहेगा कि ऐसे समयमें जब हमारी और भारतकी महान् जनताके सामने एक समान खतरा है और जब वे एक समान आदर्श से प्रेरित हैं, एक बड़े समुदायका असहयोग करना जबरदस्त मुसीबत और बरबादी होगी। ब्रिटिश भारत और देशी रियासतोंके लाखो भारतवासी मेरे इस विचार से सहमत हैं। हमारे साथ सहयोग करने की उनमें उतनी ही इच्छा है जितनी कि उनके साथ काम करने की हममें है। खुद काग्रेस पार्टी --अभी तीन दिन पहले श्री गाधी द्वारा कहे शब्दोका ही प्रयोग करूँ तो— "अपना नैतिक समर्थन देकर, जो कि उसकी विशेषता है, ब्रिटेनकी सहायता करना चाहती है। काग्रेस यह समर्थन तबतक नहीं देगी जबतक कि उसे ब्रिटेनकी नैतिक स्थितिकी पूर्ण निर्दोषताका विश्वास नही हो जायेगा।"

मेरा यह दावा है कि हमारी स्थिति पूर्णतया निर्दोष है। हमने भारतमें सद्-भावना और सच्ची लगनके साथ इतना बडा सवैधानिक प्रयोग आरम्भ किया है जितना कि विश्वमें अबतक कभी नही हुआ। साम्राज्यवादी महत्त्वाकाक्षाएँ हम बहुत पहले ही छोड़ चुके हैं। हमारा यह विश्वास है कि हमारा ध्येय विश्वमें दूसरे लोगों पर राज करना नही है, बल्कि वे खुद अपनेपर राज कर सकें, इसमें उनकी सहा-यता करना है। इसी भावनासे पार्लियामेंटने कई ऐसे महान् अधिनियम पास किये है जिनसे उपनिवेशोंको उनका स्वतन्त्र सविधान मिला है। १९३५ का भारत सरकार अधिनियम हमने इसी भावनासे पास किया है, जिसके अधीन हमने, स्वयं अपनी इच्छासे भारत सरकारको व्यापक अधिकार सौंपे है। इस अधिनियमको हम इसी भावनासे लागू करना चाहते हैं और पूर्ण उपलब्धिकी राहमें जो भेद आड़े आ रहे हैं उन्हें इस युद्धके दौरान दूर करने की हम भरसक कोशिश करना चाहते हैं। और युद्ध समाप्त हो जाने पर, और साम्राज्यके संयुक्त प्रयत्नोंके फलस्वरूप विजयके साथ समाप्त हो जाने पर, हम तुरन्त उन सवैधानिक कठिनाइयोसे जूझनेवाले हैं जिन्हें पिछले कुछ सालोंमें हमने अनुभव किया है। तेजीसे और लगातार होनेवाली इस प्रगतिको असहयोग और केवल असहयोग ही रोकेगा।. . . दुनियाके इतिहासकी यह सबसे नाजुक घड़ी हमारे दोनों देशोंके लोगोको आक्रमणकारीका प्रतिरोध करने, पाशविक शक्तियोसे जूझने और एक नई और बेहतर विश्व-व्यवस्थाका निर्माण करने के लिए पुकार रही है—ऐसी व्यवस्थाका निर्माण करने के लिए जिसमें हम और भारतवासी आजादीसे अपने न्यायसगत कार्य कर सके और उस खतरेसे मुक्त रहें जो आजकल इस पीड़ित जगके बहुत-से भागोंमें रात-दिन बना हुआ है। सयुक्त मोर्चेको इस तरह भंग करना इस पुकारको अस्वीकार करना होगा।

प्रधान मन्त्रीके १२ अक्तूबरके वक्तव्यमें प्रयुक्त शब्दोमें कहूँ तो "हम इस युद्धमें स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए ही कूदे, कोई प्रतिशोधकी भावनासे नही।" आज

केवल छोटे राष्ट्रोंकी ही स्वतन्त्रता खतरेमें नही है। ब्रिटेन, उपनिवेश, भारत, ब्रिटिश साम्राज्यके बाकी हिस्सों, फ्रान्स और वस्तुतः सभी स्वतन्त्रता-प्रेमी राष्ट्रोंका शान्तिपूर्ण अस्तित्व खतरेमें है। वर्तमान संघर्षका परिणाम चाहे जो हो और इसकी समाप्ति चाहे किसी भी तरीकेसे हो, पर दुनिया जैसी पहले थी वैसी नहीं रहेगी। . . .इस नई दुनियामें भारतको एक बड़ी भूमिका अदा करनी है और शायद किसी भी एशियाई देशकी अपेक्षा बड़े क्षेत्रमें अदा करनी है। इसे ब्रिटिश राष्ट्रकुलमें भी एक बड़ी भूमिका अदा करनी है, क्योंकि यह इस बातका एक बाह्य और सुस्पष्ट चिह्न होगा कि हममें किसी भी तरहका जातीय भेदभाव नही है। इसे पूरी दुनियामें एक बड़ी भूमिका अदा करनी है, क्योंकि भारतको राष्ट्र संघके एक नमूनेकी तरह सामने आना होगा, जिसमें से युद्ध अनेक पीढ़ियोंके लिए समाप्त हो गया होगा और कानून एवं इन्साफका शासन मजबूतीसे कायम हो गया होगा। इस महान् आशाको सामने रखते हुए हमें असहयोगकी बंजर राह हमेशा के लिए छोड़ देनी चाहिए और इस युद्धको जीतने और शान्ति प्राप्त करनेके लिए तथा इस दुहरी विजयमें भारतकी आशाओंकी पूर्त्तिकी ओर एक बड़ा कदम उठाने के लिए एक-दूसरेकी सहायता करनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २७-१०-१९३९; *द इंडियन एन्युअल रजिस्टर*, १९३९, जिल्द २, पृ० ३९८-४०३ भी।

परिशिष्ट १५

त्रावणकोर सरकारकी प्रेस-विज्ञप्ति[1]

२३ सितम्बर, १९३९ को जारी की गई एक विज्ञप्तिमें त्रावणकोर सरकारने बताया है कि वर्तमान परिस्थिति तथा आयात और निर्यातपर त्रावणकोरकी तरह निर्भर प्रदेशमें युद्ध-जनित प्रतिकूल परिस्थितियोंसे प्रभावित प्रजाकी औद्योगिक तथा आर्थिक अवस्थाको ध्यानमें रखते हुए सरकार इस समय आन्दोलनकी किसी संगठित योजनाको सहन नहीं कर सकती। सरकारने चेतावनी दी कि ऐसे आन्दोलनकी योजनाके निश्चय ही गम्भीर परिणाम होंगे, और रियासतकी विधि-पालक प्रजाको संरक्षण देनेके कर्त्तव्यसे बँधी सरकारको स्थितिको सामान्य बनाये रखने के लिए सभी आवश्यक कार्रवाइयाँ करने को विवश होना पड़ेगा।

त्रावणकोर रियासत कांग्रेसने अब मलाबार जन्त्रीके अनुसार हर महीनेकी ८, १६ और २४ तारीखको सार्वजनिक सभाएँ आयोजित करने की व्यवस्था की है। इन तीनों दिनोंको क्रमशः नागरिक स्वतन्त्रता दिवस, उत्तरदायी सरकार दिवस

१. देखिए पृ० ३६७-६८।

और राजनीतिक कैदी-दिवसकी संज्ञा दी गई है। स्वयंसेवकोंकी सभाएँ करने, प्रशिक्षण-केन्द्र खोलने और जिसे संगठन-कार्य कहा गया है, उसे करने का भी विचार है। इस बातको लक्ष्य किया गया है कि ये प्रदर्शन महाराजा साहबकी जन्म-तिथिसे सम्बन्धित समारोहोंके आयोजनकी शुरुआतसे एक दिन पहले आरम्भ होने को है।

सभी लोगोंको इन प्रदर्शनों और सभाओंसे अलग रहने को आगाह किया जाता है; और उन्हें चेतावनी दी जाती है कि वे इश्तहारों, पर्चों आदिके माध्यमसे जनमतको न भड़कायें और आन्दोलन तथा अशान्तिको बढ़ावा न दें। ऐसे आन्दोलन या प्रदर्शनोंमें भाग लेनेवाले लोगोंके खिलाफ, उन्हें कोई और पूर्व-सूचना दिये बिना, त्रावणकोर सुरक्षा अधिघोषणा तथा नियमके अधीन कारंवाई की जायेगी।

सरकारका मुख्य सचिव

हुजूर कचहरी, त्रिवेन्द्रम,
३० अक्तूबर, १९३९
[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-११-१९३९

परिशिष्ट १६

वाइसरायकी रेडियोपर प्रसारित घोषणा[1]

बड़े दुःखके साथ मुझे यह घोषित करना पड़ रहा है कि मेरे आमन्त्रणपर कांग्रेस और मुस्लिम लीगके प्रतिनिधियोंके बीच जो वार्त्ता आरम्भ हुई थी, उसका अभीतक वैसा कोई परिणाम नहीं निकला है जिसकी मुझे आशा थी। ऐसे नाजुक समयमें इतने महत्त्वपूर्ण मामलेके सम्बन्धमें देशको यह जानने का अधिकार है कि जिस बातपर विचार करने के लिए मैंने उक्त दो संस्थाओंके अपने मित्रोंको आमन्त्रित किया था, वह क्या थी। कल मैं जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित करूँगा, उससे स्थिति बिलकुल स्पष्ट हो जायेगी। अभी मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि इन चर्चाओंके पीछे मेरा उद्देश्य इन बड़े दलोंके नेताओंको आपसमें मिलवाकर, उनके बीच होनेवाले व्यक्तिगत सम्पर्क और मेरी ओरसे दी जानेवाली यत्किंचित् सहायताके परिणामस्वरूप, उनके बीच प्रान्तोंमें उनके लेखे, ऐसी सहमति पैदा करने का था जिससे वे युद्ध-कालमें केन्द्रमें ऐसी रचनात्मक प्रगतिके लिए प्रस्ताव पेश कर सकें जो गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्के विस्तार और उसमें राजनीतिक नेताओंके समावेशके रूपमें सामने आयेगी।

मेरी १७[2] अक्तूबरकी घोषणामें एक सलाहकार समितिकी तजवीज थी। इतनी मर्यादित ढंगकी व्यवस्थाका प्रस्ताव केवल इसलिए किया गया था कि देशकी

1. देखिए पृ० ३७६-७८ और ४१७-१८।
2. साधन-सूत्रमें "१८" है; देखिए परिशिष्ट १२।

बड़ी-बड़ी कौमोंके बीच स्पष्ट मतभेद हैं। अगर ऐसी मर्यादित ढंगकी व्यवस्था न की जाती तो इन मतभेदोंके रहते इस बातकी कोई आशा नही थी कि केन्द्रमें मेरी कार्यकारिणी परिषद्की संयुक्त सदस्यताके सिद्धान्तके आधारपर काम-काज तालमेलके साथ चल सकेगा, हालाँकि ऐसे समयमें काम-काज इस तरह तालमेलके साथ चले, यह सर्वोपरि महत्त्वकी बात थी। इस सबके बावजूद मुझे यह मानना पड़ता है कि वह समिति भविष्यके लिए बड़ी-बड़ी सम्भावनाओंसे आपूरित है — ऐसी सम्भावनाओंसे जो, मुझे यकीन है, आम तौरपर जितना माना जाता है उससे गुरुतर हैं।

कहने की जरूरत नहीं कि यह मेरे लिए बड़ी निराशाकी बात है कि सम्राट्की सरकार द्वारा, जिन नेताओंसे मैंने बातचीत की उनके और उनके मित्रों द्वारा तथा स्वयं मेरी ओरसे किये गये इतने अधिक प्रयत्नके बावजूद हमारे पास दिखाने को कोई परिणाम नहीं है और हमारे सामने सिवाय इसके और कोई रास्ता नहीं रह गया है कि कई प्रान्तोंमें हम आपात्स्थिति-सम्बन्धी उन धाराओंका इस्तेमाल करें जिन्हें इस प्रयोजनसे भारत सरकार अधिनियममें दाखिल किया गया है। जहाँतक उन धाराओंका सम्बन्ध है, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि वे कोई विधान नहीं, बल्कि परिस्थिति-विशेषसे निबटने के लिए अपनाये गये कार्य-साधक उपाय हैं। उनके इस्तेमालके सम्बन्धमें अपनी प्रबल भावनाकी सबसे अच्छी अभिव्यक्ति मैं उस उद्धरणका भावार्थ प्रस्तुत करके ही दे सकता हूँ जो अरबी लिपिमें फतहपुर सीकरी के दरवाजेपर अंकित है। उद्धरणमें कहा गया है: "जिन्दगी एक पुल है — ऐसा पुल जिसपर से तुम अवश्य गुजरोगे। लेकिन उसपर अपना घर कभी मत बनाना।"

ऐसा भी नहीं है कि व्यापकतर क्षेत्रमें मैं इस निराशाको अन्तिम तथ्यकी तरह स्वीकार करने को तैयार हूँ या उस प्रयत्नको छोड़ देने का इरादा रखता हूँ जो इस देशके विभिन्न समुदायोंके मतभेदोंको मैत्रीपूर्ण रीतिसे निबटाने के लिए मैं कर रहा हूँ, ताकि हम अपने समान लक्ष्योंकी प्राप्तिके लिए आपसमें सहयोग करते रह सकें। जिन मतभेदों और कठिनाइयोंके कारण आज भारतमें संवैधानिक प्रगति और समान लक्ष्यकी यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र प्राप्तिके मार्गमें बाधा उपस्थित होने — बल्कि प्रतिगमनकी स्थिति उत्पन्न होने — का खतरा पैदा हो गया है, वे स्वतः समाप्त होनेवाली नहीं हैं, और न महज इस कारण मिट जानेवाली हैं कि हम उनके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करते। उनका समाधान तो आपसी लिहाज-मुरव्वत और विश्वासकी भावनासे तथा सफल होने के संकल्पके साथ चलाई जानेवाली पारस्परिक वार्त्ताओंसे ही होगा।

आजकी रात मैं इससे ज्यादा कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन मैं भारतीय जनता तथा बड़ी-बड़ी राजनीतिक संस्थाओं — उनके सदस्यों और नेताओं — से अनुरोध करूँगा कि मैं जो प्रयत्न जारी रखना चाहता हूँ, उसके प्रति वे धीरज और सद्भावनासे काम लें।

कठिनाइयाँ बहुत बड़ी-बड़ी हैं। वे कितनी बड़ी हैं, यह बात पिछले छह सप्ताहोंकी घटनाओंसे बिलकुल स्पष्ट हो गई है। लेकिन उनका समाधान ढूँढ़ने का

प्रयत्न अनिवार्य और अत्यावश्यक है, और चाहे मैं सफल होऊँ या विफल, उस परिणामको प्राप्त करने में मैं कुछ भी उठा नही रखूँगा जिसकी कामना, मैं जानता हूँ, उन सब लोगोंके हृदयोमें है जिन्हें भारत और उसके भविष्यकी चिन्ता है।

[अंग्रेजीसे]

द इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० २४५

परिशिष्ट १७

नेताओंके साथ हुए पत्र-व्यवहारके प्रकाशनपर वाइसरायकी प्रस्तावित टिप्पणियाँ[1]

५ नवम्बर, १९३९

उसके बाद मैंने श्री गाधी, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद और श्री जिन्नाको १ नवम्बर को आकर मुझसे मिलने को आमन्त्रित किया, और हमने उनके साथ पूरी स्थितिकी चर्चा खुले दिलसे की। उनके साथ अपनी पिछली मुलाकातोंके दौरान उनसे — और वास्तवमें अपने लगभग सारे मुलाकातियोंसे — गवर्नर-जनरलकी परिषद्के विस्तारकी सम्भावनापर विभिन्न दृष्टिकोणोसे मैं चर्चा कर चुका था। अब मैंने उन्हें बताया कि केन्द्रमें भारतीय नेताओकी भागीदारीके सम्बन्धमें यदि हम सलाहकार मण्डल-भर स्थापित करने की तजवीजसे आगे बढ़ने में असमर्थ है तो उसका कारण बड़ी कौमोंके बीच ऐसी पूर्व-सहमतिका अभाव है जिससे केन्द्रका कार्य तालमेलके साथ चल सके। मैंने यह भी कहा कि २२ अक्तूबरको कांग्रेस कार्य-समिति और मुस्लिम लीग द्वारा जारी किये गये घोषणापत्रोसे इन दोनो बड़े दलोंके बीचका अन्तर और भी स्पष्ट हो गया।

इन परिस्थितियोमें मैंने अपने मुलाकातियोंसे अनुरोध किया कि वे आपसमें मिलकर प्रान्तीय स्थितिपर इस दृष्टिसे बातचीत करें कि आगे वे आपसी सहमतिसे ऐसे प्रस्ताव रख सकें जिनपर केन्द्रमें गवर्नर-जनरलकी परिषद्के सदस्योकी सख्या बढ़ाने की बातको ध्यानमें रखकर विचार किया जा सके। मैंने उनसे कहा कि प्रान्तोमें उनके बीच जो मतभेद है, उससे सम्बन्धित हरएक तफसीलका निबटारा हो जाये, यह मैं जरूरी नही मानता। आवश्यकता मतभेदोको सिर्फ इस हदतक मिटाने की है जिससे केन्द्रमें ठीक सहयोगकी योजना तैयार करना सम्भव हो जाये। मैंने उनसे हार्दिक अनुरोध किया कि आपसी सहमतिपर पहुँचने के लिए वे कुछ भी उठा नही रखें। मैंने उन्हें समझाया कि यह तो तत्त्वत. भारतीयोको प्रभावित करनेवाला प्रश्न है और मैं जिस बातके लिए उत्सुक हूँ, वह यह है कि

1. देखिए पृ० ३७६-७८, ३८३-८४ और ४१७-१८। यहाँ प्राक्कथनके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

इस प्रश्नपर स्वयं भारतीयोंके बीच सहमति हो जाये। मैंने न केवल अपनी बल्कि सम्राट्की सरकारकी भी इस गहरी चिन्ताको दुहराया कि ऐसा कुछ भी उठा नही रखना चाहिए जो इस तरहकी सहमतिमें सहायक हो सके।

मेरी सुझाई चर्चाएँ हो चुकी हैं। लेकिन इनके परिणामस्वरूप मुझे घोर निराशा ही हाथ लगी है। आज स्थिति यह है कि मुख्य दलोके प्रतिनिधियोंके बीच बुनियादी सवालोंके सम्बन्धमें पूरी-की-पूरी असहमति कायम है। मैं इतना ही कहूँगा कि इस विफलताको मैं सिर झुकाकर स्वीकार करने को तैयार नही हूँ। उचित समय आने पर इन दलों और देशी नरेशोसे परामर्श करके मैं फिर यह देखने की कोशिश करूँगा कि अब भी एकता हासिल करने की सम्भावना है या नही। मैं जबसे भारतमें हूँ तबसे एकता स्थापित करने से अधिक चिन्ता मैंने और किसी बातकी नही की है, और शायद हमेशा जितना समझा जाता उसकी अपेक्षा भारत के लिए एकताका महत्त्व बहुत ज्यादा है। एकताका मतलब यह भी है कि भारतीय चाहे किसी भी कौम या दलके हो और वे चाहे ब्रिटिश भारतमें रहते हों या रियासतोमें, वे एक सामान्य योजनाके अन्तर्गत आपसमें मिल-जुलकर काम करें। उक्त स्थिति प्राप्त करने की कोशिशका बहुत बड़ा महत्त्व है। अबतक मैं भले ही असफल रहा होऊँ लेकिन मैं फिर कोशिश करूँगा। और जब मै फिर कोशिश करूँगा उस समय भारतसे मेरी कठिनाइयोंको समझने और मुझे हार्दिक शुभेच्छा और सहायता करने की दिली ख्वाहिश रखने का श्रेय देने को कहूँगा। हम एक ऐसी समस्या से जूझ रहे हैं जिसके समक्ष इस देशकी महान् संस्थाओंके ऐक्यबद्ध प्रयत्न भी नाकाम हो गये। जिन मतभेदोको ध्यानमें रखकर हमें चलना है और जिन्हें हमें पाटना है, वे बहुत गहरे हैं। अनेक ऐसे प्रबल और बद्धमूल हित हैं जिनका अधिकसे-अधिक खयाल किया जाना है और जिन्हें मामूली समझकर दरकिनार नही किया जा सकता। ऐसे अल्पसंख्यक समुदाय हैं जिनके सदस्योकी संख्या बहुत बड़ी है और जो ऐतिहासिक महत्त्व तथा संस्कृतिकी दृष्टिसे महान् हैं। ये सब ऐसी बातें हैं जिन्हें यथेष्ट महत्त्व दिया जाना है। किन्तु समस्याओंके बहुत जटिल होते हुए भी मैं उन्हें समाधानसे परे नही समझता, और मैं यह मानना चाहूँगा कि अगर सद्भावनापूर्वक और धीरजके साथ इनके सम्बन्धमें आपसमें बातचीत की जाये तो अन्य मानवीय समस्याओंकी तरह इनका समाधान भी हो सकता है। इन दलोंके नेताओंके साथ मेरी पूरी बातचीतमें मैत्रीकी जो भावना व्याप्त रही, उससे मेरी इस मान्यताको और भी बल मिलता है। इस देशसे, इन महान् दलो के नेताओ और इनके उन अनुगामियोसे, जिनका उन नेताओंमें निस्सन्देह पूर्ण विश्वास है और जिन्हें बहुत सुयोग्य नेतृत्व मिल रहा है, मैं कहूँगा कि यदि इस बातकी कोई आशा कायम रहनी है कि हम अपनी कठिनाइयोपर पार पा लेंगे और जिस परिणामकी कामना निस्सन्देह सबको है, वह परिणाम प्राप्त हो जायेगा तो जिस सहायताकी मुझे इतनी अधिक जरूरत है, वह सहायता वे दें।

[अंग्रेजीसे]

द इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० ४११

परिशिष्ट १८

लॉर्ड जेटलैंडका वक्तव्य[1]

७ नवम्बर, १९३९

इस विषयपर कुछ कहने का मुझे अवसर मिला, इसके लिए मैं आभारी हूँ, और यदि मेरा उत्तर कुछ लम्बा हो जाये तो आशा करता हूँ कि सदन मुझे क्षमा करेगा।

कहने की जरूरत नहीं कि गवर्नर-जनरल कांग्रेस और मुस्लिम लीगके प्रतिनिधियों के बीच समझौता कराने के लिए पिछले हफ्ते जो वार्त्ता चला रहे थे, उसकी विफलता का उन्हीं की तरह सम्राट्की सरकारको भी गहरा दुःख है। क्या मैं सदनको याद दिला सकता हूँ कि गत कई सप्ताहोंसे गवर्नर-जनरल धैर्यपूर्वक पहले जो बातचीत चला रहे थे, उससे उन्हें यकीन हो गया था कि जिन प्रान्तोंमें कांग्रेस सत्तारूढ़ है उनमें अपनी स्थितिके सम्बन्धमें मुसलमानोंको महसूस होनेवाली कठिनाइयोंका जबतक कोई समाधान नहीं निकल आता, तबतक उन योजनाओंपर किसी प्रकारकी सहमति प्राप्त करने की सम्भावना नगण्य थी जिनका विचार गवर्नर-जनरल युद्ध-संचालनकी दृष्टिसे भारतीयोंको भारतकी केन्द्रीय सरकारमें सहभागी बनाने के उद्देश्यसे कर रहे थे?

कल प्रकाशित दस्तावेजोंसे सदनको मालूम हो गया होगा कि जबतक सम्राट्की सरकार इस आशयकी घोषणा करने को तैयार नहीं हो जाती कि भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है और यदि वह यथासम्भव व्यापकतम मताधिकारके आधारपर निर्वाचित संविधान-सभाके माध्यमसे और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके बारेमें आपसमें समझौता करके, अपनी भावी शासन-व्यवस्थाका स्वरूप तय करता है तो सम्राट्की सरकार उसका कोई विरोध नहीं करेगी तबतक कांग्रेसने वैसी ठोस योजनाओंपर विचार करने से साफ इन्कार कर दिया है जैसी योजनाओंकी रूपरेखा गवर्नर-जनरलने प्रस्तुत की है। कांग्रेसने तदनुरूप आगे यह रुख भी अख्तियार किया है—और लगता है अब भी वह अपने इस रुखपर कायम है—कि भारतमें प्रजातिगत और धर्मगत अल्पसंख्यक वर्ग हैं, इस बातकी इस सन्दर्भमें कोई प्रासंगिकता नहीं है, और कांग्रेसका मंशा सदासे यह रहा है कि स्वयं भारतीयों द्वारा बनाये जानेवाले संविधानके माध्यमसे अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंको ऐसी सुरक्षा प्रदान की जाये जो स्वयं अल्पसंख्यकोंको स्वीकार्य हो।

1. देखिए पृ० ३७८ और ४१७-१८।

सम्राट्की सरकारको इस स्थितिको स्वीकार करना असम्भव लगता है। भारतसे दीर्घ कालके सम्बन्धके फलस्वरूप सम्राट्की सरकारपर उसके प्रति कुछ ऐसे दायित्व आ गये है कि उसके भावी शासन-विधानकी रचनासे सर्वथा तटस्थ रहकर उन दायित्वोंका त्याग करना उसके लिए असम्भव है। इसके अतिरिक्त, गवर्नर-जनरल हालमें भारतके सभी दलों और हितोंके प्रतिनिधियोंके साथ जो बातचीत चलाते रहे है, उसका एक विशिष्ट परिणाम यह हुआ है कि यह बात असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध हो गई है कि जैसी घोषणाका सुझाव दिया गया है वैसी घोषणा करके सम्राट्की सरकार आनन-फानन भारतमें अपनी वर्तमान स्थितिको समाप्त कर दे, यह चीज भारतकी आबादीके बहुत बड़े हिस्सेको कभी स्वीकार्य नही होगी।

लेकिन इसका मतलब यह नही कि भारतको अपनी सामर्थ्य-भर ऐसी सहायता देने के हमारे सकल्पमें कोई शिथिलता आई है जिससे वह ब्रिटिश राष्ट्रकुलमें अपनी वह स्थिति अनावश्यक विलम्बके बिना प्राप्त कर ले जिसके लिए हम प्रतिबद्ध हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हालमें कामन्स सभामें भारतपर हुई बहसके दौरान लॉर्ड प्रीवी सीलने भारतके लिए सोचे जा रहे दर्जेके रूपमें "१९२६ के औपनिवेशिक दर्जे" का जो उल्लेख किया था उससे भारतमें कुछ शंका-सन्देह उत्पन्न हो गये हैं। इस अवसरपर मै उन सन्देहोंका निवारण कर देना चाहता हूँ। मुझे मालूम हुआ है, ऐसी शंका व्यक्त की गई है कि १९३१ में वेस्टमिन्स्टर अधिनियमके पारित हो जाने से उन उपनिवेशोंका दर्जा, जिनपर यह अधिनियम लागू होता है, उस दर्जेसे कुछ भिन्न और ऊपर हो गया है जिसका वर्णन १९२६ के साम्राज्यीय सम्मेलनमें समाविष्ट बालफर अधिघोषणामें किया गया है।

चाहे जो हो, सदनको मेरी इस बातका विश्वास करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि ऐसी शंका निराधार है। मेरे माननीय मित्र (सर सैम्युअल होर) ने १९२६ के औपनिवेशिक दर्जेका उल्लेख इसलिए किया कि उसी वर्ष साम्राज्यीय सम्मेलनने उपनिवेशोंका दर्जा परिभाषित किया था और सम्मेलन द्वारा परिभाषित दर्जेको तबसे घटित होनेवाली किसी भी बातने परिवर्तित नही किया है, और वेस्ट-मिन्स्टर अधिनियमने मात्र इतना ही किया कि उस समयकी स्वीकृत संवैधानिक स्थितिके कतिपय परिणामोंको वैधानिक रूप प्रदान कर दिया।

हमें उम्मीद थी कि यदि गवर्नर-जनरल द्वारा निर्दिष्ट योजनाएँ, जिनमें केन्द्रीय सरकारमें भारतके मुख्य राजनीतिक दलोंके नेताओंके शामिल किये जाने की खास तजवीज भी शामिल थी, कार्यान्वित कर दी गई तो उससे भारतके मार्गकी आजकी मुख्य बाधा दूर करने में बहुत मदद मिलेगी। गवर्नर-जनरलने स्पष्ट कर दिया है कि सम्बन्धित पक्ष इस मसलेपर नये सिरेसे विचार करेंगे, उनकी यह आशा इस विफलतासे समाप्त नहीं हुई है, और उन्होंने अवसर आने पर इस दिशामें भरसक अपनी सेवाएँ अर्पित करने की जो तत्परता बताई है, उसका सम्राट्की सरकार हार्दिक अनुमोदन करती है।

फिलहाल स्थिति यह है कि बंगाल, पंजाब और सिन्धके मन्त्रिमण्डल, जिनकी कांग्रेसमें निष्ठा नही है, पदारूढ़ हैं। शेष आठ प्रान्तोंमें कांग्रेस सत्तारूढ़ रही है।

इनमें से पाँचकी सरकारोंने त्यागपत्र दे दिये हैं और तीन अन्य प्रान्तोकी सरकारोंके निकट भविष्यमें त्यागपत्र देने की आशा है। एक प्रान्त — असम — में वैकल्पिक मन्त्रिमण्डल बनने की सम्भावना दिखाई दे रही है, लेकिन इस एक अपवादको छोड़कर शेषके सम्बन्धमें गवर्नरोंने ऐसा पाया है या शीघ्र ही वे ऐसा पायेंगे कि उनके सामने सिवाय इसके और कोई विकल्प नहीं रह गया है कि ऐसी परिस्थितिमें अधिनियमकी धाराएँ उन्हें जो सत्ता अपने हाथोंमें ले लेने का अधिकार देती हैं उसे वे एक अधिघोषणाके जरिये अपने हाथोंमें ले लें, क्योंकि इन प्रान्तोंमें विधानमण्डलके विश्वासके भाजन वैकल्पिक मन्त्रिमण्डल सामने नहीं आ रहे हैं।

मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि अधिनियमकी जिस धारा ९३ के अधीन यह कार्रवाई की गई है वह किसी भी तरहसे दण्डात्मक धारा नहीं है। इसके विपरीत, उसमें सम्भावित आवश्यकताके लिए मात्र एक व्यवस्था प्रस्तुत की गई है। पार्लियामेंटने अपनी दूरदर्शितासे इस आवश्यकताका अनुमान पहले ही लगा लिया था, क्योंकि स्वयं इस अधिनियममें प्रयुक्त शब्दोंमें कहें तो — "यह सम्भव था कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये जब प्रान्त-विशेषका शासन बादशाहकी सरकारके संचालनके लिए बनाई गई इस अधिनियमकी धाराओंके अनुसार न चलाया जा सके।"

हमें आशा है कि यदि कांग्रेसके समर्थकों और दूसरे क्षेत्रोंकी ओरसे कोई विरोध नहीं किया गया तो अपने सरकारी सलाहकारों और लोक-सेवाओंके सदस्योंकी सहायतासे गवर्नर प्रान्तोंका प्रशासन सुचारु और कुशल रीतिसे चलाने में सफल होंगे। फर्क यह होगा — और यह बड़ा बुनियादी फर्क होगा — कि तब गवर्नर जो कार्रवाई करेंगे, उसका निर्णय प्रान्तीय विधानमण्डलके प्रति जिम्मेदार मन्त्रियों द्वारा दी गई सलाहके अनुसार नहीं, बल्कि इस सदन, इस पार्लियामेंटके प्रति जिम्मेदारीका ध्यान रखते हुए किया जायेगा। हमें इस बातका गहरा दुःख है कि जो मन्त्रिमण्डल उत्साह के साथ अपने महान् प्रान्तोंका शासन चलाते रहे हैं और प्रशासन-कार्यमें स्वभावत जो समस्याएँ उनके सामने आई हैं, उन्हें इतने अधिक ओज और उपाय-कुशलताके साथ निबटाते रहे हैं, उन्हें अब आगे अपने देशको अपनी सेवाओंका लाभ प्रदान करना बन्द कर देने की आवश्यकता महसूस हुई है; लेकिन हम यह मानने से इनकार करते हैं कि उनके द्वारा अपनी सेवाएँ वापस ले लेने की यह स्थिति लम्बे अर्सेतक कायम रहेगी, और जबतक आशाका कोई आधार हमारे सामने रहेगा तबतक हम यह आशा करते रहेंगे कि गवर्नरोंकी घोषणाओंके कुछ ही समयतक कायम रखे जाने की आवश्यकता है, क्योंकि मैं सदनको यह आश्वासन दे सकता हूँ कि गवर्नर अपने जिम्मेदार सलाहकारोंकी सेवाएँ सुलभ होते ही उन्हें अविलम्ब वापस बुला लेने के लिए सहर्ष तत्पर रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

द इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९३९, जिल्द २, पृ० ४११-१३

परिशिष्ट १९

वाइसरायको कांग्रेस-अध्यक्षका पत्र[1]

बिड़ला भवन, नई दिल्ली
३ नवम्बर, १९३९

आपके २ नवम्बरके पत्रके लिए धन्यवाद। जब हम १ नवम्बरको आपसे मिले थे उस समय आपने हमारे सामने जो प्रस्ताव रखा था उसे इस पत्रमें बहुत स्पष्ट रूपसे प्रस्तुत किया गया है। मैं और मेरे सहयोगियोंने इसपर पूरी गम्भीरतासे विचार किया है। हमने जनाब मुहम्मद अली जिन्नाके साथ भी विस्तारसे चर्चा की। लेकिन हम उस उत्तरमें कोई परिवर्तन करने की सूरत नही देख पा रहे हैं जो हमने आपके साथ मुलाकातके समय दिया था।

आरम्भमें ही मैं यह कह देना चाहूँगा कि मुलाकातके दौरान गांधीजी को और मुझे दोनोंको यह बात बहुत खटकी कि युद्ध-लक्ष्योंके जिस स्पष्टीकरणके बिना कांग्रेस के लिए किसी गौण प्रस्तावपर विचार करना असम्भव है उसके सम्बन्धमें उसके द्वारा उठाये गये मुख्य और नैतिक प्रश्नका कोई उल्लेख ही नहीं किया गया।

वर्त्तमान संकटका कारण यूरोपमें युद्ध छिड़ना और भारतीय जनताकी सहमति के बिना ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतका युद्ध-रत देश घोषित कर दिया जाना है। यह संकट पूर्णतः राजनीतिक है, और भारतके साम्प्रदायिक प्रश्नसे इसका कोई सम्बन्ध नही है। इससे ब्रिटिश सरकारके युद्ध-लक्ष्योंके सम्बन्धमें और उनके सन्दर्भमें भारतकी स्थितिके बारेमें गम्भीर प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। आपको मालूम ही है कि कांग्रेस कार्य-समितिने १४ सितम्बर, १९३९ को एक विस्तृत वक्तव्य जारी किया, जिसमें उसने ब्रिटिश सरकारको अपने युद्ध-लक्ष्योंकी, और विशेषकर ये लक्ष्य भारतपर किस तरह लागू होनेवाले हैं तथा अभी उनका कार्यान्वियन किस प्रकार किया जायेगा, इसकी घोषणा करने को आमन्त्रित किया था। यह भी कहा गया था कि भारतीय जनताको बाहरी हस्तक्षेपके बिना, एक संविधान-सभाके माध्यमसे अपना संविधान खुद बनाने की सुविधा देकर आत्म-निर्णयका अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए और उसे अपनी नीतिका निर्धारक स्वयं होना चाहिए। १० अक्तूबर, १९३९को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने इस वक्तव्यका अनुमोदन और पुष्टि की और कहा कि ब्रिटिश सरकार द्वारा की जानेवाली घोषणामें भारतको स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित

1. देखिए पृ० ४२६-२७।

किया जाना चाहिए और अभी जहाँतक सम्भव हो वहाँतक उसके इस दर्जेको अमली रूप दिया जाना चाहिए। महासमितिने आगे यह भी कहा कि भारतकी स्वतन्त्रता लोकतन्त्र, एकता और सभी अल्पसंख्यक वर्गोंके अधिकारोंकी स्वीकृति और सुरक्षापर आधारित होनी चाहिए।

तत्पश्चात्, ब्रिटिश सरकारकी नीतिकी घोषणा वाइसरायके उस वक्तव्यमें की गई जिसके उद्धरण भेजने का आपने सौजन्य दिखाया है। तत्काल बाद ही कांग्रेस कार्य-समितिने इस वक्तव्यपर विचार करके अपनी यह राय जाहिर की कि वक्तव्य दुर्भाग्यपूर्ण और सर्वथा असन्तोषजनक है। फलत उसे ऐसी घोषणा करने पर विवश होना पड़ा कि वह ग्रेट ब्रिटेनको कोई समर्थन नही दे सकती और साथ ही उसे कांग्रेसी बहुमतवाले प्रान्तोंकी सरकारोंसे त्यागपत्र देने को कहने के लिए मजबूर होना पड़ा।

ध्यातव्य है कि ब्रिटेनकी नीतिकी वाइसराय द्वारा की गई घोषणापर भारतके बहुत बड़े लोकमतने — जिसमें कांग्रेसके बाहरके लोगोंका स्वर भी शामिल था — अपनी नापसन्दगी जाहिर की।

बादमें पार्लियामेंटमें ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो वक्तव्य दिये गये, उनसे भी वाइसरायके वक्तव्यमें निर्दिष्ट नीतिमें कोई मौलिक अन्तर नहीं पड़ा है, और जैसा कि आपने ठीक ही कहा है, उस नीतिका नियमन आज भी उन उद्धरणोंके अनुसार होता है जो आपने उस वक्तव्यमें से लेकर मुझे भेजने की कृपा की है। मुझे कहना पड़ेगा कि जबतक कांग्रेस द्वारा सुझाई गई पद्धतिपर घोषणा करके ब्रिटिश सरकार की नीति स्पष्ट नही कर दी जाती तबतक उक्त नीतिको स्वीकार करना या आगे सहयोगके लिए क्या कदम उठाये जा सकते हैं, इस विषयपर विचार करना हमारे लिए असम्भव है।

इस सम्बन्धमें साम्प्रदायिक प्रश्नको घसीटा गया है, यह देखकर मुझे बहुत दु:ख हुआ है। उसने मुख्य प्रश्नको धूमिल बना दिया है। कांग्रेसकी ओरसे बार-बार कहा गया है कि साम्प्रदायिक विवादके सभी मुद्दोंको आपसी सहमतिसे सुलझा लेने की हमारी हार्दिक इच्छा रही है, और इसके लिए हम अपने प्रयत्न जारी रखना चाहते हैं। लेकिन मैं यह बताना चाहूँगा कि यह प्रश्न ऊपर सुझाई गई रीतिसे भारतकी स्वतन्त्रताकी घोषणा किये जाने के मार्गमें किसी भी तरहसे बाधक नही है। ऐसी घोषणा किसी खास कौमपर नही, बल्कि पूरे भारतपर लागू होगी, और भारतके संविधानकी रचना करनेवाली संविधान-सभा यथासम्भव व्यापकतम मताधिकार के आधारपर साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें उचित समझौता करके गठित की जायेगी। हम सब इस बातपर सहमत हैं कि अल्पसंख्यकोंके अधिकारों और हितोंको पूरा संरक्षण प्राप्त होना चाहिए, और यह संरक्षण सम्बन्धित पक्षोंकी आपसी सहमति से प्रदान किया जाना चाहिए। हमारी रायमें, इस दायित्वके वहनमें भागीदार बनने की

बात कहकर ब्रिटिश सरकारने इस प्रश्नके समाधानको, जितना कठिन वह अन्यथा होता, उससे बहुत अधिक कठिन बना दिया है, ब्रिटिश सरकारकी सभी सच्ची चिन्ता कांग्रेसकी इस घोषणासे दूर हो जानी चाहिए कि वह ऐसे किसी भी संविधानकी बात नहीं सोचती जिसमें सच्चे अल्पसंख्यक वर्गोंको उनके सन्तोषके लायक संरक्षण प्रदान न किया गया हो।

हमें लगता है कि इस मामलेपर आगे कोई विचार तभी हो सकता है जब ऊपर सुझाई गई रीतिसे स्पष्ट घोषणा कर दी जाये। मैं इतना और कहना चाहूँगा कि इस यूरोपीय युद्धने हालमें जो मोड़ लिये हैं, उनके कारण युद्ध-लक्ष्योंकी घोषणा और भी जरूरी हो गई है। अगर सन्तोषजनक घोषणा कर दी जाती है तो आपके द्वारा पेश किये गये प्रस्तावपर चर्चा करना उपयुक्त और लाभदायक होगा, और हम खुशी-खुशी आपसे उसपर चर्चा करेंगे।

शायद यह कहने की जरूरत न हो कि इस पत्रसे गांधीजी की पूर्ण सहमति है। कल शाम हम वर्धाको प्रस्थान करना चाहते हैं। आपकी इच्छा कुछ अन्यथा हो तो कृपया सूचित करें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, ६-११-१९३९

सामग्रीके साधन-सूत्र

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद : पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय, जहाँ गांधीजी से सम्बन्धित कागज़ात सुरक्षित हैं।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

म्यूनिसिपल संग्रहालय, इलाहाबाद।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू' . मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हरिजन' : गांधीजी की देखरेखमें हरिजन सेवक संघकी ओरसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक।

'हरिजनबन्धु' · गांधीजी की देखरेखमें हरिजन सेवक संघकी ओरसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'हरिजनसेवक' : गांधीजी की देखरेखमें हरिजन सेवक संघकी ओरसे प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक।

'इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९३९' (अंग्रेजी) : नृपेन्द्रनाथ मित्र द्वारा सम्पादित; द एन्युअल रजिस्टर ऑफिस, कलकत्ता।

'पिल्ग्रिमेज टु फ्रीडम — १९०२-१९०५' (अंग्रेजी) . के० एम० मुंशी; भारतीय विद्याभवन, बम्बई; १९६७।

'(ए) बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स' (अंग्रेजी) : जवाहरलाल नेहरू द्वारा संपादित; एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई; १९५८।

'महात्मा गांधी — द ग्रेट रोग ऑफ इंडिया' (अंग्रेजी) : गोविन्ददास कॉन्सल; नेशनल पब्लिशर्स, दिल्ली; १९३९।

'महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', जिल्द ५ (अंग्रेजी) : डी० जी० तेंदुलकर, विट्ठलभाई के० झवेरी तथा डी० जी० तेंदुलकर द्वारा संपादित; ६४ वाकेश्वर रोड, बम्बई, १९५२।

'लीव्ज फ्रॉम ए डायरी' (अंग्रेजी) : राजेन्द्रलाल हाडा; इंडिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई; १९६८।

'बापुना पत्रो — २ : सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती) : मणिबहन पटेल द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९५२।

'बापुनी आश्रमनी केलवणी' (गुजराती) : शिवाभाई जी० पटेल; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; १९६९।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९४८।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' : काका कालेलकर द्वारा सम्पादित; जमनालाल बजाज सेवा ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

प्यारेलालके कागजात : श्री प्यारेलाल, नई दिल्लीके पास सुरक्षित कागजात।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी . स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१६ जुलाईसे ३० नवम्बर, १९३९)

१६ जुलाई : गांधीजी ७ जुलाईसे एवटाबादमें थे।

१७ जुलाई : सिकन्दर हयात खाँको लिखे पत्रमें उनकी सुझाई वैकल्पिक संघ-योजना को स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट की।

२२ जुलाई : समाचारपत्रोंके लिए वक्तव्य जारी करते हुए अपनी कश्मीर-यात्रा रद्द करने की घोषणा की।

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंको मुलाकात दी।

२३ जुलाई. बम्बईमें अगस्तसे लागू किये जानेवाले मद्य-निषेधके निर्णयपर बम्बई सरकार मद्य-निषेध बोर्डको सन्देश भेजा।

एडोल्फ हिटलरको पत्र लिखकर उनसे युद्धकी आगको शमित करने की प्रार्थना की, क्योंकि "आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो उस युद्धको रोक सकते हैं, जो मानव-जातिको बर्बर अवस्थामें पहुँचा सकता है।"

एवटाबादमें भाषण दिया।

२६ जुलाई या उसके पूर्व : डॉ० चार्ल्स फावरीसे बातचीत।

२६ जुलाई : एवटाबादसे वर्धाके लिए रवाना हुए।

कस्तूरबा गांधी, महादेव देसाई, प्यारेलाल और डॉ० सुशीला नैयर भी साथ थीं।

२७ जुलाई : सुबह गाजियाबाद स्टेशनपर उतरे और वहांसे दिल्लीके लिए मोटर-कारमें रवाना हुए।

लगभग दिनके १०.३० पर हरिजन कालोनीमें हरिजन उद्योगशालाके पहले दीक्षान्त-समारोहकी अध्यक्षता की और वहाँ छात्रोंको प्रमाणपत्र प्रदान किये। दोपहर बाद मध्य प्रान्त विधानसभाके अध्यक्ष घनश्यामसिंह गुप्त, हैदराबाद राज्यके आर्यसमाज सत्याग्रहके विनायक राव और देशबन्धु गुप्त गांधीजी से मिले और उन्होंने गांधीजी को घनश्यामसिंह गुप्त और अकबर हैदरीके बीच हैदराबाद-सुधारोंके सिलसिलेमें हुआ पत्र-व्यवहार दिखाया।

हिमालयी राज्य प्रजामण्डलके शिष्ट-मण्डलको धामी गोलीकाण्डके सिलसिलेमें प्रजा-परिषद्‌के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरूसे मिलने की सलाह दी। दिल्लीसे वर्धाके लिए ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेससे रवाना हुए।

३१ जुलाई : गांधीजी के नाम अपने पत्रमें एस० के० बोले ने कहा कि "उस आवेदन-पत्र के हस्ताक्षरकर्त्ताओंने जो-कुछ किया, वह ईमानदारीके साथ किया है और उनका इरादा बम्बई मन्त्रि-मण्डलको धमकी देने का नहीं था।"

१ अगस्त : लॉर्ड लिनलिथगोको एक तार भेजकर गांधीजी ने उनसे ५ अगस्तको दिल्लीमें न मिल पाने के लिए खेद प्रकट किया।

३ अगस्त : बंगालके राजनीतिक कैदियोंने भूख-हड़ताल स्थगित करना तय किया।

४ अगस्तके पूर्व : तजीम-उल-मोमिनीनके अध्यक्षको लिखे पत्रमें गांधीजी ने शिया-सुन्नी विवादके फलस्वरूप जूनके आरम्भमें शुरू किये गये सविनय अवज्ञा आन्दोलनको वापस लेने का अनुरोध किया।

५ अगस्त : सत्याग्रही वी० वी० साठेसे बातचीत करके बम्बई सरकारके खिलाफ अपनी शिकायतें दूर करवाने के लिए उनके प्रस्तावित उपवासको स्थगित करने के लिए उन्हें राजी किया।

७ अगस्त : च० राजगोपालाचारीने मद्रास विधान-सभा द्वारा पारित मन्दिर-प्रवेश प्राधिकीकरण और क्षतिपूर्ति विधेयक विधान-परिषद्में पेश किया।

८ अगस्त : "आर्य सत्याग्रह" की समाप्तिकी घोषणा।

११ अगस्त : कांग्रेस कार्य-समितिने एक प्रस्ताव पास करके सुभाषचन्द्र बोसको ३० अगस्त से तीन वर्षके लिए बंगाल प्रान्तीय कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिए अयोग्य घोषित कर दिया।

२३ अगस्त : समाचारपत्रोंको एक वक्तव्य देकर गांधीजी ने कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा पारित दो प्रस्तावों,— सुभाषचन्द्र बोसको अध्यक्ष-पदके लिए अयोग्य घोषित करने और युद्ध-सम्बन्धी प्रस्तावोंकी आलोचनाओंका उत्तर दिया।

२७ अगस्त : आसन्न विश्व-संकटके बारेमें समाचारपत्रोंको दिये गये अपने वक्तव्यमें गांधीजी ने कहा : "मैं अपने विश्वासपर सबसे अधिक जोर यही कहकर दे सकता हूँ कि यदि मेरे अपने देशको हिंसाके द्वारा स्वतन्त्रता मिलना सम्भव हो तो भी मैं स्वयं उसे हिंसासे प्राप्त नहीं करूँगा।"

३० अगस्तके पूर्व : एक सन्देशमें पोलैंडवासियोंको "शुभकामनाएँ और आशीर्वाद" भेजे।

३१ अगस्त : घनश्यामदास बिड़लाको भेजे एक तार द्वारा व्यापारी-वर्गको विश्व-संकट के बारेमें तबतक कुछ न कहने की सलाह दी "जबतक परिणामका ठीक पता नहीं चल जाता।"

२ सितम्बर : वाइसरायके निमन्त्रणपर शिमलाके लिए रवाना हुए।

३ सितम्बर : इंग्लैंड और फ्रान्सने जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की।

४ सितम्बर : वाइसरायसे मिले।

५ सितम्बर : गांधीजी वर्धाके लिए रवाना हुए।

अपनी शिमला-यात्राके बारे में वक्तव्य जारी किया।

आधिकारिक तौर पर साबरमती आश्रम 'हरिजन आश्रम' घोषित किया गया।

८ सितम्बर : वर्धामें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक आरम्भ हुई।

११ सितम्बर : वाइसरायने विधान-सभाको सम्बोधित किया; संघ-योजना स्थगित करने की घोषणा की।

१५ सितम्बर : कांग्रेस कार्य-समितिके घोषणापत्र पर समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया। कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकका समापन।

२० सितम्बर : गांधीजी ने कांग्रेस कार्य-समितिके घोषणापत्र को ध्यानमें रखते हुए मन्त्रि-मण्डलका रुख कैसा होना चाहिए, इस बारेमें एक वक्तव्य दिया।

२३ और २४ सितम्बर : ऑक्सफोर्ड ग्रुपके सदस्योंसे बातचीत की।

२४ सितम्बर : वाइसराय द्वारा बातचीतके दूसरे दौरका निमन्त्रण पाकर शिमला रवाना।

२६ सितम्बर : शिमलामें वाइसरायसे मिले।

२७ सितम्बर . सेगाँवके लिए प्रस्थान किया।

२८ सितम्बर . वाइसरायसे हुई भेंटके बारेमें नागपुर रेलवे स्टेशनपर प्रश्नोंके उत्तर दिये।

समाचारपत्रोंके लिए वक्तव्य जारी करते हुए लॉर्ड जेटलैंडसे अपील की कि वे "पुराने साम्राज्यवादियोंकी भाषा भूल जायें और जो लोग साम्राज्यके बन्धनमें रहते आये हैं, उन सबके लिए एक नया अध्याय आरम्भ करें।"

२ अक्तूबर : दिल्लीमें राजेन्द्रप्रसाद और जवाहरलाल नेहरूके वाइसरायसे मिलने से पहले उनसे गांधीजी ने विचार-विमर्श किया।

३ अक्तूबर . 'मैंचेस्टर गार्जियन'की मार्फत ब्रिटिश जनताके नाम अपने सन्देशमें गांधीजी ने "लोकतन्त्रके बारेमें ब्रिटेनके दावे" के प्रति ईमानदारी बरतने की अपील की।

५ अक्तूबर . वाइसरायसे मिले।

६ अक्तूबर : सेगाँव पहुँचे।

७-१० अक्तूबर · वर्धामें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें सम्मिलित हुए।

१० अक्तूबर . अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किया।

'हरिजन'के लेख 'कसौटी पर' में कांग्रेसियोंके बारेमें यह स्वीकार करते हुए कि "अहिंसात्मक साधनोंके जरिये सशस्त्र आक्रमणसे देशकी रक्षा करने के लिए वे तैयार नहीं है" गांधीजी ने घोषणा की कि "अपनी सरहदोंकी रक्षाके निमित्त भी हिंसाका त्याग ही भारतके लिए अधिक श्रेयस्कर मार्ग है।"

१२ अक्तूबर · कांग्रेसका नेतृत्व सँभालनेमें असमर्थता प्रकट करते हुए विधानचन्द्र रायके नाम अपने एक पत्रमें गांधीजी ने जवाहरलाल नेहरूके नामका सुझाव दिया।

१३ अक्तूबर एक वक्तव्यमें अ० भा० का० कमेटीके युद्ध-प्रस्तावको "नरम और बुद्धिमत्तापूर्ण" बतलाते हुए कांग्रेसियोंसे अपील की कि "ऐसे संकटके समय वे कोई भी ऐसी कार्रवाई न करे जिससे अनुशासनहीनता अथवा अवज्ञाकी गन्ध आती हो।"

१७ अक्तूबर : वाइसरायने भारतके राजनीतिक भविष्य और युद्धके प्रति उसके रुख की घोषणा की।

१८ अक्तूबर: समाचारपत्रोंके नाम अपने वक्तव्यमें गांधीजी ने वाइसरायकी घोषणाको "बड़ी ही निराशाजनक" बताया।

१९ अक्तूबर: वर्धामें मध्य प्रान्त और बरारकी स्थानिक संस्थाओंके प्रतिनिधियोंके सम्मेलनमें बुनियादी शिक्षा योजनापर बोले।

२० अक्तूबर: सेगाँवमें 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिको मुलाकात दी।

२२ अक्तूबर: अपनी सुरक्षा-व्यवस्थाकी आवश्यकताको गैर-जरूरी मानते हुए पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट तथा डिप्टी कमिश्नरके नाम एक पुर्जा भेजा।

कांग्रेस कार्य-समितिने कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलोंसे त्यागपत्र देने का अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पास किया।

२३ अक्तूबर: विश्वके समाचारपत्रोंके नाम अपने एक तारमें गांधीजी ने कहा: "कांग्रेसने दरवाजा खुला रख छोड़ा है ताकि ब्रिटेन अपनी भूल सुधार ले।"

२५-२६ अक्तूबर: गांधी सेवा संघके सदस्योंसे विचार-विमर्श किया।

२७ अक्तूबर: कामन्स सभामें सर सैम्युअल होरके दिये भाषणके समझौतेके स्वरका स्वागत करते हुए गांधीजी ने समाचारपत्रोंके नाम एक वक्तव्य जारी किया, लेकिन वक्तव्यमें उन्होंने सर सैम्युअल होर द्वारा अल्पसंख्यकोंके संरक्षणकी दुहाईके आधारपर कांग्रेसकी माँगके ठुकराये जाने की आलोचना की।

मद्रास सरकारने त्यागपत्र दिया।

२८ अक्तूबर: बुनियादी शिक्षा सम्मेलन, पूनाके लिए सन्देश भेजा।

३१ अक्तूबर: वाइसरायसे भेंटके लिए दिल्ली रवाना।

'हरिजन' में 'कांग्रेसजन' शीर्षक लेखमें गांधीजी ने कहा, "निर्णायक कदम उठाने के लिए सारी कांग्रेसको विश्वासके साथ और एक-मनसे आगे बढ़ना होगा।"

१ नवम्बर: दिल्ली जाते हुए रेल-यात्रामें चीनकी कार्यकारिणीके उप-प्रधान और चीनी बच्चोंको पत्र लिखे।

दिल्लीमें राजेन्द्रप्रसाद और मु० अ० जिन्नाके साथ वाइसरायसे मिले।

जिन्नाके निवास-स्थानपर वार्ता जारी रखी।

२ नवम्बर: हरिजन-निवासके प्रार्थना-कक्षके उद्घाटनके अवसरपर बोले।

४ नवम्बर: वाइसरायसे मिले।

'मैंचेस्टर गार्जियन' के संवाददाताको भेंट देते हुए गांधीजी ने कहा कि "लॉर्ड जेटलैण्डके इस कथनसे मैं स्तम्भित रह गया कि कांग्रेस एक हिन्दू संस्था है।"

५ नवम्बर: नागपुरमें समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंको भेंट दी।

वाइसरायने रेडियो-प्रसारणमें घोषणा की कि कांग्रेस और मुस्लिम लीगके प्रतिनिधियोंको शामिल करने के विचारसे उन्होंने गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्के विस्तारका जो प्रस्ताव रखा था, उससे नेताओंके असहमत होने पर भी वे अन्तिम रूपसे "निराश" नहीं हुए हैं और वे मैत्रीपूर्ण समायोजनका प्रयत्न नहीं छोड़ेंगे।

७ नवम्बर. 'हरिजन' में लिखे लेख 'मतभेद होते ही हैं' में गांधीजी ने आशा व्यक्त की कि जिन्ना और जवाहरलाल नेहरूकी बातचीतके फलस्वरूप "साम्प्रदायिक समस्याके स्थायी हलका आधार निकल आयेगा।"

८ नवम्बर: समाचारपत्रोंको दिये गये वक्तव्यमें वाइसरायके रेडियो-प्रसारण और अखबारी वक्तव्यका जिक्र किया और ब्रिटेनसे भारतको गुलामीसे छुटकारा देने का अनुरोध किया।

१४ नवम्बर. 'न्यूज क्रॉनिकल', लन्दनको तार द्वारा वक्तव्य भेजा।

१८ नवम्बर: इलाहाबादके लिए रवाना हुए।

१९ नवम्बर: 'हरिजन' में प्रकाशित लेख 'एक ही रास्ता' में गाधीजी ने कहा, "सविधान-सभा साम्प्रदायिक समस्याका न्यायसम्मत समाधान ढूंढने का सबसे आसान तरीका प्रस्तुत करती है।"
इलाहाबादमें कांग्रेस कार्यकारिणीकी बैठकमें शामिल हुए; कमला नेहरू स्मारक अस्पतालकी आधारशिला रखी और वहीं विशाल जन-समूहके सामने भाषण दिया।

२२ नवम्बर. कांग्रेस कार्यसमितिने भारतकी राजनीतिक स्थितिपर गाधीजी द्वारा तैयार किये गये प्रस्तावके मसौदेपर चर्चा की।

२३ नवम्बर. गाधीजी ने नाई मुन्नीलालको प्रमाणपत्र दिया।
कांग्रेस कार्य-समितिने गांधीजी का प्रस्ताव पारित किया।
सुभाषचन्द्र बोसके नाम अपने पत्रमें गाधीजी ने लिखा कि उनपर लगाये गये प्रतिबन्धमें गांधीजी भी शरीक थे।
सं० प्रा० के कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंसे बातचीत की।

२४ नवम्बर: मैसूरके लोगोंको पत्र लिखकर गाधीजी ने 'जगल सत्याग्रह' से असहमति प्रकट की।

२५ नवम्बर: वर्धा पहुँचे।

२७ नवम्बर: 'हरिजन' में प्रकाशित लेख 'स्त्रियोंके हाथों स्वराज्य' में स्त्रियोंसे कताईको अपनाने का अनुरोध किया।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

ओ

औ

क

ख

घ

च

ज

झ

ट

ठ

ड

ढ

त

द

ध

न

प

ल

व

श